ŚRĪKṚṢṆAYĀMALAMAHĀTANTRAM

श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्

सान्वयज्ञानवतीभाषाटीकासंवलितम्



अनुवादकः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

Edited by Himanshu Singh Suryavanshi

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-वाराणसी

ISBN : 978-93-86594-45-1

।।श्रीः।।

श्री रमणविहारिणे नमः

श्री गुरुकार्ष्णिभगवते नमः

श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्

सान्वयभाषाटीकासंवलितम्

प्रथमोऽध्यायः

वृन्दावनभ्रष्टविद्याधरविद्याधरीप्रश्नः

सदाशिवमहेशानब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
यस्यांशांशा नमस्तस्मै कस्मैचित् परमात्मने।।१।।

सदाशिवमहेशानब्रह्मविष्णुमहेश्वराः यस्यांशांशाः तस्मै कस्मैचित् परमात्मने नमः।

सदाशिव, ईशान, ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिसके अंश के अंश हैं, उस किसी (अद्भुत अलौकिक) परमात्मा को नमस्कार है।।१।।

नारद उवाच—

शाण्डिल्यकुलसम्भूतं भारद्वाजात्मजा सती।
रूपयौवनसम्पन्ना दिव्यालङ्करणोज्ज्वला।।२।।

रूपयौवनसम्पन्ना, दिव्यालङ्करणोज्ज्वला, भारद्वाजात्मजा सती, शाण्डिल्यकुलसम्भूतम् (स्वं धवं पर्यपृच्छत)।

नारद ने कहा—रूप और यौवन (जवानी) से सम्पन्न, दिव्य आभूषणों से सुशोभित, भारद्वाज की पुत्री सती (नाम वाली विद्याधरी) ने शाण्डिल्य कुल में उत्पन्न—।।२।।

कन्दर्पदर्पशमनं रूपिणं नवयौवनम्।
गोविन्दनामश्रवणजातहर्षाश्रुलोचनम् ।।३।।

कन्दर्पदर्पशमनम्, रूपिणम्, नवयौवनम्, गोविन्दनामश्रवणजातहर्षाश्रु-लोचनम्।

कामदेव के दर्प का शमन करने वाले, रूपवान्, नवयौवनसम्पन्न, श्रीकृष्ण के नामश्रवण से उत्पन्न आनन्दाश्रुओं से युक्त नेत्रों वाले—॥३॥

पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गकम्पमानं मुहुर्मुहुः।
चित्तभित्तिविचित्रश्रीकृष्णरूपमनामयम् ॥४॥

मुहुर्मुहुः पुलकोद्भिन्नकम्पमानसर्वाङ्गम्, अनामयम्, चित्तभित्तिविचित्र-श्रीकृष्णरूपम्।

रोमाञ्च के कारण बार-बार-काँपते हुए सभी अंगों वाले, निर्दुष्ट रूप वाले, हृदय की दीवारों पर विशेष रूप से अंकित श्रीकृष्ण रूप वाले—॥४॥

गोविन्दचरणद्वन्द्वसेवानिष्ठितविग्रहम् ।
श्रीकृष्णसत्कथालापप्रसन्नवदनाऽम्बुजम् ॥५॥

गोविन्दचरणद्वन्द्वसेवानिष्ठितविग्रहम् श्रीकृष्णसत्कथालापप्रसन्नवदनाम्बुजम्।

श्रीकृष्ण के चरणयुगल की सेवा में तत्पर शरीर वाले, श्रीकृष्ण की पुण्यमयी कथा के कथन से प्रसन्न कमलवत् मुख वाले—॥५॥

अनन्यभावं गोविन्दसख्यभावपरायणम्।
कृष्णक्रमश्रयद्धस्तद्वन्द्वं निर्द्वन्द्वलक्षणम्॥६॥

अनन्यभावम्, गोविन्दसख्यभावपरायणम्, कृष्णक्रमश्रयत् हस्तद्वन्द्वम्, निर्द्वन्द्वलक्षणम्।

श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भाव वाले, गोविन्द के प्रति सखाभाव रखने वाले, कृष्ण के पैरों की सेवा में लगे हस्तयुगल वाले (सुख-दुःखादि) द्वन्द से रहित लक्षण वाले—॥६॥

गोविन्दहृदयानन्दसत्कथाश्रवणोत्सुकम् ।
सर्वभूतसमप्रेमाचरणं प्रेरणाप्रदम्॥७॥

गोविन्दहृदयानन्दसत्कथाश्रवणोत्सुकम्, सर्वभूतसमप्रेमाचरणम्, प्रेरणाप्रदम्।

हृदय को आनन्दित करने वाली गोविन्द की पुण्यमयी कथा को सुनने के लिए उत्सुक, समस्त प्राणियों के साथ समभाव से प्रेमाचरण करने वाले, (सबको) प्रेरणा प्रदान करने वाले—॥७॥

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं स्वं धवं पर्यपृच्छत।
हे नाथ! कृष्णभक्तस्त्वं सदा तद्भावभावितः॥८॥

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नं स्वं धवं पर्यपृच्छत। हे नाथ! त्वम् कृष्णभक्तः सदा तद्भावभावितः।

ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, अपने पति (विद्याधर) से (विद्याधरी सती) ने पूछा—हे स्वामी! तुम कृष्ण के भक्त हो और सदा उनकी भावना से भावित रहते हो॥८॥

किन्तु त्वन्नेत्रयोः देव स्यन्दतेऽश्रुकला कथम्।
ज्ञातुमिच्छामि ते दुःखं कृष्णं प्राप्तुं त्वमर्हसि॥९॥

किन्तु देव! त्वन्नेत्रयोः कथम् अश्रुकला स्यन्दते, ते दुःखम् ज्ञातुम् इच्छामि, त्वम् कृष्णम् प्राप्तुम् अर्हसि।

किन्तु हे स्वामी! तुम्हारी आँखों से अश्रुधारा क्यों बह रही है। तुम्हारा दुःख जानना चाहती हूँ। तुम कृष्ण को पाने के योग्य हो॥९॥

विद्याधर उवाच—

शृणु चित्तव्यथां देवि! कृष्णप्रेमसमुद्भवाम्।
दिव्यवृन्दावनाद्धीनमात्मानं शोचयाम्यहम्॥१०॥

हे देवि! कृष्णप्रेमसमुद्भवाम् चित्तव्यथाम् शृणु। आत्मानम् दिव्यवृन्दावनात् हीनम् अहम् शोचयामि।

विद्याधर ने कहा—हे देवि! कृष्णप्रेम से उत्पन्न चित्त की व्यथा को सुनो। मैं अपने को अलौकिक वृन्दावन से च्युत (मानकर) शोक कर रहा हूँ॥१०॥

भूर्लोके कर्मलोकेऽस्मिन् वसाने कृपया हरेः।
इति नीचे मयि सदा हृदयाश्वासनक्रिया॥११॥
क्रियते दानदयया श्रीकृष्णेन विलासिना।
विहसामि तदैवाहं बालवन्मत्तचेष्टितः॥१२॥

हरेः कृपया अस्मिन् कर्मलोके भूर्लोके वसाने मयि नीचे सदा हृदयाश्वासनक्रिया इति विलासिना श्रीकृष्णेन दानदयया क्रियते तदा एव बालवत् मत्तचेष्टितः अहम् विहसामि।

हरि की कृपा से इस कर्मलोक पृथ्वीलोक में निवास करते रहने पर, मुझ नीच के हृदय में सर्वदा आश्वासन की क्रिया विलासी श्रीकृष्ण के द्वारा दानदया (मात्र) से की जाती है; इसी कारण मैं बालक के समान मतवाली चेष्टा से हँसता हूँ॥११-१२॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुर्लभादुदगात् परम्।
श्रीमद्वृन्दावनपदाद् गोविन्दपदचिह्नितात्॥१३॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनाम् परमदुर्लभात् उदगात्, गोविन्दपदचिह्नितात् श्रीमद्-वृन्दावनपदाद्—।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि के लिए भी परम दुर्लभ, अत्यन्त उच्च और अगम्य, श्रीकृष्ण के पदचिह्नों से युक्त, श्रीमद्वृन्दावनपद (स्थान) से—॥१३॥

गोपगोपीगणप्रेमवसतेः सुखसम्पदः।
गोविन्दचरणद्वन्द्वमकरन्दरसोदयात् ॥१४॥

गोपगोपीगणप्रेमवसतेः सुखसम्पदः गोविन्दचरणद्वन्द्वमकरन्दरसोदयात्—।

गोप-गोपियों की प्रेम-नगरी से, सुखराशि से तथा श्रीकृष्ण के चरणयुगल से स्रावित होने वाले मकरन्दरस (मधु) से—॥१४॥

वञ्चितोऽस्मीति मत्वाद्य रौम्युद्बाहुर्विमूढवत्।
गलद्वाष्पाकुलाक्षोऽस्मि तदीयमहिमास्मृतेः॥१५॥

वञ्चितो अस्मि इति मत्वा अद्य विमूढवत् उद्बाहुः रौमि। तदीयमहिमास्मृतेः गलद्वाष्पाकुलाक्षः अस्मि।

वञ्चित हो गया हूँ—ऐसा मानकर आज पागलों की तरह, हाथ ऊपर किए हुए क्रन्दन कर रहा हूँ। उनकी महिमा के स्मरण के कारण बहती हुई अश्रुधारा से व्याकुल आँखों वाला हो गया हूँ॥१५॥

त्वदीयसङ्गमे यादृक् सुखं कमललोचने।
तत्कोटिकोटिगुणितं सुखं गोविन्दसङ्गमे॥१६॥

कमललोचने! त्वदीयसङ्गमे यादृक् सुखम् (अस्ति) तत्कोटिकोटिगुणितम् सुखम् गोविन्दसङ्गमे (अस्ति)।

हे कमल जैसी आँखों वाली! तुम्हारे मिलन में जैसा सुख (है), उसका करोड़ों-करोड़ों गुना सुख श्रीकृष्ण के मिलन में (है)॥१६॥

तत्तत्सुखविहीनस्य दुःखमन्यत् सुखं प्रिये।
तेन क्लिष्टमतिश्चास्मि सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥१७॥

प्रिये! तत् तत्सुखविहीनस्य अन्यत् सुखम् दुःखम् (इति मन्ये)। तेन च क्लिष्टमतिः अस्मि। अहम् सत्यम् सत्यम् वदामि।

तो हे प्रिये! उस सुख से वञ्चित व्यक्ति का उससे (कृष्णमिलन से) भिन्न सुख-दुःख (ही है) और इस कारण मैं क्लेशयुक्त बुद्धि वाला हो गया हूँ। मैं सच-सच कह रहा हूँ॥१७॥

ब्रह्मानन्दो भवेद् देवि परार्द्धद्विगुणीकृतः।
गोविन्दसेवानन्दस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥१८॥

देवि! (यदि) ब्रह्मानन्दः परार्द्धद्विगुणीकृतः भवेत् (तथापि) गोविन्द-सेवानन्दस्य षोडशीम् कलाम् न अर्हति।

हे देवि! ब्रह्मानन्द परार्द्ध के दुगुने के बराबर हो जाय तो (भी) श्रीकृष्ण की सेवा के आनन्द की सोलहवीं कला (अंश) के बराबर नहीं है॥१८॥

तेनैव त्वन्मुखे नित्यं विमुखः सुमुखि प्रिये।
यदि वाऽऽपतितं दुःखं दृष्ट्वा हृष्टो हसामि वै॥१९॥

सुमुखि ! प्रिये ! तेनैव त्वत् मुखे नित्यम् विमुखः यदि दुःखम् आपतितम् वा, (तद्) दृष्ट्वा हृष्टः वै हसामि।

हे सुन्दर मुख वाली प्रियतमे! उसी कारण से (मैं) तुम्हारे मुख के प्रति विमुख रहता हूँ। यदि दुःख भी आया हो तो भी उसे देखकर मैं हर्षयुक्त होकर हँसता हूँ॥१९॥

तदत्र कारणं देवि शृणुष्वैकमतिः सती।
कल्पवृक्षफलस्थस्य सामान्यं फलमिच्छतः॥२०॥

देवि ! एकमतिः सती अत्र तत् कारणम् शृणुष्व। कल्पवृक्षफलस्थस्य सामान्यम् फलम् इच्छतः।

हे देवि! अनन्यमना होकर उसका कारण सुनो। जिसके पास कल्पवृक्ष का फल हो और वह सामान्य फल की इच्छा से दौड़ रहा हो तो उसे जो दुःख होता है॥२०॥

यद् दुखं धावतः स्यात् तत्र का परिदेवना।
श्लाघ्यं भवतु मे दुःखं त्यक्तगोविन्दसम्पदः॥२१॥

धावतः यत् दुःखम् स्यात् तत्र का परिदेवना। त्यक्तगोविन्दसम्पदः मे दुःखम् श्लाघ्यम् भवतु।

दौड़ने वाले को जो दुःख होता है, वहाँ पश्चात्ताप का क्या कारण है (अर्थात् नहीं है)। श्रीकृष्णरूपी सम्पत्ति के छूटने से उत्पन्न हुआ मेरा जो दुःख है, वह प्रशंसनीय (है)॥२१॥

सामान्यसुखलिप्सायां यथोचितमिदं फलम्।
इति स्मृत्वा हसन्नित्यं विलपामि पुनः पुनः॥२२॥

सामान्यसुखलिप्सायाः इदम् फलम् यथोचितम्, इति स्मृत्वा नित्यम् हसन् पुनः पुनः विलपामि।

सामान्य सुखलिप्सा का यह फल यथोचित है, ऐसा स्मरण करके मैं नित्य हँसता हुआ श्रीकृष्णरूपी सम्पत्ति के छूट जाने पर (सामान्य सुखलिप्सा से प्राप्त दुःख पर) बार-बार रोता हूँ।।२२।।

आकाशस्थो यथा भानुर्जलस्थालीष्वनेकधा।
प्रकाशते सर्वभूतेष्वेवं कृष्णस्तथा ध्रुवम्।।२३।।

आकाशस्थः भानुः यथा जलस्थालीषु अनेकधा प्रकाशते, एवम् सर्वभूतेषु कृष्णः तथा ध्रुवम् (प्रकाशते)।

आकाश में स्थित सूर्य जैसे जल से भरी थालियों में अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार कृष्ण भी सभी प्राणियों में निश्चय ही (प्रकाशित होते हैं)।।२३।।

सम्मुखस्थेषु तेष्वेव शुद्धज्ञानं विजायते।
सर्वभूतान्तरस्थोऽसौ भगवान् भूतभावनः।।२४।।

तेषु सम्मुखस्थेषु एव शुद्धज्ञानम् विजायते, असौ भगवान् भूतभावनः सर्वभूतान्तरस्थः।

उनके सम्मुखस्थ होने पर ही शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है; क्योंकि सर्वव्यापी भगवान् भूतभावन सभी प्राणियों में स्थित होते हैं।।२४।।

सर्वगः सर्वपाताले नास्ति मे दुर्गमे भयम्।
यदा कृपावलोकेन तेनैवाहं निरीक्षितः।।२५।।

यदा तेनैव कृपावलोकेन अहम् सर्वगः निरीक्षितः तदा दुर्गमे, सर्वपाताले मे भयम् नास्ति।

जब मैं उनकी ही कृपादृष्टि से देखा जाता हूँ तो मेरे लिए दुर्गम स्थान पर और सभी पातालों में भय नहीं है।।२५।।

तदा मम भवेन्नृत्यं गीतं चैव विशेषतः।
प्रिये! किं कथयिष्यामि यावद् वै दुर्भगस्य मे।।२६।।

तदा मम नृत्यम् गीतम् च विशेषतः भवेत् एव, प्रिये ! यावद् दुर्भगस्य मे किम् दुःखम् कथयिष्यामि।

तब मेरा (मेरे द्वारा) नृत्य और गीत विशेष रूप से होता ही है। प्रिये! भाग्यहीन अपने विषय में मैं क्या कहूँ।।२६।।

ब्राह्मण्युवाच—

दुःखमारूढवृक्षस्य पतितस्य फलोदये।
कोऽसि त्वं कस्य वा हेतोश्च्युतः कस्मात् सुखाच्चिरम्॥२७॥

फलोदये आरूढवृक्षस्य पतितस्य कोऽसि त्वम्, कस्य वा हेतोः कस्मात् सुखात् चिरम् च्युतः।

ब्राह्मणी ने कहा—फलप्राप्ति के समय ही पेड़ से गिरे हुए भाग्यहीन तुम कौन हो? किस कारण से और किस सुख से तुम चिरकाल से च्युत हो?॥२७॥

वञ्चितोऽसि महाभाग कस्मात्स्थानादनुत्तमात्।
कुत्र तिष्ठति तत् स्थानं प्रभो मे छिन्धि संशयान्॥२८॥

महाभाग! कस्मात् अनुत्तमात् स्थानात् वञ्चितः असि? तत् स्थानम् कुत्र तिष्ठति? प्रभो! मे संशयान् छिन्धि।

हे महाभाग! किस सर्वोत्तम स्थान से आप वञ्चित हो गये ? वह स्थान कहाँ है? हे स्वामी! मेरे संशयों का नाश करें॥२८॥

ब्राह्मण उवाच—

शापभ्रष्टासि नात्मानं मां च जानासि भामिनि।
प्रायः स्त्रियो विपत्काले न स्मरन्ति निजक्रियाम्॥२९॥

भामिनि! शापभ्रष्टा असि (अत एव) आत्मानम् माम् च न जानासि। स्त्रियः विपत्काले निजक्रियाम् प्रायः न स्मरन्ति।

ब्राह्मण ने कहा—हे भामिनि! तुम शाप के कारण भ्रष्ट हो गयी हो। (इसलिए) अपने को और मुझको नहीं जानती। (क्योंकि) स्त्रियाँ विपत्तिकाल में अपने किये गए कर्मों का प्रायः स्मरण नहीं करतीं॥२९॥

ब्राह्मण्युवाच—

वञ्चितोऽसि महाभाग कस्मात् स्थानादनुत्तमात्।
कियद् दूरे च तत् स्थानं तन्मे कथय निश्चितम्॥३०॥

महाभाग ! कस्मात् अनुत्तमात् स्थानात् वञ्चितः असि? तत् स्थानम् कियद् दूरे च, तत् मे निश्चितम् कथय।

ब्राह्मणी ने कहा—हे महाभाग! किस सर्वोत्तम स्थान से आप वञ्चित हो गए हैं? वह स्थान कितनी दूरी पर है? इसे आप मुझे निश्चित रूप से बतलाइए?॥३०॥

ब्राह्मण उवाच—

श्रीमद्वृन्दावनस्थानादहं भ्रष्टोऽस्मि दुर्भगः।
श्रीवृन्दावनचन्द्रस्य शापेन पृथिवीं गतः॥३१॥

दुर्भगः अहम् श्रीमद्वृन्दावनस्थानाद् भ्रष्टः अस्मि। श्रीवृन्दावनचन्द्रस्य शापेन पृथिवीम् गतः।

ब्राह्मण ने कहा—मैं श्रीमद्वृन्दावन नामक स्थान से भ्रष्ट हो गया हूँ। श्रीवृन्दावन के चन्द्रमा अर्थात् कृष्ण के शाप से पृथिवी पर चला गया॥३१॥

तत्तु वृन्दावनस्थानं सर्वलोकमनोहरम्।
व्यापकं च यथा ब्रह्म नाना सर्वत्र भासते॥३२॥

तत् वृन्दावनस्थानम् तु सर्वलोकमनोहरम्। ब्रह्म यथा व्यापकम् नाना च सर्वत्र भासते।

इस कारण से वृन्दावन स्थान सभी लोकों में मनोहर है, ब्रह्म की तरह व्यापक है और सर्वत्र नाना प्रकार से भासित होता है॥३२॥

सर्वलोकोपरिचरं शिरोमणिरिवोज्ज्वलम्।
दिव्यवृन्दावनं नाम महावनमनुत्तमम्॥३३॥

शिरोमणिः इव उज्ज्वलम्, सर्वलोकोपरिचरम्, दिव्यवृन्दावनम् नाम अनुत्तमम् महावनम्।

शिरोमणि की तरह उज्ज्वल, समस्त लोकों के ऊपर चलने वाला (अर्थात् विद्यमान) दिव्य वृन्दावन नामक सर्वोत्तम महावन है॥३३॥

भौमं वृन्दावनत्वं यद् गतं श्रीकृष्णलीलया।
वृन्दावनं तु त्रिविधं दिव्यं भौमं तु (?च) सुन्दरि॥३४॥

श्रीकृष्णलीलया यद् भौमम् वृन्दावनत्वम् गतम्। सुन्दरि वृन्दावनम् दिव्यम् तु भौमम् च विविधम्।

श्रीकृष्ण की लीला से जो वृन्दावनत्व पृथिवी पर चला गया, इसलिए वृन्दावन दिव्य भौम (= भूमिस्थ) और तीन प्रकार का है॥३४॥

भौतञ्च ब्रह्मणा ज्योतिः स्वरूपेण विनिर्मितम्।
यत्तु दिव्यं तथा भौमं ब्रह्माण्डान्तर्गतं तु यत्॥३५॥

भौतम् (वृन्दावनम्) च ब्रह्मणा ज्योतिःस्वरूपेण विनिर्मितम्। यत्तु दिव्यम् तथा भौमम् तत्तु (वृन्दावनम्) ब्रह्माण्डान्तर्गतम्।

पञ्चभूतात्मक (वृन्दावन) ब्रह्मा के द्वारा ज्योतिःस्वरूप से निर्मित है और जो दिव्य और पार्थिव (वृन्दावन) है, वह ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत है।।३५।।

दिव्यवृन्दावनस्पर्शात् दिव्यं रूपं महत्पदम्।
अद्भुतं दृश्यते भूमौ सर्वेषां पापमोचनम्।।३६।।

दिव्यवृन्दावनस्पर्शात् दिव्यम् रूपम् महत्पदम्, सर्वेषाम् पापमोचनम्, भूमौ अद्भुतम् दृश्यते।

दिव्य वृन्दावन के स्पर्श से दिव्य रूप और महत्पद वाला, सबके पापों को दूर करने वाला (पार्थिव वृन्दावन) भूमि पर अद्भुत दिखलाई पड़ता है।।३६।।

तदेव द्विविधं साध्वि मथुराः (?माथुरम्) पुरुषोत्तम (?पुरुषोत्तमम्)।
ययोः कृतायां यात्रायां पापं याति न संशयः।।३७।।

साध्वि! तदेव द्विविधम् माथुरम् पुरुषोत्तमम् (च)। ययोः यात्रायाम् कृतायाम् (अत्र) पापम् याति न संशयः।

हे साध्वि! वह दो प्रकार का है—१. मथुरा से सम्बद्ध और २. पुरुषोत्तमरूप। इन दोनों की यात्रा करने पर पाप चला जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३७।।

मथुरायां स्वयं साक्षादागतं विपिनं महत्।
यत्र क्रीडति विश्वात्मा श्रीगोविन्दो निजैर्गुणैः।।३८।।

मथुरायाम् महद् विपिनम् स्वयम् साक्षात् आगतम्, यत्र विश्वात्मा गोविन्दः निजैः गुणैः क्रीडति।

मथुरा में महान् वन (वृन्दावन) स्वयम् ही साक्षात् चला आया है, जहाँ विश्वात्मा श्रीकृष्ण अपने गुणों के साथ क्रीड़ा करते हैं।।३८।।

अन्यं (? अन्यद्) मन्यामहे श्रीमत् पुरुषोत्तमसंज्ञया।
तस्य विश्वेश्वरस्यैव प्रतिमूर्तिर्विरिञ्चिना।।३९।।

अन्यत् (वृन्दावनम्) श्रीमत् पुरुषोत्तमसंज्ञया (ज्ञायते)। विरिञ्चिना तस्य विश्वेश्वरस्यैव प्रतिमूर्तिः।

दूसरा वृन्दावन श्रीमत् पुरुषोत्तम नाम से जाना जाता है। ब्रह्मा ने इसे उसी विश्वेश्वर की प्रतिमूर्ति माना है।।३९।।

प्रार्थिता निजभक्तस्य इन्द्रद्युम्नस्य धीमतः।
श्रीकृष्णासक्तचित्तस्य कल्याणार्थं शुचिस्मिते।।४०।।

शुचिस्मिते! श्रीकृष्णासक्तचित्तस्य निजभक्तस्य धीमतः इन्द्रद्युम्नस्य कल्याणार्थं (विश्वेश्वरस्य प्रतिमूर्तिः) प्रार्थिता।

हे पवित्र मुस्कान वाली! श्रीकृष्ण में आसक्त चित्त वाले, निज भक्त, बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न के कल्याणार्थ (विश्वेश्वर की वह प्रतिमूर्ति) प्रार्थित हुई।।४०।।

श्रुत्वेदं हर्षदं वृत्तं ब्राह्मणी स्वपतिं तदा।
शान्तं दान्तं क्षमायुक्तं वह्निहोमपरायणम्।।४१।।

तदा इदम् हर्षदम् वृत्तम् श्रुत्वा ब्राह्मणी वह्निहोमपरायणम्, क्षमायुक्तम्, शान्तम् दान्तम् स्वपतिम् (पप्रच्छ)।

तब इस हर्ष देने वाले वृतान्त को सुनकर ब्राह्मणी ने अपने अग्निहोत्री, क्षमावान्, शान्त और दमयुक्त पति से (पूछा)।।४१।।

कृष्णभक्तजनप्राणप्रतिमं प्रशमायनम्।
सङ्गतकुशलाऽभिज्ञा सर्वशास्त्रार्थकोविदा।।४२।।

सङ्गतकुशलाऽभिज्ञा सर्वशास्त्रार्थकोविदा (ब्राह्मणी) कृष्णभक्तजनप्राणप्रतिमम् प्रशमायनम् (स्वपतिं पप्रच्छ)।

व्यवहारकुशला, निपुणा और सभी शास्त्रों में पारंगता (ब्राह्मणी ने) अपने प्राणों से भी प्रिय कृष्ण के भक्त, शान्ति की मूर्ति (पति से पूछा)।।४२।।

ज्ञानविज्ञानगोविन्दसेवानिर्जितकल्मषा ।
अपारभवपाथोधिं तर्त्तुकामा शुचिस्मिता।।४३।।
पप्रच्छ ब्राह्मणी कान्तं कान्तं क्लान्तमनाः शुचिम्।

शुचिस्मिता, ज्ञानविज्ञानगोविन्दसेवानिर्जितकल्मषा अपारभवपाथोधिम् तर्त्तुकामा क्लान्तमनाः ब्राह्मणी कान्तम् कान्तम् शुचिम् (स्वपतिम् पप्रच्छ)।

पवित्र मुस्कान वाली, ज्ञान-विज्ञान तथा गोविन्द की सेवा से दूर किये गये कल्मषों (पापों) वाली, अपार भवसागर को पार करने की इच्छा वाली दुःखीचित्त ब्राह्मणी ने अपने अभीष्ट प्रिय पवित्र पति से पूछा।।४३।।

ब्राह्मण्युवाच—

स्वामिन् ध्यायसि किं नित्यं मुखेन परिशुष्यता।।४४।।
कृष्णः क्वचिद् भ्रान्तः प्रस्खलद्गतिकः क्वचित्।
क्वचिदुन्मत्तवद् भासि क्वचिद्धससि बालवत्।।४५।।

स्वामिन्! परिशुष्यता मुखेन नित्यम् किम् ध्यायसि? क्वचित् कृष्णः, क्वचित् भ्रान्तः, क्वचिद् प्रस्खलद्गतिकः उन्मत्तवद् भासि, क्वचित् बालवद् हससि।

ब्राह्मणी ने कहा—हे स्वामी! सूखे हुए मुख से नित्य किसका ध्यान करते हो? कभी कृष्णमय हो जाते हो, कभी भ्रान्त, कभी लड़खड़ाते हो, कभी पागल की तरह लगते हो और कभी बच्चे की तरह हँसते हो।।४४-४५।।

रोदिषि क्वचिदुद्बाहुर्गलद्वाष्पाकुलेक्षणः।
सुखकाले क्लिष्टमना दुःखकाले हसन्मुखः।।४६।।

उद्बाहुः गलद्वाष्पाकुलेक्षणः क्वचिद् रोदिषि, सुखकाले क्लिष्टमनाः, दुःखकाले हसन्मुखः (असि)।

हाथ ऊपर किए हुए और आँसू गिर रही; अत एव व्याकुल आँखों वाले आप कभी रोते हैं। सुखकाल में दुःखी मन वाला रहते हैं और दुःखकाल में प्रसन्नमुख रहते हैं।।४६।।

निर्लज्जितः प्रकथने निर्भयो दुर्गमे वने।
क्वचिन्नृत्यसि निर्लज्जो गायस्युच्चस्वरः क्वचित्।।४७।।
किमिदं ते व्यवसितं न जाने तद् वद प्रभो।

प्रकथने निर्लज्जितः, दुर्गमे वने निर्भयः, क्वचित् निर्लज्जः नृत्यसि, क्वचित् उच्चस्वरः गायसि। इदम् किम् ते व्यवस्थितम् न जाने, प्रभो! तद् वद।

वाक्यकथन में निर्लज्ज हो, दुर्गम वन में निर्भय रहते हो, कभी निर्लज्ज होकर नाचते हो, और कभी ऊँचे स्वर में गाते हो। यह आपका कौन सा व्यवहार है, समझ नहीं पा रही हूँ। हे प्रभो! उसे बताइए।।४७।।

ब्राह्मण उवाच—

प्रिये! यद् दुर्लभं लोके तन्मया परिचिन्त्यते।।४८।।
तदप्राप्तिभयात् शुष्कवदनश्चकितेक्षणः।
कदाचित् हृदये तस्याश्वासविश्वासतो मुहुः।।४९।।

प्रिये! यद् लोके दुर्लभम् तत् मया परिचिन्त्यते। तदप्राप्तिभयात् शुष्कवदनः चकितेक्षणः (चास्मि)। कदाचित् (मम) हृदये तस्याश्वासविश्वासतः मुहुः—।

हे प्रिये! इस लोक में जो दुर्लभ है, मैं उसका ध्यान करता हूँ। उसकी अप्राप्ति के भय से शुष्क मुख वाला तथा चकित आँखों वाला हूँ। कभी अपने हृदय में आश्वासन और विश्वास के कारण पुनः—।।४८-४९।।

प्रहृष्टहृदयश्चास्मि शान्तात्मा विगतज्वरः।
यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तान्तकृत् सदा॥५०॥

शान्तात्मा, विगतज्वरः प्रहृष्टहृदयश्च अस्मि यथा अधनः लब्धधने विनष्टे सदा तान्तकृत्।

शान्तात्मा, विगतज्वर तथा प्रहृष्ट हृदय वाला हो जाता हूँ। जैसे निर्धन व्यक्ति (कदाचित्) प्राप्त हुए धन के विनष्ट होने पर सदा कष्टग्रस्त (रहता) है॥५०॥

तच्चिन्तावशगो नान्यत् चिन्तयेदेकमानसः।
एवं लब्धेश्वरस्यास्य दुर्भगस्य दुरात्मनः॥५१॥

तत् चिन्तावशगः एकमानसः अन्यत् न चिन्तयेत्। एवम् अस्य दुर्भगस्य, दुरात्मनः लब्धेश्वरस्य।

उस (धन) की चिन्ता से ग्रस्त, एकमानस, अन्य विषय के बारे में नहीं सोचता ऐसी ही (दशा) इस अभागे दुरात्मा तथा ईश्वर को प्राप्त किए हुए को भी है॥५१॥

तत्पादसेवासम्बन्धाद् दैवाद् भ्रष्टस्य सुव्रते।
पुनस्तं प्राप्तुकामस्य दैवान्न घटते च यत्॥५२॥

सुव्रते! दैवात् तत्पादसेवासम्बन्धाद् भ्रष्टस्य पुनः तम् प्राप्तुकामस्य दैवात् यत् न घटते (तस्यापि सा एव दशा भवति)।

हे अच्छे व्रत वाली! दैववशात् उस (ईश्वर) की चरणसेवा के सम्बन्ध से च्युत, पुनः उसकी (सेवासम्बन्ध की) प्राप्ति की इच्छा रखने वाला, दैववशात् जिसे ईश्वरप्राप्ति न हो रही हो (उसकी भी ऐसी ही स्थिति होती है)॥५२॥

तेनैवाहं सदा भ्रान्तः संश्रान्तो वीक्षितस्त्वया।
तच्चिन्ताविष्टचित्तस्य पथि यातुः स्खलद्गतेः॥५३॥

तेन एव त्वया अहम् सदा भ्रान्तः संश्रान्तः वीक्षितः। तच्चिन्ताविष्ट-चित्तस्य पथि यातुः स्खलद्गतेः।

इसी कारण से तुम्हारे द्वारा सदा भ्रान्त और एकदम थका हुआ देखा जाता हूँ; (क्योंकि) उस (ईश्वर) की चिन्ता से आविष्ट चित्तवाले पथ में जाते हुए भ्रष्ट गति वाले—॥५३॥

देह उन्मत्तवद् भाति भावाभावविवर्जिता (? तः)।
अहं तव सखा बन्धो! मा खेदं कुरु भामिनि॥५४॥

(तस्य यातुः) देहः भावाभावविवर्जितः उन्मत्तवद् भाति। बन्धो! अहम् तव सखा। भामिनि! खेदम् मा कुरु।

(मेरी) देह हाव-भाव से रहित पागल व्यक्ति की तरह दिखलाई पड़ती है। अरे भाई! मैं तुम्हारा मित्र हूँ। हे सुन्दरी! दुःख मत करो॥५४॥

हितार्थं तदधिष्ठानं वनं वृन्दावनं परम्।
यत्तु भौमं वनं तत्तु जाते भौते व्यवस्थितम्॥५५॥

परम् वनम् वृन्दावनम् तदधिष्ठानम्। यत्तु भौमम् वनम् तत्तु जाते हितार्थम् भौते व्यवस्थितम्।

पर अर्थात् उत्तम वन, वृन्दावन उस (ईश्वर) का अधिष्ठान है, जो भूमिस्थ वन है, वह उत्पन्न होने पर (प्राणियों के) हितार्थ, पञ्चभूतात्मक रूप में व्यवस्थित है॥५५॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वभूतशिरोपरि।
सहस्रपत्रं कमलं भाव्यते सिद्धयोगिभिः॥५६॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तम् सर्वभूतशिरोपरि सहस्रपत्रम् कमलम् सिद्धयोगिभिः भाव्यते।

ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियों के शिर के ऊपर सहस्रदल कमल की सिद्ध योगियों के द्वारा भावना की जाती है॥५६॥

दिव्यं वृन्दावनं ध्यात्वा विष्णुर्भूलोकपालकः।
भौमं वनं च सञ्चिन्त्य ब्रह्मा स्रष्टा श्रुतान्वितः॥५७॥

विष्णुः दिव्यम् वृन्दावनम् ध्यात्वा भूलोकपालकः (अभवत्)। ब्रह्मा भौमम् वनम् सञ्चिन्त्य स्रष्टा श्रुतान्वितः च (अभवत्)।

विष्णु दिव्य वृन्दावन का ध्यान करके पृथ्वीलोक के पालक हो गये (और) ब्रह्मा भूमिस्थ वन की सम्यक् रूप से चिन्ता (ध्यान) करके स्रष्टा और श्रुति वाले अर्थात् वेदवित् (बन गए)॥५७॥

भौतं वृन्दावनं ध्यात्वा शिवः संसिद्धिमागतः।
एषामेकतमं ध्यात्वा तथैव पुरुषं (?षः)परम् (?रः)॥५८॥

शिवः भौतम् वृन्दावनम् ध्यात्वा संसिद्धिम् आगतः। तथैव एषाम् एकतमम् ध्यात्वा पुरुषः परः (संसिद्धिम् गतः)।

शिव पञ्चभूतात्मक वृन्दावन का ध्यान करके संसिद्धि को प्राप्त किए। उसी प्रकार इन (भौत, दिव्य और भौम) में से किसी एक का ध्यान करके परम पुरुष भी ऐसे ही (सिद्धि को प्राप्त हुए)॥५८॥

तरन्ति भवपाथोधिं सर्वे प्राप्तमनोरथाः।
आबाल्यं तव सख्यं मे प्रिये भक्तासि मे सदा।
आमूलात् कथयिष्यामि यतो भ्रष्टोऽस्मि तच्छृणु॥५९॥

इति श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रे वृन्दावनभ्रष्टविद्याधर-
विद्याधरीप्रश्नोनामप्रथमोऽध्यायः॥१॥

प्राप्तमनोरथाः सर्वे भवपाथोधिम् तरन्ति। आबाल्यम् तव मे सख्यम्, प्रिये! सदा मे भक्ता असि। यतः भ्रष्टः अस्मि। तत् आमूलात् कथयिष्यामि शृणु।

प्राप्त मनोरथ वाले सभी लोग भवसागर को पार कर जाते हैं। बचपन से ही हमारी-तुम्हारी मित्रता है। तुम सर्वदा से मेरी भक्ता रही हो। जिस कारण मैं भ्रष्ट हो गया हूँ, उसे प्रारम्भ से ही बतलाऊँगा, सुनो॥५९॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र में वृन्दावन से भ्रष्ट विद्याधर-विद्याधरी का प्रश्न नामक प्रथम अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

द्वितीयोऽध्यायः

भूरादिलोकवर्णनम्

नारद उवाच—

इत्थं संपृष्टो (?पृष्टो) ब्राह्मण्या ब्राह्मणः संशितव्रतः।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो गोविन्दैकपरायणः॥१॥

ब्राह्मण्या इत्थम् पृष्टः संशितव्रतः गोविन्दैकपरायणः वदताम् श्रेष्ठः ब्राह्मणः अवदत्।

नारद ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाले, एकमात्र गोविन्द की सेवा करने वाले, वक्ताओं में श्रेष्ठ उस ब्राह्मण ने कहा॥१॥

ब्राह्मण उवाच—

सर्वाधस्ताद् ब्रह्मशिलाधारशक्तिस्वरूपिणी।
सा द्वितीया परामूर्तिः गोविन्दस्य महात्मनः॥२॥

सर्व अधस्ताद् आधारशक्तिस्वरूपिणी सा ब्रह्मशिला महात्मनः गोविन्दस्य द्वितीया परामूर्तिः (अस्ति)।

ब्राह्मण ने कहा—सबसे नीचे आधारशक्तिस्वरूपा ब्रह्मशिला स्थित है। वह (ब्रह्मशिला) भगवान् गोविन्द की द्वितीय परामूर्ति है॥२॥

तदूर्ध्वे च महाकूर्मः कृष्णस्यांशांशसम्भवः।
यदूर्ध्वे सखि पातालं स्वर्गाधिकमनोहरम्॥३॥

सखि! तद् ऊर्ध्वे कृष्णस्य अंशांशसम्भवः महाकूर्मः यद् ऊर्ध्वे च स्वर्गाधिकमनोहरम् पातालम् (अस्ति)।

हे सखि! उस ब्रह्मशिलारूप भगवान् गोविन्द की परामूर्ति के ऊपर भगवान् श्रीकृष्ण के अंश के अंश से उत्पन्न महाकूर्म (विशाल कच्छप) है और उस कच्छप के ऊपर स्वर्ग से भी अधिक मनोहर पाताल है॥३॥

सहस्रवदनो यत्र नागराजो विराजते।
कूर्मपृष्ठैकदेशे यस्तन्तुवद् दृश्यते सदा॥४॥

यत्र सहस्रवदनः नागराजः विराजते। यः कूर्मपृष्ठैकदेशे तन्तुवद् सदा दृश्यते।

जहाँ विशाल कच्छप की पीठ पर हजार फणों वाले नागराज शेष विराजते हैं। ये नागराज महाकूर्म की पीठ के एक भाग में सूत्र की तरह सदा दिखाई देते हैं।।४।।

महातलं तदूर्ध्वे च नागतिर्यक्शिरः स्थितम्।
तलातलं तदूर्ध्वे च तदूर्ध्वे च रसातलम्।।५।।

तद् ऊर्ध्वे तिर्यक्नागशिरः स्थितम् महातलम् (अस्ति)। तद् ऊर्ध्वे च तलातलम् तद् ऊर्ध्वे च रसातलम् (अस्ति)।

उस पाताल लोक के ऊपर शेषनाग के तिरछे शिर के ऊपर महातल है। उसके ऊपर तलातल है। तलातल के और ऊपर रसातल है।।५।।

शेषमध्यस्थलस्थं तद् राष्ट्रं सर्वसुखावहम्।
तदूर्ध्वे सुतलं नाम नानाभूतमनोहरम्।।६।।

शेषमध्यस्थलस्थम् तद् सर्वसुखावहम् राष्ट्रम्। तद् ऊर्ध्वे नानाभूतमनोहरम् सुतलम् नाम (अस्ति)।

शेषनाग के फण के मध्य में स्थित रसातल नाम का वह राष्ट्र है, जो सभी सुखों का आगार है। उस रसातल से ऊपर अनेकों प्राणियों से सुशोभित सुतल नाम का पाताल है।।६।।

यत्र दैत्यपतिः श्रीमान् बलिरिन्द्रपदाच्च्युतः।
तिष्ठत्यमरसङ्काशः सम्मुखीनगदाधरः।।७।।

यत्र इन्द्रपदात् च्युतः सम्मुखीनगदाधरः अमरसंकाशः दैत्यपतिः श्रीमान् बलिः तिष्ठति।

जहाँ अर्थात् सुतल लोक में दैत्यराज श्रीमान् बलि निवास करते हैं, जो इन्द्र पद से च्युत हैं। वे देवताओं के तुल्य अर्थात् अमरत्व को प्राप्त हैं एवं भगवान् श्रीहरि गदाधररूप में सर्वदा उनके सम्मुख विराजमान रहते हैं।।७।।

तदूर्ध्वे वितलं यत्र मत्स्यरूपी जर्नादनः।
हयग्रीवदैत्यहन्ता तदूर्ध्वमतलं प्रिये।।८।।
यत्र तिष्ठति विष्ण्वंशो वराहो धवलाकृतिः।
शेषचूडामणेरूर्ध्वे शोभते मशकोपमः।।९।।

प्रिये तद् ऊर्ध्वे वितलम् यत्र हयग्रीवदैत्यहन्ता मत्स्यरूपी जनार्दनः (विराजते)। तद् ऊर्ध्वम् अतलम् लोकम् अस्ति यत्र विष्णु-अंशः धवलाकृतिः वराहः तिष्ठति। (सः) शेषचूडामणेः ऊर्ध्वे मशकोपमः शोभते।

हे प्रिये ! उसके ऊपर वितल लोक है, जहाँ हयग्रीव नामक दैत्य का वध करने वाले मत्स्यरूपी भगवान् जनार्दन निवास करते हैं। उसके ऊपर अतल नाम का लोक है, जहाँ विष्णु के अंशभूत श्वेत आकृति वाले वराह भगवान् रहते हैं, जो शेषनाग के शिर की मणि के ऊपर मशक के समान शोभित होते हैं।।८-९।।

कोटियोजनविस्तारं कोटियोजनमुच्छ्रितम्।
पातालानां च सर्वेषां परिमाणमुदाहृतम्।।१०।।

सर्वेषाम् पातालानाम् च परिमाणम् कोटियोजनविस्तारम् कोटियोजनम् उच्छ्रितम् उदाहृतम्।

सभी पातालों का परिमाण एक करोड़ योजन विस्तार वाला और एक करोड़ योजन ऊँचाई वाला कहा गया है।।१०।।

तामसानां च भूतानां पातालं निलयं ध्रुवम्।
हिताय भगवाँस्तेषां विष्णुर्नानातनुर्वसेत्।।११।।

तामसानाम् भूतानाम् पातालम् ध्रुवम् निलयम्। तेषाम् हिताय भगवान् विष्णुः नानातनुः (सन्) वसेत्।

पाताल लोक सभी तामसी प्राणियों का निश्चित निवास स्थान है। उन तामसी जीवों के कल्याण के लिए भगवान् विष्णु अनेक शरीर धारण कर वहाँ पर निवास करते हैं।।११।।

तस्य दन्ते स्थिता पृथ्वी सशैलवनकानना।
मुस्ताखननतो लग्ना शोभते मृत्तिका यथा।।१२।।

तस्य दन्ते सशैलवनकानना स्थिता पृथ्वी मुस्ताखननतो लग्ना मृत्तिका यथा शोभते।

उन वराह भगवान् के एक दाँत पर स्थित पर्वतों एवं काननों से युक्त पृथ्वी उसी प्रकार है शोभायमान जैसे मुस्ता (मोथा) के खोदने से (दाँतों पर) लगी हुई (मिट्टी सुशोभित होती है)।।१२।।

त्रिकोणा पृथिवी कान्ते सप्तद्वीपवती सती।
पीतवर्णा चतुश्चित्रा सप्तसागरमेखला।।१३।।

कान्ते ! सप्तद्वीपवती पृथ्वी त्रिकोणा सती पीतवर्णा चतुःचित्रा सप्तसागर-मेखला (अस्ति)।

हे कान्ते! यह पृथ्वी तीन कोण वाली है। जो सप्त द्वीपों से युक्त है

और यह अद्भुत पीतवर्ण वाली तथा चारो ओर से सात समुद्रों की मेखला वाली है॥१३॥

विष्णुना क्रोडरूपेण पातालमु(?लादु)द्धता त्वियम्।
अस्याः संक्षेपतो भागलक्षणं च शृणु प्रिये॥१४॥

प्रिये इयम् तु क्रोडरूपेण विष्णुना पातालात् उद्धृता। अस्याः भागलक्षणम् च संक्षेपतः शृणु।

हे प्रिये! इस पृथ्वी को सुअररूपी भगवान् विष्णु ने पाताल से उद्धृत किया है। इसका विस्तार संक्षेप में सुनो॥१४॥

कृष्णेन भक्तरक्षार्थं प्रेषितेन मयेक्षितम्।
नवभागं पृथिव्या वै नववर्षं विदुर्बुधाः॥१५॥

भक्तरक्षार्थम् कृष्णेन प्रेषितेन मया इक्षितम् वै बुधाः पृथिव्याः नवभागम् नववर्षम् विदुः।

भक्तों की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेषित मैंने इस पृथ्वी के नव भागों को देखा है। विद्वान् लोग पृथिवी के उन नव भागों को नव वर्ष के रूप में जानते हैं॥१५॥

इलावर्षं तु भद्राश्वं हरिवर्षं तथैव च।
केतुमालं रम्यकं च हिरणमयमथापरम्॥१६॥
कुरुवर्षं किम्पुरुषं भारताख्यं ततः परम्।

इलावर्षम्, भद्राश्ववर्षम् तथा हरिवर्षम्, केतुमालम् रम्यकम् अथ अपरम् हिरणमयम्, कुरुवर्षम् किम्पुरुषम् ततः परम् भारताख्यम् वर्षम् (अस्ति)।

इलावर्ष, भद्राश्ववर्ष, हरिवर्ष, केतुमालवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्यवर्ष, कुरुवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और इसके पश्चात् भारतवर्ष—(ये नौ वर्ष हैं।)॥१६॥

इलावर्षे च भगवान् भवान्या सहितो भवः॥१७॥
भगवन्तमनन्ताख्यमुपास्ते स्वगणैर्वृतः।
मनुमेतं स जपति निजभावार्थसिद्धये॥१८॥

इलावर्षे भगवान् स्वगणैः वृतः भवः भवान्या सहितः भगवन्तम् अनन्ताख्यम् उपासते। सः निजभावार्थसिद्धये एतम् मनुम् जपति।

इलावर्ष में अपने गणों से घिरे हुए भगवान् शिव भवानी के साथ भगवान् अनन्त की उपासना करते हैं। अपनी इच्छित कामना की सिद्धि के लिए वे इस मन्त्र को जपते-रहते हैं॥१७-१८॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानाया-
नन्तायाव्यक्ताय नमः इति॥१९॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानाय अनन्ताय अव्यक्ताय नमः इति।

जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है, उन अनन्त और अव्यक्त परमपुरुष श्रीभगवान् को नमस्कार है॥१९॥

पृथ्वीनाभिगतं वर्षं तन्मध्ये स्वर्णपर्वतः।
सुमेरुः पर्वतस्तत्र पर्वताः सुमनोहराः॥२०॥
नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च रम्यकोऽथ हिरणमयः।
हिमवान्निषधो विन्ध्यो माल्यवान् गन्धमादनः॥२१॥
सुपार्श्वः कुमुदश्चैव मन्दरो मेरुमन्दरः।
अन्ये च गिरयो साध्वि रत्नधातुविचित्रिताः॥२२॥

पृथ्वीनाभिगतम् वर्षम् तत् मध्ये स्वर्णपर्वतः सुमेरुः पर्वतः। तत्र सुमनोहराः पर्वताः रम्यकः, हिरणमयः, नीलः, श्वेतः, शृङ्गवान्, हिमवान्, माल्यवान्, निषधः विन्ध्यः गन्धमादनः सुपार्श्वः कुमुदः, मन्दरः, मेरुमन्दरः च एव। हे साध्वि! अन्ये च रत्नधातुविचित्रिताः गिरयः सन्ति।

पृथिवी की नाभि में स्थित वर्ष पर्वतों से युक्त है। उसके मध्य में स्वर्ण का सुमेरु पर्वत है। वहाँ अन्य अनेक मनोहर पर्वत भी हैं। जैसे रम्यक्, हिरण्मय, नील, श्वेत, शृङ्गवान्, हिमवान्, माल्यवान्, निषध, विन्ध्य, गन्धमादन, सुपार्श्व, कुमुद, मन्दर, मेरुमन्दर तथा अन्य पर्वत। हे साध्वि! ये सब रत्नों और धातुओं से चित्र-विचित्र हैं॥२०-२२॥

दिग्विदिक्षु वरारोहे वारिप्रस्रवणोज्ज्वला।
ब्रह्मलोकान् महादेवी गङ्गा त्रिपथगामिनी॥२३॥
विष्णुपादार्धसम्भूताऽधो ऽधोमेरोर्भुजं(?वं) गता।
स्वर्गे मन्दाकिनी ख्याता वंक्षुः पूर्वे च भद्रकाः (?द्रिका)॥२४॥

वरारोहे! दिग्विदिक्षु उज्ज्वला वारिप्रस्रवणा, विष्णुपादार्धसम्भूता ब्रह्म-लोकात् त्रिपथगामिनी महादेवी गङ्गा मेरोः अधः अधः भुवम् गता स्वर्गे मन्दाकिनी ख्याता पूर्वे वंक्षुः भद्रिका च।

हे वरारोहे! वहाँ दिशाओं और विदिशाओं में उज्ज्वल जलधारा वाली, भगवान् विष्णु के चरणों से निकली हुई, ब्रह्मलोक से बहने वाली त्रिपथगामिनी महादेवी गंगा मेरु पर्वत के नीचे की ओर आती हुई पृथिवी पर

चली गयी है। यह स्वर्गलोक में मन्दाकिनी नाम से जानी जाती है तथा पूर्व दिशा में वंक्षु और भद्रिका नाम से विख्यात है।।२३-२४।।

उत्तरे यशस्विनी पश्चाद् दक्षिणेऽलकनन्दका।
भोगवती च पाताले सर्वेषामघनाशिनी।।२५।।

उत्तरे यशस्विनी, पश्चाद् दक्षिणे अलकनन्दा पाताले च सर्वेषाम् अघनाशिनी (इयम्) भोगवती च विख्याता।

उत्तर में यशस्विनी, दक्षिण में अलकनन्दा तथा पाताल में सबके पापों का नाश करने वाली यह भोगवती के नाम से विख्यात है।।२५।।

नदा नद्यो बहुविधा वर्षे वर्षे सुशोभनाः।
पर्वतानां चतुर्दिक्षु राजन्ते तरवोऽमलाः।।२६।।
चत्वारः पर्वताकाराः सहस्त्रयोजनोच्छ्रयाः।
चूतजम्बूनीपवटाः पूर्वादिषु यथाक्रमम्।।२७।।

वर्षे-वर्षे सुशोभनाः बहुविधाः नदाः नद्यः सन्ति। पर्वतानाम् चतुः दिक्षुः अमलाः तरवः राजन्ते। चत्वारः सहस्त्रयोजन-उच्छ्रयाः पर्वताकाराः चूतजम्बूनीपवटाः पूर्वादिषु यथाक्रमम् विराजन्ते।

प्रत्येक वर्ष में शोभा वाले अनेकों नद और नदियाँ विद्यमान हैं। पर्वतों की चारों दिशाओं में स्वच्छ चार वृक्ष शोभित हैं। ये चारों वृक्ष हजार योजन ऊँचे हैं तथा पर्वताकार हैं। ये आम, जामुन, कदम्ब तथा वट वृक्ष पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमानुसार स्थित हैं।।२६-२७।।

देवोद्यानानि चत्वारि चतुर्दिक्षु वरानने।
नन्दनाख्यं वनं पूर्वे शक्रप्रियकरं परम्।।२८।।
वनं चैत्ररथं नाम दक्षिणे दक्षिणे शृणु।
वैभ्राजकं पश्चिमे च सर्वतोभद्रमुत्तरे।।२९।।

वरानने! चतुः दिक्षुः चत्वारि देवोद्यानानि, पूर्वम् नन्दनाख्यम् परम् शक्रप्रियकरम् अस्ति। दक्षिणे! शृणु, दक्षिणे चैत्ररथम् वनम् पश्चिमे च वैभ्राजकम् उत्तरे च सर्वतोभद्रम्।

हे सुमुखि! यहाँ चारों दिशाओं में चार देवोद्यान भी हैं। पूर्व दिशा में इन्द्र का अत्यन्त प्रिय नन्दन वन नामक उद्यान है। हे दक्षिणे! सुनो, दक्षिण दिशा में चैत्ररथ नाम का वन है। पश्चिम दिशा में वैभ्र।जक नाम का और उत्तर दिशा में सर्वतोभद्र नाम का वन है।।२८-२९।।

ततो भद्राश्ववर्षं तु मेरोः पूर्वे व्यवस्थितम्।
तत्र भद्रश्रवा नाम धर्मपुत्रो महायशाः॥३०॥
हयग्रीवं निजजलैर्यजत्यघविनाशनम्।
मन्त्रेणानेन कृष्णांशं स्त्रवन्त्य(?स्नपत्य)मललोचने॥३१॥

अमललोचने! ततः मेरोः पूर्वम् भद्राश्ववर्षम् व्यवस्थितम्। अत्र महायशाः धर्मपुत्रः भद्रश्रवाः अघविनाशनम् कृष्णांशम् हयग्रीवम् निजजलैः स्नपयति अनेन च मन्त्रेण यजति।

हे पवित्र नेत्रों वाली! इसके बाद मेरु पर्वत के पूर्व भाग में भद्राश्व नाम का वर्ष स्थित है। यहाँ महान् यशस्वी धर्म-पुत्र भद्रश्रवा पापों का नाश करने वाले भगवान् कृष्ण के अंशभूत हयग्रीव को अपने पवित्र जलों से स्नान कराते हैं तथा इस मन्त्र से उनका यजन करते रहते हैं॥३०-३१॥

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः॥३२॥

ओ३म् नमो भगवते धर्माय आत्मविशोधनाय नमः।

आत्मविशोधन करने वाले ओङ्कारस्वरूप भगवान् धर्म को मैं प्रणाम करता हूँ॥३२॥

मेरोरीशानभागे तु हरिवर्षं सुशोभनम्।
यत्र वै नृहरिं देवं प्रह्लादोऽर्चति नित्यदा॥३३॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रो महाभागवतोत्तमः।
जपत्येवं महामन्त्रमेकान्तहृदयो मुनिः॥३४॥

मेरोः ईशानभागे तु सुशोभनम् हरिवर्षम् (अस्ति) यत्र हिरण्यकशिपोः पुत्रः महाभागवतोत्तमः प्रह्लादः नित्यदा वै नृहरिम् देवम् अर्चति। मुनिः एकान्तहृदयः एव महामन्त्रम् जपति।

मेरु पर्वत के ईशान भाग में अत्यन्त सुन्दर हरिवर्ष स्थित है, जहाँ हिरण्यकशिपु के पुत्र महाभागवतों में उत्तम प्रह्लाद नित्य नृसिंह देव का अर्चन करते हैं। वह मुनि एकान्तहृदय होकर निम्नलिखित महामन्त्र का निरन्तर जप करते रहते हैं—॥३३-३४॥

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव
वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो
ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम्॥३५॥

ओ३म् नमो भगवते नरसिंहाय नमः तेजःतेजसे आविर् आविर् भव वज्रनख त्रज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ओऽम् स्वाहा। अभयम् अभयम् आत्मनि भूयिष्ठा ओ३म् क्ष्रौम्।

भगवान् नरसिंह को मैं प्रणाम करता हूँ। दिव्य तेज वाले तेज को मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्रकट हों, आप प्रकट हों, हे वज्र जैसे नखों और वज्रसदृश दाँतों वाले! आप मेरे कर्म-संस्कारों को जला डालिये, जला डालिये और अन्धकार को ग्रस लीजिये, ग्रस लीजिये। ओ३म् स्वाहा। मैं अपने अन्दर अत्यन्त निर्भीक बनूँ। ओ३म् क्ष्रौम्।।३५।।

सुमेरोरुत्तरे केतुमाले लक्ष्मीर्हरिप्रिया।
कामदेवं जगद्बीजभूतमर्चति नित्यशः।।३६।।
लक्ष्मीः समानरूपाभिर्नारीभिरिद(?म)मद्भुतम्।
मनुं त्रिभुवनाकर्षं जपत्येकान्तमानसा।।३७।।

सुमेरोः उत्तरे केतुमाले हरिप्रिया लक्ष्मीः समानरूपाभिः नारीभिः (साकम्) नित्यशः जगद्बीजभूतम् कामदेवम् अर्चति। लक्ष्मीः एकान्तमानसा त्रिभुवन-आकर्षम् इमम् अद्भुतम् मनुम् जपति।

सुमेरू के उत्तर भाग में केतुमाल वर्ष स्थित है। जहाँ पर हरिप्रिया लक्ष्मी समान रूप वाली स्त्रियों के साथ नित्यप्रति जगत् के बीजभूत कामदेव का पूजन करती रहती हैं। स्वयं लक्ष्मी जी एकान्त चित्त से त्रिभुवन को आकृष्ट करने वाले इस अद्भुत मंत्र का जप करती रहती हैं—।।३६-३७।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै-र्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।।३८।।

ओ३म् ह्रां ह्रीं ह्रूं ओ३म् नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैः विलक्षितात्मने आकूतीनाम् चित्तीनाम् चेतसाम् विशेषाणाम् च अधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयाय, अन्नमयाय अमृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमः ते उभयत्र भूयात्।

ओ३म ह्रां ह्रीं ह्रूं ओ३म् भगवान् हृषीकेश जो इन्द्रियों के नियन्ता हैं, सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों के आकर हैं, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और संकल्प-अध्यवसाय आदि चित्त के धर्मों तथा उनके विषयों के अधीश्वर हैं। सोलह कलाओं से युक्त हैं। वेदस्वरूप हैं। वे अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं। इस प्रकार के मानसिक, ऐन्द्रिय एवं शारीरिक बलस्वरूप परम सुन्दर भगवान् कामदेव को 'ओ३म् ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रों के सहित सब ओर से नमस्कार है।।३८।।

ततो मेरोर्वायुकोणे रम्यके वर्षसत्तमे।
भगवन्तं मत्स्यरूपमर्चन्ति तत्र पूरूषाः।।३९।।
स्तुवन्ति मत्स्यसूक्तेन तत्तद्देशनिवासिनः।
जपन्ति च महामन्त्रं मत्स्यसन्तोषहेतवे।।४०।।

ततः मेरोः वायुकोणे रम्यके वर्षसत्तमे तत्तत् देशनिवासिनः पुरुषाः तत्र मत्स्यसन्तोषहेतवे भगवन्तम् मत्स्यरूपम् अर्चन्ति, मत्स्यसूक्तेन स्तुवन्ति महामन्त्रम् च जपन्ति।

इसके बाद मेरु पर्वत के वायु कोण में स्थित रम्यक वर्ष में उन स्थानों में रहने वाले मनुष्य वहाँ भगवान् मत्स्य की प्रसन्नता के लिए उन मत्स्यरूप भगवान् की अर्चना करते रहते हैं। मत्स्यसूक्त के मन्त्रों से उनकी स्तुति करते रहते हैं तथा उनके महामन्त्र का जप करते रहते हैं।।३९-४०।।

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय
प्राणायौजसे महसे बलाय महामत्स्याय नमः।।४१।।

ओउम् नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय औजसे महसे बलाय महामत्स्याय नमः।

सत्त्वप्रधान मुख्य प्राण सूत्रात्मा प्राण, ओजस् कान्ति और बल को धारण करने वाले भगवान् महामत्स्य को मेरा बारम्बार प्रणाम है।।४१।।

मत्स्यावतारो द्विविधः कृतो भगवता पुरा।
एकः पातालभवने मत्स्येन्द्रः स्वर्णलोहितः।।४२।।
वराहस्य वधार्थाय स्वयमेवागतः प्रभुः।
अयं सुवर्णशफरीरूपो वर्षे च रम्यके।।४३।।
चाक्षुसाख्ये मनौ सत्यव्रतार्थं योऽवतीर्णवान्।

पुरा भगवता द्विविधः मत्स्यावतारः कृतः; एकः पातालभवने वराहस्य वधार्थाय स्वयम् प्रभुः स्वर्णलोहितः मत्स्येन्द्रः आगतः। द्वितीयः रम्यके वर्षे चाक्षुसाख्ये मनौ सत्यव्रतार्थम् सुवर्णशफरीरूपः अयम् अवतीर्णवान्।

प्राचीन काल में भगवान् ने दो प्रकार से मत्स्यावतारों को धारण किया था। प्रथम अवतार में पाताल लोक में वराह का वध करने के लिए प्रभु स्वयम् स्वर्णलोहित मत्स्येन्द्र के रूप में प्रकट हुए थे तथा दूसरी बार रम्यक वर्ष में चाक्षुष मन्वन्तर में राजा सत्यव्रत का हित करने के लिए सुवर्णशफरी (स्वर्ण की मछली) के रूप में अवतीर्ण हुए थे।।४२-४३।।

ततो हिरणमये मेरोः पश्चाद् दिशि शुभानने।।४४।।

कूर्मरूपधरं देवमर्घ्यमर्चति सर्वदा।
तत्रत्यपुरुषैः सार्धं मनुमेतं प्रजल्पति॥४५॥

शुभानने! ततः मेरोः पश्चाद् दिशि हिरणमयवर्षे (राजा सत्यव्रतः) तत्रत्यपुरुषैः सार्धम् कूर्मरूपधरम् अर्घ्यम् देवम् अर्चति एतम् च मनुम् प्रजल्पति।

हे शुभानने ! इसके बाद मेरु के पश्चिम दिशा में हिरण्मय वर्ष में राजा सत्यव्रत वहाँ के मनुष्यों के साथ कूर्मरूप धारण करने वाले पूजनीय देव का अर्चन करते हैं तथा साथ ही इस मन्त्र का जप करते हैं।।४४-४५॥

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण-
विशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो
भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते॥४६॥

ओ३म् नमः भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय अनुपलक्षितस्थानाय नमः वर्ष्मणे नमः भूम्ने नमः नमः अवस्थानाय नमः।

जो अकूपार (अर्थात् कच्छप) सर्वसत्त्व गुण से युक्त हैं, अनुपलक्षित स्थान वाले हैं, शरीरधारी विशाल सर्वत्र विराजमान हैं, सर्वव्यापक एवं सर्वाधार हैं; ऐसे भगवान् कच्छप को मेरा बारम्बार प्रणाम है।।४६॥

कूर्मावतारो भगवान् द्विविधः सत्यविग्रहः।
एको महान् ब्रह्मशिलारूढो ब्रह्माण्डकोटिधृक्॥४७॥
समुद्रमथनार्थं तु मन्दराद्रिधरोऽप्ययम्।

सत्यविग्रहः भगवान् कूर्मावतारः द्विविधः। एकः महान् ब्रह्मशिलारूढः कोटिब्रह्माण्डधृक्, समुद्रमथनार्थम् तु अयम् मन्दराद्रिधरः अपि।

सत्यस्वरूप भगवान् ने कूर्मावतार भी दो प्रकार से लिया है। प्रथम अवतार में महान् ब्रह्मशिला पर आरूढ़ कूर्म जो करोड़ों ब्रह्माण्डों को अपने ऊपर धारण करते हैं तथा द्वितीय में भगवान् ने समुद्र-मन्थन के समय मन्दर पर्वत को धारण करने के लिए कूर्मरूप ग्रहण किया था।।४७॥

मेरोस्तु नैर्ऋते भागे कुरुवर्षे वसुन्धरा॥४८॥
कुरुभिः सह देवेशं वराहं नित्यमर्चति।
यं यज्ञपुरुषं स्तौति महामन्त्रेण मेदिनी।
यस्यैव जपमात्रेण पार्थिवत्वं नृणां भवेत्॥४९॥

मेरोः नैर्ऋते भागे कुरुवर्षे वसुन्धरा कुरुभिः सह देवेशम् वराहम् नित्यम् अर्चति। मेदिनी महामन्त्रेण यम् यज्ञपुरुषम् स्तौति यस्य जपमात्रेणैव नृणाम् पार्थिवत्वम् भवेत्।

मेरु पर्वत के नैर्ऋत्य भाग में कुरुवर्ष स्थित है, जहाँ वसुन्धरा कुरुवर्ष के लोगों के साथ देवों के स्वामी भगवान् वराह की नित्य अर्चना करती हैं। पृथिवी जिस महामन्त्र से यज्ञपुरुष की प्रार्थना करती रहती है, उस महामन्त्र का जप करने मात्र से मनुष्यों को राजा का पद प्राप्त हो जाता है।।४८-४९।।

ॐ नमो भगवते मन्त्रतन्त्रलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वराव-यवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।।५०।।

ओउम् नमो भगवते मन्त्रतन्त्रलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाअध्वर-अवयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय ते नमः।

मन्त्र-तन्त्रस्वरूप वाले, यज्ञक्रतुरूप, महायज्ञ के अवयव वाले महापुरुष को मेरा प्रणाम है। शुक्ल कर्ममय, त्रियुग रूप वाले आपको मेरा प्रणाम है।।५०।।

सुमेरोर्दक्षिणे भागे वर्षे किम्पुरुषे कपिः।
हनूमान् वायुपुत्रोऽयमञ्जनाकुलरञ्जनः।।५१।।
सीतया सहितं देवं श्रीरामं लक्ष्मणाग्रजम्।
उपास्ते किन्नरैः सार्धं गन्धमादनपर्वते।
स्वयं जपति देवस्य मनुमेतं महाबलः।।५२।।

सुमेरोः दक्षिणे भागे किम्पुरुषे वर्षे अञ्जनाकुलरञ्जनः वायुपुत्रः अयम् कपिः हनूमान् किन्नरैः सार्धम् गन्धमादनपर्वते सीतया सहितम् लक्ष्मणाग्रजम् देवम् रामम् उपास्ते। महाबलः देवस्य एतम् मनुम् स्वयम् जपति—।

सुमेरु के दक्षिण भाग में किम्पुरुषवर्ष में अञ्जना के कुल को आनन्द देने वाले पवनपुत्र हनुमान् निवास करते हैं। ये कपि हनुमान् किन्नरों के साथ गन्धमादन पर्वत पर सीता के सहित लक्ष्मण के अग्रज श्रीरामदेव की उपासना करते रहते हैं। महाबली हनुमान भगवान् राम के इस मन्त्र का जप करते हैं—।। ५१-५२।।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय। नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः।।५३।।

ओउम् नमः भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्यलक्षणशीलव्रताय नमः उप-शिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमः ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः।

ॐकारस्वरूप, उत्तम श्लोक भगवान् श्रीराम के लिए मेरा प्रणाम है।

जिनमें सत्पुरुषों के लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं। जो बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधन-तत्पर, साधुता की परीक्षा के लिए कसौटी के समान हैं तथा ब्राह्मणों का आदर करने वाले महापुरुष हैं; ऐसे महाराज के लिए मेरा प्रणाम है।।५३।।

सुमेरोरग्निकोणे च भारते वर्षसत्तमे।
नरनारायणं देवं नारदः समुपास्ति च।।५४।।
व्यासोऽपि यत्र भगवान् श्रीमद्‌बदरिकाश्रमे।
ब्रह्माक्षरं जपन् मन्त्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।।५५।।

सुमेरोः अग्निकोणे वर्षसत्तमे भारते (वर्षे) श्रीमद्‌बदरिकाश्रमे नारदः भगवान् व्यासः अपि च ब्रह्माक्षरम् मन्त्रम् जपन् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् देवम् नरनारायणम् समुपासते।

सुमेरु पर्वत के अग्निकोण में अत्युत्तम भारतवर्ष स्थित है, जहाँ श्रीमद् बदरिकाश्रम में नारद और भगवान् व्यास भी ब्रह्माक्षर मन्त्र का जप करते हुए मुक्ति को देने वाले देव नर-नारायण की उपासना करते हैं।।५४-५५।।

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय।
नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय।
परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः।।५६।।

ओ3म् नमः भगवते उपशमशीलाय उपरतानात्म्याय नमः। अकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरुवे आत्मारामाधिपतये नमः नमः।

ओङ्कारस्वरूप उपशमशील उपरत प्राणियों के एकमात्र आश्रय भगवान् के लिए मेरा प्रणाम है। निर्धनों के धन, ऋषभ ऋषिरूप वाले परमहंस परमगुरु आत्मारामों के स्वामी भगवान् नरनारायण को मेरा बारम्बार प्रणाम है।।५६।।

सुमेरोरुत्तरे भागे मध्ये तु लवणाम्बुधेः।
विष्णुलोको महान् प्रोक्तः सलिलान्तरसंस्थितः।।५७।।
अत्र स्वपिति ध(?घ)र्मान्ते देवदेवो जनार्दनः।
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्यङ्कसंस्थितः।।५८।।

सुमेरोः उत्तरे भागे लवणाम्बुधेः मध्ये तु सलिलान्तरसंस्थितः महान् विष्णुलोकः प्रोक्तः। अत्र घर्मान्ते देवदेवः लक्ष्मीसहायः जनार्दनः शेषपर्यङ्क-संस्थितः (सन्) सततम् स्वपिति।

सुमेरु के उत्तर भाग में लवणाम्बुधि के मध्य में जल के अन्दर महाविष्णुलोक स्थित है। ऐसा कहा जाता है कि घर्म अर्थात् ग्रीष्म ऋतु के अन्त में लक्ष्मी के साथ शेषनाग की शैय्या पर स्थित होकर भगवान् देवाधिदेव जनार्दन जी निरन्तर सोते रहते हैं।।५७-५८।।

मेरोर्दक्षिणदिग्भागे जम्बूवृक्षोऽतिशोभनः।
अनेकयोजनोच्छ्रायो जम्बूद्वीपस्तदाख्यया।।५९।।
कर्मभूमिरियं भद्रे लवणोदेन वेष्टितः।
प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुरत्राधिपो महान्।।६०।।

भद्रे! मेरोः दक्षिणदिक्भागे अनेकयोजनोच्छ्रायः अतिशोभनः जम्बूवृक्षः (अस्ति)। तदाख्यया अयम् जम्बूद्वीपः लवणोदेन वेष्टितः। इयम् कर्मभूमिः। अत्र यज्ञबाहुः महान् प्रियव्रतात्मजः अधिपः (अस्ति)।

भद्रे ! सुमेरु के दक्षिण दिक् भाग में अनेक योजन ऊँचा अति विशाल जम्बूवृक्ष है। यह लवणाम्बुधि से घिरा हुआ है। यह (द्वीप) इसके नाम से जम्बूद्वीप कहा जाता है। यह कर्मभूमि है। यहाँ प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु महान् राजा हैं।।५९-६०।।

अस्मिन् वर्षे महाभागे पर्वतान् शृणु कथ्यते।
मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकुटस्तथा।।६१।।
ऋषभः कुक्कुटः कोल्लः सह्यो देवगिरिः प्रिये।
श्रीशैलोऽपि ऋष्यशृङ्गो महेन्द्रो विन्ध्य एव च।।६२।।
वारिधारः शुक्तिमांश्च पारियात्रस्तथैव च।
ऋक्षो द्रोणश्चित्रकूटो नीलो रैवतकस्तथा।।६३।।
गोवर्धनस्तु ककुभ इन्द्रनीलगिरिस्तथा।
गोकामुखः कामगिरिः प्राधान्यात् कथितास्त्विमे।।६४।।

महाभागे! अस्मिन् वर्षे पर्वतान् शृणु कथ्यते—मलयः मंगलप्रस्थः मैनाकः त्रिकूटः तथा ऋषभः, कुक्कुटः, कोल्लः, सह्यः, देवगिरिः, श्रीशैलः ऋष्यशृंगः, महेन्द्रः, विन्ध्यः, वारिधारः शुक्तिमान्, पारियात्रः, ऋक्षः, द्रोणः, चित्रकूटः, नीलः, रैवतकः, गोवर्धनः, ककुभः, इन्द्रनीलगिरिः गोकामुखः, कामगिरिः च। प्रिये इमे प्राधान्यात् कथिताः।

हे महाभागे! हे प्रिये! इस वर्ष में स्थित पर्वतों को सुनो; बतला रहा हूँ। मलयाचल, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुक्कुट, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, श्रीशैल, ऋष्यशृङ्ग, महेन्द्र, विन्ध्याचल, वारिधार, शुक्तिमान्, पारियात्र, ऋक्ष, द्रोण, चित्रकूट, नील, रैवतक, गोवर्धन, ककुभ,

इन्द्रनीलगिरि, गोकामुख और कामगिरि नामक पर्वतों को हे प्रिये! मैंने मुख्य रूप से बतलाया।।६१-६४।।

एषां नित्यं वै प्रभवा नदा नद्यश्च शोभनाः।
पुनन्ति भारतं वर्षं तासां नाम शृणु प्रिये।।६५।।
चन्द्रवंश्या ताम्रपर्णी कृतमाला वरोदका।
वैहायसी भीमरथी कावेरी च पयस्विनी।।६६।।
वेणा च कृतवेणा च तुङ्गभद्रा च नर्मदा।
सुरसा शर्करावर्ता ऋषिकुल्या महानदी।।६७।।
गोदावरी च निर्विन्ध्या पयोष्णी कौशिकी तथा।
मन्दाकिनी गोमती च यमुना च सरस्वती।।६८।।
तापी रेवा सुषोमा च चन्द्रभागा मरुद्वृधा।
चर्मण्वती रोधवती वितस्ता सरयूस्तथा।।६९।।
वेदस्मृतिः शतद्रुश्च विश्वासिक्नी तथैव च।
आत्रेयी करतोया च नद्य एताः सुशोभनाः।।७०।।

प्रिये! एषाम् प्रभवाः शोभनाः नदा नद्यः च नित्यम् वै भारतवर्षम् पुनन्ति। तासाम् नाम शृणु। चन्द्रवंश्या, ताम्रपर्णी, कृतमाला, वरोदका, वैहायसी, भीमरथी, कावेरी, पयस्विनी, वेणा, कृतवेणा, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, सुरसा, शर्करावर्ता, ऋषिकुल्या, महानदी, तापी, रेवा, सुषोमा, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, चर्मण्वती, रोधवती, वितस्ता, सरयूः, वेदस्मृतिः, शतद्रुः, विश्वासिक्नी, आत्रेयी, करतोया च एताः शोभनाः नद्यः सन्ति।

प्रिये! इनसे नित्य प्रवाहित होने वाली सुन्दर नद और नदियाँ भारतवर्ष को पवित्र करती रहती हैं। उनके नाम सुनो—चन्द्रवंश्या, ताम्रपर्णी, कृतमाला, वरोदका, वैहायसी, भीमरथी, कावेरी, पयस्विनी, वेणा, कृतवेणा, तुङ्गभद्रा, नर्मदा, सुरसा, शर्करावर्ता, ऋषिकुल्या, महानदी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, कौशिकी, मन्दाकिनी (गङ्गा), गोमती, यमुना, सरस्वती, तापी, रेवा, सुषोमा, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, चर्मण्वती, रोधवती, वितस्ता (व्यास), सरयू, वेदस्मृति, शतद्रु, विश्वासिक्नी, आत्रेयी और करतोया नाम वाली ये नदियाँ अत्यन्त शोभा वाली हैं।।६५-७०।।

नदा अन्धश्च शोणश्च लौहित्यो भैरवादयः।
अस्मिन् भारतवर्षे च उपद्वीपान् वदाम्यहम्।।७१।।
स्वर्णप्रस्थं चन्द्रमर्कमावर्तकं तथा परम्।
सिंहलं मन्दहरिणं पाञ्चजन्यं तथैव च।।७२।।

लङ्कामिति विजानीहि द्वीपान् भारतमध्यगान्।

नदाः अन्धः च शोणः च लौहित्यः भैरवादयः सन्ति। अस्मिन् च भारतवर्षे उपद्वीपान् अहम् वदामि। स्वर्णप्रस्थम्, चन्द्रम्, अर्कम्, तथा परम् आर्वतकम्, सिंहलम्, मन्दहरिणम्, तथा एव पाञ्चजन्यम्, लङ्काम् च भारतमध्यगान् द्वीपान् विजानीहि।

यहाँ के नद, अन्ध, शोण, लौहित्य और भैरव हैं। इस भारत के उपद्वीपों को मैं कहता हूँ। स्वर्णप्रस्थ, चन्द्र, अर्क, आवर्तक, सिंहल, मन्दहरिण, पाञ्चजन्य तथा लंका उपद्वीपों को भारत के मध्यगामी समझो।।७१-७२।।

जम्बूद्विगुणविस्तारः प्लक्षद्वीपो विराजते।।७३।।
वृत इक्षुरसोदेन समुद्रेण महोर्मिणा।
नद्यो नदाः पर्वताश्च सर्वतः सन्त्यनेकशः।।७४।।

जम्बूद्वीपद्विगुणविस्तारः प्लक्षद्वीपः विराजते। महोर्मिणा इक्षुरसोदेन समुद्रेण वृतः। अत्र सर्वतः अनेकशः नद्यः नदाः पर्वताः च सन्ति।

जम्बूद्वीप से दूने विस्तार वाला प्लक्षद्वीप है। यह विशाल लहरों वाले इक्षुरस के समुद्र से घिरा हुआ है। इसके चारों ओर अनेकों नदी, नद और पर्वत हैं।।७३-७४।।

आसीत् तत्राधिपो नाम्नेध्मबाहुर्धर्मविग्रहः।
अनेकयोजनायामः प्लक्षस्तत्र विराजते।।७५।।
तन्नाम्ना द्वीपराजोऽयं सुखदः सर्वदेहिनाम्।
ततस्तु शाल्मलीद्वीपो द्विगुणः प्लक्षतः प्रिये।।७६।।
सुरोदेन समुद्रेणावृतो यत्रास्ति शाल्मलिः।
अनेकयोजनोच्छ्रायो बहुयोजनविस्तृतः।।७७।।

तत्र धर्मविग्रहः इध्मबाहुः नाम अधिपः आसीत्। तत्र अनेकयोजन-आयामः प्लक्षः विराजते। तत् नाम्ना (प्रसिद्धः) अयम् द्वीपराजः सर्वदेहिनाम् सुखदः। प्रिये! ततः प्लक्षतः द्विगुणः शाल्मलीद्वीपः। यत्र सुरोदेन समुद्रेण आवृतः अनेकयोजन-उच्छ्रायः बहुयोजनविस्तृतः शाल्मलिः अस्ति।

वहाँ पर साक्षात् विग्रहवान् धर्म के समान इध्मबाहु नाम के राजा थे। वहाँ अनेक योजन विस्तार वाला प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष सुशोभित है। प्लक्ष के नाम से प्रसिद्ध यह द्वीपराज सभी प्राणियों को सुख देने वाला है। हे प्रिये! इसके बाद शाल्मली द्वीप है, जो प्लक्ष द्वीप से दुगुने आकार का है। यह द्वीप सुरा के जल वाले समुद्र से घिरा हुआ है। इस द्वीप में अनेक योजन ऊँचा और अनेक योजन विस्तार वाला शाल्मलि (सेमर) वृक्ष है।।७५-७७।।

तत्र प्रियव्रतसुतो रोचनोऽधिपतिः स्मृतः।
तत्र प्रिये कुशद्वीपे (?पो) घृतोदेनावृतः शुभे॥७८॥
यत्राग्निप्रतिमः श्रीमान् कुशस्तम्बो विराजते।
तन्नाम्ना द्वीपवर्योऽयं नानासुखसमृद्धिमान्॥७९॥
हिरण्यरेताः तस्येशः प्रियव्रतसुतो बली।
नदा नद्यः पर्वताश्च बहवो हि हिरण्मयाः॥८०॥

तत्र प्रियव्रतसुतः रोचनः अधिपः स्मृतः। प्रिये! शुभे ! ततः घृतोदेनावृतः कुशद्वीपः यत्र अग्निप्रतिमः श्रीमान् कुशस्तवः विराजते। तत् नाम्ना अयम् द्वीपवर्यः नानासुखसमृद्धिमान्। तस्य ईशः प्रियव्रतसुतः बली हिरण्यरेताः। तत्र हि बहवः हिरण्मयाः नदाः नद्यः पर्वताश्च सन्ति।

वहाँ का राजा प्रियव्रत का पुत्र रोचन है। हे शुभे! हे प्रिये! इसके बाद घृत-जल से घिरा हुआ कुशद्वीप है। यहाँ अग्नि के समान देदीप्यमान श्रीमान् कुशस्तम्ब सुशोभित हो रहे हैं। अनेक सुख-समृद्धियों से युक्त यह द्वीप उसी नाम से प्रसिद्ध है। इसके स्वामी प्रियव्रत के पुत्र बलशाली हिरण्यरेता है। यहाँ हिरण्मय अनेकों नद, नदी और पर्वत हैं।।७८-८०।।

क्रौञ्चद्वीपस्ततो भद्रे क्षीरोदेनावृतो बलः।
क्रौञ्चनामा यत्र राजा धृतपृष्ठः सुरोपमः॥८१॥

भद्रे! ततः क्षीरोदेनावृतः क्रौञ्चद्वीपः यत्र सुरोपमः धृतपृष्ठः क्रौञ्चनामा बलः राजा अस्ति।

भद्रे! इसके बाद क्षीर-जल से घिरा हुआ क्रौञ्चद्वीप है, जहाँ देवताओं के समान धृतपृष्ठ क्रौञ्च नाम वाले बलवान् राजा हैं।।८१।।

मेरोस्तु पूर्वदिग्भागे मध्ये क्षीरार्णवस्य च।
तत्रापि चतुरो मासान् सुप्तस्तिष्ठत्यसौ हरिः॥८२॥
नदा नद्यः पर्वताश्च सन्त्यत्र बहुभिर्गुणैः।
शाकद्वीपस्तत्परस्ताद् दधिमण्डलोदकेन वै॥८३॥
सिन्धुना वेष्टितो यत्र शाको नाम महांस्तरुः।
त्रिंशल्लक्षयोजनोर्ध्वो ह्यत्र धातुर्विनिर्मितः॥८४॥
राजा मेधातिथिर्यत्र प्रियव्रतसुतः प्रियः।

मेरोः पूर्वदिग्भागे क्षीरार्णवस्य मध्ये तु तत्र असौ हरिः अपि चतुरः मासान् सुप्तः तिष्ठति। अत्र बहुभिः गुणैः (युक्ताः) नदाः नद्यः पर्वताः च सन्ति। तत्परः दधिमण्डोदकेन वृतः वै शाकद्वीपः। अत्र त्रिंशत् लक्षयोजन-ऊर्ध्वः धातुः

विनिर्मितः सिन्धुना वेष्टितः शाकः नाम महान् तरु (: अस्ति)। यत्र प्रियव्रतसुतः प्रियः मेधातिथिः राजा (वर्त्तते)।

सुमेरु के पूर्वदिग्भाग में क्षीरसमुद्र के मध्य में स्थित इस द्वीप में भगवान् श्रीहरि चार मास तक सोये रहते हैं। यहाँ अनेकों गुणों से युक्त नद, नदी और पर्वत हैं। इसके बाद दधिमण्डल जल से घिरा हुआ शाक द्वीप है। जहाँ समुद्र से घिरा हुआ शाक नामक विशाल वृक्ष, जो विधाता द्वारा बनाया हुआ तीस लाख योजन के विस्तार वाला है, विराजमान है। यहाँ प्रियव्रत के पुत्र प्रिय मेधातिथि राजा हैं।।८२-८४।।

तस्माद् द्विगुणविस्तारः पुष्करद्वीप उत्तमः।।८५।।
सौवर्णं पुष्करं यत्र पुण्यं ब्रह्मासनं प्रिये।
अनेकयोजनायामं सर्वभूतमनोहरम्।।८६।।
प्रियव्रतसुतस्तत्र राजा सर्वजनप्रियः।
शुद्धोदकसमुद्रेण वेष्टितं सर्वकामिकम्।।८७।।
नदा नद्यः पर्वताश्च बहवः सन्ति तत्र वै।
तत्रस्थाः पुरुषा नित्यं ब्रह्माणं जगदीश्वरम्।
मनुमेतं जपन्तो वै यजन्ति ज्ञानविग्रहाः।।८८।।

तस्माद् द्विगुणविस्तारः उत्तमः पुष्करद्वीपः अस्ति। हे प्रिये! यत्र सौवर्णम् पुण्यम् अनेकयोजनायामम् सर्वभूतमनोहरम् पुष्करम् ब्रह्मासनम्। शुद्धोदकसमुद्रेण वेष्टितम् सर्वकामिकम् अस्ति। तत्र सर्वजनप्रियः प्रियव्रतसुतः राजा (अस्ति)। तत्र वै बहवः नदाः नद्यः पर्वताः च सन्ति। तत्रस्थाः ज्ञानविग्रहाः पुरुषाः नित्यम् जगदीश्वरम् ब्रह्माणम् एतम् मनुम् जपन्तः यजन्ति।

हे प्रिये! उससे दूने विस्तार वाला पुष्कर द्वीप है; जहाँ ब्रह्मा का सोने से निर्मित, पवित्र, अनेक योजन विस्तृत तथा समस्त प्राणियों के लिये मनोहारी पुष्कर नामक आसन है। यह आसन शुद्ध जल वाले समुद्र से घिरा हुआ एवं सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। यहाँ सभी लोगों को प्रिय लगने वाले प्रियव्रत के पुत्र राजा है। इस द्वीप में अनेकों नद, नदी और पर्वत हैं। यहाँ रहने वाले साक्षात् ज्ञानस्वरूप पुरुष, नित्य जगदीश्वर ब्रह्माजी का इस मन्त्र को जपते हुए पूजन करते रहते हैं।।८५-८८।।

ॐ यत् तत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्।
भेदेनैकान्तमद्वैतं तस्मै भगवते नमः।।८९।।

ओउम् यत् तत् कर्ममयम् लिङ्गम् भेदेन एकान्तम् अद्वैतम् जनः अर्चयेत् तस्मै भगवते नमः।

ओ३म्कारस्वरूप जो साक्षात् कर्ममय हैं और एक परमेश्वर में ही जिसकी आस्था है। जिस ब्रह्मलिङ्ग का यजन सभी मनुष्यों के द्वारा भेद के साथ किया जाता है, उन सर्वथा अद्वैत भगवान् को मेरा प्रणाम है॥८९॥

इति ते कथितं देवि द्वीपवर्षादिकं मया।
लोकालोकस्तत्परस्ताद् गिरिर्धरणिवेष्टितः॥९०॥

देवि! इति ते मया द्वीपवर्षादिकम् कथितम्। तत् परस्ताद् धरणिवेष्टितः लोकालोकः गिरिः अस्ति।

हे देवि! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समस्त द्वीप और वर्षों का वर्णन कर दिया। इसके आगे पृथ्वी से घिरा हुआ लोकालोक पर्वत है॥९०॥

भित्तिवद् राजते भूमेः संस्थानं चारुहासिनि।
शुद्धोदकोत्तरे तीरे श्वेतो नामाऽन्यभूधरः॥९१॥
तत्र तिष्ठति देवेशो विष्णुर्लक्ष्मीसहायवान्।
भूर्लोकः कर्मभूमिश्च राजसानां महात्मनाम्॥९२॥

चारुहासिनि! भूमेः संस्थानम् भित्तिवद् राजते। शुद्धोदकोत्तरे तीरे श्वेतः नामा अन्यभूधरः (अस्ति)। तत्र लक्ष्मीसहायवान् देवेशः विष्णुः तिष्ठति। अयम् भूः लोकः महात्मनाम् राजसानाम् च कर्मभूमिः (अस्ति)।

हे चारुहासिनि! भूमि का यह संस्थान दीवाल की तरह शोभायमान है। शुद्धोदक समुद्र के उत्तरी तट पर श्वेत नामक अन्य भूधर है। वहाँ लक्ष्मी के साथ देवेश विष्णु विराजते हैं। यह भूलोक महात्माओं और राजाओं की कर्मभूमि है॥९१-९२॥

स्थानं तद् वर्णितं भद्रे तदूर्ध्वे यन्निशामय।
वृक्षाग्रात् पर्वताग्राच्च पादागम्यान्महीतलात्॥९३॥
पञ्चाशद्योजनोर्ध्वे च बहुरूपाः सहस्रशः।
प्रेतभूतपिशाचाद्या मांसासृक्पूयभोजिनः॥९४॥

भद्रे! तद् स्थानम् वर्णितम्। तद् ऊर्ध्वे यत् (अस्ति तत्) निशामय। वृक्षाग्रात् पर्वताग्रात् च पादागम्यात् महीतलात् पञ्चाशतयोजन-ऊर्ध्वे मांसासृक्पूय-भोजिनः सहस्रशः बहुरूपाः प्रेतभूतपिशाचाद्याः सन्ति।

हे भद्रे! भूलोक का मैंने वर्णन कर दिया है। उससे ऊपर जो है, उसे सुनो! वृक्षों के अग्रभाग तथा पर्वतों के अग्रभाग अर्थात् चोटी से ऊपर पैरों से अगम्य एवं पृथ्वीतल से पचास योजन ऊपर रक्त, मांस एवं मवाद का भोजन करने वाले, अनेकों रूप धारण करने वाले हजारों प्रेत, भूत एवं पिशाच रहते हैं॥९३-९४॥

यथा वराङ्गि ग्रामान्ते निवसन्ति कुपूरुषाः।
स्वर्गस्यान्ते तथा भ्रष्टाचारास्ते देवयोनयः॥९५॥

वराङ्गि! यथा ग्रामान्ते कुपूरुषाः निवसन्ति तथा स्वर्गस्यान्ते भ्रष्टाचाराः ते देवयोनयः वसन्ति।

हे सुन्दर अंगों वाली! जिस तरह ग्राम की बाहरी सीमा पर कुत्सित लोग बसते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग की बाहरी सीमा पर वे भ्रष्ट आचार वाले देवकोटि के लोग निवास करते हैं॥९५॥

सहस्त्राणां च पञ्चाशद्योजने गुह्यकाश्चिरम्।
धर्माधर्मपरिज्ञानविहीना निवसन्ति वै॥९६॥
सदैव सुखिनः श्यामा लोमशा दीर्घमन्यवः।
लम्बोदरौष्ठाः पुष्टाङ्गा हृष्टपुष्टजनप्रियाः॥९७॥
शौण्डिका नगरस्यान्ते यथा दुर्धरविग्रहाः।
तथा चरन्ते नियतं ते ध्रुवं देवयोनयः॥९८॥

पञ्चाशत् सहस्त्राणाम् योजने धर्माधर्मपरिज्ञानविहीनाः ते गुह्यकाः चिरम् निवसन्ति। (ते) सदैव लोमशाः, श्यामाः, दीर्घमन्यवः, लम्बोदरौष्ठाः पुष्टाङ्गाः हृष्टपुष्टजनप्रियाः सन्ति। यथा नगरस्यान्ते दुर्धरविग्रहाः शौण्डिकाः तथा ध्रुवम् ते देवयोनयः नियतम् चरन्ते।

पचास हजार योजन ऊपर धर्म-अधर्म के परिज्ञान से रहित गुह्यक निवास करते हैं। इनके पूरे शरीर पर सर्वदा बाल रहते हैं। काले-काले ये अत्यन्त क्रोध करने वाले, विशाल उदर और ओष्ठों वाले होते हैं। इनके शरीर परिपुष्ट होते हैं तथा इन्हें हृष्ट-पुष्ट अंग वाले लोग प्रिय हैं। जिस प्रकार नगर के अन्त में विकट शरीर वाले शौण्डिक (सुराजीवी) रहते हैं, उसी तरह ये गुह्यक देवयोनि के भयानक लोग यहाँ रहते हैं॥९६-९८॥

ततः सुमुखि गन्धर्वा दिव्यगानविलासिनः।
नानायन्त्रकलाभिज्ञाः कामदेवस्वरूपिणः॥९९॥
सहस्रं चैव पञ्चाशदूर्ध्वे ते निवसन्ति वै।
यथा पुरस्य निकटे राजन्ते नृत्यकोविदाः॥१००॥
नर्तकाः स्वर्गनिकटे देवानां गायका इमे।

सुमुखि! ततः पंचाशद्सहस्त्र ऊर्ध्वे नानायन्त्रकलाभिज्ञाः कामदेवस्वरूपिणः दिव्यगानविलासिनः गन्धर्वाः निवसन्ति। यथा पुरस्य निकटे ते नृत्यकोविदाः राजन्ते स्वर्गनिकटे इमे देवानाम् नर्तकाः गायकाः च सन्ति।

हे सुमुखि! इसके बाद पचास हजार योजन ऊपर अनेकों यन्त्रकलाओं को जानने वाले, कामदेव की तरह सुन्दर आकृति वाले, दिव्य गान एवं नर्तन विद्या में विलास करने वाले गन्धर्व रहते हैं। जैसे नगर के समीप में नृत्यगान विद्या के पंडित निवास करते हैं, उसी प्रकार देवताओं के गायक और नर्तक ये गन्धर्व स्वर्ग के निकट निवास करते हैं।।९९-१००।।

तदूर्ध्वे सार्धलक्षे च निवसन्ति महाव्रताः।।१०१।।
विद्याधरा महाभागे नानाविद्याविशारदाः।
वन्दिता वन्दिनः श्रीमन्महेन्द्रस्तुतिकारिणः।।१०२।।

महाभागे! तत् सार्धलक्षे ऊर्ध्वे च महाव्रताः नानाविद्याविशारदाः विद्याधराः श्रीमन् महेन्द्रस्तुतिकारिणः वन्दिनः वन्दिताः निवसन्ति।

हे भाग्यवती! और उसके पचास हजार योजन ऊपर महाव्रतशाली, अनेक विद्याओं के पारंगत विद्वान्, श्रीमान् देवराज इन्द्र की स्तुति करने वाले तथा दूसरों के द्वारा वन्दित वन्दीजन निवास करते हैं।।१०१-१०२।।

नक्षत्रस्योपरि ततोऽप्सरोलोकोऽतिशोभनः।
सर्वेषां वाञ्छनीयो यो विचित्रसुखकाङ्क्षिणाम्।।१०३।।
तत्राध्विप्रथ(?ब्धिमथ)नाज्जाता लक्षसंख्या वराङ्गना।
देववेश्या नृत्यगीतकुशला मदिरेक्षणाः।।१०४।।

ततः नक्षत्रस्योपरि अतिशोभनः विचित्रः अप्सरोलोकः (अस्ति) यः सर्वेषाम् सुखकाङ्क्षिणाम् वाञ्छनीयः। तत्र अब्धिमथनात् लक्षसंख्याः नृत्यगीतकुशलाः मदिरेक्षणाः वराङ्गनाः देववेश्याः जाताः।

इसके बाद नक्षत्र लोक के ऊपर अत्यन्त शोभा वाला विचित्र अप्सरा लोक है, जो सुख पाने वाले को प्रिय है। वहाँ समुद्र का मन्थन करने से नृत्य-गीत में कुशल, मदिरा के समान नेत्रों वाली सुन्दर एक लाख देववेश्यायें उत्पन्न हुई थीं।।१०३-१०४।।

मोहयन्ति मोहन्या दृष्ट्यैव देवदानवान्।
ये चेन्द्रपदमिच्छन्ति तपोयोगबलादिना।।१०५।।
कुर्वन्ति लीलया तेषां तपोभङ्गं तपस्विनाम्।
श्रेष्ठा तासामुर्वशी च वशीकृतजगत्त्रया।।१०६।।
ततोऽन्या विप्रचित्ताख्या सर्वचित्तविमोहिनी।
अन्या तिलोत्तमा काचित् सर्वभूतमनोहरा।।१०७।।
तिलं तिलं समाहृत्य रूपाणां विधिना कृता।

(ताः) मोहन्या दृष्ट्या एव देवदानवान् मोहयन्ति। ये तपोयोगबलादिना इन्द्रपदम् इच्छन्ति तेषाम् तपस्विनाम् लीलया तपोभङ्गम् कुर्वन्ति। तासाम् वशीकृतजगत्रया उर्वशी श्रेष्ठा। ततः अन्या सर्वचित्तविमोहिनी विप्रचित्ताख्या ततः अन्या (या) सर्वभूतमनोहरा काचित् तिलोत्तमा (अस्ति सा) विधिना रूपाणाम् तिलम् तिलम् समाहृत्य कृता।

ये अप्सरायें मोहिनी दृष्टि से देव और दानवों को मोहित कर लेती हैं। जो लोग तप एवं योग के बल से इन्द्रपद को प्राप्त करना चाहते हैं, उन तपस्वियों की तपस्या को ये सहज में ही भग्न कर देती हैं। उनमें तीनों लोकों को वश में करने वाली उर्वशी श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त एक विप्रचित्ता नामक अप्सरा है, जो सबका चित्त मुग्ध करती रहती है। इसके अलावा एक अन्य तिलोत्तमा नाम की अप्सरा है। विधाता ने सुन्दरता को तिल-तिल करके एकत्रित किया और उस सुन्दरता से तिलोत्तमा को बनाया है॥१०५-१०७॥

रम्भाद्याश्च वरारोहे यदर्थं मम किल्विषम्॥१०८॥
नगरान्ते राजवेश्या यथा चार्वङ्गि संस्थिता।
तथैवाप्सरसः सर्वाः स्वर्गान्ते चारुभूषणाः॥१०९॥

वरारोहे! रम्भाद्याः च मम यदर्थम् किल्विषम्। यथा नगरान्ते चारुअङ्गि! राजवेश्याः संस्थिताः तथैव स्वर्गान्ते चारुभूषणाः सर्वाः अप्सरसः निवसन्ति।

हे वरारोहे! सच्चे अर्थों में मेरे पाप का कारण ये रम्भा आदि अप्सराएँ ही हैं। हे सुन्दर अङ्गों वाली! जैसे नगर के अन्त में सुन्दर अंगों वाली राजवेश्याएँ निवास करती हैं; उसी तरह स्वर्ग के समीप में सुन्दर आभूषणों वाली ये सभी अप्सराएँ निवास करती हैं॥१०८-१०९॥

ततो लक्षत्रयोर्ध्वे च यमलोकोऽतिशोभनः।
पुरी संयमनी तत्र सर्वसंयमकारिणी॥११०॥
निवसन्ति महात्मानो राजानः पुण्यकर्मिणः।
मुनयो देवगन्धर्वा धर्मराजप्रियङ्कराः॥१११॥

ततः लक्षत्रय-ऊर्ध्वे अतिशोभनः यमलोकः (वर्त्तते)। तत्र सर्वसंयम-कारिणी संयमनी पुरी (अस्ति) यत्र पुण्यकर्मिणः राजानः देव-गन्धर्व-धर्म-राजप्रियंकराः महात्मानः मुनयः च निवसन्ति।

इस (अप्सरा लोक) से तीन लाख योजन ऊपर अत्यन्त सुन्दर यम लोक है। वहाँ सबका संयमन करने वाली संयमनी पुरी है। इस पुरी में पुण्य

कर्म करने वाले राजा, देव-गन्धर्व तथा धर्मराज का प्रिय करने वाले महात्मा एवं मुनि निवास करते हैं।।११०-१११।।

गोविन्दसेवाकुशला हरिनामपरायणाः।
धर्माधर्मविचारज्ञो यत्र राजास्ति धर्मराट्।।११२।।

(ते) हरिनामपरायणाः, गोविन्दसेवाकुशलाः (सन्ति)। यत्र धर्माधर्म-विचारज्ञः धर्मराट् राजा अस्ति।

(ये देव-गन्धर्व आदि) हरिनामपरायण तथा गोविन्द की सेवा में कुशल होते हैं। धर्म और अधर्म के ज्ञाता धर्मराज यहाँ के राजा हैं।।११२।।

चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः कृष्णपूजापरायणः।
पापिनस्तं च पश्यन्ति विकटास्यं भयङ्करम्।।११३।।
श्रीपदात् प्रोर्ध्वरोमाणं कालदण्डधरं जडम्।

कृष्णपूजापरायणः श्यामलाङ्गः चतुर्भुजः (सः अस्ति)। पापिनः तम् विकटास्यं भयङ्करम् श्रीपदात् प्रोर्ध्वरोमाणम् कालदण्डधरम् जडम् च पश्यन्ति।

वे धर्मराज कृष्णपूजापरायण, चतुर्भुज, सुन्दर, श्यामल अंग वाले हैं। किन्तु पापी लोग उनको विशाल एवं भयानक मुख वाले, पैरों के ऊपर खड़े रोयें वाले, कालदण्डधारी एवं जड़ के रूप में देखते हैं।।११३।।

तेनैव गीतं गोविन्दनामश्रुतिरसायनम्।।११४।।
शृण्वन्ति धीराः संशुद्धाः साधवः कृष्णलालसाः।
आनयैनं बन्धयैनं पातयामुं च पापिनम्।।११५।।
पादं विन्ध्यस्य पापस्य करं विन्ध्यस्य दुर्मतेः।
इत्यादिकं पापिनस्तु शृण्वन्त्यज्ञानमोहिताः।।११६।।

तेन एव गीतम् तत्र संशुद्धाः धीराः कृष्णलालसाः साधवः गोविन्दनाम-श्रुतिरसायनम् शृण्वन्ति। अज्ञानमोहिताः पापिनः एनम् आनय, एनम् बन्धय, अमुम् पापिनम् पातय, अस्य पापस्य पादम् विन्धि, अस्य दुर्मतेः करम् विन्धि इत्यादिकम् शृण्वन्ति।

वहाँ पूर्ण शुद्ध श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा वाले धीर साधु उनके द्वारा गाये गये कानों के रसायन गोविन्द नाम को सुनते रहते हैं तथा अज्ञानमोहित पापी लोग इसे लाओ, इसे बाँध दो, इस पापी को गिरा दो, इस पापी के पैरों को बींध दो, इस दुष्टमति के हाथों को बींध दो—इस प्रकार के वाक्यों को सुनते हैं।।११४-११६।।

अत ऊर्ध्वे भुवर्लोकमूर्ध्वे वै लक्षयोजनैः।
वामनाख्यो वसेद् विष्णुर्बलिर्येनैव याचितः॥११७॥
लक्ष्म्या सेवितपादाब्जः सर्वदेवनिषेवितः।
तस्योपरि सहस्रांशुर्योऽसौ साक्षात् स्वयं हरिः॥११८॥
भुवर्लोकस्य सीमान्ते ज्योतीरूपो विराजते।
सप्तसप्तिसमारूढः सप्तलोकैकपावनः॥११९॥

अतः लक्षयोजनैः ऊर्ध्वे भुवः लोकम् (अस्ति) यत्र येन बलिः याचितः सः सर्वदेवनिषेवितः लक्ष्म्या सेवितपादाब्जः वामनाख्यः विष्णुः वसेत्। तस्य उपरि यः असौ साक्षात् सहस्रांशुः स्वयम् हरिः सप्तसप्तिसमारूढः सप्तलोकैकपावनः ज्योतीरूपः भुवर्लोकस्य सीमान्ते विराजते।

इससे एक लाख योजनों से ऊपर भुवः लोक है; जहाँ बलि से पृथ्वी माँगने वाले, सभी देवों के लिए सेवनीय, लक्ष्मी द्वारा सेवित चरण-कमल वाले, वामन नाम वाले विष्णु निवास करते हैं। उससे ऊपर जो यह सहस्र किरणों वाले, सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़ सातों लोकों को पवित्र करने वाले, ज्योतिरूप, स्वयं साक्षात् हरि (सूर्य) हैं, वे भुवः लोक के सीमान्त पर (विराजमान) हैं॥११७-११९॥

यन्नामस्मृतिमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।
एकचक्ररथान्तःस्थं जपाकुसुमसन्निभम्॥१२०॥
पद्मयुग्माभयवरान् विवृण्वन्तं कराम्बुजैः।
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे यजन्ति ज्ञानविग्रहम्।
मन्त्रेणानेन धर्मज्ञे सर्वधर्ममहेश्वरम्॥१२१॥

यत् नामस्मृतिमात्रेण नरः सर्वपापैः प्रमुच्यते। सर्वे योगिनः ज्ञानविग्रहम् सर्वधर्ममहेश्वरम् एकचक्ररथान्तःस्थम् जपाकुसुमसन्निभम् कराम्बुजैः पद्मयुग्म-अभयवरान् विवृण्वन्तम् ध्यायन्ति। धर्मज्ञे! अनेन मन्त्रेण च सर्वे योगिनः यजन्ति।

जिन भगवान् हरि का नाम-स्मरण करने से (पापी) सभी पापों से छूट जाता है। सभी उन्हें ज्ञानविग्रह, सभी धर्मों के स्वामी, एक चक्र वाले रथ में बैठे हुए, जपाकुसुम की-सी आभा वाले, करकमलों में दो पद्म तथा अभय एवं वरद मुद्रा को धारण करने वाले रूप का ध्यान करते हैं। हे धर्मज्ञे! इस मन्त्र से वे उनका यजन करते रहते हैं॥१२०-१२१॥

ॐ ह्रां ह्रीं सः ।
ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥१२२॥

ओ३म् ह्रां ह्रीं सः ओ३म् सविता देवः कृष्णेन रजसा वर्तमानः अमृतम् मर्त्यम् च निवेशयन् हिरण्ययेन रथेन भुवनानि पश्यन् आयाति।

यह सूर्यदेव सभी देवों तथा जीवों को कर्म में प्रवृत्त कराते हुए हिरण्यमय रथ में बैठकर काले अर्थात् अन्धकारयुक्त लोक से समस्त भुवनों को देखते हुए आते हैं।।१२२।।

गायत्रीं गायतः पुंसो ब्राह्मणस्य महात्मनः।
श्रीमद्गोविन्दभक्तस्य मुक्तस्य शुद्धचेतसः।।१२३।।
कालचक्रस्य सूर्यस्य रथचक्रस्य मध्यतः।
गतिर्भवति नान्यस्य भक्तिहीनस्य दुर्मतेः।।१२४।।

कालचक्रस्य सूर्यस्य रथचक्रस्य मध्यतः गायत्रीम् गायतः ब्राह्मणस्य महात्मनः श्रीमद्गोविन्दभक्तस्य शुद्धचेतसः भक्तस्य मुक्तस्य पुंसः गतिः भवति दुर्मतेः भक्तिहीनस्य अन्यस्य न।

गायत्री का गान करने वाले ब्राह्मणों की, महात्माओं की, श्रीमद्गोविन्द के भक्तों की तथा पवित्र अन्तःकरण वाले मुक्त पुरुषों की ही कालचक्ररूप भगवान् सूर्य के रथचक्र के मध्य से गति होती है; अन्य दुष्टमति वाले भक्तिहीन जनों की नहीं।।१२३-१२४।।

स्वर्गलोकस्तदुपरि यत्र देवः पुरन्दरः।
सर्वेषामेव देवानामधिपोऽदितिनन्दनः।।१२५।।
सुमेरोः पूर्वदिग्भागे वासस्तस्य महात्मनः।
चतुर्दन्ता गजा यस्य माद्यन्ति द्वारपार्श्वतः।।१२६।।
ऐरावताद्या प्राणेशि करिण्यश्च महाबलाः।

प्राणेशि! तदुपरि स्वर्गलोकः (अस्ति) यत्र अदितिनन्दनः सर्वेषाम् देवानाम् अधिपः देवः पुरन्दरः (विराजते)। सुमेरोः पूर्वदिग्भागे तस्य महात्मनः वासः यस्य द्वारपार्श्वतः चतुर्दन्ताः ऐरावताद्याः गजाः महाबलाः करिण्यः च माद्यन्ति।

उसके ऊपर स्वर्गलोक है, जहाँ सभी देवताओं के स्वामी इन्द्र रहते हैं। सुमेरु के पूर्वदिग्भाग में उस महात्मा इन्द्र का वास है। इन्द्र के द्वारों के बगल में चार दातों वाले ऐरावत आदि मस्त महाबलशाली गज और हथिनियाँ झूमती रहती हैं।।१२५-१२६।।

उच्चैःश्रवा नाम हयः पवमानरयो महान्।।१२७।।
मन्दुरामधितिष्ठन्ति तद्वंशप्रभवाः परे।

कारिकाविलसद्वक्रीश्वासभूषणभूषिताः ॥१२८॥
अपर्यापितपर्याणा घण्टाघर्घरनादिताः।
श्यामकर्णाश्चारुवर्णा ह्रेषारवभयङ्कराः॥१२९॥
हयराजा विराजन्ते राजमानाः सहस्त्रशः।

पवनमानरयः महान् उच्चैःश्रवा नाम हयः तद्वंशप्रभवाः कारिकाविलसद्-वक्रीश्वासभूषणभूषिताः परे मन्दुराम् अधितिष्ठन्ति। श्यामकर्णाः चारुवर्णाः ह्रेषारवभयंकराः सहस्त्रशः अपर्यापितपर्याणाः घंटाघर्घरनादिताः हयराजाः राज-मानाः विराजन्ते।

वायु के समान गति वाला महान् उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा तथा उसके वंश में जन्म लेने वाले कारिका से सुशोभित वक्रीश्वास के आभूषण (लोहे की लगाम) से शोभित अन्य (घोड़े) घुड़शाला में बंधे हुए हैं। श्याम कर्ण तथा चारु वर्ण वाले, भयंकर ह्रेषा शब्द करने वाले, घंटा की भाँति घर-घर नाद करने वाले, खुली हुई (पर्याण) जीनों वाले, हजारों-हजारों हयराज (वहाँ) विराज रहे हैं।।१२७-१२९।।

पञ्चैव देवतरवो दिव्यरूपधराश्चिरम्॥१३०।
विकसत्पुष्पनिचया यथेप्सितफलप्रदाः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च मन्दारः पारिजातकः॥१३१॥
हरिचन्दनमित्येते रत्नानि प्रसुवन्ति वै।
प्रयच्छन्ति सदार्थिभ्यो वस्त्रालङ्करणादिकम्॥१३२॥

दिव्यरूपधराः विकसत्पुष्पनिचयाः यथा ईप्सितफलप्रदाः पञ्च देवतरवः (सन्ति) (एते) मन्दारः सन्तानः कल्पवृक्षः पारिजातकः हरिचन्दनम् इति—एते रत्नानि प्रसुवन्ति, अर्थिभ्यः च सदा वस्त्रालंकरणादिकम् प्रयच्छन्ति।

दिव्य रूप धारण करने वाले, विकसित पुष्पसमूहों वाले, इच्छित फल प्रदान करने वाले पाँच देवतरु यहाँ विराजते हैं। ये हैं—मन्दार, सन्तान, कल्पवृक्ष, पारिजात तथा हरिचन्दन। ये रत्नों को उत्पन्न करते हैं तथा माँगने वालों को वस्त्र एवं अलंकरण देते रहते हैं।।१३०-१३२।।

चन्द्रकान्तशिलाजालच्युतमात्रामलं जलम्।
पिबन्ति देवतास्तत्रामृततुल्यं वरानने॥१३३॥
अमृतं भुन्य(?ञ्ज) ते सर्वं सर्वभक्ष्योत्तमोत्तमम्।
एनं रसायनं भक्ष्यं भोज्यं चोष्यं तथैव च॥१३४॥

वरानने! तत्र देवताः पिबन्ति। चन्द्रकान्तशिलाजालच्युतमात्रम् अमलम्

अमृततुल्यम् जलम् सर्वभक्ष्योत्तमम् सर्वम् अमृतम् रसायनम् भक्ष्यम् भोज्यम् तथा चोष्यम् भुञ्जते।

हे सुन्दर मुख वाली! यहाँ देवतागण चन्द्रकान्तशिलाओं के जाल से बहने वाले पवित्र अमृततुल्य जल को पीते हैं और सभी भोजनों में उत्तमोत्तम अमृतमय रसायनयुक्त भक्ष्य-भोज्य और चोष्य पदार्थों को खाते हैं।।१३३-१३४।।

ताः स्त्रवन्ति महादेवि यच्छन्ति कामधेनवः।
यत्र श्रीनन्दनोद्यानं देवकन्याः सहस्त्रशः।।१३५।।
सङ्गीतनिपुणा नित्यं नृत्यगीतपरायणाः।
पुलोमजां शचीं देवीमिन्द्राणीं कनकप्रभाम्।।१३६।।
सेवन्ते मधुरालापैः स्वर्गाङ्गणगताङ्गनाः।
कल्पद्रुमतले देव्यो गृहमेधीयकर्मभिः।।१३७।।

महादेवि! ताः कामधेनवः स्त्रवन्ति यच्छन्ति च। श्रीनन्दनोद्यानम् यत्र संगीतनिपुणाः नृत्यगीतपरायणाः सहस्त्रशः देवकन्याः स्वर्गाङ्गणगताः अंगनाः कनकप्रभाम् पुलोमजाम् देवीम् इन्द्राणीम् शचीम् कल्पद्रुमतले गृहमेधीयकर्मभिः मधुरालापैः च सेवन्ते।

हे महादेवी! स्वर्गलोक में भोजन को वे कामधेनु उत्पन्न करती हैं और देवताओं को देती हैं। वहाँ श्रीनन्दन उद्यान है, जिसमें संगीत में निपुण, नृत्य-गीतपरायण हजारों देवकन्याएँ और स्वर्ग के आँगन में विहार करने वाली देवाङ्गनाएँ कनक जैसी कान्ति वाली पुलोमजा देवी इन्द्राणी शची की कल्पवृक्ष के नीचे गृहमेधीय कर्मों से तथा मधुर आलापों से सेवा करती रहती हैं।।१३५-१३७।।

यत्र स्फटिककुड्यां च अधोवक्त्रा निजेक्षणे।
पद्मभ्रान्त्या निरीक्षन्ति हसद्वक्त्रा पराभवन्।।१३८।।

यत्र च स्फटिककुड्याम् अधोवक्त्राः निजेक्षणे पद्मभ्रान्त्या निरीक्षन्ति हसद्वक्त्राः पराभवन्।

और जहाँ स्फटिक की दीवार में नीचे की ओर मुख की हुई हँसती हुई देवाङ्गनाएँ अपने नेत्रों को कमल के भ्रम से देखती है; फिर मुख में हंसी वाली वे पराभूत हो जाती हैं।।१३८।।

सर्वदेवगणैर्युक्ता सुधर्मा नाम वै सभा।
गणकाश्चात्र विद्यन्ते चिन्ताविद्याविशारदाः।।१३९।।

चिन्तामणिं गले बध्वा सर्वं जानन्ति तत्रगाः।
अमरावती पुरी ह्येषा विश्वकर्मविनिर्मिता॥१४०॥
दत्ता भगवता पूर्वं शक्राय ब्रह्मणा प्रिये।

(अत्र) सर्वदेवगणैः युक्ता सुधर्मा नाम वै सभा (अस्ति)। अत्र चिन्ता-विद्याविशारदाः गणकाः विद्यन्ते। तत्रगाः गले चिन्तामणिम् बध्वा सर्वम् जानन्ति। एषा हि विश्वकर्मविनिर्मिता अमरावती पुरी पूर्वम् भगवता ब्रह्मणा शक्राय दत्ता।

यहाँ सभी देवगणों से युक्त सुधर्मा नाम की सभा है, जहाँ चिन्ताविद्या (ज्योतिष) के विद्वान् ज्योतिषी बैठते हैं। वहाँ जाने वाले गले में चिन्तामणि बाँधकर सब कुछ जान लेते हैं। यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अमरावती पुरी है, जो पूर्व में भगवान् ब्रह्माजी ने शक्र (इन्द्र) को दी थी॥१३९-१४०॥

सुमेरोरग्निदिग्भागे पुरी ज्योतिर्मयी शुभा॥१४१॥
अग्निर्वैश्वानरो देवः सर्वदेवाग्रभुक् विभुः।
हवनीयैर्गार्हपत्यैः क्रव्यादैरग्निभिर्वृतः॥१४२॥

प्रिये! सुमेरोः अग्निदिग्भागे शुभा ज्योतिर्मयी पुरी (अस्ति) यत्र हवनीयैः गार्हपत्यैः क्रव्यादैः अग्निभिः वृतः सर्वदेवाग्रभुक् विभुः वैश्वानरः अग्निः देवः (स्थितः)।

प्रिये! सुमेरु के अग्निकोण में अत्यन्त शुभा ज्योतिर्मयी नामक पुरी है, जहाँ हवनीय, गार्हपत्य और क्रव्याद अग्नियों से घिरे हुए, सभी देवों में सर्वप्रथम भोजन करने वाले सर्वव्यापक वैश्वानर देव अग्नि रहते हैं॥१४१-१४२॥

पुरा यमस्य सदनं स्वर्लोके विश्वकर्मणा।
कृता तत्र स्थितिर्नैव गौरवेण भयेन च॥१४३॥
स(?त)मासनं परित्यज्य तदधो वसतिः कृता।
भुवर्लोके पितुः पादसमीपे वामनस्य च॥१४४॥

पुरा स्वर्लोके विश्वकर्मणा यमस्य सदनम् (निर्मितम्)। तत्र च गौरवेण भयेन च स्थितिः न एव कृता। (तेन) तम् आसनम् परित्यज्य तद् अधः भुवः लोके पितुः वामनस्य पादसमीपे वसतिः कृता।

प्राचीनकाल में स्वर्गलोक में विश्वकर्मा ने यमराज का महल बनाया था, किन्तु गौरव एवं भय से भीत यम ने वहाँ निवास नहीं किया; अपितु उस आसन का त्याग कर उसके नीचे भुवः लोक में अपने पिता वामन के चरणों के समीप निवास किया॥१४३-१४४॥

पितास्य च जगच्चक्षुः पितृव्यस्तु पुरन्दरः।
हेतुना तेन तदधः पुरी संयमनी प्रिये॥१४५॥
तद्दक्षिणे पुरी चान्या राक्षसानां महात्मनाम्।
क्रव्यादीति च विख्याता मांसास्थिरक्तपूरिता॥१४६॥

प्रिये! अस्य पिता जगच्चक्षुः, पितृव्यः च पुरन्दरः, तेन हेतुना तद् अधः संयमनी पुरी (स्थिता अस्ति)। तद् दक्षिणे च महात्मनाम् राक्षसानाम् मांसास्थि-रक्तपूरिता क्रव्यादी इति ख्याता अन्य पुरी।

प्रिये! इस यम के पिता जगत् चक्षु भगवान् सूर्य हैं तथा चाचा स्वयं इन्द्र हैं, इस कारण उनसे नीचे संयमनी पुरी स्थित है। इस पुरी के दक्षिण दिग्भाग में बड़े-बड़े राक्षसों की मांस, अस्थि और रक्त से पूरित क्रव्यादी नाम की अन्य नगरी है॥१४५-१४६॥

पुरा ब्रह्मतनोर्जाता या तनुः रक्षिता विभोः।
भोक्तुमिच्छोरन्यतमा स रक्षो नाम दिक्पतिः॥१४७॥
विष्णुना निर्जितः पूर्वं पातालतलमाविशत्।
दत्त्वा कन्यां विश्रवसे पुलस्त्यतनयाय च॥१४८॥

पुरा ब्रह्मतनोः जाता अन्यतमा या विभोः तनुः भोक्तुम् इच्छोः रक्षिता स दिक्पतिः नाम रक्षः। पूर्वम् विष्णुना निर्जितः पातालतलम् आविशत्। पुलस्त्यस्य तनयाय विश्रवसे कन्याम् दत्त्वा।

प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न जो दूसरा प्रभु का शरीर भोजन करने की इच्छा वाले से रक्षित हुई वह निर्ऋति दिशा का स्वामी है। भगवान् विष्णु के द्वारा पराजित वह दिक्पति पाताल के तल में चला गया। उसने पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा को अपनी कन्या प्रदान की॥१४७-१४८॥

मुनिवीर्यात्तत्र जातान् पुत्रांस्त्रीनुपलभ्य च।
रावणं कुम्भकर्णं च विभीषणमिति प्रिये॥१४९॥
ते च कृत्वा तपो घोरं प्रसाद्य जगतां पतिम्।
ब्रह्माणं परमैश्वर्यं बलमायुर्यथाक्रमम्॥१५०॥
प्रापुर्बलाद् विनिर्जित्य ज्येष्ठं भ्रातरमात्मनः।
लङ्गामधि(?ध्य)वसद्राजा रावणो लोकरावणः॥१५१॥

प्रिये! तत्र मुनिवीर्यात् जातान् त्रीन् पुत्रान् रावणम् कुम्भकर्णम् विभीषणम् इति उपलभ्य। ते घोरम् तपः कृत्वा जगताम् पतिम् ब्रह्माणम् प्रसाद्य परमैश्वर्यम् बलम् आयुः यथाक्रमम् प्रापुः। आत्मनः जेष्ठम् भ्रातरम् बलाद् विनिर्जित्य लोकरावणः रावणः राजा लंकाम् अध्यवसत्।

प्रिये! उस कन्या से मुनि के वीर्य द्वारा तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण नाम वाले थे। इन्होंने घोर तप करके जगत्पति ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर क्रमशः परम ऐश्वर्य, बल एवम् आयु को वररूप में प्राप्त कर लिया। अपने बड़े भाई (कुबेर) को बलपूर्वक जीत कर लोक को भय देने वाला रावण लंका का राजा बन गया और लंका में रहने लगा।।१४९-१५१।।

ब्रह्मदत्तां पुरीं यक्षेश्वरायैलविलाय च।
या दिग्गतोज्ज्वला मेरोः कान्ते दक्षिणपश्चिमा।।१५२।।
तत्र वासो रक्षसां वै सुकृतो विश्वकर्मणा।
विष्णुत्रासाच्युतास्तस्मात् स्वर्गलोके वसन्ति ते।।१५३।।

कान्ते! यक्षेश्वराय एलविलाय ब्रह्मदत्ताम् पुरी या दिग्गतोज्ज्वला मेरोः दक्षिणपश्चिमा तत्र विश्वकर्मणा रक्षसाम् वासो वै सुकृतः। परम् तस्मात् विष्णुत्रासात् च्युताः ते स्वर्गलोके वसन्ति।

हे प्रिये! यक्षों के स्वामी ऐलविल (कुबेर) के लिए ब्रह्माजी ने जो पुरी दी थी, वह दिशाओं के प्रकाश की तरह उज्ज्वल थी। वह मेरु पर्वत के दक्षिण-पश्चिम भाग में स्थित थी। विश्वकर्मा ने उस पुरी को राक्षसों का निवासस्थान बनाया; किन्तु भगवान् विष्णु के भय से वहाँ से भागकर वे स्वर्गलोक में रहने लगे।।१५२-१५३।।

रावणः कुम्भकर्णश्च द्वावेतौ हरिकिङ्करौ।
विष्णुना रामरूपेण निहतौ स्वेन कर्मणा।।१५४।।
पुनर्जन्मान्तरे तेन वैरात् स्वपदमागतौ।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान् रामभक्तो विभीषणः।।१५५।।
आस्ते लङ्केश्वरः सुष्ठु राक्षसेन्द्रगणैर्वृतः।

रावणः कुम्भकर्णः च एतौ द्वौ हरिकिङ्करौ स्वेन कर्मणा रामरूपेण विष्णुना निहतौ। पुनः जन्मान्तरे तेन वैरात् स्वपदम् आगतौ। राक्षसाधिपतिः विभीषणः श्रीमान् रामभक्तः राक्षसेन्द्रगणैः वृतः लंकेश्वरः सुष्ठु आस्ते।

रावण और कुम्भकर्ण दोनों ही भगवान् विष्णु के सेवक थे; किन्तु अपने कर्म के कारण ही इनको भगवान् विष्णु ने राम का अवतार लेकर मारा था। राक्षसराज विभीषण भगवान् श्रीराम के भक्त थे। वे राक्षसों से युक्त लंका में उत्तम राज्य करते हैं।।१५४-१५५।।

सुमेरोः पश्चिमे भागे वसतिः वरुणस्य वै।।१५६।।

वारुणीति च विख्याता पुरी सर्वगुणैर्युता।
जलानामधिपो देवः प्रचेताः पाशधृग् विभुः॥१५७॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशश्चन्द्रबिम्बसमाननः ।

सुमेरोः पश्चिमे भागे सर्वगुणैः युता वसतिः वारुणी (इति) विख्याता वरुणस्य विख्याता पुरी (अस्ति)। (शुभे/अत्र) पाशधृग् विभुः जलानाम् अधिपः शुद्धस्फटिकसंकाशः चन्द्रबिम्बसमाननः देवः प्रचेताः वसति।

सुमेरु के पश्चिम भाग में सर्वगुणों से युक्त भगवान् विष्णु की वारुणी नाम की पुरी है। हे शुभे! जहाँ शुद्ध स्फटिक के समान शुभ्र, चन्द्रमा के समान मुख वाले, पाश धारण करने वाले, जलों के स्वामी, सर्वव्यापक देव प्रचेता निवास करते हैं।॥१५६-१५७॥

ततो गन्धवती दिव्या वायवी नगरी शुभा॥१५८॥
तत्राधिपो जगत्प्राणः पवनः कश्यपात्मजः।

ततः गन्धवती दिव्या वायवी नगरी (अस्ति)। तत्र कश्यपात्मजः जगत्-प्राणः पवनः अधिपः (अस्ति)।

हे शुभे! इसके बाद दिव्य गन्धों से युक्त शुभ वायवी नगरी है। वहाँ कश्यप जी के पुत्र जगत् के प्राण पवनदेव राजा हैं॥१५८॥

ततो लङ्का नाम पुरी स्वयं रुद्रेण निर्मिता॥१५९।
दत्ता भक्ताय मित्राय कुबेराय महात्मने।
लङ्काभ्रातृविरोधेनेत्यलकां वसति यक्षराट्॥१६०॥
यत्र क्रूरैर्यक्षगणैर्धनानामधिपः प्रभुः।
पुरा ब्रह्मवपुः पुत्रः स्वयं खादितुमुद्यतः॥१६१॥
स यक्षस्तत्कुले जाता कन्या चेडविडा शुभा।
मुनिवीर्यात् तया लब्धः कुबेरो नाम वै सुतः॥१६२॥

ततः स्वयम् रुद्रेण निर्मिता लंका नाम पुरी भक्ताय मित्राय महात्मने कुबेराय दत्ता। यक्षराट् लंकाभ्रातृविरोधेन अलकाम् वसति। यत्र क्रूरैः यक्षगणैः धनानाम् प्रभुः अधिपः। पुरा ब्रह्मवपुः स्वयम् खादितुम् उद्यतः सः पुत्रः यक्षः तत् कुले च शुभा इडविडा कन्या जाता। तया मुनिवीर्यात् कुबेरः नाम सुतः लब्धः।

इसके बाद स्वयम् रुद्र द्वारा निर्मित लंका नाम की पुरी है, जिसे (रुद्र ने) अपने भक्त एवं मित्र महापुरुष कुबेर को प्रदान कर दिया। कुबेर यक्षराज हैं। वे लंका भ्रातृ रावण के विरोध के कारण अलका पुरी में निवास करते हैं। अपने क्रूर यक्षगणों से घिरे हुए वे धन के स्वामी (कुबेर वहाँ के) राजा

हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मा का पुत्र अपने पिता के शरीर को खाने के लिए तत्पर हो गया था, वही पुत्र यक्ष कहलाया। उस यक्षकुल में सुन्दर एवम् शुभ इडविडा नाम की कन्या उत्पन्न हुई, उस कन्या ने मुनि के वीर्य से कुबेर नाम का पुत्र प्राप्त किया।।१५९-१६२।।

तद्दक्षिणे महाभागे ऐशानी रुद्रवल्लभा।
पार्वत्या सहितो यत्र रुद्रो वसति सर्वदा।।१६३।।
इत्यष्टलोकपाला मे(?ते) कथिता लोकभावनाः।
येषां स्मरणमात्रेण दुःखग्रामाद् विमुच्यते।।१६४।।
एते तु सप्त वह्न्याद्या लोकपाला महौजसः।
यजन्ति मन्त्रतन्त्राभ्यां महेन्द्रममराधिपम्।।१६५।।

महाभागे तद्दक्षिणे रुद्रवल्लभा ऐशानी पुरी (अस्ति) यत्र पार्वत्या सहितः रुद्रः सर्वदा वसति। इति लोकभावनाः अष्टलोकपालाः ते कथिताः, येषाम् स्मरणमात्रेण (साधक) दुःखग्रामात् विमुच्यते। एते महौजसः वह्न्याद्याः सप्त लोकपाला मन्त्रतन्त्राभ्याम् अमराधिपम् महेन्द्रम् यजन्ति।

हे महाभागे! उसके दक्षिण भाग में शिवप्रिया ऐशानी पुरी है, जहाँ पार्वती के साथ भगवान् रुद्र हमेशा निवास करते हैं। इस प्रकार मैंने तुमको लोकभावन अष्ट लोकपालों को बतलाया, जिनके स्मरणमात्र से (साधक) दुःखों के समूह से मुक्त हो जाता है। ये महातेजस्वी वह्नि आदि सात लोकपाल तन्त्र-मन्त्र से देवराज इन्द्र का यजन करते रहते हैं।।१६३-१६५।।

ॐ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन्।।१६६।।

ओउम् नकिः इन्द्र वृत्रहन् त्वद् उत्तरो ज्यायान् न अस्ति।

हे स्वर्ग के स्वामी, वृत्रासुर का वध करने वाले इन्द्र! आपसे बड़ा और श्रेष्ठ और कोई नहीं है।।१६६।।

अतो लक्षद्वयादूर्ध्वे चन्द्रलोकोऽतिशोभनः।
योऽत्रिनेत्रसमुद्भूतक्षीरोदार्णवसम्भवः ।।१६७।।
नक्षत्रमण्डलं सोमादुपरिष्टाद् विलक्षितः।
उडुमण्डलतः सौम्यः उपरिष्टाद् विलक्षितः।।१६८।।

अतः लक्षद्वयात् ऊर्ध्वे अतिशोभनः चन्द्रलोकः यः अत्रिनेत्रसमुद्भवः क्षीरोदार्णवसम्भवः। सोमाद् उपरिष्टाद् नक्षत्रमण्डलम् विलक्षितः। उडुमण्डलतः उपरिष्टात् सौम्यः विलक्षितः।

यहाँ से दो लाख योजन ऊपर अतिशोभा वाला चन्द्रलोक है, जो अत्रि

ऋषि के नेत्र से उत्पन्न क्षीरसमुद्र से उत्पन्न हुआ है। सोमलोक के ऊपर नक्षत्रमण्डल विलक्षित अर्थात् सुशोभित होता है। तारामण्डल के ऊपर सौम्य अर्थात् सोम का पुत्र बुध है॥१६७-१६८॥

गुरुदारेषु यो जातस्तारायामतिसुन्दरः।
यस्मिन् जाते देवगणा बभूवुर्निष्प्रभाः क्षणात्॥१६९॥
द्विलक्षे तु बुधात् काव्यः शम्भुना मिलितः पुरा।
लिङ्गद्वारा शुक्ररूपो भूत्वा यः पुत्रतां गतः॥१७०॥

यः गुरुदारेषु तारायाम् अतिसुन्दरः जातः। यस्मिन् जाते क्षणात् देवगणाः निष्प्रभाः बभूवुः। बुधात् द्विलक्षे तु काव्यः मिलितः यः पुरा शम्भुना लिङ्गद्वारा शुक्ररूपः भूत्वा पुत्रताम् गतः।

अत्यन्त सुन्दर जो बुध गुरु की पत्नी तारा से (चन्द्रमा के द्वारा) उत्पन्न हुआ, उस बुध के उत्पन्न होते ही एक क्षण में सभी देवगण प्रभाहीन हो गये। बुध से दो लाख योजन ऊपर शुक्र तारा है, जो प्राचीन काल में भगवान् शम्भु के लिङ्ग के द्वारा शुक्ररूप में उत्पन्न होकर उनका पुत्र बना॥१६९-१७०॥

शुक्राद् भौमो द्विलक्षे तु सुरेज्यो नियुतद्वये।
भौमेज्ययोर्मध्यभागे वैकुण्ठो भगवान् हरिः॥१७१॥
लक्षत्रये गुरोः सौरिः सौरेर्लक्षद्वयोपरि।
सप्तर्षयो ध्रुवस्तस्मात् पञ्चलक्षे व्यवस्थितः॥१७२॥

शुक्राद् द्विलक्षे भौमः भौमाद् नियुतद्वये सुरेज्यः। भौमसुरेज्ययोः मध्यभागे वैकुण्ठः भगवान् हरिः। गुरोः लक्षत्रये सौरिः, सौरेः लक्षद्वयोपरि सप्तर्षयः, तस्माद् पञ्चलक्षे ध्रुवः व्यवस्थितः।

शुक्र से दो लाख योजन पर भौम हैं। भौम से दो लाख योजन पर गुरु हैं। भौम एवं सुरगुरु के मध्य में भगवान् वैकुण्ठ हरि रहते हैं। गुरु से तीन लाख योजन पर सूर्यपुत्र शनि हैं और शनि से दो लाख योजन पर सप्तर्षिमण्डल है। सप्तर्षिमण्डल से पाँच लाख योजन पर धुव्र व्यवस्थित हैं॥१७१-१७२॥

यः पञ्चहायनो बालः सः मातुर्वाक्शरार्दितः।
गत्वा मधुवनं विष्णुमयजन्मनुनाऽमुना॥१७३॥
ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि।

यः पञ्चहायनः बालः मातुः वाक्शरार्दितः सः मधुवनम् गत्वा अमुना मनुना विष्णुम् अयजत्। ओ३म् नमो भगवते तुभ्यम् वासुदेवाय धीमहि।

जो पाँच वर्ष का बालक माता के वाग्बाणों से विद्ध होकर अर्थात् दुःखित होकर मधुवन में जाकर इस मन्त्र से भगवान् विष्णु का यजन करने लगा। आप भगवान् वासुदेव को मैं ध्यान करते हुए प्रणाम करता हूँ।।१७३।।

इमं मन्त्रं प्रजपते बालकाय महौजसे।।१७४।।
सत्यलोकात् समागत्य पृश्निगर्भो हरिः स्वयम्।
अदात्तस्मै निजपदं स्वर्गिणामुपरि स्थितम्।।१७५।।
तत्रस्थं पुरुषं साक्षादजितं परमेश्वरम्।
विष्ण्वंशमव्ययं शान्तो यजेदेकमना ध्रुवः।।१७६।।

इमम् मन्त्रम् प्रजपते महौजसे बालकाय स्वयम् पृश्निगर्भः हरिः सत्य-लोकात् समागत्य तस्मै स्वर्गिणाम् उपरि स्थितम् निजपदम् अदात्। ध्रुवः शान्तः तत्रस्थम् पुरुषम् साक्षात् अजितम् परमेश्वरम् विष्णोः अंशम् अव्ययम् एकमनाः यजेत्।

इस मन्त्र का निरन्तर जप करने वाले तेजस्वी उस बालक ध्रुव के लिए स्वयं पृश्नि के गर्भ से जन्म लेने वाले भगवान् हरि सत्यलोक से आकर उसे स्वर्गवासियों से भी ऊपर स्थित अपना लोक प्रदान किये, जहाँ ध्रुव शान्त एवं एकान्त मन से विष्णु के अंश अव्यय पुरुष वहाँ रहने वाले साक्षात् अजित भगवान् का ध्यान एवं भजन करते हैं।।१७४-१७६।।

योऽजितो नाम भगवान् निर्मथ्य क्षीरनीरधिम्।
अपाययत् सुरान् सर्वानमृतं दिव्यभोजनम्।।१७७।।
ध्रुवलोके महाभागे स वै वसति नित्यदा।
आध्रुवं स्वर्गलोकोऽयं यत ऊर्ध्वं शृणु प्रिये।।१७८।।

यः अजितः नाम भगवान् क्षीरनीरधिम् निर्मथ्य सर्वान् सुरान् दिव्य-भोजनम् अमृतम् अपाययत्। महाभागे! स वै नित्यदा ध्रुवलोके वसति। प्रिये! आध्रुवम् अयम् स्वर्गलोकः यतः ऊर्ध्वम् शृणु।

हे महाभागे! जिन अजित नाम के भगवान् ने क्षीर-सागर का मन्थन कर सभी देवगणों को दिव्य भोज्य अमृत को पिलाया था, वे अजित भगवान् नित्य ही ध्रुवलोक में निवास करते हैं। ध्रुवलोक से लेकर यह सब स्वर्ग लोक है। हे प्रिये! इससे ऊपर जो कुछ है, उसे सुनो।।१७७-१७८।।

महर्लोकः क्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः।
यत्र तिष्ठति यज्ञेशो नृवराहः स्वयं प्रभुः।।१७९।।
धरणीधारणार्थं तु स्थापयित्वा स्वकां तनुम्।
अतले च हिरण्याक्षं हत्वा देवैः प्रपूजितः।।१८०।।

क्षितेः एककोटिप्रमाणतः ऊर्ध्वम् महः लोकः (अस्ति) यत्र यज्ञेशः प्रभुः नृवराहः स्वयम् तिष्ठति। धरणीधारणार्थम् स्वकाम् तनुम् स्थापयित्वा तु अतले हिरण्याक्षम् हत्वा देवैः प्रपूजितः।

पृथिवी से एक करोड़ योजन परिमाण ऊपर में महर्लोक है, जहाँ यज्ञेश प्रभु नृवराह रूप से स्वयं निवास करते हैं। पृथ्वी को धारण करने के लिए यज्ञेश ने अपना यह शरीर बनाया था और अतल लोक में हिरण्याक्ष का वध करके देवताओं द्वारा पूजित हुए थे।।१७९-१८०।।

तस्योपरि हयग्रीवो भगवान् भूतभावनः।
वसेत् कोटिद्वयोर्ध्वे च जनोलोके सुखावहे।।१८१।।
सनन्दाद्या महात्मानो ब्रह्मणः प्रतिमूर्तयः।
यजन्ति ज्ञानयज्ञेन हयशीर्षं जनार्दनम्।।१८२।।

तस्योपरि कोटिद्वय-ऊर्ध्वे सुखावहे जनोलोके भगवान् भूतभावनः हयग्रीवः वसेत्। ब्रह्मणः प्रतिमूर्तयः सनन्दाद्याः महात्मानः ज्ञानयज्ञेन जनार्दनम् हयशीर्षम् यजन्ति।

इससे दो करोड़ योजन ऊपर सुख का आगार जनलोक है। यहाँ भूतभावन भगवान् हयग्रीव निवास करते हैं तथा ब्रह्मा की प्रतिमूर्ति सनक आदि महापुरुष ज्ञानयज्ञ द्वारा जनार्दन भगवान् हयग्रीव की उपासना करते रहते हैं।।१८१-१८२।।

ततः परं तपोलोको भूमेः कोटिचतुष्टये।
योजनानां च सुभगे यत्रास्ते स त्रिविक्रमः।।१८३।।
पुरा यो दानवेन्द्रस्य वाग्धूलेरध्वरं ययौ।
धृत्वा वै वामनं रूपं धुन्धुमारस्य वै तथा।।१८४।।
बलेरप्यध्वरं गत्वा त्रिधा कृत्वा निजां तनुम्।
पाताले च भुवर्लोके वामनोऽत्र त्रिविक्रमः।।१८५।।

ततः च परम् भूमेः योजनानाम् कोटिचतुष्टये तपोलोकः (अस्ति)। सुभगे! यत्र सः त्रिविक्रमः आस्ते यः पुरा वामनम् रूपम् धृत्वा वाग्धूलेः धुन्धु-मारस्य दानवेन्द्रस्य अध्वरम् ययौ। बलेः अध्वरम् गत्वा निजाम् तनुम् त्रिधा कृत्वा पाताले, भुवर्लोके च अत्र तपःलोके त्रिविक्रमः वामनः (आसीत्)।

उसके आगे भूमि से चार करोड़ योजन ऊपर तपःलोक है। हे सुभगे! यहाँ वे भगवान् त्रिविक्रम रहते हैं, जो प्राचीन काल में वामन का रूप धारण कर वाक्धूलि धुन्धुमार राक्षसराज बलि के यज्ञ में गये थे और वहाँ भगवान् त्रिविक्रम अपने शरीर को तीन रूपों में प्रकट करके पाताल में, भूवर्लोक में तथा तपलोक में विस्तृत थे।।१८३-१८५।।

तं नु त्रिविक्रमं देवं तपोलोकनिवासिनः।
यजन्ति ज्ञानयज्ञेन तत ऊर्ध्वं च यत् शृणु॥१८६॥
उपरिष्टादतः सत्यं कोटिरष्टौ प्रमाणतः।
ब्रह्मलोक इति ख्यातो यत्र ब्रह्मा जगद्गुरुः॥१८७॥

तपःलोकनिवासिनः तम् त्रिविक्रमम् देवम् ज्ञानयज्ञेन यजन्ति। ततः ऊर्ध्वम् च यत् (तत्) शृणु। अतः उपरिष्टात् अष्टौ कोटिप्रमाणतः सत्यम् ब्रह्मलोकः इति ख्यातः यत्र जगद्गुरुः ब्रह्मा विराजते।

तपोलोक में रहने वाले लोग भगवान् त्रिविक्रम को ज्ञानयज्ञ से पूजते हैं। उससे ऊपर जो है, उसे सुनो—तपोलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर सत्य लोक है, जो ब्रह्मलोक के रूप में प्रसिद्ध है, जहाँ जगद्गुरु ब्रह्मा जी रहते हैं॥१८६-१८७॥

तत्र ब्रह्मा पृश्निगर्भं भगवन्तमधोक्षजम्।
नारदाद्यैः परिवृतो यजन्नास्ते महाप्रभुम्॥१८८॥

तत्र नारदाद्यैः परिवृतः ब्रह्मा महाप्रभुम् भगवन्तम् अधोक्षजम् पृश्निगर्भम् यजन् आस्ते।

वहाँ नारद आदि से घिरे हुए ब्रह्मा जी महाप्रभु भगवान् अधोक्षज पृश्निगर्भ का यजन करते रहते हैं॥१८८॥

बलरामस्तु भगवांस्तदूर्ध्वे वसति स्वयम्।
श्वेतो नीलाम्बरधरो यस्यांशो धरणीधरः॥१८९॥

तद् ऊर्ध्वे भगवान् श्वेतः नीलाम्बरधरः बलरामः स्वयम् वसति यस्य अंशः धरणीधरः।

उससे ऊपर गौरवर्ण शरीर पर नीलाम्बर धारण किये हुये स्वयं भगवान् बलराम निवास करते हैं। धरणीधर अर्थात् शेषनाग उन्हीं का एक अंश है॥१८९॥

तमोगुणमयः श्रीमान् महावैकुण्ठदक्षिणे।
वैकुण्ठधरः पश्चिमे कामदेवो रजोगुणः॥१९०॥

महावैकुण्ठदक्षिणे तमोगुणमयः श्रीमान् वैकुण्ठधरः रजोगुणः पश्चिमे कामदेवः।

महावैकुण्ठ के दक्षिण में तमोगुण वाले श्रीमान् वैकुण्ठधर रहते हैं। पश्चिम की ओर रजोगुण वाले कामदेव हैं॥१९०॥

तदूर्ध्वे चोत्तरे पार्श्वेऽनिरुद्धो ज्ञानविग्रहः।
सत्त्वभूतस्तु पूर्वस्यां वासुदेवः सनातनः॥१९१॥

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्याणां चतुष्टयम्।
स्थानं क्रमेण कथितं वैकुण्ठभुवनादधः॥१९२॥

तद् ऊर्ध्वे च उत्तरे पार्श्वे ज्ञानविग्रहः अनिरुद्धः अस्ति। पूर्वस्याम् तु सत्त्वभूतः सनातनः वासुदेवः। सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्याणाम् चतुष्टयम् स्थानम् वैकुण्ठभुवनादधः क्रमेण कथितम्।

उसके ऊपर उत्तर के पार्श्वभाग में ज्ञानविग्रहरूप अनिरुद्ध जी हैं और पूर्व के पार्श्वभाग में सत्त्वभूत सनातन वासुदेव श्रीकृष्ण हैं। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य और सारूप्य नामक मुक्तियों के चारों स्थानों का क्रम से वर्णन कर दिया। ये वैकुण्ठलोक के अधोभाग में हैं॥१९१-१९२॥

सत्यादुपरि वैकुण्ठो योजनानां प्रमाणतः।
भूर्लोकात् परिसंख्यातः कोटिषोडशसम्मितः॥१९३॥

सत्यात् उपरि वैकुण्ठः भूःलोकात् योजनानाम् कोटिषोडशसम्मितः प्रमाणतः परिसंख्यातः (अस्ति)।

सत्यलोक से ऊपर वैकुण्ठ लोक है। वह वैकुण्ठ लोक पृथ्वी लोक से सोलह करोड़ योजन ऊपर प्रतिष्ठित बतलाया गया है॥१९३॥

ऊध्र्ध्वोर्ध्वक्रमतः पर्यक् चतुर्णां च चतुष्टयम्।
कोटियोजनमानं तु एकैकस्य वरानने॥१९४॥
स्थानं चतुष्कोटिमितं मध्ये विष्णोः परं पदम्।
ज्योतिर्मयं तेजसा च सर्वभूतमनोहरम्॥१९५॥

वरानने! ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमतः चतुर्णाम् पर्यक् कोटियोजनमानम् स्थानम्। (तच्च) एक-एकस्य चतुष्टयम्। मध्ये विष्णोः चतुष्कोटिमितम् परम् पदम् सर्वभूतमनोहरम् तेजसा च ज्योतिर्मयम् (अस्ति)।

हे वरानने! इन चारों के चारों ओर ऊपर ही ऊपर एक करोड़ योजन मान वाला स्थान है। उनमें एक-एक का चार करोड़ योजन का क्षेत्रफल है। इन चारों के मध्य में भगवान् विष्णु का परम पद अर्थात् स्थान है, जो सब प्राणियों के मन को मोहित करने वाला तथा तेज के कारण ज्योतिर्मय है॥१९४-१९५॥

परमव्योमनाथस्य विष्णोरतुलसेजसः।
वेदाः स्तुवन्ति यं नित्यं परमानन्दविग्रहम्॥१९६॥
ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा।
पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्॥१९७॥

वेदाः परमव्योमनाथस्य अतुलतेजसः विष्णोः नित्यम् परमानन्दविग्रहम् (पदम्) स्तुवन्ति। ओ३म् तद् विष्णोः परमम् पदम्। सूरयः दिवि इव आततम् चक्षुः सदा पश्यन्ति।

यह परम व्योम के स्वामी अतुल तेज वाले विष्णु का नित्य परमानन्दविग्रह पद है। वेद इसकी सदा स्तुति करते हुए कहते हैं कि विष्णु का वह परम पद है, जिसे देवगण नित्य मानो आकाश में नेत्र खोल कर देखते रहते हैं॥१९६-१९७॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः।
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणः॥१९८॥
सर्वे नीलाम्बुदश्यामाः सर्वे नीलाम्बुजेक्षणाः।
चारुप्रसन्नवदनाः पीतकौशेयवाससः॥१९९॥
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः।
सर्वे च नूत्नवयसः कन्दर्पाधिकसुन्दराः॥२००॥

यत्र सर्वे पुरुषाः चतुर्भुजाः शंखचक्रगदापङ्कजधारिणः वैकुण्ठमूर्तयः। सर्वे नीलाम्बुदश्यामाः नीलाम्बुजेक्षणाः प्रसन्नवदनाः चारुपीतकौशेयवाससः, किरीटिनः कुण्डलिनः हारिणः वनमालिनः। सर्वे नूत्नवयसः कन्दर्पाधिकसुन्दराः वसन्ति।

यहाँ रहने वाले सभी पुरुष चार भुजाओं वाले, शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले, साक्षात् विष्णु की आकृति वाले, नीले मेघ के समान शरीर वाले, नीलकमल के समान नेत्र वाले, प्रसन्न मुख, सुन्दर पीले रेशमी वस्त्र धारण करने वाले, मुकुट, कुण्डल, हार और वनमालाएँ धारण किये हुए एवं सभी नवीन आयु वाले तथा कामदेव से भी अधिक सुन्दर हैं॥१९८-२००॥

रूपयौवनसम्पन्ना लक्ष्मीरूपा मनोहराः।
वसन्ति यत्र वै देव्यो नानाभूषणभूषिताः॥२०१॥

यत्र वै रूपयौवनसम्पन्नाः नानाभूषणभूषिताः मनोहराः लक्ष्मीरूपाः देव्यः वसन्ति।

यहाँ रूप-यौवन से सम्पन्न, अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत मनोहर लक्ष्मी जैसी रूप वाली देवियाँ रहती हैं॥२०१॥

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः।
सर्वर्तुकुसुमैर्भ्राजत् कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥२०२॥

विष्णुदेहोद्भवैर्दिव्यैर्मुमुक्षुगणसेवितैः

यत्र विष्णुदेहोद्भवैः दिव्यैः मुमुक्षुगणसेवितैः सर्वत्रऋतुकुसुमैः कामदुघैः द्रुमैः भ्राजत् मूर्तिमान् कैवल्यमिव नैःश्रेयसम् नाम वनम् (अस्ति)।

यहाँ भगवान् विष्णु के देह से उत्पन्न, मुमुक्षुओं के द्वारा सेवित, सभी ऋतुओं में फूलों वाले, ईप्सित फल देने वाले वृक्षों से दीप्त, मूर्तिमान् कैवल्य के समान नैःश्रेयस नामक वन हैं।।२०२।।

मन्दारकुन्दपुन्नागचम्पकाम्बुजपाटलैः
वकुलैः पारिजातैश्च सन्तानैर्हरिचन्दनैः। ।।२०३।।

मन्दारकुन्द-पुन्नाग-चम्पक-अम्बुज-पाटल-वकुल-पारिजात-हरिचन्दन-सन्तानैः सुशोभितं वनं अस्ति।

मन्दार, कुन्द, पुन्नाग, चम्पा, कमल, पाटल, वकुल (पौलश्री), पारिजात एवं हरिचन्दन के समूह से सुशोभित वन हैं।

देवव्रजाः सत्पनीका गायन्ति चरितानि च।।२०४।।
मङ्गलानि सुरम्याणि यत्र विष्णोर्महात्मनः।

यत्र सपत्नीकाः देवव्रजाः महात्मनः विष्णोः सुरम्याणि मङ्गलानि चरितानि गायन्ति।

यहाँ सपत्नीक देवगण महात्मा विष्णु के सुरम्य मङ्गलमय चरित्रों का गान करते रहते हैं।।२०४।।

पारावताः सारसाश्च कोकिला हंसबर्हिणौ।।२०५।।
गायन्ति वैष्णवीं गाथां मुकुन्दप्रतिमूर्तयः।
यत्र गच्छन्ति पापिष्ठाः खलाः पाखण्डिना जनाः।।२०६।।
तत्रैव भगवान् साक्षात् श्रिया सह जनार्दनः।
आस्ते विष्णुः स्वयं कर्ता स्वयं हर्ता स्वयं प्रभुः।।२०७।।

यत्र मुकुन्दप्रतिमूर्तयः कोकिलाः पारावताः सारसाः हंसबर्हिणौ च वैष्णवीम् गाथाम् गायन्ति। पाखण्डिनः पापिष्ठाः जनाः खलाः यत् न गच्छन्ति। तत्रैव स्वयम् कर्ता, स्वयम् हर्ता, स्वयम् प्रभुः साक्षात् भगवान् जनार्दनः विष्णुः श्रिया सह आस्ते।

जहाँ विष्णु की प्रतिमूर्ति कोकिल, कबूतर, सारस और हंस, मोर, वैष्णवी गाथाओं को गाते रहते हैं। जहाँ पाखण्डी दुष्ट पापी जन नहीं जाते। वहाँ पर स्वयं कर्ता एवं हर्ता प्रभु साक्षात् जनार्दन भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं।।२०५-२०७।।

वैकुण्ठाख्या पुरी चेयमयोध्या कथ्यते बुधैः।
विष्णुः स्वयं रामचन्द्रः साक्षात् ब्रह्म सनातनम्॥२०८॥
सैषा सीता स्वयं लक्ष्मीस्तस्या वेदवती सखी।
तथ्यं कर्तुं वचस्तस्याः पृथिव्यामवतारिता॥२०९॥

वैकुण्ठाख्या इयम् पुरी बुधैः अयोध्या कथ्यते। स्वयम् विष्णुः साक्षात् सनातनम् ब्रह्म रामचन्द्रः। सा एषा सीता स्वयम् लक्ष्मीः। तस्याः वेदवती सखी तस्याः वचः तथ्यम् कर्तुम् पृथिव्याम् अवतारिता।

वैकुण्ठ नाम की इस पुरी को ही ज्ञानी जन अयोध्या कहते हैं। साक्षात् सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु ही रामचन्द्र हैं। वह सीता ही साक्षात् लक्ष्मी है। उस (लक्ष्मी) की सखी वेदवती उनके वचनों को सत्य करने के लिए पृथ्वी पर सीता के रूप में अवतारित की गयी॥२०८-२०९॥

अयोनिसम्भवा भूमौ लक्ष्मणाख्यो धनुर्धरः।
अनन्तोऽनन्तमहिमा शङ्खचक्रान्वितौ करौ॥२१०॥
शत्रुघ्नो भरतश्चैव हनूमांश्च खगाधिपः।
एभिर्नीलाम्बुदश्यामो हरिः शार्ङ्गधनुर्धरः॥२११॥

भूमौ इयम् (सीता) अयोनिसम्भवा। अनन्तमहिमा अनन्तः धनुर्धरः लक्ष्मणाख्यः शंखचक्रान्वितौ करौ शत्रुघ्नः भरतः। खगाधिपः हनूमान् च एभिः वृतः शार्ङ्गधनुर्धरः नीलाम्बुदश्यामः हरिः (अस्ति)।

पृथ्वी पर यह सीता अयोनिजा है। अनन्त महिमा वाले भगवान् अनन्त अर्थात् शेषनाग धनुर्धर लक्ष्मण हैं। शंख-चक्र से युक्त दोनों हाथ वाले भरत और शत्रुघ्न हैं। गरुड़ हनुमान् हैं। इन सबसे घिरे हुए नीलकमल की तरह श्याम शरीर (रामचन्द्र) शार्ङ्ग नामक धनुष को धारण करने वाले भगवान् हरि हैं॥२१०-२११॥

द्विधा भूतः किम्पुरुषो हनुमत्प्रीयते स्वकाम्।
स्थापयित्वा तनुं विष्णुर्वैकुण्ठपुरमागतः॥२१२॥

किम्पुरुषः विष्णुः हनुमत्प्रीतये द्विधाभूतः स्वकाम् तनुम् वैकुण्ठम् स्थापयित्वा स्वयम् आगतः।

किम्पुरुष विष्णु ने दो रूप धारण कर अपने शरीर को वैकुण्ठ में रखकर हनुमान् जी की प्रसन्नता के लिए दूसरे रूप से स्वयं यहाँ आ गये॥२१२॥

वृन्दा नाम्न्यसुरी साध्वी विष्णुना रमिता पुरा।
तुलसीत्वं गता शापात् तेन वृन्दावनं वनम्॥२१३॥
यत्र वैकुण्ठलोके तद् विष्णोः प्रियतरं परम्।
तस्योपरिष्टात् कौमारो द्वात्रिंशत् कोटिमानतः॥२१४॥

पुरा वृन्दा नाम्नी असुरी साध्वी विष्णुना रमिता। शापात् सा तुलसीत्वम् गता। तेन वृन्दावनम् वनम्। यत्र वैकुण्ठलोके तद् वनम् विष्णोः परम् प्रियतरम् अस्ति। तस्योपरिष्टात् द्वात्रिंशत् कोटिमानतः कौमारः अस्ति।

प्राचीन काल में वृन्दा नाम की साध्वी अर्थात् पतिव्रता असुरी विष्णु के द्वारा परिरमित हुई। अतः (अपने पति के) शाप के कारण वह तुलसी बन गयी। उसी के नाम से वृन्दावन वन है। यह वन भगवान् विष्णु को वैकुण्ठ लोक से भी अधिक प्रिय है। उसके ऊपर बत्तीस करोड़ योजन की दूरी पर कौमार लोक है॥२१३-२१४॥

श्रीशार्ङ्गिपद्ममधुपः शिवपुत्रो महायशाः।
सेनाध्यक्ष(?क्षः) कार्तिकेयो यत्र ब्रह्माण्डरक्षकः॥२१५॥

यत्र महायशाः शिवपुत्रः श्रीशार्ङ्गिपद्ममधुपः सेनाध्यक्षः कार्तिकेयः ब्रह्माण्डरक्षकः अस्ति।

जहाँ महान् यशस्वी, विष्णु के चरणकमल के भ्रमर, सेनाध्यक्ष शिवपुत्र कार्तिकेय ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं॥२१५॥

ब्रह्माण्डभाण्डोदरवर्तितानि स्थानानि सर्वाण्यनुबन्धितानि।
येनापि ह्येतान्यनुचिन्तितानि स्युस्तस्य वैकुण्ठसुखप्रदानि॥२१६॥

इति श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रे भूरादिलोकवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

ब्रह्माण्डभाण्डोदरवर्तितानि सर्वाणि स्थानानि अनुबन्धितानि येनापि हि अनुचिन्तितानि तस्य वैकुण्ठसुखप्रदानि स्युः।

जिस किसी के द्वारा ब्रह्माण्डरूपी भाण्ड के उदर में स्थित सभी अनुबन्धों से युक्त इन स्थानों का अनुचिन्तन अर्थात् ध्यान किया जाता है, उसके लिए ये स्थान वैकुण्ठ का सुख प्रदान करने वाले होते हैं॥२१६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में 'भूरादि लोकवर्णन' नामक द्वितीय अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

तृतीयोऽध्यायः

गुणातीतकारणजलराशि-परव्योमनाथ-महापुरुष-लोकवर्णनम्

ब्राह्मणी उवाच—

अतः परतरं किञ्चित् अस्ति नास्तीति सुव्रतः (?सुव्रत)।
स्थानात् स्थानं महाभाग तन्मे कथय निश्चितम्॥१॥
तथ्यं पथ्यं भवद्वाक्यामृतं श्रुतिरसायनम्।
पीत्वा श्रुतिपुटे कान्त! तृप्तिर्मे नहि जायते॥२॥

हे सुव्रत! अतः स्थानात् परतमम् किञ्चित् स्थानम् अस्ति? हे महाभाग! तत् निश्चितम् मे कथय। हे कान्त! भवत् वाक्यामृतम् तथ्यम् पथ्यम् श्रुतिरसायनम् श्रुतिपुटे पीत्वा मे तृप्तिः न हि जायते।

ब्राह्मणी ने कहा—हे सुव्रत! इस स्थान से बढ़कर कोई स्थान है? या नहीं है? हे महाभाग! यह मुझे निश्चित रूप से बतलाइये। हे कान्त! आपके तथ्य, पथ्य और कर्णरसायनरूपी वाक्यामृत को कानों से सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥१-२॥

ब्राह्मण उवाच—

ईदृशान्यण्डजातानि सेश्वराणि बृहन्ति च।
महानन्तप्रसूतानि लोम्नि लोम्नि स्थितानि च॥३॥
महाविष्णोर्महाभागे कृष्णांशांशभवस्य च।
पुरैवासन् महाविष्णोर्मुखेभ्यस्तु सनातनाः॥४॥

ईदृशानि सेश्वराणि महा-अनन्तप्रसूतानि बृहन्ति अण्डजातानि कृष्णस्य लोम्नि-लोम्नि स्थितानि। महाभागे! कृष्ण-अंशांशभवस्य महाविष्णोः मुखेभ्यः पुरा एव सनातनाः—।

ब्राह्मण ने कहा—इस प्रकार के ईश्वर के साथ उत्पन्न होने वाले महा अनन्त प्रभु से उत्पन्न अण्डसमूहों की (श्रीकृष्ण के) रोम-रोम में स्थिति है। हे महाभागे! श्रीकृष्ण के अंश के अंश से महाविष्णु उत्पन्न होते हैं। एवं उनके मुखों से उत्पन्न सनातन—॥३-४॥

आपः कारणभूतास्तु तासु वासमकल्पयन्(?त्)।
महासङ्कर्षणश्चापि मुखात्तस्य महात्मनः॥५॥
तां शय्यां कल्पयित्वा तु सहस्त्रवदनो विभुः।
प्रसुप्तो भगवांस्तत्र शेषशायी जगद्गुरुः॥६॥

आपः कारणभूताः (हरिः) तासु वासम् अकल्पयत्। तस्य महात्मनः मुखात् महासंकर्षणः च अपि सहस्त्रवदनः विभुः। ताम् शय्याम् कल्पयित्वा तत्र भगवान् जगद्गुरुः शेषशायी प्रसुप्तः।

जल कारण है, अतः जल में ही विष्णु ने वास स्वीकार कर लिया। उस महापुरुष के मुख से हजार वदनों (फणों) वाले व्यापक संकर्षण प्रकट हुए। महाविष्णु ने उसी संकषर्णरूपी शेषनाग को अपनी शय्या बना लिया और उसी पर जगद्गुरु शेषशायी भगवान् सो गये॥५-६॥

स वै जाग्रत्स्वरूपोऽपि प्रसुप्त इव लक्ष्यते।
सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्॥७॥
सहस्त्रबाहुर्विश्वात्मा सहस्त्रांशुः स्वयं महान्।
कारुण्यजलमध्यस्थो विश्वेशः सर्वतोमुखः॥८॥

स वै सहस्त्रशीर्षा सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् पुरुषः सहस्त्रबाहुः विश्वात्मा सहस्त्रांशुः स्वयम् महान् विश्वेशः सर्वतोमुखः कारुण्यजलमध्यस्थः जाग्रत्-स्वरूपः अपि प्रसुप्तः इव लक्ष्यते।

वह महापुरुष हजारों शिर वाला है एवं उसके हजारों नेत्र एवं हजारों चरण हैं। वह महापुरुष हजारों भुजाओं से युक्त है। वह पुरुष विश्व की आत्मा है। वह सर्वतोमुख है। वह पुरुष महान् करुणा-जल के मध्य में स्थित जाग्रत् रूप होता हुआ भी सोता हुआ-सा प्रतीत होता है॥७-८॥

सर्वतः पाणिपादं तु(?दस्यु)सर्वतोऽक्षिशिरोधरः।
सर्वतः श्रवणघ्राणः सर्वदेवनमस्कृतः॥९॥
यस्यैकश्वासनिःश्वासकाले जीवन्ति देवताः।
श्वासप्रवेशकाले च विनश्यन्ति च ते पुनः॥१०॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या इन्द्रचन्द्रादयोऽपरे।

(सः) सर्वतः पाणिपादः तु, सर्वतः अक्षिशिरोधरः, सर्वतः श्रवणघ्राणः, सर्वदेवनमस्कृतः (अस्ति)। यस्य एकश्वासनिःश्वासकाले ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः इन्द्रचन्द्रादयः अपरे च देवताः जीवन्ति पुनः च श्वासप्रवेशकाले ते विनश्यन्ति।

वह महापुरुष सभी ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, गर्दन, कान, नाक वाला

है। सभी देव उसको प्रणाम करते हैं। उसकी एक श्वास के बाहर निकलने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, चन्द्रमा तथा अन्य देवताओं का जन्म होता है एवं श्वास के अन्दर जाने के समय उन देवताओं का विनाश हो जाता है।।९-१०।।

अचलः सर्वभूतानां बीजभूतः सनातनः।।११।।
पुरुषः पुरुषैर्नित्यमीड्यते ज्ञानदृष्टिभिः।
एष कारुण्यजलधावर्धोन्मीलितलोचनः।।१२।।

सर्वभूतानाम् अचलः सनातनः बीजभूतः एषः पुरुषः कारुण्यजलधौ अर्धोन्मीलितलोचनः ज्ञानदृष्टिभिः पुरुषैः नित्यम् ईड्यते।

सभी भूतों का अचल सनातन बीजभूत यह पुरुष करुणा के सागर में आधे खुले नेत्रों वाला होकर विराजमान है। ज्ञानी पुरुष इसकी ही नित्य स्तुति करते हैं।।११-१२।।

सर्वाधारो ब्रह्मशिलारूढो योगीश्वरेश्वरः।
तपश्चरति वै ध्यायन् गोविन्दचरणाम्बुजम्।।१३।।
वामपार्श्वगता तस्य राधिका देहसम्भवा।
महालक्ष्मी रत्नदण्डं व्यजनं परिगृह्य वै।।१४।।
वीजयन्ती परिचरेदर्धोन्मीलितलोचना।
ध्यायमानस्य गोविन्दं लोमहर्षो व्यजायत।।१५।।

ब्रह्मशिलारूढः सर्वाधारः योगीश्वरेश्वरः गोविन्दचरण-अम्बुजम् ध्यायन् वै तपः चरति। तस्य वामपार्श्वगता राधिकादेहसम्भवा अर्धोन्मीलितलोचना महा-लक्ष्मीः रत्नदण्डम् व्यजनम् परिगृह्य वीजयन्ती परिचरेत्। गोविन्दम् ध्यायमानस्य लोमहर्षः व्यजायत।

सबका आधार ब्रह्मशिला पर स्थित योगीश्वरों का भी आधार वह ईश्वर गोविन्द के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए वह तप करता रहता है। उसके वाम भाग में बैठकर राधिका की देह से उत्पन्न होने वाली, अधखुले नेत्रों वाली, महालक्ष्मी रत्नों से निर्मित बीजना लेकर हवा करती हुई उसकी सेवा करती है।।गोविन्द का ध्यान करने वाले उस महापुरुष के शरीर पर हर्ष के कारण रोमाञ्च होता रहता है।।१३-१५।।

प्रतिलोम्न्यभवंस्तत्र ब्रह्माण्डान्यन्तराणि वै।
कृपावलोकिनीं राधां सर्वभूतमहेश्वरीम्।।१६।।
चिन्तमानस्य नेत्रान्तादश्रुधारा व्यजायत।

यमुना वामतो जाता गङ्गा दक्षिणनेत्रतः॥१७॥
गोमती मध्यमान्नेत्रात् कारुण्यजलधिं च ताः।
पुनन्त्यः प्रविशन्तीव तमः सत्त्वरजोमयाः॥१८॥
कृष्णशुक्लरक्तवर्णाः कोटीन्दुसदृशप्रभाः।
प्रतिवक्त्रं जगज्जाता स्थूलरूपस्य विश्वतः॥१९॥

इति श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रे गुणातीतकारणजलराशिपरव्योमनाथ-
महापुरुष-लोकवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

तत्र प्रतिलोम्नि अन्तराणि ब्रह्माण्डानि अभवन्। सर्वभूतमहेश्वरीम् कृपावलोकिनीम् राधाम् चिन्तमानस्य (तस्य) नेत्रान्तात् अश्रुधारा व्यजायत। वामतः यमुना जाता। दक्षिणनेत्रतः गङ्गा। मध्यमात् च गोमती जाता।

कृष्णशुक्लरक्तवर्णाः सत्त्वरजस्तमोमयाः कोटीन्दुसदृशप्रभाः ताः (नद्यः) जगत् पुनन्त्यः स्थूलरूपस्य (विष्णोः) प्रतिवक्त्रम् कारुण्यजलधिम् विश्वतः प्रविशन्ति इव।

उस पुरुष के प्रत्येक रोम में ब्रह्माण्ड स्थित है। समस्त प्राणियों की स्वामिनी तथा कृपादृष्टिपूर्ण राधा का ध्यान करते हुए उस पुरुष के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। बाँयें नेत्र से यमुना, दाँयें नेत्र से गङ्गा और मध्य नेत्र से गोमती प्रवाहित हुई। कृष्ण शुक्ल रक्त वर्ण वाली सत्त्व रजस् तमोगुण युक्त कोटिचन्द्र के समान कान्तिमयी ये नदियाँ जगत् को पवित्र करती हुई, मानो स्थूलरूप विष्णु के प्रत्येक मुखरूप कारुण्य-समुद्र में चारों ओर से प्रवेश करती हैं॥१६-१९॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में 'गुणातीत कारण जलराशि परव्योम नाथ महापुरुष लोकवर्णन' नामक तृतीय अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

चतुर्थोऽध्यायः

गौरीलोकवर्णनम्

ब्राह्मण उवाच—

तत ऊर्ध्वं महादेव्या लोको भुवनपावनः।
चतुःषष्टिकोटिमितो योजनानां च सर्वतः॥१॥

तत ऊर्ध्वम् भुवनपावनः महादेव्या सर्वतः चतुःषष्टिकोटिमितः लोकः अस्ति।

ब्राह्मण ने कहा—इसके ऊपर महादेवी का भुवन को पवित्र करने वाला लोक है॥१॥

भैरवाणां भैरवीणां सिद्धानां सिद्धयोगिनाम्।
प्रमथानां मातृकाणां सुन्दरीणां वरानने॥२॥
वसतिस्तत्र वसति श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।

वरानने (इदम्) भैरवाणाम् भैरवीणाम् सिद्धानाम् सिद्धयोगिनाम् प्रमथानाम् मातृकाणाम् सुन्दरीणाम् वसतिः (अस्ति)। तत्र श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी वसति।

हे सुन्दर मुख वाली! यह भैरवों, भैरवियों, सिद्धों, सिद्धयोगियों, प्रमथों, मातृकाओं और सुन्दरियों का वासस्थान है। यहाँ श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं॥२॥

चक्रे रेखात्रययुते वेदद्वारोपशोभिते॥३॥
त्रिवृत्ते षोडशदले तथाष्टदलकर्णिके।
शक्रकोणयुते तद्वद् द्विदशारयुते प्रिये॥४॥
अष्टकोणे त्रिकोणान्तर्बिन्दुयुक्ते महाप्रभे।
अत्र सा परमेशानी सर्वदेवनमस्कृता॥५॥

प्रिये! रेखात्रयतुते वेदद्वारोपशोभिते त्रिवृत्ते षोडशदले अष्टदलकर्णिके शक्रकोणयुते द्विदशारयुते चक्रे अष्टकोणे त्रिकोणान्तःबिन्दुयुक्ते महाप्रभे अत्र सा सर्वदेवनमस्कृता परमेशानी वसति।

प्रिये! तीन रेखाओं से युक्त, शोभित तीन वृत्त वाले, षोडश दल वाले, अष्टदल कर्णिका वाले, चौदह कोणों से युक्त, बारह अरों वाले चक्र में;

अष्टकोण के मध्य त्रिकोण पर स्थित बिन्दु वाले अति प्रभावान् चक्र अर्थात् श्रीचक्र पर सभी देवों के द्वारा नमस्कृत की गयी स्वामिनी त्रिपुरसुन्दरी निवास करती हैं।।३-५।।

कोटिकोटिब्रह्मविष्णुशिवादिशीर्षभूषणैः ।
नीलरत्नादिभिर्नित्यं निधृत(?घृष्ट)चरणाम्बुजा।।६।।

कोटि-कोटिब्रह्मविष्णुशिवादिशीर्षभूषणैः नीलरत्नादिभिः नित्यम् निघृष्ट-चरणाम्बुजा।

कोटि-कोटि ब्रह्मा, शिव आदि के शिरोभूषणों में स्थित नीलरत्नादि से जिसके चरणाम्बुज सदा निघृष्ट रहते हैं।।६।।

पुरा त्रिभङ्गपुरतः कृष्णस्याव्यक्तजन्मनः।
अनादिनिधनस्याऽपि जातेयं त्रिपुरातनी।।७।।

पुरा अव्यक्तजन्मनः अनादिनिधनस्य त्रिभङ्गकृष्णस्य अपि पुरतः इयम् त्रिपुरातनी जाता।

प्राचीन काल में अव्यक्त जन्म वाले, आदि और अन्त से रहित होते हुए भी यह त्रिपुरातनी त्रिभङ्ग कृष्ण के पहले उत्पन्न हुई थी।।७।।

स्वयं कृष्णस्वरूपा च कृष्णाज्ञावशवर्तिनी।
चतुर्भुजा रक्तवर्णा रक्ताभरणभूषिता।।८।।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् बिभ्रती सिद्धवन्दिता।
शुक्लवर्णा त्वियं वाणी पीता वै भुवनेश्वरी।।९।।
रक्तवर्णा यदा देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
श्यामवर्णा कालिकेयं कृष्णा नीलसरस्वती।।१०।।

स्वयम् कृष्णस्वरूपा कृष्णाज्ञावशवर्तिनी, रक्तवर्णा रक्ताभरणभूषिता चतुर्भुजा पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् बिभ्रती सिद्धवन्दिता। शुक्लवर्णा तु इयम् वाणी, पीता वै भुवनेश्वरी, यदा रक्तवर्णा तदा श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी, श्यामवर्णा इयम् कालिका, कृष्णा च नीलसरस्वती।

यह परमेश्वर द्वारा अंकुश-धनुष-बाण को धारण करने वाली, सिद्धों के द्वारा वन्दित, चार भुजाओं वाली, रक्त वर्ण वाली स्वयं कृष्णस्वरूपा और कृष्ण की आज्ञाकारिणी है। जब यह शुक्ल वर्ण धारण करती है तो सरस्वती, पीत वर्ण वाली होती है तो भुवनेश्वरी है। जब रक्त वर्ण वाली होती है तो श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी होती है। श्याम वर्ण वाली होने पर कालिका तथा कृष्णवर्णा होने पर नीलसरस्वती अर्थात् तारा होती है।।८-१०।।

दुर्गाख्या या पराशक्तिः साक्षात्कृष्णस्वरूपिणी।
विपरीतरती राधाकृष्णयो रसरूपिणोः॥११॥
जातावेतौ महात्मानौ दुर्गारामौ जगत्प्रभुः।
या दुर्गा सैव गोविन्दो राधा सङ्कर्षणः पुमान्॥१२॥
राधया निर्मितावेतावाद्यावाद्यरसेन च।
तं समाकृष्य सा देवी महाविष्णूदरान्तरे॥१३॥
प्रवेशयामास नित्या सृष्ट्यर्थं जगतां पुरा।

या दुर्गाख्या पराशक्तिः सा साक्षात् कृष्णस्वरूपिणी। रसरूपिणोः राधाकृष्णयोः विपरीतरतौ एतौ महात्मानौ दुर्गारामौ जातौ। या दुर्गा सा एव जगत् प्रभुः गोविन्दः, राधा सङ्कर्षणः पुमान्। एतौ आद्यौ आद्यरसेन राधया निर्मितौ। सा नित्या देवी पुरा तम् समाकृष्य जगताम् सृष्टि-अर्थम् महाविष्णु उदरान्तरे प्रवेशयामास।

जो दुर्गा नाम से विख्यात परा शक्ति है, वह साक्षात् कृष्णस्वरूपिणी है। रसरूप राधाकृष्ण की विपरीत रति के समय ये दोनों महात्मा दुर्गा और राम उत्पन्न हुए। जो दुर्गा हैं, वही जगत् के स्वामी गोविन्द हैं और राधा ही सङ्कर्षण (बलराम हैं, ये दोनों सर्वाद्य हैं)। राधाजी ने इन्हें आद्य रस से बनाया। जगत् की सृष्टि के उद्देश्य से उस नित्या देवी राधा ने उनको खींचकर श्री महाविष्णु के उदर में स्थापित कर दिया॥११-१३॥

तस्य नाभिगतः श्रीमान् कुण्डलित्वं समाश्रितः॥१४॥
सहस्रवदनो भूत्वा मुखरन्ध्राद् विनिर्गतः।
बिभर्ति स महाविष्णुर्ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥१५॥
प्रसूते सकलं विश्वं प्रलये संहरत्यसौ।

तस्य नाभिगतः श्रीमान् कुण्डलित्वम् समाश्रितः, सहस्रवदनः भूत्वा मुखरन्ध्रात् विनिर्गतः। स च महाविष्णुः अखिलानि ब्रह्माण्डानि बिभर्ति। असौ सकलम् विश्वम् प्रसूते प्रलये च संहरति।

उन महाविष्णु के नाभिस्थान में ये श्रीमान् कुण्डलीरूप में स्थित हुये और उन्हीं के मुखविवर से सहस्रवदन होकर बाहर आ गये। वही महाविष्णु अखिल ब्रह्माण्डों का पालन-पोषण करते हैं। वह सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करते हैं और प्रलयकाल में सबको अपने अन्दर समेट लेते हैं॥१४-१५॥

तस्य मध्यफणाचक्रे पूर्वगे चक्रमुत्तमम्॥१६॥
गौरीपुरमिति ख्यातं यत्र तिष्ठति सा शिवा।
या दुर्गा साऽपि लोकेऽस्मिन् स्थित्वा त्रिपुरसुन्दरी॥१७॥

तस्य पूर्वगे फणामध्यचक्रे गौरीपुरम् इति ख्यातम् उत्तमम् चक्रम् यत्र सा शिवा तिष्ठति। या दुर्गा सा अपि अस्मिन् लोके त्रिपुरसुन्दरी।

उस फण के मध्य चक्र में पूर्व की ओर गौरीपुर के रूप में प्रसिद्ध उत्तम चक्र है, जहाँ वह शिवा रहती हैं। जो दुर्गा हैं, वही इस लोक में त्रिपुरसुन्दरी हैं॥१६-१७॥

स्थितिं सृष्टिं विनाशं च कुरुते सहितेश्वरा।

सहितेश्वरा स्थितिम् सृष्टिम् विनाशम् च कुरुते।

वह ईश्वर के साथ मिलकर जगत् की सृष्टि, स्थिति और विनाश करती हैं।

तस्योर्ध्वं(?र्ध्वे) च प्रदेशे नु सर्वदेवस्वरूपिणी॥१८॥
समुद्रमथने पूर्वं यं धृत्वा पुरुषोत्तमम्।
तं रूपं बिभ्रती राधा जगदानन्दकारिणी॥१९॥
दुर्गादिसर्वशक्तिभिरावृता परमेश्वरी।
षट्कोणोपरि बिन्दुस्था तदष्टदलचिह्निते॥२०॥
चतुर्द्वारयुते स्थाने चतुरस्रविराजिते।
तोरणोदातपत्रादिचामरध्वजचिह्निते ॥२१॥
चन्द्रातपयुते रत्नवेदिकोपरि मण्डपे।
सदाशिवमहाप्रेतसिंहासनविराजिते ॥२२॥

तस्य ऊर्ध्वे प्रदेशे सर्वदेवस्वरूपिणी जगदानन्दकारिणी दुर्गादिसर्वशक्तिभिः आवृता परमेश्वरी राधा पुरुषोत्तमम् पूर्वं समुद्रमथने यम् रूपम् धृत्वा तम् रूपम् बिभ्रती षट्कोणोपरि बिन्दुस्था तद् अष्टदलचिह्निता चतुरस्रविराजिते चतुर्द्वारयुते तोरणोदात्तपत्रादिचामरध्वजचिह्निते चन्द्रातपयुते रत्नवेदिकोपरि मण्डपे महाप्रेतसिंहासन-सदाशिवविराजिते—

उसके ऊपर भाग में सभी देवताओं के स्वरूप को धारण करने वाली, जगत् को आनन्द देने वाली, दुर्गा आदि सभी शक्तियों से घिरी हुई परमेश्वरी राधा उस रूप को धारण करती हैं, जिसे भगवान् पुरुषोत्तम ने समुद्रमन्थन के समय धारण किया था। वे षट्कोण के ऊपर स्थित बिन्दु पर विराजती हैं। वह अष्टदल कमल से चिह्नित है। रत्नवेदिका के ऊपर दिव्य मण्डप में जिसके चारों द्वारों पर तोरण, उपरिवर्त्ती छत्र, चामर, ध्वज, माला आदि के चिह्न अंकित हैं। धवल चँदोवे से युक्त सदाशिव नामक महाप्रेतरूपी सिंहासन पर विराजमान—॥१८-२२॥

रत्नप्राकारपरिखादुग्धाम्बुधिमध्ये(?ग्धाब्धौ)विराजते ।
पुण्यकदम्बविपिने सदामोदितदिङ्मुखे॥२३॥
कल्पवृक्षवनाकीर्णवटच्छायासुशोभिते ।
चक्रराजे महादेवी राधिका परमेश्वरी॥२४॥

रत्नप्राकारपरिखादुग्धाब्धौ पुण्यकदम्बविपिने सदा आमोदितदिङ्मुखे कल्पवृक्षवनाकीर्णवटच्छायासुशोभिते षट्कोणे चक्रराजे महादेवी परमेश्वरी राधिका विराजते।

रत्न की प्राकार (चारदीवारों) एवं परिखा (खाई) वाले दुग्ध के समुद्र में विराजमान हैं। पुण्य कदम्बवन में सर्वदा प्रकाशित दिशाओं वाले कल्पवृक्ष के विस्तृत वन में वट की छाया से सुशोभित षट्कोणयुक्त चक्रराज पर महादेवी परमेश्वरी श्रीराधा शोभायमान हैं।।२३-२४।।

षट्कोणे भ्रातरस्तत्र सेवातत्परमानसाः।
अष्टपत्रेऽप्यष्टगोपीः(?प्यो) याः कृष्णप्राणवल्लभाः॥२५॥
सुदामाद्या द्वारदेशे प्रान्ते गोपी स्थिता पुनः।
सर्वशास्त्रेषु तन्त्रेषु गोपिता गोपवासिनी॥२६॥

तत्र षट्कोणे सेवातत्परमानसाः भ्रातरः (सन्ति)। अष्टपत्रे अपि याः कृष्णप्राणवल्लभाः अष्टगोप्यः (ताः सन्ति)। द्वारदेशे सुदामाद्याः, प्रान्ते गोपवासिनी सर्वशास्त्रेषु तन्त्रेषु च गोपिता गोपी स्थिता।

वहाँ गोपवासिनी श्रीराधा की सेवा में तत्पर मन वाले भाई हैं। अष्टपत्र पर श्रीकृष्ण की प्राणवल्लभा अष्ट गोपियाँ हैं। द्वारभाग में सुदामा आदि गोप हैं तथा उसके प्रान्तभाग में पुनः गोपियाँ स्थित हैं। यह गोपवासिनी श्रीराधा सभी शास्त्रों और तन्त्रों में छिपी हुई हैं अर्थात् शास्त्रों एवं तन्त्रों ने इन्हें प्रकाशित नहीं किया है।।२५-२६।।

रहस्यं तस्य वक्ष्यामि शृणु देवि वरानने।
मथने जलधेः पूर्वं मोहिता देवतागणाः॥२७॥
यक्षराक्षगन्धर्वा असुरोरगभूमिजाः।
ज्ञानहीने ततस्तस्मिन् मोहिनी विष्णुरूपिणी॥२८॥
विष्णुश्च भगवाँस्तत्र रसरूपे निमज्जतुः(?निमज्ज्य च)।
मनसैवं च कृतवान् दधिदुग्धसमन्विते॥२९॥

देवि वरानने! तस्य रहस्यम् वक्ष्यामि, शृणु। जलधेः मथने पूर्वम् यक्ष-राक्षसगन्धर्वाः असुर-उरगभूमिजाः देवतागणाः मोहिताः। ततः तस्मिन् ज्ञानहीने

विष्णुस्वरूपिणी मोहिनी भगवान् विष्णुः च तत्र दधिदुग्धसमन्विते रसरूपे निमज्ज्य च मनसा एवम् कृतवान्।

हे देवि! सुमुखि! उसका रहस्य बतलाऊँगा, सुनो—समुद्र-मन्थन के समय यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, असुर, सर्प, भूमि से उत्पन्न होने वाले तथा सभी देवतागण मोहित हो गये। इसके बाद उन सबके ज्ञानहीन हो जाने पर विष्णुस्वरूपिणी मोहिनी और भगवान् विष्णु दधि-दुग्ध से समन्वित रसरूप सागर में डूबकर मन से ऐसा किया।।२७-२९।।

देशे गोगोपगोपीभिः सेविते गिरिकन्दरे।
कदम्बव(?ट)वृक्षादिचिह्निते तटिनीतटे।।३०।।
एकोऽहं च द्विधा भूत्वा क्रीडितव्यं स्थलान्तरे।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च सुरभ्यादिश्च गोव्रजाः।।३१।।
जायन्तां च भूमौ(?चावनौ) शीघ्रमिति तन्मनसि स्थितम्।

गिरिकन्दरे गोगोपगोपीभिः सेविते कदम्बवटवृक्षादिचिह्निते तटिनीतटे देशे एकोऽहम् द्विधा भूत्वा स्थलान्तरे क्रीडितव्यम् तत् मनसि स्थितम् सर्वे देवाः देव्यः च सुरभ्यादिः गोव्रजाः अवनौ शीघ्रम् जायन्ताम् इति।

गिरि गुफा में गायों, गोपों तथा गोपियों से सेवित कदम्ब-वट आदि वृक्षों से चिह्नित (यमुना) नदी के तटप्रान्त में, मैं एक हूँ, दो होकर स्थलान्तर में क्रीड़ा करनी चाहिऐ—यह विचार कर अपने मन में स्थित देवों, देवियों तथा सुरभि आदि गोसमूहों को आदेश दिया कि पृथ्वी पर जाकर शीघ्र उत्पन्न हो जाओ।।३०-३१।।

चिरं तप्त्वा तपश्चात्र गिरिराजो हिमालयः।।३२।।
सहितो मेनया शोकान्(?तीव्रं) वृषभानुत्वमागतः।
पुरा गौरीति या कन्या हरधेनुप्रतिश्रुता।।३३।।
नारदस्य महर्षेस्तु हरिता सा यतः पुनः।
सखीभिर्वनमध्ये तु शिवं सा मनसा गता।।३४।।
ततः प्रभृति तस्यैव पर्वतस्य महात्मनः।
कन्यैका विष्णवे देया ततो यास्याम्यहं भुवि।।३५।।

अत्र गिरिराजो हिमालयः मेनया सहितः चिरम् तीव्रम् तपः तप्त्वा वृषभानुत्वम् आगतः। पुरा या कन्या गौरी इति हरधेनुप्रतिश्रुता यतः सा महर्षेः नारदस्य सखीभिः वनमध्ये हरिता पुनः सा मनसा शिवम् गता। ततः प्रभृति तस्य महात्मनः पर्वतस्य एका कन्या विष्णवे देया ततः अहम् भुवि यास्यामि।

यहाँ गिरिराज हिमालय ने बहुत काल तक मेना के साथ उग्र तप किया। वे पृथ्वी पर वृषभानु के रूप में उत्पन्न हो गये। प्राचीन काल में गौरी नाम की जो कन्या शिव की स्त्री के रूप में अपने को सङ्कल्पित कर ली थी तथा महर्षि नारद के कारण सखियों के साथ वन में तपस्या करने लगी, मन से शिव के पास चली गयी अर्थात् शिव को ही अपना बनाया। तभी से उस महात्मा हिमालय ने निश्चय किया कि मुझे अपनी कन्या विष्णु को देनी है; अतः मैं पृथ्वी पर जाकर जन्म लूँगा।।३२-३५।।

विष्णुमायां ततो ध्यात्वा तपस्तेपे सुदुष्करम्।
ततः प्रसन्ना सा देवी मोहिनी विष्णुरूपिणी।।३६।।
उवाच सुचिरं प्रीता कन्यात्वं तव यास्यति।
पृथिव्यां जातस्य भवने वृषभाह्वयस्य ते।।३७।।

ततः विष्णुमायाम् ध्यात्वा स सुचिरम् सुदुष्करम् तपः तेपे। ततः विष्णुरूपिणी सा मोहिनी देवी प्रसन्ना ते प्रीता उवाच। पृथिव्याम् जातस्य वृषभाह्वयस्य तव भवने कन्यात्वम् यास्यति।

तब विष्णुमाया का ध्यान करते हुए हिमालय ने चिरकाल तक दुष्कर तप किया। उस विष्णुरूपिणी मोहिनी देवी ने प्रसन्न होकर हिमालय से कहा—मैं तुम से प्रसन्न हूँ, पृथ्वी पर वृषभानु नाम से उत्पन्न होने वाले तुम्हारे घर कन्या के रूप में (यह) जन्म लेगी।।३६-३७।।

इयं या मोहिनीशक्तिः राधिकात्वं प्रयास्यति।
विष्णवे वासुदेवाय तां दत्वा सुकृती भव।।३८।।
ततोऽप्यन्तर्हिता देवी सोऽपि सद्योऽद्रिसत्तमः।
योगेन पृथ्व्यामगमद् वृषभानुत्वमागतः।।३९।।

इयम् या मोहिनी शक्तिः राधिकात्वम् प्रयास्यति ताम् विष्णवे वासुदेवाय दत्त्वा सुकृती भव। ततः सा देवी अन्तर्हिता। सः अद्रिसत्तमः सद्यः योगेन पृथ्व्याम् अगमत् वृषभानुत्वम् आगतः।

यह जो मोहिनी शक्ति है, वह राधिका के रूप में अवतरित होगी। उसे तुम वासुदेव विष्णु (श्रीकृष्ण) को देकर कृतार्थ हो जाना। इसके बाद वह देवी अन्तर्हित हो गयी और वह गिरिराज भी शीघ्र योगबल से पृथ्वी पर वृषभानु रूप में उत्पन्न हो गये।।३८-३९।।

गौरी लोकपुरस्तात् तु योगिनीगणवेष्टिता।
तिष्ठत्यखिलभूतानां जननी सकलेश्वरी।।४०।।

कदाचित् जलदश्यामा कदाचित् कनकप्रभा।
चतुर्भुजा शङ्खचक्रशूलमुद्गरधारिणी॥४१॥

गौरी लोकपुरस्तात् योगिनीगणवेष्टिता अखिलभूतानाम् जननी सकलेश्वरी तिष्ठति। सा कदाचित् जलदश्यामा कदाचित् कनकप्रभा चतुर्भुजा शंखचक्र-शूलमुद्गरधारिणी अस्ति।

गौरी लोगों के सामने योगिनियों के गण से घिरी हुई सम्पूर्ण भूतों की जननी सकलेश्वरी होकर स्थित है। वह कभी मेघों की तरह श्यामा, कभी स्वर्ण की प्रभा की तरह दिखाई देती है। उनकी चार भुजाएं हैं। शंख, चक्र, शूल और मुद्गर को धारण की हुई हैं॥४०-४१॥

तत्समीपे महादेवी कालिका कालरूपिणी।
चक्रस्य दक्षिणे भागे श्रीमन्नीलसरस्वती॥४२॥
उग्रापत्तारकार(?कत्वा)त्वात् साप्युग्रतारेति कीर्तिता।
सा चैवे(?वै)कजटा देवी सा च नीलाम्बुदप्रभा॥४३॥

तत्समीपे कालरूपिणी महादेवी कालिका (अस्ति)। चक्रस्य दक्षिणे भागे श्रीमन्नीलसरस्वती उग्र-आपत् तारकत्वात् सा अपि उग्रतारा इति कीर्तिता। सा देवी एकजटा एव, सा च नीलाम्बुदप्रभा।

उनके समीप में कालरूपिणी महादेवी कालिका है। चक्र के दक्षिण भाग में श्रीमन्नीलसरस्वती स्थित है। उग्र आपत्तियों से तारने अर्थात् पार करने के कारण इन्हें उग्रतारा के नाम से जाना जाता है। वही एकजटा और वही नीलाम्बुदप्रभा (=नील मेघों के वर्ण वाली) देवी है॥४२-४३॥

सा वै नीलपताका च नानारूपा महोदया।
सैवात्र त्रिपुरा ख्याता सैवेयं भुवनेश्वरी॥४४॥
शुक्लवर्णा च या देवी पश्चिमस्यां दिशि स्थिता।
शुद्धसत्त्वमयी नित्या ब्रह्मवाग्वादिनी परा॥४५॥

सा वै नीलपताका नानारूपा महोदया। सा एव अत्र त्रिपुरा ख्याता। सा एव इयम् भुवनेश्वरी। पश्चिमस्याम् दिशि स्थिता या शुक्लवर्णा देवी सा शुद्ध-सत्त्वमयी परा ब्रह्मवाग्वादिनी नित्या (अस्ति)।

वह नीलपताका देवी अनेक रूपों वाली तथा महोदया है। वही यहाँ त्रिपुरा नाम से विख्यात है। वही यह भुवनेश्वरी देवी हैं। पश्चिम दिशा में स्थित जो शुक्ल वर्ण की देवी हैं, वही शुद्ध सत्त्वगुण से युक्त परा ब्रह्म-वाग्वादिनी नित्या (सरस्वती) है॥४४-४५॥

गौरवर्णा च या देवी क्षीरोदमथनोत्थिता।
सैव दक्षिणदिग्भागे श्रीः श्रीविष्णोः प्रिया परा॥४६॥
पीतवर्णा च या देवी श्रीमत्त्रिभुवनेश्वरी।

क्षीरोदमथनोत्थिता गौरवर्णा या देवी दक्षिणदिग्भागे स्थिता सा श्रीविष्णोः प्रिया परा श्रीः (अस्ति) या देवी पीतवर्णा सा श्रीमत् त्रिभुवनेश्वरी अस्ति।

क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न होने वाली गौरवर्ण की जो देवी हैं, वह दक्षिणदिग्भाग में स्थित भगवान् विष्णु की प्रियतमा परा लक्ष्मी हैं। जो देवी पीतवर्ण की हैं, वही श्रीमती त्रिभुवनेश्वरी हैं॥४६॥

कदा मुक्तिं ददासीति विष्णुना कथिता यदा॥४७॥
तदा क्रुद्धा भगवती शीर्षं चिच्छेद सा स्वकम्।
कम्पयामास देवस्य परिवारान् सुविस्मितान्॥४८॥
करे गृहीत्वा मुण्डं स्वं रक्ता रक्तकलेवरा।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्गोविन्दं पुरुषोत्तमम्॥४९॥

यदा विष्णुना कथिता कदा मुक्तिम् ददासि? तदा सा देवी भगवती क्रुद्धा स्वकम् शीर्षम् चिच्छेद। देवस्य सुविस्मितान् परिवारान् कम्पयामास। रक्ता रक्तकलेवरा स्वम् मुण्डम् करे गृहीत्वा पुरुषोत्तमम् गोविन्दम् इष्टाभिः वाग्भिः तुष्टाव।

जब भगवान् विष्णु ने यह कहा कि कब मुझे मुक्ति दोगी? तब वह भगवती देवी क्रुद्ध हो गयी और उसने अपना मस्तक धड़ से अलग कर दिया। यह देखकर देव के परिवारीजन विस्मित होकर काँपने लगे। रक्तवर्ण की उस रक्ता देवी ने अपना मुण्ड हाथ में लेकर पुरुषोत्तम गोविन्द की प्रिय वचनों से स्तुति की॥४७-४९॥

जगतां जननी नित्या सर्वेषामीश्वरी सदा।
जय देव महेशान कथमेवं त्वयोच्यते॥५०॥
ततस्तामाह भगवान् लज्जातोयधिमज्जितः।
मातर्मातः प्रसीद त्वं मातर्मातः क्षमस्व माम्॥५१॥

सर्वेषाम् ईश्वरी नित्या सदा जगताम् जननी (प्राह) देव! महेशान! जय। त्वया एवं कथम् उच्यते। ततः लज्जातोयधिमज्जितः भगवान् ताम् आह—मातः मातः! त्वम् प्रसीद, मातः! मातः! माम् क्षमस्व।

जगत् की जननी नित्या तथा सबकी स्वामिनी ने कहा—हे देव! हे महेशान! तुम्हारी जय हो। तुमने ऐसा क्यों कहा। तब लज्जा के सागर में डूबे

भगवान् ने उनसे कहा—माँ, माँ! तुम प्रसन्न हो जाओ। माँ! माँ! मुझे क्षमा कर दो॥५०-५१॥

सदा मोक्षप्रदाऽसि त्वं सिद्धासि भुवनेश्वरि।
ये त्वदीयपदाम्भोजमकरन्दविनोदिनः॥५२॥
तेभ्यः सदाऽद्यप्रभृतिभोगस्वर्गापवर्गदा।
भव देवि महेशानि सत्यं सत्यं न संशयः॥५३॥
इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः स्कन्धे तच्छिर उत्तमम्।
कोमलेन करेणैव करुणावरुणालयः॥५४॥

हे भुवनेश्वरि! त्वम् सदा मोक्षप्रदा असि सिद्धा असि। ये त्वदीय-पदाम्भोजमकरन्दविनोदिनः तेभ्यः सदा अद्यप्रभृति भोगस्वर्गापवर्गदा भव। देवि! महेशानि! सत्यम् सत्यम् न संशयः। इति उक्त्वा भगवान् करुणावरुणालयः कृष्णः तत् उत्तमम् शिरः कोमलेन करेण एव स्कन्धे (धृतवान्)।

हे देवि! तुम सदा मोक्ष देने वाली हो। हे देवि भुवनेश्वरि! तुम सिद्धा हो। जो लोग तुम्हारे चरणाविन्द के मकरन्द का पान करने वाले हैं उन्हें तुम आज से भोग-स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाली होओ। हे देवि महेशानि! यह मेरा वचन सत्य हो, सत्य है; इसमें संशय नहीं है। यह कहकर करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका उत्तम शिर अपने कोमल हाथों से स्कन्ध (कन्धे) पर रखा॥५२-५४॥

तदवधि विधिविष्ण्वीशानदेवेन्द्रमौलि-
स्फुरदमलकिरीटाराध्यपादारविन्दा।
त्रिभुवनजननीयं शुद्धसत्त्वा प्रशस्ता
प्रविलसितसमस्ता गीयते छिन्नमस्ता॥५५॥

तद् अवधि विधिविष्णु-ईशानदेवेन्द्रमौलिस्फुरद्-अमलकिरीट-आराध्य-पादारविन्दा इयम् त्रिभुवनजननी शुद्धसत्त्वा प्रशस्ता प्रविलसितसमस्ता छिन्नमस्ता (इति) गीयते।

उस समय से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवेन्द्र आदि के मौलि पर चमकते हुए स्वच्छ मुकुटों से जिसके पादारविन्द की आराधना हो रही है, वह तीनों भुवनों की जननी शुद्ध सत्त्व से सम्पन्न सभी को आनन्द प्रदान करने वाली देवी छिन्नमस्ता कही जाती हैं॥५५॥

यस्या एव पदाम्भोजममन्दानन्दमानसाः।
मुनयः साधुसन्धाना निवृत्तिं प्रापुरुत्तमाम्॥५६॥

वदन्ति देवताः सर्वाः प्रणयाविष्टचेतसः।
सत्यं सत्यप्रदां शश्वद् भुक्तिमुक्तिप्रदां हि ताम्॥५७॥

अमन्द-आनन्दमानसा यस्या एव पदाम्भोजम् साधुसन्धाना उत्तमाम् निवृत्तिम् प्रापुः। प्रणयाविष्टचेतसः सर्वाः देवताः ताम् शश्वद् सत्यम् सत्यप्रदाम् भुक्तिमुक्तिप्रदाम् हि वदन्ति।

अमन्द आनन्द से युक्त मन वाले मुनिजन जिसके चरणाम्भोजों में साधु अर्थात् उत्तम सन्धान करते हुये निवृत्ति अर्थात् परम आनन्द को प्राप्त करते हैं। प्रेमाविष्ट चित्त वाली सभी देवतायें उसे सत्य, सत्य प्रदान करने वाली तथा भुक्ति और मुक्ति देने वाली कहती हैं॥५६-५७॥

उत्तरे चक्रराजस्य योगिनीगणवेष्टिता।
डाकिनीलाकिनीभ्यां च सेविता सिद्धियोगिनी॥५८॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे गौरीलोकवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

(सा छिन्नमस्ता) सिद्धियोगिनी चक्रराजस्य उत्तरे योगिनीगणवेष्टिता डाकिनीलाकिनीभ्याम् च सेविता (राजते)।

(वह छिन्नमस्ता) सिद्धियोगिनी चक्रराज के उत्तर में योगिनीगणों से घिरी हुई डाकिनी-लाकिनी आदि से सेवित निवास करती हैं॥५८॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में गौरीलोकवर्णन नामक चतुर्थ अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

पञ्चमोऽध्यायः

शिवलोककथने काशीमाहात्म्यपाखण्डिकथनम्

नारद उवाच—

एवमेवं समाकर्ण्य ब्राह्मणी ब्रह्मवित्तमा।
प्रणयाविष्टचितेन पुनः पप्रच्छ सादरम्॥१॥

ब्रह्मवित्तमा ब्राह्मणी एवम् समाकर्ण्य प्रणयाविष्टचितेन पुनः सादरम् पप्रच्छ।

नारद जी बोले—इस प्रकार सुनकर ब्रह्म को जानने वाली वह ब्राह्मणी प्रेम से आविष्टचित्त वाली होकर पुनः आदर के साथ पूछने लगी॥१॥

ब्राह्मणी उवाच—

अतः परोऽस्ति को लोकः कथ्यतां तथ्यभाषितम्।
पथ्यं समस्तलोकानां शोकापहरणं प्रिय॥२॥

हे प्रिय! अतः परः कः लोकः अस्ति तथ्यभाषितम् समस्तलोकानाम् पथ्यम् शोकापहरणम् कथ्यताम्।

ब्राह्मणी ने कहा—हे प्रिय! इसके आगे कौन-सा लोक है? सत्य भाषण करने वाले का, शोक तथा अपहरण करने वाले समस्त लोकों के लिए हितकारक (वचन) कहिये॥२॥

ब्राह्मण उवाच—

गौरीलोकः प्रिये प्रोक्तः शिवलोकं शृणु प्रिये।
तन्मध्ये बिन्दुचक्रे च बिन्दुगर्भः सदाशिवः॥३॥
लिङ्गरूपी कृष्णलिङ्गान्निर्गतो भगवान् पुरा।
आत्मानमतिकामार्त राधाविरहबाधया॥४॥
महालिङ्गमुज्जहार स्वकीयं रभसा प्रभुः।
चिक्षेप च पुनर्लिङ्गमभवत् तस्य धीमतः॥५॥

प्रिये! गौरीलोकः प्रोक्तः। शिवलोकम् शृणु—तन्मध्ये बिन्दुचक्रे बिन्दुगर्भः सदाशिवः लिङ्गरूपी (वर्तते)। पुरा भगवान् कृष्णलिङ्गात् निर्गतः। राधाविरह-बाधया आत्मानम् अतिकामार्त्तम् (अनुभूय) प्रभुः रभसा स्वकीयम् महालिङ्गम् उज्जहार चिक्षेप च। तस्य धीमतः पुनः लिङ्गम् अभवत्।

हे प्रिये! गौरीलोक का मैंने वर्णन कर दिया। अब शिवलोक का वर्णन करता हूँ, सुनो—इस शिवलोक के मध्यस्थ बिन्दुचक्र में बिन्दु को धारण करने वाले सदाशिव लिङ्गरूप में विराजते हैं। प्राचीन काल में कृष्ण के लिङ्ग से भगवान् शिवरूप में प्रकट हुए थे। एक बार राधा के विरह से पीड़ित श्रीकृष्ण ने अति कामपीड़ित होकर अपने महालिङ्ग को तेजी के साथ उखाड़ कर फेंक दिया। उन बुद्धिमान् महाप्रभु के (शरीर में) पुनः दूसरा लिङ्ग उत्पन्न हो गया॥३-५॥

पुनस्तद्वत् समुद्धृत्य चिक्षेप च जगद्गुरुः।
एवं यत् पञ्चधा लिङ्गं क्षिप्तवान् परमेश्वरः॥६॥
अविनष्टं स्वलिङ्गं तु दृष्ट्वा तद् विरराम वै।
तल्लिङ्गं पञ्चधा तस्य व्याप्तं लोकं महाप्रभम्॥७॥

जगद्गुरुः पुनः तद्वत् समुद्धृत्य चिक्षेप। एवम् परमेश्वरः यत् लिङ्गम् पञ्चधा क्षिप्तवान् तत् स्वलिङ्गम् अविनष्टम् दृष्ट्वा विरराम। तस्य तत् महाप्रभम् लिङ्गम् लोकम् पञ्चधा व्याप्तम्।

जगद्गुरु कृष्ण ने पुनः उसी प्रकार लिङ्ग को उखाड़ कर फेंक दिया। इस तरह परमेश्वर ने पाँच बार लिङ्ग को फेंका; किन्तु अपने लिङ्ग को अविनष्ट देखकर वे रुक गये। उनके उस महाप्रभावान् लिङ्ग ने समस्त लोकों को पाँच रूपों से व्याप्त कर लिया॥६-७॥

ज्योतिर्मयवपुर्मात्रमनन्तोर्ध्वाध एव च।
स कदाचिन्निराकारः साकारश्च क्वचिद् भवेत्॥८॥
साकारः पञ्चवदनो दशबाहुस्त्रिशूलधृक्।
व्याघ्रचर्मधरो नित्यं त्रिनेत्रः स्फटिकप्रभः॥९॥

ज्योतिर्मयवपुर्मात्रम् अधः ऊर्ध्वः अनन्तः एव। स कदाचित् निराकारः क्वचिद् साकारः भवेत्। साकारः पञ्चवदनः दशबाहुः त्रिशूलधृक् व्याघ्रचर्मधरः त्रिनेत्रः नित्यम् स्फटिकप्रभः (आसीत्)।

मात्र ज्योतिर्मय शरीर वाला यह लिङ्ग नीचे और ऊपर अनन्त था। वह कभी निराकार और कभी साकार प्रतीत होता था। साकार रूप में नित्य वह पञ्चमुख, दशबाहु, त्रिनेत्र-त्रिशूलधारी, व्याघ्रचर्म को धारण करने वाला स्फटिक की प्रभा से युक्त था॥८-९॥

सूक्ष्मं लिङ्गं पञ्चरूपं पञ्चभूतमयं शिवम्।
पञ्चधा तन्महादेवी सेवते पञ्चमी परा॥१०॥

पञ्चभूतमयम् पञ्चरूपम् सूक्ष्मम् शिवम् लिङ्गम् परा पञ्चमी महादेवी पञ्चधा सेवते।

पञ्चभूतों के पाँच रूपों वाले उस सूक्ष्म शिवलिङ्ग का वह परा पञ्चमी महादेवी पाँच प्रकार से भोग करती है।।१०।।

वर्धमानं तु तद् दृष्ट्वा देवी त्रिपुरसुन्दरी।
योनिभूता पराशक्तिर्लिङ्गमावृत्य शोभना।।११।।
आनन्दरूपा सा नित्या ब्रह्मज्योतिःस्वरूपिणी।
एवं भावं गता सिद्धा ज्ञानविज्ञानरूपिणी।।१२।।

पराशक्तिः देवी त्रिपुरसुन्दरी तद् वर्धमानम् दृष्ट्वा योनिभूता लिङ्गं आवृत्य सा शोभना नित्या आनन्दरूपा ब्रह्मज्योतिःस्वरूपिणी ज्ञानविज्ञानरूपिणी एवम् भावम् सिद्धा गता।

परशक्ति देवी त्रिपुरसुन्दरी ने उस लिङ्ग को बढ़ता हुआ देखकर योनि-रूप धारण किया और शोभायमान, नित्या, आनन्दरूपा, सिद्धा एवं ज्ञान-विज्ञानरूप से युक्त ब्रह्मज्योतिरूपा उस योनि ने लिङ्ग को चारों ओर आवृत कर लिया।।११-१२।।

पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गं भावाभावविवर्जितम्।
तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं परमानन्दकन्दलम्।।१३।।
निर्विकारं निराकारं दुर्गमं सर्वयोगिनाम्।
दुर्दर्शं दुर्लभं योगिध्येयं सर्वनमस्कृतम्।।१४।।

भावाभावविवर्जितम् परमानन्दकन्दलम् तद् पुंप्रकृत्यात्मकम् लिङ्गम् परमम् सूक्ष्मम् ब्रह्म सर्वयोगिनाम् दुर्लभम् निर्विकारम् निराकारम् योगिध्येयम् सर्वनमस्कृतम्।

भाव और अभाव से रहित, परम आनन्दकन्द यह पुंप्रकृत्यात्मक लिङ्ग परमसूक्ष्म ब्रह्म है, जो सभी योगियों को दुर्गम, दुर्लभ, अत्यन्त कठिनाई से देखे जाने वाला, निर्विकार, निराकार, योगियों के लिए ध्यान करने योग्य एवं सब लोगों के द्वारा प्रणाम किया गया है।।१३-१४।।

यं सिद्धाः परमं ज्योतिर्वेदान्तार्थविशारदाः।
केचित् पुरुषमित्याहुः प्रकृतिं चापरे जनाः।।१५।।
केचित् शैवाः शिवं चैव विष्णुं चैव तथा परे।
जगत्कारणमेके वै शब्दयोनिं तथैव च।।१६।।

वेदान्त, अर्थविशारदाः सिद्धाः यम् परमम् ज्योतिः केचित् पुरुषम्, अपरे

जनाः च प्रकृतिम् आहुः। केचित् शैवाः शिवम् तथा अपरे विष्णुम् एके जगत्-कारणम् तथा अपरे शब्दयोनिम् आहुः।

वेदान्तार्थविशारद सिद्ध पुरुष जिसे परम ज्योति कहते हैं। कुछ विद्वान् उसे पुरुष तथा दूसरे लोग प्रकृति कहते हैं। कुछ शैव इसे शिव, कुछ विष्णु तथा कुछ जगत् का कारण ब्रह्मा तथा कुछ लोग इसे शब्दयोनि सरस्वती कहते हैं।।१५-१६।।

धर्ममेके ज्ञानमेके वदन्त्यन्ये परं पदम्।
तल्लिङ्गमध्ये यो बिन्दुस्तं कामं विद्धि भाविनी(?भामिनि)।।१७।।
विराड्देहो महाविष्णुर्जातो ब्रह्माण्डकोटिधृक्।
तेनैव सकलं सृष्टिमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः।।१८।।

एके धर्मम् एके ज्ञानम् अन्ये परम् पदम् वदन्ति। (भामिनि!) तत् लिङ्गमध्ये यः बिन्दुः तम् कामम् विद्धि। तस्माद् विराड्देहो कोटिब्रह्माण्डधृक् महाविष्णुः जातः। ब्रह्मवादिनः आहु यत् तेन सकलम् सृष्टम्।

उसे कुछ लोग धर्म, कोई ज्ञान तथा अन्य लोग परमपद कहते हैं। हे भामिनि! उस लिङ्ग के मध्य में जो बिन्दु है, उसे काम समझो। उसी से विराट् देह वाले करोड़ों ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले महाविष्णु उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मवादी कहते हैं कि उसी ने सबकी रचना की है।।१७-१८।।

गुह्यमेतत् प्रवक्ष्यामि सर्वलोकहितं परम्।
असुरैर्निर्जिते देवे मायारूपो जगत्प्रभुः।।१९।।
विभूतिधृग् जटाधारी अस्थिमालाविभूषणः।
संहाररूपी पाखण्डैरावृतो भूतरूपिभिः।।२०।।
शीघ्रं वरं ददात्येव परिणामे च नाशकम्।
वरलोभाच्च दैतेया शिवसेवां प्रचक्रिरे।।२१।।

एतत् सर्वलोकहितम् परम् गुह्यम् प्रवक्ष्यामि। असुरैः देवे निर्जिते मायारूपः जगत्प्रभुः विभूतिधृग्, जटाधारी, अस्थिमालाविभूषणः संहाररूपी भूतरूपिभिः पाखण्डैः आवृतः शीघ्रम् नाशकम् वरम् ददाति एव इति दैतेयाः वरलोभात् शिवसेवाम् प्रचक्रिरे।

सभी लोकों के हित की दृष्टि से इस परम गोपनीय रहस्य को कहता हूँ। सुनो—असुरों द्वारा देवों के पराजित हो जाने पर विभूति लिये हुए, जटाधारी, अस्थिमालाओं से भूषित, संहार शक्ति से युक्त, पाखण्डरूपी भूतों से घिरे हुए, मायारूपधारी, जगत् के प्रभु परिणाम में नाशवान् वरों को शीघ्र

प्रदान करते हैं—यह सोचकर दानवों ने वर के लोभ से शिवजी की सेवा करना प्रारम्भ किया।।१९-२१।।

तदैव विष्णुना शीघ्रं तस्य नाशं करोत्यसौ।
न नाशो वैष्णवस्येति मत्वा शिवं पुराऽसृजत्।।२२।।
दैत्यमध्येऽपि ये नित्यं विष्णुभक्ताः पुरातनाः।
अद्यापि तेषां संस्थानं विद्यते सृष्टिमण्डले।।२३।।

तदैव असौ विष्णुना तस्य शीघ्रम् नाशम् करोति। वैष्णवस्य न नाशो इति मत्वा पुरा शिवम् असृजत्। दैत्यमध्ये अपि ये पुरातनाः विष्णुभक्ताः तेषाम् अद्यापि सृष्टिमण्डले नित्यम् संस्थानम् विद्यते।

उसी समय यह जगत्प्रभु कृष्ण विष्णु के द्वारा उस दैत्य का नाश करते हैं। विष्णुभक्त का नाश न हो, इसलिए कृष्ण ने पूर्वकाल में शिव का सृजन किया। दैत्यों के मध्य में जो भी विष्णुभक्त हुए हैं, आज भी सृष्टिमण्डल में उनकी स्थिति नित्य विद्यमान है।।२२-२३।।

शिवसेवापरो लोकः क्षणं सुखमवाप्स्यति।
पश्चाच्च दुःखजलधौ समूलेन निमज्जति।।२४।।
धर्मलोपप्रवर्तेव शिव एव प्रगीयते।
कलिकाले विशेषेण शिवभक्तिपरा नराः।।२५।।
महानरकयात्रार्थं विष्णुं निन्दन्ति दुर्जनाः।
विष्णुस्थानं कलौ गुप्तं भविष्यति न संशयः।।२६।।
केशवेन कृता काशी दत्ता तस्मै शिवाय च।
तन्नाम्नैव सुविख्याता काशी मुक्तिप्रिया सखी।।२७।।

कलिकाले नराः विशेषेण शिवभक्तिपराः। दुर्जनाः महानरकयात्रार्थं विष्णुम् निन्दन्ति। कलौ विष्णुस्थानम् गुप्तम् भविष्यति न संशयः। केशवेन काशी कृता तस्मै शिवाय च दत्ता; (अतः) मुक्तिप्रिया सखी काशी तन्नाम्नैव सुविख्याता।

कलियुग में मनुष्य विशेष रूप से शिवभक्त होते हैं। दुष्ट दुर्जन महानरक-यात्रा के लिए विष्णु की निन्दा करते हैं। इसमें संशय नहीं है कि कलिकाल में विष्णु के स्थान गुप्त हो जायेंगे। केशव ने काशी का निर्माण किया तथा शिव को दे दी थी। मुक्ति की प्रिय सखी काशी इसीलिए शिव के नाम से विख्यात हो गयी।।२६-२७।।

शिवस्थानेऽतिपाखण्डास्तत्र यास्यन्ति वासतः।

नित्यं पापरतास्तत्र नरके यान्ति दुःखिताः॥२८॥
कायवाङ्मानसैर्लोकाः पापमेवाचरन्ति वै।
काश्यां कृतं च यत्पापं गिरितुल्यं भवेत् प्रिये॥२९॥

शिवस्थाने वासतः अतिपाखण्डाः तत्र यास्यन्ति। तत्र नित्यम् पापरताः दुःखिताः नरके यान्ति। लोकाः कायवाङ्मनसैः पापम् एव चरन्ति। प्रिये काश्याम् यत् पापम् कृतम् तत् गिरितुल्यम् भवेत्।

शिवस्थान काशी में वास करने हेतु अतिपाखण्डीजन वहाँ जाते हैं और नित्य पाप करते हैं। परिणामस्वरूप दुःखी होते और नरक में जाते हैं। उस पवित्र स्थान में पाखण्डी लोग शरीर, वाणी और मन से पाप ही करते रहते हैं। किन्तु प्रिये! जो पाप काशी में किया जाता है, वह पहाड़ के समान हो जाता है॥२८-२९॥

सर्वनाशाय लोकानां नरकाय न संशयः।
काशीवासे मनो याति कथितं तव भामिनि॥३०॥
मरणे मुक्तिदा काशी केशवेन विनिर्मिता।
कलौ च मुक्तिनाशाय पाखण्डिभिः समावृता॥३१॥

भामिनि! तव कथितम् यत् नरकाय सर्वनाशाय च लोकानाम् मनः काशीवासे याति (अत्र)। केशवेन मरणे मुक्तिदा काशी विनिर्मिता च कलौ पाखण्डिभिः मुक्तिनाशाय समावृता।

हे भामिनि! मैंने तुम्हें बताया है कि नरक-यात्रा के लिए अथवा सर्वनाश के लिए लोगों का मन काशीवास के लिए लालायित होता है। इसमें थोड़ा-सा भी संशय नहीं है। भगवान् विष्णु ने मरने के बाद मुक्ति पाने के लिए काशी का निर्माण किया था, किन्तु कलिकाल में काशी पाखण्डियों के द्वारा मुक्ति का नाश करने के लिए बन गयी॥३०-३१॥

यत्र कुत्रापि संस्थाय नीत्वा च सकलाः समाः।
अन्तकाले श्रिता काशी पीयूषेण समावृता॥३२॥
भोगाल्लोभाद् रागतो वा मध्ये वयसि संश्रिता।
नरकाय तदा काशी न विमुक्तिर्भवेत् पुनः॥३३॥
पुण्यात्मनां यथा मुक्तिर्यथा पापोपजीविनाम्।
नरकोऽपि भवत्येवं विषतुल्या स्मृता ततः॥३४॥

यत्र कुत्रापि संस्थाय सकलाः समाः नीत्वा अन्तकाले पीयूषेण समावृता काशी श्रिता। मध्ये वयसि भोगात् लोभात् रागतः संश्रिता काशी नरकाय भवेत्।

तदा पुनः न विमुक्तिः। यथा पुण्यात्मनाम् मुक्तिः तथा पापोपजीविनाम् नरकोऽपि भवेत्। ततः काशी विषतुल्या स्मृता।

जहाँ कहीं भी निवास करके आयु के सभी वर्ष बिताने के बाद मृत्युकाल में अमृत से समावृत काशी का सेवन करना चाहिए। आयु के मध्य प्रौढ़ावस्था में जो लोग भोग, लोभ अथवा राग के कारण काशीवास करते हैं, उनके लिए काशी नरक देने वाली होती है, न कि मुक्ति देने वाली। जैसे पुण्यात्माओं को मोक्ष मिलता है, उसी तरह पापात्माओं को नरक भी मिलता है। इसलिए पापियों के लिए काशी विषतुल्य मानी गयी है।।३२-३४।।

न मुक्तिः कलिकाले तु नृणां भवति भामिनि।
तदर्थमेव लोकानां काश्यां वासो भविष्यति।।३५।।
नित्यं पापरता लोका यतो यास्यन्ति तद्युगे।
काशीपापकृतां मुक्तिर्नास्ति कल्पशतैरपि।।३६।।

भामिनि! कलिकाले नृणां मुक्तिः न भवति तदर्थं एवम् लोकानाम् काश्याम् वासो भविष्यति। तद् युगे नित्यम् पापरताः लोकाः यतः यास्यन्ति काशीपापकृताम् मुक्तिः कल्पशतैः अपि नास्ति।

हे भामिनि ! कलिकाल में लोगों की मुक्ति नहीं होती; इसीलिए लोग काशीवास में रुचि लेंगे। कलियुग में नित्य पाप में रत लोग काशी जाकर रहेंगे। काशी में पाप करने वालों की मुक्ति सैकड़ों कल्प तक नहीं होती।।३५-३६।।

शिवोऽपि लोकनाशाय तादृशं रूपमाश्रितः।
नाशं करोति लोकानां सेवकानामपि ध्रुवम्।।३७।।
संहाररूपी यस्मात् यः(?सः) संहारे सर्वदा रुचिः।
शीघ्रं वै लोकयात्रार्थं वरं दत्त्वा विनश्यति।।३८।।
देवप्रतारिता लोकाश्चोदिता विष्णुमायया।
नाशाय मुक्तिमार्गाणां पाखण्डित्वं व्रजन्ति वै।।३९।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे शिवलोककथने काशीमाहात्म्य-पाखण्डिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

लोकनाशाय शिवः अपि तादृशम् रूपम् आश्रितः। सेवकानाम् लोकानाम् ध्रुवम् नाशम् करोति। यस्मात् सः संहाररूपी (तस्माद्) सर्वदा संहारे रुचिः। लोकयात्रायाम् शीघ्रम् वरम् दत्वा वै विनश्यति। विष्णुमायया प्रचोदिताः देवप्रतारिताः लोकाः मुक्तिमार्गाणाम् नाशाय पाखण्डित्वम् वै व्रजन्ति।

लोकों का संहार करने के लिए ही शिव ने भी वैसा ही रूप धारण कर लिया। वे लोकों और उनके आश्रित सेवकों का भी निश्चित रूप से विनाश करते हैं। वे संहाररूप हैं, इसलिए उनकी विनाश करने में ही रुचि है। विष्णुमाया की प्रेरणा से देवताओं द्वारा ठगे हुए लोग मुक्तिमार्गों का नाश करने के लिए ही पाखण्ड का आचरण करते हैं।।३७-३९।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में शिवलोककथन नामक पञ्चम अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

षष्ठोऽध्यायः

ज्योतिर्ब्रह्मलोकवर्णनम्

ब्राह्मण उवाच—

अधो वृन्दावनादूर्ध्वे शिवलोकस्य सुन्दरि।
विरजाख्यमहानद्याः पारे परमशोभने॥१॥

सुन्दरि! वृन्दावनात् अधः शिवलोकस्य ऊर्ध्वे विरजाख्यमहानद्याः परमशोभने पारे—।

ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दरि! वृन्दावन से नीचे और शिवलोक के ऊपर विरजा नाम की नदी है; उसके परम सुन्दर उस पार—॥१॥

परं ज्योतिर्मयं स्थानमगम्यं मनसामपि।
अनेकसूर्यचन्द्रर्क्षप्रभया सममद्भुतम्॥२॥
दुर्दर्शं दुर्लभं दिव्यं निराभासं निरञ्जनम्।
निर्विकारं निरालम्बं निराकारं निरुत्तरम्॥३॥
नित्यानन्दं नित्यशुद्धं निश्चितं निर्विशेषणम्।
निःसीमं निर्मलं नित्यं निःश्रेयसमनामयम्॥४॥

अनेकसूर्यचन्द्रर्क्षप्रभया समम् अद्भुतम् मनसाम् अपि अगम्यम् परम् ज्योतिर्मयम् दुर्दर्शम् दुर्लभम् निराभासम् निरञ्जनम् निर्विकारम् निरालम्बम् निराकारम् निरुत्तरम् नित्यानन्दम् नित्यशुद्धम् निश्चितम् निर्विशेषणम् निःसीमम् नित्यम् निर्मलम् अनामयम् निःश्रेयसम् (दिव्यम् स्थानम् अस्ति)।

अनेक सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की प्रभा से समता करने वाला, अद्भुत, मन से भी अगम्य, परम ज्योतिर्मय, दुर्लभ, दुर्दर्श, निराभास, निरंजन, विकाररहित, आलम्बनरहित, निराकारस्वरूप, निरुत्तर, नित्यानन्दस्वरूप नित्यशुद्ध, निश्चित, सबसे अधिक उत्तम, सीमारहित, नित्यनिर्मल, नीरोग तथा (मोक्ष का एकमात्र दिव्य स्थान है)॥२-४॥

सर्वाकारं सर्वरूपं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वगं सर्वविश्रान्तं नितान्तं योगिनां प्रियम्॥५॥
एकमेवाद्वयं ब्रह्म आकाशवदनन्तकम्।
वदन्ति वेदविच्छ्रेष्ठा वेदान्तवेदिनोऽपरे॥६॥

सर्वव्यापि सदाद्यन्तरहितं सत्यमूर्जितम्।
सच्चिदानन्दमद्वैतं ब्रह्मानन्दश्च निष्कलम्।।७।।

वेदविद् श्रेष्ठाः सर्वाकारम् सर्वरूपम् सर्वतः अक्षिशिरोमुखम् सर्वगम् सर्वविश्रान्तम् योगिनाम् नितान्तम् प्रियम् अद्वयम् आकाशवद् अनन्तकम् एकमेव अद्वयम् अपरे वेदान्तवेदिनः सर्वव्यापि सत् आद्यन्तरहितम् ऊर्जितम् सत्यम् सच्चिदानन्दम् अद्वैतम् ब्रह्मानन्दः निष्कलम् च वदन्ति।

वेद को जानने वालों में श्रेष्ठ विद्वान् उस ब्रह्म को सर्वाकार, सर्वस्वरूप, सभी ओर से मुख, नेत्र और शिर वाला, सबका आश्रय, योगियों का नितान्त प्रिय, अद्वितीय एवं आकाश की तरह अनन्त कहते हैं। वेदान्त को जानने वाले अन्य विद्वान् उसे सर्वव्यापि, सत्, आदि और अन्त से रहित, अत्यन्त शक्तिशाली, सत्य ऊर्जस्वल सच्चिदानन्दविग्रह, अद्वैत, ब्रह्मानन्द और निष्कल कहते हैं।।५-७।।

वदन्त्यन्ये ज्ञानविदः सर्वज्ञं कारणं परम्।
तत्तत्त्ववेदिनः सिद्धाः कृष्णाऽभिन्नं वदन्ति तत्।।८।।
केचिद् वदन्ति गोविन्दपदाङ्गुष्ठनखातपम्।
ज्योतिर्मयशरीरात्मज्योतिरित्यपरे विदुः।।९।।

अन्ये ज्ञानविदः सर्वज्ञम् परम् कारणम् वदन्ति। तत् तत्त्ववेदिनः सिद्धाः तत् कृष्ण-अभिन्नम् वदन्ति। केचित् गोविन्दपादाङ्गुष्ठनखातपम् वदन्ति। अपरे ज्योतिर्मयशरीर-आत्मज्योतिः इति विदुः।

अन्य ज्ञानी उसे सर्वज्ञ और परम कारण कहते हैं। उस तत्त्व को जानने वाले सिद्ध उसे कृष्ण से अभिन्न मानते हैं। कुछ गोविन्द के पादाङ्गुष्ठ के नख का तेज मानते हैं एवं अन्य विद्वान् उस ज्योतिर्मय शरीर को आत्मतत्त्व-परमतत्त्व की ज्योति स्वीकार करते हैं।।८-९।।

ब्रह्मज्योतिर्मयं कृष्णं कृष्णज्योतिरिदं परम्।
केचिद् वदन्त्यथाऽन्योऽन्यमभेदं कृष्णब्रह्मणोः।।१०।।
सूर्ये सूर्य्यांशुनिचये यथा भेदो न विद्यते।
परब्रह्मणि गोविन्दे ब्रह्मण्यपि तथैव च।।११।।

केचिद् ब्रह्मज्योतिर्मयम् कृष्णम् इदम् परम् कृष्णज्योतिः वदन्ति। केचित् कृष्णब्रह्मणोः अन्योऽन्यम् अभेदम् वदन्ति। यथा सूर्ये सुर्यांशुनिचये भेदो न विद्यते तथा एव परब्रह्मणि गोविन्दे ब्रह्मणि च भेदो (न) अस्ति।

कुछ उसे ब्रह्म ज्योतिर्मय कृष्ण कहते हैं। अथवा यह परम कृष्ण

ज्योति हैं—ऐसा कहते हैं। अन्य विद्वान् ब्रह्म एवं कृष्ण में परस्पर अभेद कहते हैं। जिस तरह सूर्य तथा सूर्य की किरणों में भेद नहीं है, उसी तरह परम ब्रह्म गोविन्द और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।।१०-११।।

प्रकृतिः सा परा सूक्ष्मा व्यक्ताऽव्यक्ता सनातनी।
मुक्तानां च गतिः सैव योगिनां च तपस्विनाम्।।१२।।
सर्वमुक्तिप्रसङ्गे च महाप्रलयसंज्ञके।
प्रविशन्ति परं ब्रह्म तेजो ब्रह्मजगत्पतेः।।१३।।

सा परा सूक्ष्मा सनातनी व्यक्ता अव्यक्ता प्रकृतिः। योगिनाम् मुक्तानाम् तपस्विनाम् च सा एव गतिः। सर्वमुक्तिप्रसङ्गे महाप्रलयसंज्ञके ब्रह्मजगत्पतेः परम् ब्रह्म तेजः प्रविशन्ति।

वह परा सूक्ष्मा व्यक्त एवम् अव्यक्त सनातनी प्रकृति है। योगियों, मुक्तों एवं तपस्वियों की वही प्राप्तव्य है। महाप्रलय नामक सर्वमुक्ति के प्रसंग में जगत् के स्वामी ब्रह्म के परमब्रह्म नामक तेज में सब (योगी आदि) प्रवेश कर जाते हैं।।१२-१३।।

सृष्टिकाले च तस्माद् वै जगन्ति प्रभवन्ति च।
यद्भयाद् वान्ति वाताश्च सूर्यस्तपति यद्भयात्।।१४।।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्भारं वहति मेदिनी।
कालः कलयते लोकान् निमेषात्मा स्वयं प्रभुः।।१५।।

सृष्टिकाले च वै तस्माद् जगन्ति प्रभवन्ति च। यद्भयात् वाताः वान्ति, यद् भयात् सूर्यः तपति, इन्द्रः वर्षति, अग्निः दहति, मेदिनी भारम् वहति, कालः लोकान् कलयते। सः निमेषात्मा स्वयंप्रभुः।

सृष्टिकाल में जगत् उसी से उत्पन्न होते हैं। जिसके भय से सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलती है, पृथ्वी भार वहन करती है, काल लोकों की रचना करता है, वह निमेषात्मा स्वयं प्रभु हैं।।१४-१५।।

कूर्मो बिभर्ति धरणीं ब्रह्मा सृजति यद्भयात्।
पालनं कुरुते विष्णुर्हरः संहरते भयात्।।१६।।
तदेव निष्कलं ब्रह्म निरीहं निर्गुणं परम्।
कृष्णपादाद् विनिर्गत्य व्याप्तं तेन जगत्त्रयम्।।१७।।

यद्भयात् कूर्मो धरणीम् बिभर्ति ब्रह्मा सृजति, विष्णुः पालनम् कुरुते, यद्भयात् हरः संहरते तद् एव निरीहम् निर्गुणम् निष्कलम् परम् ब्रह्म कृष्णपादात् विनिर्गत्य तेन जगत् त्रयम् व्याप्तम्।

जिसके भय से कच्छप पृथ्वी को धारण करता है; जिसके भय से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं; विष्णु पालन करते हैं तथा शिव संहार करते हैं, वही निरीह, निर्गुण, कलाओं से रहित परमब्रह्म श्रीकृष्ण के चरणों से प्रकट हुआ है और उसने तीनों लोकों को व्याप्त कर रखा है।।१६-१७।।

अनन्तकोटिब्रह्माण्डभाण्डान्तर्बहिरेव तत्।
पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गं तस्माज्जातं परापरम्।।१८।।
तदेतत् पुरुषश्चायं कारणं जलमेव तत्।
महानन्त(न्तं) तदेवेदं तद् वै विष्णुः सनातनम्।।१९।।

तत् एव अनन्तकोटिब्रह्माण्डभाण्ड-अन्तः बहिः च। तस्मात् परापरम् पुंप्रकृत्यात्मकम् लिङ्गम् जातम्। अयम् पुरुषः च तद् एतत् कारणम्। तत् एव जलम्। तद् एवम् महा-अनन्तम्, तद् वै सनातनम् विष्णुः।

वही इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डभाण्ड अर्थात् ब्रह्माण्डरूपी पात्र के अन्दर और बाहर है। उसी से पर और अपर पुरुष और प्रकृतिरूप प्रकट हुए हैं। वही यह पुरुष है, वही सबका कारण जल है, वही महान् अनन्त है और वही सनातन विष्णु हैं।।१८-१९।।

तद् ब्रह्मा तच्च रुद्रश्च तदिन्द्रो वरुणश्च तत्।
वह्निर्यमश्च रक्षश्च वायुर्यक्षाधिपस्तथा।।२०।।
एकं ब्रह्माऽद्वितीयं तन्नान्यदस्तीति किञ्चन।
यतो वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह।।२१।।

तद् ब्रह्मा, तत् च रुद्रः, तद् च इन्द्रः, वरुणः तत् च, वह्निः यमश्च, रक्षः च, वायुः, यक्षाधिपः तथा। अद्वितीयम् एकम् ब्रह्म तत् न किञ्चन अन्यत् अस्ति। यत् अप्राप्य वाचः मनसा सह निवर्तन्ते।

वही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, यम, राक्षस, वायु, यमों के स्वामी तथा अद्वितीय ब्रह्म है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जिसे बिना प्राप्त किये वाणी मन के साथ लौट आती है, वही श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं।।२०-२१।।

तत्स्वर्गस्तच्च मर्त्यो वै तत् पातालं च भामिनि।
द्वीपवर्षसमुद्रान्तं सर्वं ब्रह्मात्मकं प्रिये।।२२।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे ज्योतिर्ब्रह्मलोकवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।६।।

भामिनि! तत् स्वर्गः तत् च मर्त्यः तत् वै पातालम्। प्रिये! द्वीपवर्ष-समुद्रान्तम् सर्वं ब्रह्मात्मकम्।

हे भामिनि! वही स्वर्ग, वही मृत्युलोक तथा वही पाताल हैं। हे प्रिये! द्वीपवर्ष तथा समुद्रपर्यन्त सब कुछ ब्रह्मस्वरूप है।।२२।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में ज्योतिर्ब्रह्मलोक नामक छठे अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

सप्तमोऽध्यायः

परब्रह्मलोकवर्णने सगणरहस्य-वृन्दावनवर्णनम्

ब्राह्मण उवाच—

एतत् पदं परं सूक्ष्मं प्रविशन्ति मुमुक्षवः।
अस्मात् परतरं कान्ते कान्तं सर्वोत्तमोत्तमम्॥१॥
श्रीमद्वृन्दावनाख्यं च सर्वभूतमनोहरम्।
तत्पुरं ब्रह्मघटितं प्रेमानन्दरसान्वितम्॥२॥

एतद् परम् सूक्ष्मम् पदम् मुमुक्षवः प्रविशन्ति। कान्ते! अस्मात् परतरम् सर्वोत्तमम् सर्वभूतमनोहरम् कान्तम् च श्रीमद्वृन्दावनाख्यम् (स्थानम् अस्ति)। तत्पुरम् प्रेमानन्दरसान्वितम् ब्रह्मघटितम्।

ब्राह्मण ने कहा—इस सूक्ष्म एवं उत्तम परमपद में केवल मुमुक्षु जीव ही प्रवेश करते हैं। हे कान्ते! इसके आगे सर्वोत्तमों में उत्तम, सभी जीवों के मन को मोहित करने वाला सुन्दर श्रीमद्वृन्दावन नाम का लोक है। यह लोक प्रेम और आनन्द के रस से परिपूर्ण है। इसकी रचना स्वयं ब्रह्मा ने की है॥१-२॥

अनन्तयोजनायाममनन्तयोजनोच्छ्रितम्।
योजनानन्तविस्तारं सर्वरत्नमयं शुभम्॥३॥
सुवर्णरत्नमाणिक्यमणिनिर्मितमन्दिरम्।
भ्रमरैर्नादितं सुष्ठु कल्पवृक्षतलेऽमले॥४॥

अनन्तयोजन-आयामम्, अनन्त-योजन-उच्छ्रितम्, योजनानन्तविस्तारम् शुभम्, सर्वरत्नमयम्, सुवर्णरत्न-माणिक्य-मणि-निर्मितमन्दिरम्, अमले कल्प-वृक्षतले भ्रमरैः सुष्ठु नादितम्।

यह वृन्दावन अनन्त योजन लम्बा है, अनन्त योजन ऊँचा है, अनन्त योजन विस्तार वाला अर्थात् चौड़ा है, सभी रत्नों से बना हुआ सुन्दर है। सुवर्ण, रत्न, माणिक्य और मणियों से निर्मित भवनों वाला है। अमल कल्पवृक्षों के नीचे यह भ्रमरावलि से भली-भाँति गुञ्जायमान है॥३-४॥

सुवर्णवेदिकाभिश्च शोभितं सुमनोहरम्।
परिखाभिरनन्ताभी रत्ननिर्मितभित्तिभिः॥५॥

नदीभिरमृतोदाभिर्नदैश्च परिशोभितम्।
गोवर्धनाद्यैर्गिरिभी रत्नधातुविचित्रितैः॥६॥
कल्पवृक्षादिभिर्वृक्षैर्मणिमाणिक्यवर्षिभिः।
सुशीलाद्यैर्धेनुवृन्दैः शोभितं तद् वनं महत्॥७॥

सुवर्णवेदिकाभिः शोभितम् च अनन्ताभिः परिखाभिः रत्ननिर्मित-भित्तिभिः सुमनोहरम्, अमृतोदाभिः नदीभिः नदैः च रत्नधातुविचित्रितैः गोवर्ध-नाद्यैः गिरिभिः परिशोभितम्। तत् महद् वनम् मणिमाणिक्यवर्षिभिः कल्प-वृक्षादिभिः वृक्षैः सुशीलाद्यैः धेनुवृन्दैः शोभितम्।

यह प्रदेश सुवर्ण की वेदिकाओं (चबूतरों) से शोभित, अनन्त परिखाओं (खाईयों) से सुमनोहर, रत्नों से निर्मित भित्ति वाला, अमृत जल से पूर्ण नदियों और नदी से मण्डित, रत्नधातु से विचित्रित, गोवर्धन आदि पर्वतों से परिशोभित है। वह महान् वृन्दावन मणियों और माणिक्यों की वर्षा करने वाले वृक्षों से तथा कल्पवृक्षों की पंक्तियों से सुशोभित है। वह सुशीला आदि गायों के समूह से सुशोभित है॥५-७॥

सुशीला सुरभिश्चैव श्यामली धवली तथा।
पिशङ्गाक्षी च कपिला दीर्घघोणा शुचिस्मिता॥८॥
मदालसा मन्दगतिर्वृन्दा गोविन्दवल्लभा।
धूमला पिङ्गला गङ्गा पिशङ्गी मणिकस्तनी॥९॥
हंसी वंशी प्रिया नित्या नैचिकीगणपूजिताः।
कृष्णप्रियाद्या गावस्ता लक्षसंख्याः सुशोभनाः॥१०॥
पद्मगन्धपिशङ्गाख्यौ बलीवर्दावतिप्रियौ।
प्रतिलोम्नि च ब्रह्माण्डं धारयन्त्यो रसप्रदाः॥११॥

सुशीला, सुरभिः चैव श्यामली, धवली, पिशङ्गाक्षी, कपिला, दीर्घघोणा, शुचिस्मिता, मदालसा, मन्दगतिः, वृन्दा, गोविन्दवल्लभा, धूमला, पिङ्गला, गङ्गा, पिशङ्गी, मणिकस्तनी, हंसी, वंशी, कृष्णप्रियाद्याः, नित्याः, नैचिकीगणपूजिताः ताः लक्षसंख्याः सुशोभनाः गावः रसप्रदाः प्रतिलोम्नि ब्रह्माण्डम् धारयन्त्यः। पद्मगन्धपिशङ्गाख्यौ बलीवर्दौ अतिप्रियौ।

उस वृन्दावन में सुशीला, सुरभि, श्यामली, धवली, पिशङ्गाक्षी, कपिला, दीर्घकोणा (लम्बी नाक वाली), शुचिस्मिता, मदालसा, मन्दगति, वृन्दा, गोविन्दवल्लभा, धूमला, पिङ्गला, गङ्गा, पिशङ्गी, मणिकस्तनी (मणि जैसे थनों वाली) हंसी, वंशी तथा कृष्णप्रिया नाम की लाखों गायें उत्तम गायों के द्वारा नित्य पूजित होती हैं। अमृततुल्य दूध देने वाली ये गायें अपने

प्रत्येक रोम में ब्रह्माण्डों को धारण करने वाली हैं। पद्मगन्ध और पिशङ्ग नाम के साँड अति प्रिय हैं।।८-११।।

राजन्ते बहवो यत्र गोविन्दप्रतिमूर्तयः।
गोपालास्तस्य देवस्य दक्षिणाङ्गाद्विनिर्गताः।।१२।।

यत्र तस्य देवस्य दक्षिणाङ्गाद् विनिर्गताः बहवः गोविन्दप्रतिमूर्तयः गोपालाः राजन्ते।

यहाँ उन श्रीकृष्ण के दक्षिण अङ्ग से उत्पन्न श्रीकृष्ण की ही प्रतिमूर्ति अनेकों गोपाल शोभित हो रहे हैं।।१२।।

बर्हिबर्हकृतोत्तंसाः कोटिचन्द्रनिभाननाः।
महार्घरत्नघटितस्फुन्मकरकुण्डलाः ।।१३।।
कम्बुग्रीवा महात्मानः सुदन्ताः सुन्दराधराः।
जितकामधनुश्चारुभ्रूलताः कमलेक्षणाः।।१४।।
माणिक्यमुकुरोद्दण्डगण्डमण्डलमण्डिताः ।
रत्नालङ्कारसंशोभिकण्ठदेशाभिसुन्दराः ।।१५।।
मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षःस्थलश्रियः ।
वनमालावैजयन्तीमालाभ्यां च विराजिताः।।१६।।

कोटिचन्द्रनिभाननाः बर्हिबर्हकृतोत्तंसाः महार्घरत्नघटितस्फुरन्मकर-कुण्डलाः कम्बुग्रीवाः महात्मानः सुदन्ताः सुन्दराधराः जितकामधनुःचारुभ्रूलताः कमलेक्षणाः, माणिक्यमुकुरोद्दण्डगण्डमण्डलमण्डिताः रत्नालंकारसंशोभिकण्ठ-देशाभिसुन्दराः, मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षःस्थलश्रियाः, वनमालावैजयन्ती-मालाभ्याम् च विराजिताः (गोपालाः सन्ति)।

करोड़ो चन्द्रमाओं वाले के सदृश मुखों वाले, मोरपंखों के कर्णाभरण वाले, वेश-कीमती रत्नों से निर्मित चंचल मकरकुण्डलों वाले, शंख के समान ग्रीवा वाले, सुन्दर दाँतों एवं अधरों वाले, भौहों की सुन्दरता से कामदेव के धनुष की वक्रता को जीतने वाले, कमलों के समान नेत्रों वाले, माणिक्य के मुकुरों (कलियों) से शोभित गण्डस्थल वाले, अनेकों रत्नों के अलंकारों से सुशोभित कण्ठदेश वाले, पीन वक्षःस्थल पर मोतियों की हारलताओं से अलंकृत वनमाला और वैजयन्ती मालाओं से विराजित गोपाल यहाँ शोभित होते हैं।।१३-१६।।

हेमाङ्गदलसद्धस्ताश्चारुकङ्कणपाणयः ।
रत्नदण्डधराश्चारुपीतकौशेयवाससः ।।१७।।

केचिच्छृङ्गं वादयन्तो वेणुवाद्यरताश्च के।
मुरलीवाद्यनिरताः शंखवाद्यरताश्च के॥१८॥
केचिन्नृत्यन्ति गायन्तो हसन्तो हासयन्ति च।
धावन्तो(?न्ति) धावतः केचित्प्रतिगर्जन्ति गर्जतः॥१९॥

हेमाङ्गदलसत्-हस्ताः, चारुकङ्कणपाणयः, रत्नदण्डधराः, चारुपीत-कौशेयवाससः केचिद्शृङ्गम् वादयन्तः च, के(चित्) वेणुवाद्यरताः, (केचिद्) मुरलीवाद्यरताः के(चित्) शङ्खवाद्यरताः च, केचित् गायन्तः नृत्यन्ति हसन्तः हासयन्ति च। केचित् धावतः धावन्ति गर्जतः प्रतिगर्जन्ति।

सभी गोपाल सोने के अंगदों से सुशोभित हाथों वाले थे। उन्होंने सुन्दर कंकणों को हाथों में धारण कर रखा था। उनके हाथों में रत्न के दण्ड थे और वे सब सुन्दर पीले रेशमी वस्त्र धारण किये हुए थे। उनमें कुछ सींग बजा रहे थे, कुछ वंशी बजाने में मग्न थे। कुछ मुरली बजा रहे थे और कुछ शङ्ख बजाने में संलग्न थे। कुछ गाते हुए नाच रहे थे, कुछ हँस रहे थे, कुछ हँसा रहे थे। कुछ दौड़ने वाले के पीछे दौड़ रहे थे तथा कुछ गर्जना करने वालों से अधिक तेज गर्जना करके आनन्द ले रहे थे॥१७-१९॥

कृष्णे नृत्यति नृत्यन्ति गायन्ति गायतोऽपरे।
प्रशंसन्ति वादयन्तो वादकांश्च तथाऽपरान्॥२०॥
नृत्यमानेषु सर्वेषु वेणुना स्वरसम्पदा।
स्वयं बहुविधो भूत्वा सुस्वरं गायति प्रभुः॥२१॥

कृष्णे नृत्यति अपरे नृत्यन्ति, गायतः गायन्ति तथा अपरान् वादकान् वादयन्तः प्रशंसन्ति। सर्वेषु नृत्यमानेषु स्वयम् प्रभुः बहुविधो भूत्वा वेणुना स्वरसम्पदा सुस्वरम् गायति।

श्रीकृष्ण के नाचने पर अन्य सभी गोपाल नाचते हैं। उनके गाने पर सभी गोपाल गाने लगते हैं तथा श्रीकृष्ण के वाद्य बजाने पर अन्य (गोप) वाद्य बजाते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं। सभी गोपालों के नाचने पर श्रीकृष्ण स्वयं अनेक रूप धारण कर स्वरों की सम्पत्ति से युक्त वेणु से मुखर होकर गाने लगते हैं॥२०-२१॥

प्रवालबर्हस्तबकस्त्रग्धातुकृतभूषणः।
कृष्णो नीलाम्बुदश्यामः पीतवस्त्रोऽम्बुजेक्षणः॥२२॥
भ्रामणोल्लङ्घनोत्क्षेपप्रस्फोटनविकर्षणैः।
क्वचित् स्यन्दोलिकाभिश्च क्वचिद् भूपतिचेष्टया॥२३॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैः क्वचिन्मृगखगेहया।
क्रीडाभिर्विविधाभिश्च विविधैरुपहासकैः॥२४॥
एको देवो बहुविधः क्रीडते गोपबालकैः।

अम्बुजेक्षणः नीलाम्बुदश्यामः पीतवस्त्रः प्रवालबर्हस्तबकस्त्रग्धातुकृत-भूषणः कृष्णः भ्रामण-उल्लङ्घन-उत्क्षेपप्रस्फोटनविकर्षणैः क्वचित् स्यन्दोलिकाभिः च क्वचित् भूपतिचेष्टया, क्वचित् च दर्दुरप्लावैः क्वचित् मृगखगेहया, विविधैः उपहासकैः विविधाभिः क्रीडाभिः एकः देवः बहुविधः गोपबालकैः सह क्रीडते।

कमल के समान नेत्र वाले, नीलमेघ के सामन श्यामवर्ण वाले, पीताम्बरधारी, प्रबाल (मूँगे) बर्ह (मोरपंख) स्तबक (पुष्पगुच्छ), स्त्रग् (माला) तथा धातुओं (चन्दन) से स्वयं को अलंकृत करके श्रीकृष्ण घूम-घूमकर, लांघकर, उछलकर स्फोटन (जोर की ध्वनि) करके और परस्पर खींचकर खेलने लगे। कभी झूलने के द्वारा, कभी राजा का अभिनय करके, कभी मेढक की तरह उछलकर, कभी मृग अथवा खग की तरह चेष्टा करके अनेकों प्रकार से हँसाने वाली विविध क्रीड़ा करते हुए एक देव श्रीकृष्ण अनेक रूप बनाकर गोपबालकों के साथ खेलते हैं।।२२-२४।।

गोपालाः सुबलस्तोककृष्णदाससुदामकाः॥२५॥
किङ्किणीभद्रसेनांशुकलविङ्कप्रियङ्कराः ।
पुण्डरीकविकङ्काख्यद्युमत्सेनविलासिनः ॥२६॥
मन्दरार्जुनगन्धर्ववसन्तोज्ज्वलकोकिलाः ।
सनन्दनविदग्धाद्या एते प्रियसुहृत्तमाः॥२७॥

सुबल-स्तोक-कृष्णदाससुदामकाः, किङ्किणीभद्रसेनाशुकलविङ्कप्रियङ्करा पुण्डरीकविकङ्काख्यद्युमत्सेनविलासिनः मन्दरार्जुनगन्धर्ववसन्तोज्ज्वलकोकिलाः सनन्दनविदग्धाद्याः एते गोपालाः प्रियसुहृत्तमाः।

सुबल, स्तोक, कृष्णदास, सुदामा, किङ्किणी, भद्रसेन, अंशु, कलविङ्क, प्रियङ्कर, पुण्डरीक, विकङ्क, द्युमत्सेन, विलासी, मन्दर, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दन, विदग्ध आदि ये गोपाल कृष्ण के अतिशय प्रिय मित्र हैं।।२५-२७।।

कृष्णदेहोद्भवाः श्यामगौराङ्गा दिव्यरूपिणः।
विशालवृषभौजस्विदेवप्रस्थवरूथपाः ॥२८॥
माकन्दकुसुमापीडमणिबन्धकरन्धमाः ।
मन्दारश्चन्दनं कुन्दः कुलिन्दकुलिकादयः॥२९॥

कनिष्ठरूपास्ते गोपाः प्रभोः सेवानियोजिताः।

कृष्णदेहोद्भवाः दिव्यरूपिणः श्यामगौराङ्गाः विशालवृषभौजस्विदेवप्रस्थ-वरूथपाः माकन्दकुसुमापीडमणिबन्धकरन्धमाः मन्दारः चन्दनः कुन्दः कुलिन्द-कुलिकादयः कनिष्ठरूपाः ते गोपाः प्रभोः सेवानियोजिताः।

श्रीकृष्ण के देह से उत्पन्न दिव्य रूप वाले ये गौर एवं श्यामवर्ण के गोपाल जो क्रमशः विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, माकन्द, कुसुमापीड, मणिबन्ध, करन्धम, मन्दार, चन्दन, कुन्द, कुलिन्द तथा कुलिक आदि नाम वाले तथा कनिष्ठ श्रेणी के हैं, सदा प्रभु की सेवा में लगे रहते हैं।।२८-२९।।

मण्डलीभद्रयक्षेन्द्रभटभद्राङ्गगोभटाः ।।३०।।
तटवर्धनभद्रेहवीरभद्रमहागुणाः ।
कुलवीरमहाभीमदिव्यशक्तिसुरप्रभाः ।।३१।।
रणस्थिरः सुस्थिरश्च स्थिरानन्दपुरन्दरौ।
एते वै ऋषयो मर्त्यलोकमासाद्य जन्मभिः।।३२।।
उग्रैस्तपोभिर्गोविन्दं प्रसाद्य जगदीश्वरम्।
गोपत्वं प्राप्य सुचिरं कृष्णध्यानाहृताङ्हसः।।३३।।
कृष्णेन सहिता नित्यं गोलोके विहरन्ति ते।
गोपालाः कृष्णसुहृदो रहस्यज्ञा इमे पुराः।।३४।।

मंडलीभद्रयक्षेन्द्रभटभद्राङ्गगोभटाः तटवर्धनभद्रेहवीरभद्रमहागुणाः, कुल-वीर-महाभीम-दिव्यशक्ति-सुरप्रभाः रणस्थिरः, सुस्थिरः च स्थिरानन्दपुरन्दरौ एते ऋषयः जन्मभिः मृत्युलोकम् आसाद्य उग्रतपोभिः जगदीश्वरम् गोविन्दम् प्रसाद्य कृष्णध्यानात् हृताङ्हसः गोपत्वम् प्राप्य ते कृष्णेन सहिताः नित्यम् सुचिरम् गोलोके विहरन्ति। कृष्णसुहृदः इमे गोपालाः रहस्यज्ञाः।

मंडलीभद्र, यक्षेन्द्रभट, भद्राङ्ग, गोभट, तटवर्धन, भद्रेह, वीरभद्र, महागुण, कुलवीर, महाभीम, दिव्यशक्ति, सुरप्रभ, रणस्थिर, सुस्थिर, स्थिरानन्द और पुरन्दर—ये सभी ऋषि मृत्युलोक में जन्म लेकर घोर तप किये। श्रीकृष्ण के ध्यान से अपने सभी पापों को नष्ट करके, जगदीश्वर गोविन्द को प्रसन्न करके इन्होंने गोपत्व को प्राप्त किया। कृष्ण के मित्र एवं रहस्य को जानने वाले ये सभी लोक गोपाल गोलोक में नित्य दीर्घकाल तक विहार करते हैं।।३०-३४।।

ब्राह्मे वृन्दावनप्रान्ते महाकन्दवनस्य च।
भाण्डीरकवटस्याधः केषाञ्चिद् वसतिः प्रिये।।३५।।

बृहद्वने च केषाञ्चित् केचिदभ्रवने तथा ।
स्थलाद्यवने केचित् केचित् मधुवनान्तरे॥३६॥
मन्दारविपिने केचित् पारिजातवने परे।
खादिरे विपिने केचित् केचित् तालवने प्रिये॥३७॥
अशोकाख्ये वने केचिन्निवसन्ति शुचिस्मिते।

प्रिये! केषाञ्चिद् वसतिः ब्राह्ये वृन्दावनप्रान्ते महाकन्दवनस्य भाण्डीरकवटस्य अधः अस्ति। केषाञ्चिद् बृहद्वने अस्ति। केचिद् अभ्रवने तथा केचित् स्थलाद्यवने, केचिद् मधुवनान्तरे, केचित् मन्दारविपिने, परे पारिजातवने, केचिद् खादिरे विपिने, केचित् तालवने, केचित् च हे शुचिस्मिते! अशोकाख्ये वने निवसन्ति।

प्रिये! कुछ महाकन्द वन के ब्राह्य वृन्दावन प्रान्त में गोपों का निवास है और कुछ का भाण्डीरकवट के नीचे, कुछ बृहद् वन में, कुछ अभ्रवन में तथा कुछ पृथ्वी पर उगने वाले कमलों (स्थलपद्मों) के वन में निवास करते हैं और कुछ गोप मधुवन में, कुछ मन्दारवन में, अन्य पारिजातवन में, कुछ खैर के वन में, कुछ ताल में तथा हे शुचिस्मिते! कुछ अशोक नामक वन में रहते हैं॥३५-३७॥

राधाकृष्णरसक्रीडासमये समुपस्थितान्॥३८॥
तान् दृष्ट्वा क्रीडिता देवी भुवनत्रयसेविता।
प्रविष्टा विपिनं घोरं लीलया गजगामिनी॥३९॥
तद् दृष्ट्वा तत्प्रियसख्याः षडङ्गेषु बलादयः।
प्रविष्टाः षट् तदन्ये ये वनात्तस्माद् बहिर्गताः॥४०॥

राधाकृष्णरसक्रीडासमये समुपस्थितान् तान् दृष्ट्वा भुवनत्रयसेविता क्रीडिता देवी गजगामिनी प्रिया लीलया घोरम् विपिनम् प्रविष्टा। तद् दृष्ट्वा बलादयः षट् तत्प्रियसख्याः षडङ्गेषु प्रविष्टाः। ये तदन्ये तस्मात् वनात् बहिर्गताः।

राधाकृष्ण की रसमयी क्रीडा के समय उन गोपालों को उपस्थित देखकर तीनों लोकों द्वारा सेवित, क्रीडा में आसक्त श्रीप्रिया गज की तरह गति वाली श्रीराधाजी लीलापूर्वक घोर गहन वन में प्रवेश कर गयीं। यह देखकर बलराम आदि छः लोग उस प्रिय सखी के छः अङ्गों में प्रविष्ट हो गये और जो उनसे अन्य थे, वे उस वन से बाहर चले गये॥३८-४०॥

एतस्मिन्नेव समये सान्त्वयामास राधिकाम्।
वृन्दावनं समानीय हसन् कृष्णोऽब्रवीदिदम्॥४१॥

अद्यप्रभृति राधायाः वनेऽस्मिन् प्रविशन्ति ये।
ते तु प्रवेशमात्रेण भवन्तु वरयोषितः॥४२॥
वनाद् बहिर्गता भूयः स्वस्वरूपा यथा पुरा।

एतस्मिन् एव समये कृष्णः राधिकाम् वृन्दावनं समानीय सान्त्वयामास। हसन् च इदम् अब्रवीत्—अद्यप्रभृति राधायाः अस्मिन् वने ये प्रविशन्ति ते तु प्रवेशमात्रेण वरयोषितः भवन्तु। वनाद् बहिर्गताः भूयः यथा पुरा स्वस्वरूपाः भवन्तु।

उसी समय श्रीराधिका को वृन्दावन लाकर श्रीकृष्ण ने समझाया और हँसते हुए कहा कि आज से जो भी पुरुष राधिका जी के इस वन में प्रवेश करेगा, वह वन में प्रवेश करते ही सुन्दर स्त्री बन जायेगा तथा वन से बाहर आकर पुनः अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर लेगा।।४१-४२।।

गोपालाः कृष्णवचसा भयसंत्रस्तमानसाः॥४३॥
एतच्छुत्वा च वचनं कृष्णस्य परमात्मनः।
ये गतास्तद्वनं ते च स्त्रीत्वं प्रापुस्तदन्तिके॥४४॥
निवसन्ति महाभागे ये चान्ये वनवासिनः।
मनस्विनो महात्मानो गोपालास्ते तपस्विनः॥४५॥
तपसा तोषमापन्नास्तेषां वृन्दावनेश्वरः।
दिदृक्षूणां च मध्येऽसावाविर्भूय कृपानिधिः॥४६॥
एकेन वपुषा तेषां प्रेमबद्धो दयाम्बुधिः।
अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया॥४७॥

कृष्णवचसा भयसंत्रस्तमानसाः गोपालाः कृष्णस्य परमात्मनः एतत् वचनम् श्रुत्वा ये तद् वनम् गताः ते तदन्तिके स्त्रीत्वम् प्रापुः। महाभागे! ये च अन्ये मनस्विनः महात्मानः गोपालाः तपस्विनः वनवासिनः निवसन्ति ते तपसा तोषम् आपन्नाः। असौ कृपानिधिः वृन्दावनेश्वरः तेषाम् दिदृक्षूणाम् मध्ये आविर्भूय एकेन वपुषा दयाम्बुधिः तेषाम् प्रेमबद्धः क्रीडति अन्येन वपुषा वृन्दावने राधया (सह) क्रीडति।

कृष्ण की वाणी से सभी गोपाल भयभीत हो गये। परमात्मा श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर जो लोग उस वन में गये थे, वे उस वन में जाकर स्त्रीत्व को प्राप्त हो गये और हे महाभागे! जो अन्य मनस्वी महात्मा वनवासी तपस्वी गोपाल थे, वे वहाँ रहने लगे तथा तप द्वारा उन्होंने सन्तोष प्राप्त कर लिया। वृन्दावनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दर्शन करने की इच्छा वाले उनके बीच प्रकट हो गये। वे कृपानिधि श्रीकृष्ण एक शरीर से उन वनवासियों के साथ

विहार करते हैं और दूसरे शरीर से वृन्दावन में श्रीमती राधिका जी के साथ क्रीड़ा करते हैं।।४३-४७।।

श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्या चन्द्रावल्या च मायया।
गोपवेशधरो गोपैर्गोपीभी रसविग्रहः।।४८।।
शृङ्गारोचितवेशाढ्यः श्रीमद्गोपालनागरः।

गोपवेशधरः रसविग्रहः श्रीमद्गोपालनागरः श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्या च मायया चन्द्रावल्या गोपीभिः गोपैश्च शृङ्गारोचितवेशाढ्यः (सन् क्रीडति)।

गोपवेशधारी, रसविग्रह, श्रीमद्गोपालनागर श्रीकृष्ण श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा, माया चन्द्रावली एवं अन्य गोपियों और गोपालों के साथ शृङ्गारोचित वेश बनाकर खेलते हैं।।४८।।

गोपिकास्तत्र या भद्रे ताः शृणुष्व वदामि ते।।४९।।
तासां नामगुणाख्याने सुखं मे जायते भृशम्।

भद्रे ! तत्र याः गोपिकाः ताः ते वदामि; शृणुष्व—तासाम् नामगुणाख्याने मे भृशम् सुखम् जायते।

भद्रे! वहाँ जो गोपियाँ हैं, उन्हें मैं तुझे बताता हूँ। सुनो! उनके नाम, गुण आदि के वर्णन से मुझे निश्चित ही सुख मिलता है।।४९।।

श्रीराधा या पराशक्तिः स्वयं श्रीकृष्णरूपिणी।।५०।।
नित्या रसमयी शक्तिः श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी।
चन्द्रावली तथा चान्या त्रिपुरादेहसम्भवा।।५१।।
राधाविरहबाधाभिर्बाधितस्येश्वरस्य च।
क्रीडार्थं निर्मिता देव्यश्चन्द्रकोटिसुशीतलाः।।५२।।
चन्द्रावलीति विख्याता नागरीवृन्दवन्दिता।
विरहानलतप्ताङ्गस्याह्लादमकरोद्यतः ।।५३।।
चन्द्रावलीति लोकेऽस्मिन् गीयते चन्द्रभाः समा।
ललिताख्या परा देवी या साक्षाद् भुवनेश्वरी।।५४।।

श्रीकृष्णरूपिणी या पराशक्तिः नित्या रसमयी शक्तिः स्वयम् श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा, तथा चन्द्रावली अन्याः च त्रिपुरदेहसम्भवाः, राधाविरहबाधाभिः बाधितस्य ईश्वरस्य क्रीडार्थं चन्द्रकोटिसुशीतलाः देव्यः निर्मिताः, नागरीवृन्दवन्दिता विख्याता चन्द्रावली विरहानलतप्ताङ्गस्य आह्लादमकरोद्यतः। इति अस्मिन् लोके चन्द्रभाः समा चन्द्रावली गीयते। परा देवी ललिताख्या या साक्षात् भुवनेश्वरी (अस्ति)।

श्रीकृष्णरूपिणी जो परा रसमयी नित्या शक्ति हैं, वह स्वयं श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी हैं। दूसरी अन्य त्रिपुरसुन्दरी के देह से उत्पन्न चन्द्रावली हैं। राधाजी के विरह से पीड़ित श्रीकृष्णचन्द्र की क्रीड़ा के लिए करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा के समान शीतल देह वाली (गोपियाँ) बनायी गयीं। नागरीवृन्द से वन्दित प्रसिद्ध देवी चन्द्रावली राधाविरह से सन्तप्त अंग श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए उत्पन्न हुई हैं। इसीलिए इस लोक में चन्द्रकान्ति वाली इसको चन्द्रावली कहा जाता है। इसके अतिरिक्त परा देवी स्वयं ललिता जी साक्षात् भुवनेश्वरी हैं।।५०-५४।।

रिरंसुर्भगवान् कृष्णो रतिकालेऽन्यमानसाम्।
आलक्ष्य तां महादेवीं त्यक्त्वान्यां वशमागतः।।५५।।
तेन दोषेण सा देवी च्युता वृन्दावनादतः।
तस्या एकांशतः पुंस्त्वान्नारदश्चाऽभवन्मुनिः।।५६।।

भगवान् श्रीकृष्णः रतिकाले रिरंसुः ललिताम् महादेवीम् अन्यमानसाम् आलक्ष्य ताम् त्यक्त्वा अन्याम् वशमागतः। अतः सा देवी तेन दोषेण वृन्दावनात् च्युता। तस्याः एकांशतः पुंस्त्वात् नारदः मुनिः अभवत्।

ललिता के साथ रमण करने की इच्छा वाले भगवान् कृष्ण ने रतिकाल में ललिता को अन्यमनस्क देखकर उन्हें छोड़ दिया और दूसरी गोपिका में आसक्त हो गये। उस (अन्यमनस्कता) दोष के कारण वह देवी वृन्दावन से च्युत हो गयी। उसके एक अंश से पुंस्त्व के कारण महामुनि नारद जी उत्पन्न हुए।।५५-५६।।

विशाखाऽन्या तथा श्यामा पद्मा शैव्या च भद्रिका।
तारा विचित्रा गोपाली पालिका चन्द्रशालिका।।५७।।

अन्या विशाखा तथा श्यामा पद्मा शैव्या भद्रिका चन्द्रशालिका गोपाली पालिका विचित्रा तारा च।

अन्य गोपियाँ विशाखा, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रिका तारा विचित्रा गोपाली और और चन्द्रशालिका हैं।।५७।।

मङ्गला विमला वीणा तरलाक्षी मनोरमा।
कन्दर्पमञ्जरी मञ्जुभाषिणी चाञ्जनेक्षणा।।५८।।
कुमुदा कैरवी सारी शारदाक्षी विशारदा।
शङ्करी कुङ्कुमा कृष्णा साराङ्गीन्द्रावली शिवा।।५९।।
तारावली गुणवती सुमुखी केलिमञ्जरी।

हारावली चकोराक्षी भारती कामिलादिकाः॥६०॥
एताः संक्षेपतः प्रोक्ताः श्रेष्ठा गोपकुमारिकाः।
राधाङ्गसम्भवाः कोटिसंख्या वै वरयोषितः॥६१॥

मंगला, विमला, वीणा, तरलाक्षी, मनोरमा, कन्दर्पमञ्जरी, मञ्जुभाषिणी, अञ्जनेक्षणा, कुमुदा, कैरवी, सारी, शारदाक्षी, विशारदा, शंकरी, कुंकुमा, कृष्णा, साराङ्गी, इन्द्रावली, शिवा, तारावली, गुणवती, सुमुखी, केलिमञ्जरी, हारावली, चकोराक्षी भारती, कामिला, आदिकाः एताः श्रेष्ठाः गोपकुमारिकाः संक्षेपतः प्रोक्ताः एताः कोटिसंख्याः वरयोषितः राधाङ्गसम्भवाः।

मंगला, विमला, वीणा, तरलाक्षी, मनोरमा, कन्दर्पमञ्जरी, मञ्जुभाषिणी, अञ्जनेक्षणा, कुमुदा, कैरवी, सारी, शारदाक्षी, विशारदा, शङ्करी, कुङ्कुमा, साराङ्गी, इन्द्रावली, शिवा, तारावली, गुणवती, सुमुखी, केलिमञ्जरी, हारावली, चकोराक्षी, भारती तथा कामिला आदि हैं। इनके अतिरिक्त राधा के अङ्ग से उत्पन्न करोड़ों श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं।।५८-६१।।

राधायाश्च प्रियाः सख्यो यास्ताः शृणु वरानने।
सुचित्रा चम्पकलता रङ्गदेवी सुदेविका॥६२॥
तुङ्गविद्येन्दुलेखा च मण्डली मणिकुण्डला।
कुरङ्गाक्षी मालती च माधवी च मदालसा॥६३॥
मञ्जुला चन्द्रतिलका सुमध्या मधुरेक्षणा।
मञ्जुमेधा शशिकला गुणचूडा वराङ्गदा॥६४॥
कमला कामलतिका सुरङ्गी प्रेममञ्जरी।
माधुरी चन्द्रिका चन्द्रा सुबला तनुमध्यमा॥६५॥
कन्दर्पसुन्दरी मञ्जुकेशी केशवमोहिनी।
इत्याद्या रूपशीलाढ्या प्राणतुल्याः किशोरिकाः॥६६॥

हे वरानने! याः राधायाः प्रियाः सख्यः ताः शृणु—सुचित्रा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, सुदेविका, तुङ्गभद्रा, इन्दुलेखा, मणिकुण्डला, मण्डली, कुरंगाक्षी, मालती, माधवी, मदालसा, मञ्जुला, चन्द्रतिलका, सुमध्या, मधुरेक्षणा, मञ्जुमेधा, शशिकला, गुणचूडा, वराङ्गदा, कमला, कामलतिका, सुरङ्गी, प्रेममञ्जरी, माधुरी, चन्द्रिका, चन्द्रा, सुबला, तनुमध्यमा, कन्दर्पसुन्दरी, मञ्जुकेशी, रूप-शीलाढ्या केशवमोहिनी इत्याद्याः प्राणतुल्याः कुमारिकाः।

हे सुन्दर आनन वाली ब्राह्मणी! जो राधाजी की प्रिय सखियाँ हैं, उन्हें सुनो—सुचित्रा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, सुदेविका, तुङ्गभद्रा, इन्दुलेखा, मणि-कुण्डला, मण्डली, कुरङ्गाक्षी, गुणचूडा, वराङ्गदा, कमला, कामलतिका,

सुरङ्गी, प्रेममञ्जरी, माधुरी, चन्द्रिका, चन्द्रा, सुबला, तनुमध्यमा, कन्दर्पसुन्दरी, मञ्जुकेशी आदि कुमारिका रूप एवं शील से युक्त श्रीकृष्ण को मोहित करने वाली तथा उनके (राधा के) प्राण के समान हैं॥६२-६६॥

अन्याः शृणु सखीस्तस्या लासिका केलिकन्दली।
कादम्बरी शशिमुखी चन्द्ररेखा प्रियंवदा॥६७॥
मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभाषिणी।
रत्नवेणी मणिमती कर्पूरतिलकोज्ज्वला॥६८॥
एता वृन्दावनेश्वर्याः प्रायः सारूप्यमागताः।

तस्याः अन्याः सखीः शृणु—लासिका, केलिकन्दली, कादम्बरी, शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियंवदा, मदोन्मदा, मधुमती, वासन्ती, कलभाषिणी, रत्नवेणी, मणिमती, कर्पूरतिलका, उज्ज्वला एताः (सख्यः) प्रायः वृन्दावनेश्वर्याः सारूप्यम् आगताः।

श्रीराधिका जी की अन्य सखियों के नाम सुनो—लासिका, केलिकन्दली, कादम्बरी, शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियंवदा, मदोन्मदा, मधुमती, वासन्ती, कलभाषिणी, रत्नवेणी, मणिमती, कर्पूरतिलका, उज्ज्वला आदि सखियाँ प्रायः श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा के समान रूप वाली हैं॥६७-६८॥

अन्या सख्यो महादेव्या मनोज्ञा मणिमञ्जरी॥६९॥
सिन्दूरा चन्दनवती कौमुदी मदिरालसा।
काननादिगताः सख्यो वृन्दाकुन्दलतादिकाः॥७०॥
कामदा नाम या देवी सखीभावे विशेषभाक्।
महालक्ष्मी समानैता राधया तुलिता गुणैः॥७१॥

अन्याः सख्यः महादेव्याः मनोज्ञाः—मणिमञ्जरी, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी, मदिरालसा। काननादिगताः सख्यः वृन्दा कुन्दलता आदिकाः। या कामदा नाम देवी सा सखीभावे विशेषभाक्। एताः महालक्ष्मीसमानाः, गुणैः राधया तुलिताः।

अन्य सखियाँ महादेवी राधा को अतिप्रिय हैं, जिनमें मणिमञ्जरी, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी और मदिरालसा हैं। वनभाव में प्रविष्ट सखियों में वृन्दा और कुन्दलतिका आदि हैं। कामदा नाम की देवी सखी-भाव में विशेष स्थान रखती हैं। ये सभी महालक्ष्मी के समान हैं तथा गुणों में श्रीराधा जी के समान हैं॥६९-७१॥

कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटिक्षोभकराः पराः।
राधाज्ञावशवर्तिन्यः श्रीकृष्णसुखदायिकाः।।७२।।
यासां कटाक्षमात्रेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
कृतार्थमिव मन्यन्ते स्वात्मानं जगदीश्वराः।।७३।।

राधाज्ञावशवर्तिन्यः एताः सख्यः श्रीकृष्णसुखदायिकाः कटाक्षमात्रतः कोटिब्रह्माण्डक्षोभकराः। पराः यासाम् कटाक्षमात्रेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः जगदीश्वराः स्वात्मानम् कृतार्थम् इव मन्यन्ते।

राधाजी की आज्ञा वशवर्त्तिनी ये सखियाँ श्रीकृष्ण को सुख देने वाली हैं। ये कटाक्षमात्र से करोड़ो ब्रह्माण्डों में क्षोभ उत्पन्न कर सकती हैं। ये नित्य श्रीकृष्णपरायणा हैं। इनके कटाक्षपात मात्र से ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि जगत् के स्वामी स्वयं को कृतार्थ मानते हैं।।७२-७३।।

अथ वृन्दावनेशस्य दासदासीगणान् शृणु।
मधुपिङ्गलपुष्पाङ्गहासाङ्काद्या विदूषकाः।।७४।।
कडारभारती बन्धचारुवेषादयो विटाः।
चेटा भङ्गुरभृङ्गारसन्धिकप्रहिणादयः।।७५।।
रक्तकः पत्रकः पत्री मधुकम्बो मधुव्रतः।
शालिकास्तालिको माली भानुमालाधरादयः।।७६।।
तद्(?ते) वेणु शृङ्गमुरलीयष्टिपाशादिधारिणः।
पृथुकाः पार्श्वगाः केलिकलापालापकौशलाः।।७७।।

अथ वृन्दावनेशस्य दासदासीगणान् शृणु—मधुपिङ्गलपुष्पाङ्गहासांकाद्याः विदूषकाः, कडारभारती बन्धचारुवेषादयः विटाः, चेटाः च भृङ्गुरभृङ्गार-सन्धिकप्रहिण-आदयः। रक्तकः, पत्रकः, पत्री, मधुकम्बः, मधुव्रतः, शालिकः, तालिकः माली, भानुः मालाधर-आदयः, वेणुशृङ्गमुरलीयष्टिपाशादिधारिणः पृथुकाः पार्श्वगाः केलिकलाप-आलाप-कौशलाः।

अब वृन्दावनेश के दास-दासियों के नाम सुनो—मधु, पिङ्गल, पुष्पाङ्ग और हासांक आदि विदूषक हैं। कडारभारती, बन्ध, चारुवेष आदि विट हैं। भङ्गुर, भृङ्गार, सन्धिक और प्रहिण आदि चेट हैं। रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकम्ब, मधुव्रत, शालिक, तालिक, भानु, मालाधर आदि श्रीकृष्ण के वेणु शृंग मुरली यष्टि पाश आदि को धारण करने वाले दास हैं। कुछ पास में रहने वाले छोटे बालक हैं। वे क्रीड़ा-कलाप और आलाप में कुशल हैं।।७४-७७।।

पल्लवो मङ्गलः फुल्लः कोमलः कपिलस्तथा।
सुविशालविशालाक्षरसालरसशालिनः ।।७८।।

जम्बुनाद्याश्च ताम्बूलपरिष्कारविचक्षणाः।
पयोदवारिदाद्याश्च नीरसंस्कारकारिणः॥७९॥

पल्लवः, मङ्गलः, फुल्लः, कोमलः, कपिलः, तथा सुविशालः विशालाक्षः रसालः, रसशालिनः, जम्बुनाद्याः च ताम्बूलपरिष्कारविचक्षणाः, पयोदवारिदाद्याः च नीरसंस्कारकारिणः (सन्ति)।

पल्लव, मङ्गल, फुल्ल, कोमल, कपिल, सुविशाल तथा विशालाक्ष रसाल हैं। जम्बुनाद आदि पान लगाने में कुशल हैं। पयोद और वारिद आदि जल का संस्कार करने वाले दास हैं।।७८-७९।।

वस्त्रसंस्कारनिपुणाः सारङ्गबकुलादयः।
प्रेमकन्दो महागन्धसैरिन्ध्रमधुकन्दलाः॥८०॥
मकरन्दादयश्चामी सदा शृङ्गारकारिणः।
सुमनाः कुसुमोल्लासपुष्पहासहरादयाः॥८१॥
गन्धाङ्गरागमाल्यादिपुष्पोपस्कारकारिणः ।
केशसंस्कारकुशलौ सुबन्धुकरभाजनौ॥८२॥

सारङ्गः बकुलः—आदयः वस्त्रसंस्कारनिपुणाः। प्रेमकन्द-महागन्ध-सैरिन्ध्र-मधुकन्दलाः मकरन्द—आदयः च अमी सदा शृङ्गारकारिणः। सुमनाः-कुसुमोल्लास-पुष्पहास-अहरादयः गन्धाङ्गरागमाल्यादिपुष्प-उपस्कारकारिणः। सुबुन्धुकरभाजनौ केशसंस्कारकुशलौ।

सारङ्ग और बकुल आदि कपड़ों के संस्कार करने में कुशल हैं। प्रेमकन्द, महागन्ध, सैरिन्ध्र, मधुकन्दल और मकरन्द आदि ये सभी सदा शृङ्गार करने में कुशल हैं। सुमना, कुसुमोल्लास, पुष्पहास और हर आदि गन्ध अङ्गराग तथा माला आदि बनाकर पुष्पों का संस्कार करने वाले हैं। सुबन्धु एवं करभाजन बालों को संवारने में निपुण हैं।।८०-८२।।

कर्पूरकुमुदावेतौ दर्पणार्पणकर्मणि।
शीतलः प्रगुणः स्वक्षो विमलः कमलस्तथा॥८३॥
स्थानपीठधरा एते परिचर्यापरायणाः।
धनिष्ठा चन्दनकला गुणमालारतिप्रभाः॥८४॥
धरणी सुप्रभाशोभारम्भाद्याः परिचारिकाः।
गृहसम्मार्जनालेपक्षीरावर्तादिकोविदाः ॥८५॥
चेट्यः कुरङ्गीभृङ्गारीसुलम्बालम्बिकादिकाः।

एतौ कर्पूरकुमुदौ दर्पणार्पणकर्मणि कुशलौ। शीतलः प्रगुणः स्वक्षः

विमलः तथा कमलः एते स्थानपीठधराः परिचर्यापरायणाः। धनिष्ठा, चन्दन-कला, गुणमाला, रतिप्रभा धरणी, सुप्रभा, सोभा, रम्भ-आद्याः परिचारिकाः गृहसम्मार्जनालेप-क्षीरावर्तादिकोविदाः। कुरङ्गी, भृङ्गारी, सुलम्बा, लम्बिका आदिकाः चेट्यः कोविदाः।

कर्पूर और कुमुद—ये भगवान् को दर्पण अर्पण करने में कुशल हैं। शीतल, प्रगुण, स्वक्ष, विमल तथा कमल—ये सब स्थानपीठ की सेवा करने में सदा लगे रहते हैं। धनिष्ठा, चन्दनकला, गुणमाला, रतिप्रभा, धरणी, सुप्रभा, शोभा तथा रम्भा आदि सेविकाएँ हैं। घर को बुहारने, धोने, पोंछने, लीपने और दूधमन्थन के कार्य में कुरङ्गी, भृङ्गारी, सुलम्बा, लम्बिका आदि दासियाँ कुशल हैं।।८३-८५।।

चतुरश्चारणो धीमान् पेशलाद्याश्चरोत्तमाः।।८६।।
चरन्ति गोपगोपीषु नानावेषेण ये सदा।
दूती(?त्यो) विशारदोत्तुङ्गवावदूकमनोरमाः।।८७।।
नीतिसारादयः केलिकलौ वामाकुलेषु च।
वृन्दावृन्दारिकासेनासुबालाद्याश्च दूतिकाः।।८८।।

धीमान् चतुरः चारणः, पेशलाद्याः चरोत्तमाः। ये सदा नानावेषेण गोपगोपीषु चरन्ति। विशारदा उत्तुङ्गा वावदूकमनोरमाः च दूत्यः। नीतिसारादयः वामाकुलेषु केलिकलौ प्रवीणः। वृन्दा, वृन्दारिका, सेना, सुबालाद्याः च दूतिकाः सन्ति।

धीमान् (नामक गोप) चतुर चारण है। पेशल आदि उत्तम चर हैं, जो सदा अनेक प्रकार के वेश बनाकर गोप और गोपियों में संचरण करते हैं। विशारदा उतुङ्गा वावदूका और मनोरमा दूतियाँ हैं। स्त्रियों में केलिकल अर्थात् मधुर क्रीड़ा में प्रवीण नीतिसारा आदि सेविकाएँ हैं। वृन्दा, वृन्दारिका, सेना तथा सुबाला आदि दूतिकाएँ हैं।।८६-८८।।

कुब्जादिसंस्क्रियाभिज्ञा वृन्दा तासु वरीयसी।
वीणानाम वरा दूती ख्याताऽन्या पूजिता वने।।८९।।
शोभना द्वीपनाद्याश्च दीपिकाधारिणी मताः।
विचित्रवार(?द)मधुरा वाराद्यास्तस्य वन्दिनः।।९०।।

याः कुब्जादिसंस्क्रियाभिज्ञाः तासु वृन्दा वरीयसी। वीणा नाम ख्याता अन्या वरा दूती वने पूजिता। शोभना द्वीपना-आद्याः च दीपिकाधारिणीः(?ण्यः) मताः। विचित्रवादमधुरा वाराद्याः तस्य वन्दिनः।

ये दूतिकाएँ कुब्ज आदि की संस्कार क्रिया में पारङ्गत हैं। इनमें वृन्दा

सबसे बड़ी हैं। वीणा नाम की अन्य प्रसिद्ध सेविका भी हैं, जो वन में पूजित हैं। शोभना और द्वीपना आदि दीपक धारण करने वाली दासियाँ हैं। विचित्र वाद में मधुरता उत्पन्न करने वाले वार आदि उन श्रीकृष्ण का गुणगान करने वाले वन्दी हैं॥८९-९०॥

विद्याधरा वयं कान्ते! गोविन्दवशवर्तिनः।
चन्द्रभाससूर्यभासप्रभासोद्भासभासकाः ॥९१॥
सुशर्मा नर्मदश्चैव रतिहासौ रतिप्रियः।
इत्याद्या देवगन्धर्वा वृन्दावननिवासिनः॥९२॥

कान्ते! वयम् विद्याधराः गोविन्दवशवर्तिनः। चन्द्रभास-सूर्यभास-प्रभास-उद्भास-भासकाः सुशर्मा नर्मदः रतिहासः रतिप्रियः च इत्याद्या वृन्दावन-निवासिनः देवगन्धर्वाः।

हे कान्ते! हम विद्याधर श्रीगोविन्द के वश में रहते हैं। इनमें चन्द्रभास, सूर्यभास, प्रभास, उद्भास, भास, सुशर्मा, रतिहास, रतिप्रिय और नर्मद आदि वृन्दावन में निवास करने वाले देवगन्धर्व हैं॥९१-९२॥

सुशर्मेति च मन्नाम गोविन्दप्रियबान्धवः।
नानायन्त्रकलाभिज्ञो नानाविद्याविशारदः॥९३॥
सुन्दरः शोभनवचाः सुकण्ठो मधुराकृतिः।
मद्गीतरागश्रवणे गोविन्दप्रीतिरुत्तमा॥९४॥

मत् नाम सुशर्मा इति। गोविन्दप्रियबान्धवः नानायन्त्रकला-अभिज्ञः नाना-विद्याविशारदः शोभनवचाः सुकण्ठः सुन्दरः मधुराकृतिः। मद्गीतरागश्रवणे गोविन्दस्य उत्तमा प्रीतिः (आसीत्)।

मेरा नाम सुशर्मा है। (मैं) गोविन्द का प्रिय बान्धव, नाना यन्त्रों की कला में प्रवीण, अनेक विद्याओं में पारङ्गत, सुन्दर, सुन्दर वचन वाला, सुन्दर आकृति वाला और मधुर कण्ठ वाला हूँ। मेरे गीत-राग को सुनने में श्रीगोविन्द की उत्तम प्रीति थी॥९३-९४॥

रसावेशस्य समये राधया पद्मलोचने।
कृष्णेन निर्मितः पूर्वं सङ्गीतश्रवणेच्छया॥९५॥
निर्माय सुन्दरतरं मामुवाच महाप्रभुः।
अनन्यचेताः सततं ममैव कुरु सेवनम्॥९६॥
ममाज्ञापालनं नित्यं धर्मोऽयं तव सुव्रत।
धर्मादस्मात् परिभ्रष्टो मदन्यमानसो भवान्॥९७॥

लोकादस्मात् च्युतो नित्यं भविष्यति(?सि) नृपात्मजः।
पुनर्मान्धातृतनयः तनय त्वं भविष्यसि॥९८॥

पद्मलोचने! रसावेशस्य समये संगीतश्रवणेच्छया राधया श्रीकृष्णेन च पूर्वं निर्मितः सुन्दरतरं निर्माय महाप्रभुः माम् उवाच—अनन्यचेताः सन्ततम् मम एव सेवनम् कुरु। हे सुव्रत! मम आज्ञापालनम् नित्यम् (कर्त्तव्यम्)। अयम् तव धर्मः। तनय! मद् अन्यमानसो भवान् अस्माद् धर्मात् परिभ्रष्टः अस्माद् लोकात् च्युतः नित्यम् नृपात्मजः पुनः मान्धातृतनयः त्वम् भविष्यति।

हे कमलवत् नेत्र वाली! रसावेश के समय संगीत के सुनने की इच्छा वाले राधिका और श्रीकृष्ण ने पूर्वकाल में मेरा निर्माण कर मुझे सुन्दरतर बनाया और महाप्रभु श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि अनन्यचित्त होकर निरन्तर मेरी सेवा करो। हे सुव्रत! यदि तुम इस धर्म से पतित हो गये तो इस लोक से भी पतित हो जाओगे, और हे पुत्र! पुनः राजा मान्धाता के पुत्र के रूप में पृथ्वी पर जन्म प्राप्त करोगे॥९५-९८॥

मुचकुन्दाभिधः सूर्यवंशे संशितविक्रमः।
ब्राह्मणत्वं पुनः प्राप्य मद्भावगतकिल्विषः॥९९॥
प्राप्स्यसीदं परं धामेत्युक्तं भगवता पुरा।
त्वमेव राधिकाया श्रीकटाक्षप्रभवा सती॥१००॥
सुकण्ठा सुदती श्यामा सुन्दरी गुणमन्दिरम्।
नृत्यगीतकलाभिज्ञा नानारसविशारदा॥१०१॥
मदर्थं निर्मिता देव्या मत्वा मां कामकश्मलम्।

सूर्यवंशे संशितविक्रमः मुचकुन्द-अभिधः मद्भावगतकिल्विषः ब्राह्मणत्वम् प्राप्य पुनः इदम् परम् धाम प्राप्स्यसि इति भगवता पुरा उक्तम्। राधिकायाः श्रीकटाक्षप्रभवा सती सुकण्ठा, सुदती, श्यामा नृत्यगीतकलाभिज्ञा नानारस-विशारदा सुन्दरी गुणमन्दिरम् त्वम् एव माम् कामकश्मलम् मत्वा देव्या मदर्थम् निर्मिता।

हे प्रिये! भगवान् ने पहले ही मुझसे कह दिया था कि तू सूर्यवंश में अतिख्यातिप्राप्त मुचकुन्द नाम का राजा बनेगा तथा मुझमें भक्ति रखने के कारण पापरहित हो ब्राह्मणत्व प्राप्त करके पुनः इस परम धाम को प्राप्त करेगा। श्रीराधिका जी के श्रीकटाक्ष से उत्पन्न, सुन्दर कण्ठ वाली, सुन्दर दाँतों वाली, सुन्दरी, श्यामा, नृत्य-गीत कला में चतुर, अनेकों रसों के मर्म को जानने वाली गुणों की निवासस्थान तुमको मुझे कामार्त जानकर देवी राधा ने मेरे लिए बनाया था॥९९-१०१॥

सुभृत्यं चा(?ह्य)तिप्रियं भर्तुर्नानागुणविशारदम्॥१०२॥
नृत्यगीतान्तरत्वं वै दातुं मह्यं शुचिस्मिते।
विद्याधरी विशालाक्षी नाम्ना विष्णुप्रिया प्रिये॥१०३॥

प्रिये! भर्तुः अतिप्रियम् नानागुणविशारदम् हि सुभृत्यम् नृत्यगीतान्तरत्वम् विद्याधरी विशालाक्षी नाम्ना विष्णुप्रिया वै मह्यम् दातुम् (निर्मिता)।

हे प्रिये! शुचिस्मिते! गुणगणों को जानने वाले प्रियतम श्रीकृष्ण के अतिप्रिय सेवक के लिए नृत्य-गीत के बीच में ही विशाल नेत्रों वाली विष्णुप्रिया नाम की विद्याधरी को मुझे प्रदान करने के लिए बनाया था॥१०२-१०३॥

दैवादेवावयोस्तस्मात् च्युतिर्वृन्दावनादिह।
यतस्तत् कथयिष्यामि पश्चादन्यच्छृणुष्व मे॥१०४॥

दैवात् एव आवयोः यतः तस्माद् वृन्दावनात् इह च्युतिः पश्चात् तत् कथयिष्यामि, मे अन्यत् शृणु।

भाग्य से ही हम दोनों की उस वृन्दावन से इस लोक में च्युति हो गयी, इसका कारण मैं तुम्हें बाद में बतलाऊँगा। अब इसके अतिरिक्त जो कहता हूँ, उसे सुनो॥१०४॥

मत्सङ्गिनोऽन्ये सुभगे नर्तकाः सुमनोहराः।
चन्द्रहासेन्दुहासौ च श्रीमांश्चन्द्रमुखादयः॥१०५॥
सुधाकरसुधानादशारङ्गाद्या मृदङ्गिनः।
कलावन्तश्च महतीवादिनो गुणसागराः॥१०६॥
कलकण्ठः सुकण्ठश्च सुधाकण्ठो मधुस्वरः।
भारतः शारदो विद्याविलासः सरसादयः॥१०७॥
सर्वप्रबन्धनिपुणा रसज्ञास्तालधारिणः।

सुभगे! मत्सङ्गिनः अन्ये चन्द्रहास-इन्दुहास-श्रीमान्-चन्द्रमुख-आदयः सुमनोहराः नर्तकाः। सुधाकरः सुधानादः शारङ्गाद्याः मृदङ्गिनः। कलकण्ठः सुकण्ठः सुधाकण्ठः मधुस्वरः भारतः शारदः विद्याविलासः सरस-आदयः कलावन्तः गुणसागराः महतीवादिनः आसन्। इमे सर्वप्रबन्धनिपुणाः रसज्ञाः तालधारिणः आसन्।

हे सुन्दर भाग्य वाली! मेरे अन्य सहचरों में चन्द्रहास, इन्दुहास, श्रीमान्, चन्द्रमुख आदि नर्तक थे। सुधाकर, मधुस्वर, भारत, शारद, विद्याविलास, सरस आदि अनेक कलाओं को जानने वाले, गुणों के सागर,

अनेक वाद्यों को बजाने वाले थे। ये सभी समस्त प्रबन्ध में कुशल, रस के ज्ञाता तथा ताल को जानने में प्रवीण थे।।१०५-१०७।।

कञ्चुकादिपरिस्कारी रोचिको रुचिराननः।।१०८।।
निर्णेजकास्तु सुमुखो दुर्लभो रञ्जनादयः।
वर्धमानो विश्वकर्मा खट्वारथकृदुत्तमः।।१०९।।

रोचिकः रुचिराननः कञ्चुकादिपरिस्कारी। सुमुखः रञ्जनादयः तु दुर्लभः निर्णेजकाः। वर्धमानः विश्वकर्मा उत्तमः खटवारथकृत्।

रोचिक एवं रुचिरानन कञ्चुक आदि कपड़ों का परिस्कार करने वाले थे। सुमुख एवं रञ्जन आदि दुर्लभ वस्त्रों को धोने वाले धोबी थे। वर्धमान और विश्वकर्मा शय्या और उत्तम रथ बनाने वाले थे।।।१०८-१०९।।

सुचित्रश्च विचित्रश्च ख्यातौ चित्रकरावुभौ।
दामसन्धानकुचरपेटीसिक्त्यादिधारिणः ।।११०।।
कुन्तकन्तोलकारकाः करन्तकटुलादयः।
मन्थस्य परिकर्तारौ ख्यातौ पवनकर्मठौ।।१११।।
गृहाङ्गणमहोद्यानसम्मर्जिनकराः प्रिये।

प्रिये! सुचित्रः विचित्रः च उभौ ख्यातौ चित्रकरौ। पवनकर्मठौ मन्थस्य परिकर्तारौ ख्यातौ। करन्तकटुलादयः कुन्तकन्तोलकारकाः। इमे दामसन्धान-कुचरपेटी-सिक्त्यादिधारिणः गृहाङ्गणमहोद्यानसम्मार्जनकराः।

प्रिये! सुचित्र और विचित्र दोनों ही विख्यात चित्रकार थे। पवन और कर्मठ विख्यात मन्थ (दधि विलोने वाला रई का डण्डा) के बनाने वाले थे। करन्त और कटुल आदि बालों का संस्कार करने वाले थे। दाम, सन्धान, कुचर पेटी और सिक्ति को धारण करने वाले ये सभी घर, आंगन और उद्यानों के सम्मार्जन में कुशल थे।।।११०-१११।।

पुण्यपुञ्जपुण्यगन्धपुण्यशीलसुशीलकाः ।।११२।।
एते वै मुनयो नित्यं तपसाऽऽराध्य केशवम्।
अनादृत्यापरं वस्तु गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।।११३।।
भजन्त्यनन्यया भक्त्या सर्वे गोविन्दमानसाः।

पुण्यपुञ्जः पुण्यगन्धः पुण्यशीलः सुशीलकाः। एते वै मुनयः सर्वे गोविन्दमानसाः नित्यम् अपरम् वस्तु अनादृत्य गोविन्दम् पुरुषोत्तमम् केशवम् अनन्यया भक्त्या आराध्य भजन्ति।

पुण्यपुञ्ज, पुण्यगन्ध, पुण्यशील और सुशील ये सभी मुनि नित्य तपस्या के द्वारा केशव की आराधना करते हैं। गोविन्द को मन में धारण करने वाले ये अन्य वस्तुओं का तिरस्कार कर गोविन्द-पुरुषोत्तम की अनन्य भक्ति से आराधना करते हैं।।११२-११३।।

ऋषिर्वृद्धश्रवा नाम संसेव्य जगदीश्वरम्।।११४।।
सुरङ्गाख्यः कुरङ्गोऽभूद् वृन्दावनचरः सदा।

वृद्धश्रवाः नाम ऋषिः जगदीश्वरम् संसेव्य सदा वृन्दावनचरः सुरङ्गाख्यः कुरङ्गः अभूत्।

वृद्धश्रवा नाम के ऋषि जगदीश्वर श्रीकृष्ण की सेवा करके सदा वृन्दावन में विचरण करने वाले सुरंग नाम के मृग बन गये।।११४।।

ऋषिर्वेदशिरा नाम तपसाऽऽऽराध्य केशवम्।।११५।।
प्रेमाभिलाषी कृष्णस्य दधिलोलोऽभवत् कपिः।
ऋषीव्याघ्रभ्रमरकावतिभक्तौ महाप्रभोः।।११६।।
भजतः किङ्करौ भूत्वा कृष्णाज्ञावशवर्तिनौ।
अपान्तरतपा नाम(?मा) मुनिराराध्य केशवम्।।११७।।
श्रीकृष्णप्रीतिजनको राजहंसः कलस्वनः।

वेदशिराः नाम ऋषिः तपसा केशवम् आराध्य कृष्णस्य प्रेमाभिलाषी दधिलोलः कपिः अभवत्। व्याघ्रभ्रमरकौ भक्तौ ऋषी भजतः महाप्रभोः कृष्णाज्ञावशवर्तिनौ किङ्करौ भूत्वा (व्यराजताम्)। अपान्तरतमा नामा मुनिः केशवम् आराध्य श्रीकृष्णप्रीतिजनकः कलस्वनः राजहंसः बभूव।

वेदशिरा नाम के ऋषि ने तप से श्रीकृष्ण को प्रसन्न कर कृष्णप्रेम के अभिलाषी दधिलोल बन्दर हुए। व्याघ्र एवं भ्रमर नाम के दोनों भक्त ऋषियों ने श्रीकृष्ण का भजन करते हुए श्रीकृष्ण के आज्ञानुवर्ती सेवकों का पद प्राप्त किया। अपान्तरतमा नाम के मुनि ने श्रीकृष्ण की आराधना करके भगवान् की प्रीति को उत्पन्न करने वाले, मधुर स्वर करने वाले राजहंस का शरीर पाया।।११५-११७।।

शिखिनं कार्तिकेयस्य कृष्णभक्तिपरायणम्।।११८।।
नृत्यन्तं रभसा द्वारि पश्यन्ति वनवासिनः।
मणिमण्डपसम्बद्धौ गोविन्दस्तुतिपाठकौ।।११९।।
अतिप्रीतिकरौ दिव्यौ शुकौ दक्षविचक्षणौ।
ये च दासास्तथा गोपाः पशुवर्गास्तथैव च।।१२०।।

बृहद्वने वसन्त्येते गोविन्दस्य पुरोत्तमे।
संक्षेपात् कथिताः श्रीमद्गोविन्दस्य वरानने॥१२१॥

वनवासिनः कार्तिकेयस्य कृष्णभक्तिपरायणम् शिखिनम् द्वारि रभसा नृत्यन्तम् पश्यन्ति। मणिमण्डपसम्बद्धौ दक्षविचक्षणौ अतिप्रीतकरौ दिव्यौ शुकौ गोविन्दस्तुतिपाठकौ (स्तः)। वरानने! श्रीमद्गोविन्दस्य ये गोपाः दासाः तथैव च पशुवर्गाः (ते) संक्षेपात् कथिताः। एते गोविन्दस्य पुरोत्तमे बृहद्वने वसन्ति।

वृन्दावन में रहने वाले गोपगण कार्तिकेय के श्रीकृष्णभक्तिपरायण मोर को द्वार पर तेजी से नृत्य करता हुआ देखते हैं। मणियों के मण्डप पर स्थित दक्ष और विचक्षण नाम के दो दिव्य तोते श्रीकृष्ण से अति स्नेह करने वाले हैं और सदा उन्हीं का स्तुति-पाठ करते हैं। हे सुन्दर मुख वाली! श्रीमद्गोविन्द के दासों, गोपों और पशुवर्गों का मैंने संक्षेप में वर्णन कर दिया। ये सभी गोविन्द के उत्तमपुर बृहद् वन अर्थात् वृन्दावन में निवास करते हैं॥११८-१२१॥

गोलोकपरिषद्वर्गा उत्तमा ये सुपर्वणाम्।

ये सुपर्वणाम् उत्तमाः गोलोकपरिषद्वर्गाः।

जो देवताओं में उत्तम कोटि के हैं, वे गोलोक की परिषद् के सदस्य हैं।

अथ राधामहादेव्याः शृणु दासीगणान् प्रिये॥१२२॥

प्रिये! अथ राधामहादेव्याः दासीगणान् शृणु।

प्रिये! अब महादेवी राधा के दासीगणों को सुनो॥१२२॥

लवङ्गमञ्जरी रागमञ्जरी गुणमञ्जरी।
भानुमत्यमरप्रेष्ठा सुप्रिया रतिमञ्जरी॥१२३॥
रागलेखाकलाकेलिर्भूरिदाद्याश्च दासिकाः।
नान्दीमुखीबिन्दुमतीत्याद्याः सन्धिविधायिकाः॥१२४॥

लवङ्गमुखीबिन्दुमतीत्याद्याः, गुणमञ्जरी, रतिमञ्जरी, भानुमती, सुप्रिया, अमरप्रेष्ठा, रागलेखा, कलाकेलिः भूरिदा आद्याः दासिकाः। नान्दीमुखी बिन्दुमती इत्याद्याः सन्धिविधायिकाः।

लवङ्गमञ्ञरी, रागमञ्ञरी, रतिमञ्ञरी, भानुमती, सुप्रिया, अमरप्रेष्ठा, रागलेखा, कलाकेलि और भूरिदा आदि दासियाँ हैं। नान्दीमुखी और बिन्दुमती आदि सन्धि कराने वाली दासियाँ हैं॥१२३-१२४॥

सुहृत्पक्षतया ख्याताः श्यामलामङ्गलादिकाः।

प्रतिपक्षतया ख्यातिं गताश्चन्द्रावलीमुखाः॥१२५॥
गन्धर्व्यस्तु कलाकण्ठीसुकण्ठीपिककण्ठिकाः।
कलावत्यो रसोल्लासा गुणतुङ्गस्वरोद्धराः॥१२६॥

श्यामलामङ्गलादिकाः सुहृत्पक्षतया ख्याताः। चन्द्रावलीमुखाः प्रतिपक्षतया ख्यातिम् गताः। कलाकण्ठी-सुकण्ठी-पिककण्ठिकाः कलावत्यः रसोल्लासाः गुणा तुङ्गस्वरोद्धराः तु गन्धर्व्यः (सन्ति)।

श्यामला और मंगला आदि राधिका जी के मित्रपक्ष की प्रसिद्ध सहचरियाँ हैं। चन्द्रावली आदि प्रतिपक्ष की सहचरी के रूप में प्रसिद्ध हो गयी हैं। कलाकण्ठी, सुकण्ठी, पिककण्ठी, कलाओं से युक्त, रस से उल्लसित, उच्च गुण स्वरों को धारण करने वाली गन्धर्वबालाएँ हैं॥१२५-१२६॥

या विशाखकृतं गीतं गायन्त्यः सुखदा विभोः।
वादयन्ते च सुषिरं तानन्द्धधनान्यपि॥१२७॥

याः विभोः सुखदाः विशाखकृतम् गीतम् गायन्त्यः तानन्द्धधनान्यपि (वाद्यानि) सुचिरम् वादयन्ते।

वे श्रीकृष्ण को सुख देने वाली विशाखा द्वारा रचे हुए गीत को गाती हैं तथा उन वंशी एवं तानयुक्त सुमधुर वाद्यों को बजाती हैं॥१२७॥

मानिन्यो नर्मदाप्रेमवतीकुसुमपेशलाः।
सुगन्धा नलिनी चास्याः पादरञ्जनकारिका(?के)॥१२८॥
वस्त्ररङ्गकरे तस्या मञ्जिष्ठा अङ्गवत्यपि।
पालिगन्धी च सैरन्ध्यौ चित्रिणी चित्रकारिणी॥१२९॥
मान्त्रिकी तान्त्रिकी चैव चिन्ताविद्याविशारदे।
तथा कात्यायनीत्याद्या दूतिका वयसाधिकाः॥१३०॥
वाद्यसम्मार्जनकरा सुभाग्यामञ्जुलाभिधा।

नर्मदा, प्रेमवती, कुसुमपेशलाः मानिन्यः। सुगन्धा नलिनी च अस्याः पादरञ्जनकारिके। मञ्जिष्ठा अङ्गवती च तस्याः वस्त्ररंगकरे सैरन्ध्री पालिगन्धी च चित्रिणी चित्रकारिणी। तथा कात्यायनी इत्याद्याः। वयसा-अधिका दूतिकाः। मान्त्रिकी, तान्त्रिकी च चिन्ताविद्याविशारदे। सुभाग्या मञ्जुला अभिधा वाद्यसम्मार्जनकरा।

नर्मदा, प्रेमवती, कुसुम की तरह कोमल हैं और मानिनी हैं। सुगन्धा और नलिनी राधिका जी की महावर लगाने वाली दासियाँ हैं। मंजिष्ठा और अंगवती उनके वस्त्रों को रंगने वाली दासियाँ हैं। सैरन्ध्री और पालिगन्धी

चित्रकर्म में प्रवीण श्रीप्रिया जी को सजाने वाली दासियाँ हैं। कात्यायनी आदि बड़ी उम्र की दासियाँ दूती का काम करती हैं। मान्त्रिकी और तान्त्रिकी दासियाँ चिन्ताविद्या (= ज्योतिष) की विदुषी हैं। सौभाग्यवाली मंजुला नाम की सेविका उनके वाद्ययन्त्रों को ठीक करने वाली है॥१२८-१३०॥

भृङ्गी मल्ली मतल्ली च पुलिन्दकुलनन्दनाः॥१३१॥
मनसाराऽऽध्य गोविन्दं प्रापुस्तस्यैव सन्निधिम्।
ब्राह्मण्यो गार्गी(?र्गि)मुख्याश्च सुमुख्यः शीलसुव्रताः॥१३२॥
दत्तं वृन्दावने याभिर्याचमानाय भोजनम्।
श्रीकृष्णाय सतृष्णाय लब्धमेतत्परं पदम्॥१३३॥

पुलिन्दकुलनन्दनाः भृङ्गी, मल्ली, मतल्ली च गोविन्दम् मनसा आराध्य तस्य एव सन्निधिम् प्रापुः। सुमुख्यः शीलसुव्रताः गार्गीमुख्याः ब्राह्मण्यः वृन्दावने याचमानाय सतृष्णाय श्रीकृष्णाय याभिः भोजनम् दत्तम् (ताभिः) एतत् परम् पदम् लब्धम्।

पुलिन्दकुल को आनन्द देने वाली भृङ्गी, मल्ली, मतल्ली आदि ने मन से गोविन्द की आराधना करके उन्हीं की सन्निधि प्राप्त की। सुन्दर मुख वाली, सदाचारपरायणा जिन गार्गी आदि ब्राह्मणियों ने वृन्दावन में तृष्णा के साथ भोजन माँगने वाले श्रीकृष्ण को भोजन दिया, उन्होंने यह परम पद प्राप्त किया॥१३१-१३३॥

किं वर्णयामि धरणीं सुरसुन्दरीणां
भाग्यानि याः कुलकलङ्कविशङ्कचित्ताः।
लज्जां विहाय पतिपुत्रकुटुम्बवर्गा-
नाक्रुश्य घोरविपिने हरिमेव भेजुः॥१३४॥

सुरसुन्दरीणाम् भाग्यानि किम् वर्णयामि याः कुलकलङ्कविशङ्कचित्ताः धरणीम् लज्जाम् (अहम्) विहाय पतिपुत्रकुटुम्बवर्गान् आक्रुश्य घोरविपिने हरिम् एव भेजुः।

मैं देवाङ्गनाओं के भाग का वर्णन कहाँ तक करूँ? जिन गोपियों ने कुल-कलंक की चिन्ता से मुक्त होकर धरणी अर्थात् हाथी जैसी विशाल अथवा स्वाभाविक लज्जा का त्याग कर पति, पुत्र और कुटुम्बवर्ग के मोह का परित्याग करके गहन वन में श्रीकृष्ण के साथ विहार किया॥१३४॥

हैयङ्गवीनदधिदुग्धविदग्धभक्ष्य-
मिष्ठान्नपाननवपिष्टकतेमनानि ।

सद्योऽनवद्यचरितान्(?ताश्चरितं)चरितान्दधत्यः
स्नेहानबन्धविवसा उपढौकयन्त्यः॥१३५॥

हैयङ्गवीन-दधि-दुग्ध-विदग्धभक्ष्य-मिष्ठान्न-पान-नवपिष्टक (तेमनानि) अनवद्यचरिताश्चरितम् दधत्यः स्नेहानुबन्धविवसा सद्यः उपढौकयन्त्यः (हरिमेव भेजुः)।

माखन, दधि और दूध का भक्षण करने में चतुर, मिष्ठान्न, पान तथा नवपिष्टक=बाटी, तेमन अर्थात् कढ़ी को पवित्र हाथों में ली हुई, पवित्र अनिन्द्य चरित्र वाली, श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण उनके चरित्र को सोचती हुई तथा अपने शरीर से वस्त्र गिर जाने के कारण पुनः शरीर को ढँकने वाली स्नेह के बन्धन में विवश (उन गोपियों के भाग्य का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ)॥१३५॥

यासां स्वकीयसुहृदामनुवृत्तिभाजां
मध्येगता(?तो) मधुरभोजनचारुपानैः।
कृष्णः सतृष्णहृदयः सदयः सदैव
शुद्धेन्द्रियोऽपि जगतामधिपो ययाचे॥१३६॥

अनुवृत्तिभाजाम् स्वकीयसुहृदाम् यासाम् मध्ये गतः मधुरभोजनचारुपानैः शुद्धेन्द्रियः अपि जगताम् अधिपः सदयः सतृष्णहृदयः कृष्णः सदा एव ययाचे।

अपनी (मनो-)वृत्ति के अनुसार आचरण करने वाले जिन अपने मित्रों (गोपियों) के मध्य स्थित शुद्ध इन्द्रिय वाले जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण दया एवं तृष्णायुक्त हृदय से मधुर भोजन, सुन्दर पेय सामग्री जिनसे माँगते हैं (उनके भाग्य का वर्णन कैसे करूँ)॥१३६॥

संयाच्य यज्ञभुगपि प्रथितो व्रजस्य
बालव्रजैः परिवृतो बुभुजे सदन्नम्।
पूर्णोडुराज इव तैः खचरोडुसङ्घैः-
रीषद्विकासमृदुहासमुखः सुखेन॥१३७॥

व्रजस्य प्रथितः ईषद्विकासमृदुहासमुखः अपि बालव्रजैः परिवृतः पूर्णोडुराजः खचरोडुसङ्घैः इव तैः बालव्रजैः सार्द्धम् यज्ञभुग् अपि सदन्नम् संयाच्य सुखेन बुभुजे।

मन्द-मन्द मुस्कान की कान्ति मुख पर फैलाते हुए यज्ञ के भोक्ता होकर भी कृष्ण ने नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह व्रजबालकों से घिरकर सद् अन्न को माँगकर सुख के साथ खाया॥१३७॥

नमस्तस्मै भगवते कस्मैचित् परमात्मने।
स्त्रियोऽपि सविधं नीताः पातितः पुरुषो गुणी॥१३८॥
न लभ्यते दुर्लभः सः चिरसेवनकर्मभिः।
स्त्रीणामपि स्वल्पसेवावशं सद्भाग्यजृम्भितम्॥१३९॥

कस्मैचित् तस्मै परमात्मने भगवते नमः। स्त्रियोऽपि सविधम् नीता गुणी पुरुषः पातितः सः दुर्लभः चिरसेवनकर्मभिः न लभ्यते सः स्त्रीणाम् अपि स्वल्पसेवावशम् (गतः) इदम् सद्भाग्यजृम्भितम्।

उस किसी अर्थात् अद्भुत परमात्मा भगवान् के लिए हमारा प्रणाम है, जिस गुणी पुरुष ने स्त्रियों को भी अपने समीप खींच लिया और झुका लिया। जो परम दुर्लभ हैं तथा चिर सेवाकर्म से भी अप्राप्य हैं, वह स्त्रियों की थोड़ी-सी सेवा से ही उनके वश में हो गया। यह उन स्त्रियों के सद्भाग्य का ही विस्तार है॥१३८-१३९॥

नारद उवाच—

इति विहितविषादः कम्पमानाङ्गयष्टि-
र्वलितनयनपाथोधारयाऽस्या धरायाः।
विपुलपुलकपूर्णोऽप्यार्द्रयन् वेणुराजी-
र्विधिमनवधितापा(?पो) व्याक्षिपन् संरुरोद॥१४०॥

इति विहितविषादः कम्पमानाङ्गयष्टिः विपुलपुलकपूर्णः अस्याः धरायाः वेणुराजीः वलितनयनपाथोधारया अपि आर्द्रयन् अनवधितापः विधिम् व्याक्षिपन् संरुरोद।

नारद जी ने कहा—व्रजवासिनी स्त्रियों के भाग्य का विस्तार-स्मरण करके अत्यन्त दुःखी, काँपते हुए शरीर वाला, गन्धर्व शरीर में विपुल पुलकावलि धारण करके इस बाँस के समूहों की पंक्तियों को नयनों में उमड़ती हुई अश्रुओं की धारा से गीला करते हुए अपने कभी न समाप्त होने वाले तापों वाला वह ब्राह्मण विधाता को धिक्कारता हुआ जोर-जोर से रोने लगा॥१४०॥

अहह हतविधे! त्वं क्रूरकर्मासि सत्यं
घटयसि घटनीयं नो भवेद् यत्कदाचित्।
अखिलरसविलासी शीतलः कृष्णचन्द्रः
कलयति कलयाऽसौ तापतापं ममैव॥१४१॥

अहह हतविधे! सत्यम् त्वम् क्रूरकर्मा असि यत् कदाचित् घटनीयम् न

भवेत् तद् घटयसि। अखिलरसविलासी कलया शीतलः असौ कृष्णचन्द्रः मम एव तापतापम् कलयति।

अरे दुष्ट विधाता! तू सत्य ही क्रूरकर्मा है; (क्योंकि) जो कभी घटित नहीं हो सकता, उसे भी तू कर दिखाता है। अखिल रसों में विलास करने वाले, शीतल वे श्रीकृष्णचन्द्र अपनी कला से मेरे ही लिए कठोर ताप उत्पन्न कर रहे हैं।।१४१।।

त्वमसि कठिनमूर्तिः हा विधे निर्दयस्त्वं
यदिह पतति वत्से नावधत्से कदापि।
कुमुदवदनमुद्रां खण्डयत्येव शीघ्रं
विधुरतिविधुरोऽपि स्मर्यतां कोऽत्र हेतुः।।१४२।।

हे विधे! त्वम् कठिनमूर्तिः असि। त्वम् निर्दयः असि। यत् इह पतति वत्से कदापि न अवधत्से। अतिविधुरः अपि विधुः कुमुदवदनमुद्राम् खण्डयति एव। अत्र को हेतुः शीघ्रम् स्मर्यताम्।

हे विधाता! तुम अति कठिन मूर्ति हो; तुम्हें जरा भी दया नहीं आती, जो यहाँ अपने गिरे हुए बालक पर ध्यान नहीं दे रहे हो। अत्यन्त मलिन भी चन्द्रमा कुमुद के मुख को खिला देता है, इसमें क्या कारण है, शीघ्र सोचो अर्थात् चन्द्रमा का स्वभाव है—कुमुद को खिलाना, वैसे ही आपका भी स्वभाव है—पतित का उद्धार करना।।१४२।।

त्वमसि कठिनकर्मा भिन्नमर्मा जनानां
यदहमिह सुशर्मा नष्टशर्मा बभूव।
पुनरपि न विधातस्तद्विधातव्यमास्तां
जनयति भजनं नो कृष्णपादारविन्दे।।१४३।।

त्वम् कठिनकर्मा असि। त्वम् जनानाम् भिन्नमर्मा असि। यद् इह अहम् सुशर्मा नष्टशर्मा बभूव। न तद् विधातव्यम्, आस्ताम्। अपि पुनः विधातः नो कृष्णपादारविन्दे भजनम् जनयति।

अरे विधाता! तुम कठिनकर्मा हो, तुम लोगों के मर्म को तोड़ देते हो, देखो, मैं सुशर्मा यहाँ नष्टशर्मा (नष्ट कल्याण वाला) हो गया हूँ। फिर मेरे साथ वैसा मत करना। उसे अब रहने देना कि मेरा मन फिर से श्रीकृष्णपादारविन्द का भजन करने में न लगे।।१४३।।

तव भवति चरित्रं चित्रमत्रैव धातः
कुचतरुसविधस्थस्यास्य मध्ये फलानि।

क्वचन सुचिरमुच्चैर्भूरुहारोहभाजं(?जि)
प्रसभमयमकस्माद् दण्डजे दण्डपातः॥१४४॥

धातः! तव चरित्रम् अत्रैव चित्रम् भवति कुचतरुसविधस्थस्य अस्य मध्ये फलानि। क्वचन सुचिरम् उच्चैः भूरुहारोह भाजि दण्डजे अकस्मात् प्रसभम् अयम् दण्डपातः।

हे विधाता! यहाँ भी तुम्हारा चरित्र अत्यन्त विचित्र प्रतीत होता है कि अत्यन्त निकृष्ट कोटि के वृक्षों पर सुन्दर फल लगा देते हो और कभी अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के ऊँचे उगे हुए वृक्षों के ऊपर अकस्मात् भयानक दण्डपात कर देते हो॥१४४॥

सकलभुवनवल्लीमौलिपुष्पायितं यत्
मधुरमधुरमूर्त्या चारुवृन्दावनं सत्।
तदुपरि मम वासं कारयित्वा विधात-
र्भ्रमयसि भवसिन्धावेषकस्ते विडम्बः॥१४५॥

सकलभुवनवल्लीमौलिपुष्पायितम् यत् मधुरमधुरमूर्त्या चारुवृन्दावनम् सत् तद् उपरि मम वासम् कारयित्वा विधातः! भवसिन्धौ भ्रमयति एषः कः ते विडम्बः।

हे विधाता! तुम्हारी यह कैसी विडम्बना है कि तुमने एक ओर सम्पूर्ण भुवनों की शिरोमणिभूत लता पर आये हुए उत्कृष्ट पुष्प की तरह मधुर-मधुरमूर्ति श्रीकृष्ण के कारण सुन्दर वृन्दावन में मेरा निवास कराया और अब वहाँ से पतित करके भवसागर में मुझे घुमा रहे हो॥१४५॥

वृन्दावनेन्द्रमुखदर्शनहर्षराशिः
सन्त्याजितो विघटिता मधुरस्थली सा।
तत्रातिचित्रसुचरित्रकथा गता मे
जागर्ति किन्त्वपरमत्र विधेर्विधेयम्॥१४६॥

विधे! सा मधुरस्थली विघटिता, वृन्दावनेन्द्रमुखदर्शनहर्षराशिः सन्त्याजितः, तत्र मे अतिचित्रसुचरित्रकथा गता किन्तु अत्र विधेः अपरम् विधेयम् जागर्ति।

हे विधाता! तूने मुझे उस मधुरस्थली वृन्दावन से दूर कर दिया है। वृन्दावन के स्वामी श्रीकृष्ण के मुखदर्शन के आनन्द की राशि से मुझे वञ्चित कर दिया है। वृन्दावन की मेरी अद्भुत कथाएं समाप्त हो गयी हैं; किन्तु अब विधाता की दी हुई दुःख की कथा आरम्भ हो गयी है॥१४६॥

पितुरपि निजकीर्तिर्दूषिता पद्मयोने-
र्जनकमनुगतस्य त्वं कुले धूमकेतुः।
जनयति जनकस्ते दुर्जनस्यापि शैत्यं
यदिह भवति नित्यं साधुसन्तापकत्वम्॥१४७॥

पद्मयोने! पितुः निजकीर्तिः अपि दूषिता जनकम् अनुगतस्य कुले त्वम् धूमकेतुः असि। जनकः अनुगतस्य दुर्जनस्य अपि शैत्यं जनयति यद् इह नित्यम् साधुसन्तापकत्वम् भवति।

हे पद्मयोनि ब्रह्मा! तुमने पिता होने की अपनी कीर्ति को दूषित कर दिया है। तुम पिता के अनुगत के कुल के निश्चित ही धूमकेतु हो। कोई भी पिता अपने दुष्ट पुत्र के प्रति भी सदा शीतलता का व्यवहार करता है, किन्तु आपने तो यहाँ अपने साधु स्वभाव वाले पुत्र को भी सन्ताप ही प्रदान किया है।।१४७।।

वृन्दावनेन्द्रमुखचन्द्रसुधापि नूनं
दूरीकृता नयनचारुचकोरवक्त्रात्।
तत्तद्विलासमृदुहासविलोकनं मे
शोकापनोदनकरं हरता विधातः॥१४८॥

विधातः! नूनम् नयनचारुचकोरवक्त्रात् वृन्दावनेन्द्रमुखचन्द्रसुधा अपि तत् तद्विलासमृदुहासविलोकनम् शोकापनोदनकरम् दूरीकृता मे हरता।

हे विधाता! मेरे शोक को दूर करने में समर्थ को हरने वाले तूने मेरे सुन्दर नयनचकोरों के मुख से श्रीवृन्दावनेन्द्र के मुखचन्द्र की सुधा को दूर कर दिया है। विलासपूर्वक तथा मृदुहासपूर्वक देखने की वह भंगिमा।।१४८।।

दुर्भागधेयमवधेयमये यदि स्या-
न्मृत्युं कथं न कुरुषे कुरुषे ह मानम्।
श्रीकृष्णदेवसुखसेवनकारिणो ये
न स्युः किमिन्द्रियवतामपि जीवनेन॥१४९॥

अये! यदि दुर्भागधेयम् अवधेयम् स्यात् तदा मृत्युम् कथम् न कुरुषे? कथम् मानम् कुरुषे? श्रीकृष्णदेवसुखसेवनकारिणः ये न स्युः तदा इन्द्रियवताम् अपि जीवनेन किम्?

अरे विधाता! यदि मेरे भाग्य में दुर्भाग्य ही होना है तो मेरी मृत्यु क्यों नहीं कर देते हो। क्यों मान करके बैठे हो। जो लोग श्रीकृष्णदेव की सुखपूर्वक सेवा नही कर सकते, ऐसे इन्द्रियों वालों के जीवन जीने का क्या लाभ?।।१४९।।

ये कृष्णचन्द्रविमुखा विमुखास्त एव
ये कृष्णचन्द्रविरता विरतास्त एव।
ये कृष्णचन्द्रविरसा विरसास्त एव
ये कृष्णचन्द्रकुधियः कुधियस्त एव॥१५०॥

ये कृष्णचन्द्रविमुखा ते एव विमुखाः, ये कृष्णचन्द्रविरता ते एव विरताः, ये कृष्णचन्द्रविरसा ते एव विरसाः, ये कृष्णचन्द्रकुधियः ते एव कुधीयः।

जो कृष्णचन्द्र से विमुख हैं, वे ही वास्तव में मुखरहित हैं। जो कृष्णचन्द्र से विरत हैं, वे ही वास्तव में प्रेमहीन हैं। जो कृष्णचन्द्र से विरस हैं, वे ही वास्तव में रसहीन हैं। जिनकी बुद्धि श्रीकृष्ण में नहीं रमती, वे ही वास्तव में बुरी बुद्धि वाले हैं॥१५०॥

जीवन्ति जीवनधृतोऽपि न जीवलोके
ये कृष्णचन्द्रचरणाम्बुजमाश्रिता नो।
संसारतापपरितापितसर्वदेहा
वृक्षा यथा खरखरांशुविशुष्कशाखाः॥१५१॥

जीवलोके ये कृष्णचन्द्रचरणाम्बुजम् न आश्रित, ते जीवनधृतो अपि न जीवन्ति। संसारतापपरितापितसर्वदेहा ते खरखरांशुविशुष्कशाखाः वृक्षाः यथा।

जीवलोक में जो लोग श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के आश्रित नहीं हैं, वे जीवित होते हुए भी वृथा जी रहे हैं। संसार के ताप से अपने सम्पूर्ण शरीर को संतप्त करने वाले ये उसी प्रकार हैं, जैसे सूर्य की प्रखर किरणों की ज्वाला से सूखे हुए वृक्ष॥१५१॥

हरिहरिपादाम्भोजसेवा कृता मे
परिहरसि सुखं तद् राधिकाया वनान्ते।
अनुदिनमिह दुःखं दीयते कातरेऽस्मिन्
विरम विरम धातर्बद्ध एषोऽञ्जलिस्ते॥१५२॥

राधिकाया वनान्ते हरिहरिपादाम्भोजसेवा कृता तद् सुखम् परिहरसि। इह अस्मिन् कातरे अनुदिनम् दुःखम् दीयते धातः विरम, विरम। एषः ते अञ्जलिः बद्धः।

श्रीवृन्दावन में प्रिया श्रीराधिका के साथ हरि अर्थात् पापों (दुःखों) को हरने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की जो सेवा मेरे द्वारा की गयी थी, तूने उस सुख को हर लिया है। हे ब्रह्मा! तुम मुझ इस कातर को प्रतिदिन और दुःख दे रहे हो। रुक जाओ, रुक जाओ। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ रहा हूँ॥१५२॥

लावण्यपुञ्जमनुरञ्जनमञ्जुलाभं
श्यामं वपुर्नयनतो नयसि स्म दूरे।
एतावतैव विरमात्र कृतोऽञ्जलिस्ते
कृष्णं हृदो बहिरितो न विधे विधेहि॥१५३॥

लावण्यपुञ्जं अनुरंजनमञ्जुलाभम् श्यामम् वपुः नयनतः दूरे नयसि स्म। अत्र एतावतैव विरम ते अञ्जलिः कृतः। विधे! इतः हृदो कृष्णम् बहिः न विधेहि।

लावण्य के पुञ्ज, मन को आनन्दित करने के लिए मञ्जुल आभा वाले श्याम शरीर (कृष्ण) को तो तूने नेत्रों से बहुत दूर कर दिया। अब हे विधाता! मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि तू अब तो विराम को प्राप्त कर। कम से कम इस हृदय से श्रीकृष्ण को बाहर तो मत निकाल॥१५३॥

वृन्दारवृन्दमपि वृ(?वि)न्दति यत्पदं नो
वृन्दावनादुत ततश्च्यवतश्चिरं मे।
कृष्णस्मृतिं हृदयवर्त्मनि चेत् पिधत्से
किं पौरुषं भवति मूर्च्छितमूर्च्छनेन॥१५४॥

यत् पदम् वृन्दारवृन्दम् अपि विन्दति ततः वृन्दावनाद् चिरम् च्यवतः उत् मे हृदयवर्त्मनि कृष्णस्मृतिम् पिधत्से चेत् अनेन मूर्च्छितमूर्च्छितेन किम् पौरुषम् भवति।

जिस परम पद वृन्दावन को देववृन्द भी नहीं प्राप्त कर पाते, उससे तुमने मुझे दूर कर दिया; किन्तु मेरे हृदयमार्ग में स्थित कृष्ण-स्मृति को भी तुम नष्ट करना चाहते हो। अरे पहले से ही मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छित करने में (तुम्हारा) क्या पौरुष है॥१५४॥

धातर्न चात्र(?त्रा-)परमस्ति पौरुषं
यद् दुःखदावानलदाहितं माम्।
निपात्य तूर्णं भवलावणार्णवे
मायाभ्रमो(?मे) भ्रामयसि प्रकामम्॥१५५॥

धातः! न च अत्र अपरम् पौरुषम् अस्ति यद् दुःखदावानलदाहितम् माम् तूर्णम् भवलावणार्णवे निपात्य मायाभ्रमे प्रकामम् भ्रामयसि।

हे विधाता! इससे बड़ा कोई प्रबल पौरुष है, जो दुःखों के दावानल में दग्ध मुझको संसाररूपी नमक के समुद्र में गिराकर तुम मायाभ्रम (मायारूपी भँवर) में मनमाना भ्रमित कर रहे हो॥१५५॥

मरकतमुकुराभं चारुबिम्बाधरौष्ठं
विमलकमलनेत्रं कुण्डलोद्दण्डगण्डम्।
वितनुकुटिलचापभ्रूलतं दीर्घनासं
पुनरपि भविता चेच्छ्रीमुखं दृक्पथे मे॥१५६॥

मरकतमुकुराभम् चारु बिम्बाधरौष्ठम् विमलकमलनेत्रम् कुण्डलोद्दण्ड-गण्डम् वितनुकुटिलचापभ्रूलतम् दीर्घनासम् श्रीमुखम् पुनः अपि चेत् मे दृक्पथे भविता।

हे विधाता! मरकतमुकुर की आभा वाला, सुन्दर, बिम्बाधरोष्ठों वाला, विमल कमल जैसे नेत्रों वाला, हिलते हुए कुण्डलों से मण्डित गण्डस्थल वाला, प्रत्यञ्चायुक्त धनुष की तरह कुटिल भ्रूलता वाला, दीर्घनासिका वाला वह श्रीमुख दुबारा क्या कभी मेरे दृष्टिपथ पर अवतरित होगा?॥१५६॥

केलीकदम्बतरुराजतले त्रिभङ्ग-
स्फूर्जत्तमालदलकोमलनीलदेहः।
सन्तप्तकाञ्चनसमुज्ज्वलपीतवासा
हासावलोकनमनोभववैभवाढ्यः॥१५७॥

त्रिभङ्गस्फूर्जत् तमालदलकोमलनीलदेहः सन्तप्तकाञ्चनसमुज्ज्वलपीतवासाः हासावलोकनमनोभववैभवाढ्यः केलीकदम्बतरुराजतले (मे दृक्पथे पुनः अपि भविता?)।

चमकते हुए तमालदल की भाँति कोमल नीलवर्ण की त्रिभङ्ग देहयष्टि वाले, तपे हुए सोने की-सी कांति वाले, पीताम्बर पहने मन्द-मन्द हासपूर्ण अवलोकन से मनोभव वैभव से आढ्य (अर्थात् परिपूर्ण) के त्रिभंगी श्रीकृष्ण क्रीड़ाकदम्ब तरुराज के नीचे क्या फिर कभी मेरे दृष्टिपथगामी होंगे॥१५७॥

बिम्बाधरेण मुरलीकररीविलासी
मायूरपिच्छपरिलाञ्छितचारुचूडः।
आभीरबालककुलेन विहारकारी
राधापतिर्मम पुनर्भविताऽनुकूलः॥१५८॥

बिम्बाधरेण मुरलीकररीविलासी, मायूरपिच्छपरिलाञ्छितचारुचूडः आभीर-बालककुलेन विहारकारी राधापतिः मम पुनः अनुकूलः भविता।

बिम्बाधर की शय्या पर मुरली की नाक से विलास कराने वाले, मोर पंख से सुशोभित सुन्दर चूडा (शीश) वाले एवं आभीरबालकों के समूह के

साथ विहार करने वाले राधापति श्रीकृष्ण क्या पुनः मेरे अनुकूल होंगे?॥१५८॥

श्यामं सुन्दरविग्रहं नवरसस्निग्धं मनोहारिणं
सर्वाङ्गे घनसारचर्चितममुं वेणुं क्वणन्तं मुदा।
मूले नीपमहीरुहः स्मितमुखं रक्तारविन्देक्षणं
द्रक्ष्यामि प्रियमुत्तमं पुनरपि श्रीकृष्णदेवं क्षणम्॥१५९॥

श्यामम् सुन्दरविग्रहम् नवरसस्निग्धम् मनोहारिणम् सर्वाङ्गे घनसारचर्चितम् नीपमहीरुहः मूले मुदा वेणुम् क्वणन्तम् स्मितमुखम् रक्तारविन्देक्षणम् उत्तमम् प्रियम् श्रीकृष्णदेवम् क्षणम् पुनः द्रक्ष्यामि?

श्यामवर्ण सुन्दर शरीर वाले, नवरस से स्निग्ध, मनोहारी, सम्पूर्ण शरीर पर कपूर से चर्चित, कदम्ब के वृक्ष के नीचे प्रसन्नता से वेणु को बजाने वाले, स्मित मुख वाले, रक्त अरविन्द के समान नेत्र वाले उत्तम प्रिय श्रीकृष्ण को क्या कभी एक क्षण भी फिर से देख पाऊँगा?॥१५९॥

पास्यामि कर्णकुहरेण कदम्बमूले
भूयो हरेर्मुरलिकामधुरारुतानि।
कन्दर्पकोटिकमनं नवनीरदाभं
द्रक्ष्यामि तद्वपुरपूर्वमनोज्ञरूपम्॥१६०॥

कदम्बमूले हरेः मुरलिकामधुर-आरुतानि कर्णकुहरेण भूयः पास्यामि? अपूर्वमनोज्ञरूपम् नवनीरदाभम् कन्दर्पकोटिकमनम् तद् वपुः द्रक्ष्यामि ?

(हे विधाता!) (क्या मैं) कदम्ब के नीचे श्रीकृष्ण की मुरलिका का मधुर स्वरामृत दुबारा पी सकूँगा? अपूर्व मनोज्ञ रूप वाले नवीन मेघ की-सी कान्ति वाले, करोड़ो कामदेवों से अधिक सौन्दर्य वाले उन (श्रीकृष्ण) के शरीर का क्या पुनः दर्शन कर सकूँगा॥१६०॥

इत्येवं तस्य रुदतो लुठतो धरणीतले।
अश्रुवारितरङ्गिण्यां स्नपिता पुलकाङ्किता॥१६१॥
कम्पमानाङ्गलतिका विस्मिता सुस्मितानना।
सम्प्रोञ्छ्य भृशमस्रूणि प्रणयाविष्टमानसा।
अवदच्छुद्धहृदया प्रेमगद्गदया गिरा॥१६२॥

इति एवम् रुदतः धरणीतले लुठतः, तस्य अश्रुवारितरङ्गिण्याम् स्नपिता पुलकाङ्किता, कम्पमानाङ्गलतिका, सुस्मितानना विस्मिता प्रणयाविष्टमानसा शुद्धहृदया, भृशम् अश्रूणि सम्प्रोञ्छ्य प्रेमगद्गदया गिरा अवदत्।

इस प्रकार रोते हुए, पृथिवी पर लोटते हुए ब्राह्मण के नेत्रों से बहे हुए अश्रुजल की नदी में स्नान की हुई, रोमाञ्चिता, कम्पित शरीरवल्लरी वाली, आश्चर्य से मन्दस्मिता, प्रणय से आविष्ट मन तथा शुद्ध हृदय वाली वह ब्राह्मणी अत्यधिक आँसुओं को पोंछकर प्रेम से गद्गद वाणी बोली॥१६१-१६२॥

ब्राह्मणी उवाच—

भूयः कथय शुद्धात्मन् वृन्दावनकथामथ।
श्रोतुकामास्मि नियतं श्रीकृष्णगुणतृष्णया॥१६३॥
कथय-कथय गाथाः कान्त कान्तस्य तस्य
क्षपय मम नितान्तं तान्ततां कान्तदेह।
न कुरु मनसि तापं स्वल्पमुद्बोधकाले
स्मर सपदि हृदि श्रीकृष्णनाम प्रकामम्॥१६४॥

शुद्धात्मन्! अथ भूयः वृन्दावनकथाम् कथय। नियतम् श्रीकृष्णगुणतृष्णया श्रोतुकामा अस्मि। कान्त! तस्य कान्तस्य गाथाः कथय, कथय। कान्तदेह! मम नितान्तम् तान्ततां क्षपय। उद्बोधकाले मनसि स्वल्पम् तापम् न कुरु। सपदि हृदि श्रीकृष्णनाम प्रकामम् स्मर।

ब्राह्मणी ने कहा—हे शुद्धात्मन्! अब फिर से वृन्दावन की कथा का वर्णन कीजिए। निश्चय ही श्रीकृष्ण के गुणों की तृष्णा से मैं उसे सुनने के लिए आतुर हो रही हूँ। हे प्रिये! उस प्रियतम श्रीकृष्ण की गाथा सुनाओ, सुनाओ। हे सुन्दर देह वाले! मेरी सम्पूर्ण पीड़ा को दूर करो। उद्बोध के समय मन में रञ्चमात्र ताप का अनुभव मत करो। शीघ्र अपने अन्तःकरण में स्वामी श्रीकृष्ण के नाम का यथेच्छ स्मरण करो॥१६३-१६४॥

विचरति तव चित्ते तद्वनान्ताच्च्युतोऽह-
मिति विरमतु वार्ता संयुतः कृष्णचिन्ता।
प्रसरति रसरूपं तत्र वृन्दावनं हि
स्वयमुदयति राधाराधितः कृष्णचन्द्रः॥१६५॥

तव चित्ते तद्वनान्ताद् अहम् च्युतः इति वार्ता विचरति, कृष्णचिन्ता संयुतः विरमतु। तत्र हि रसरूपम् वृन्दावनम् हि प्रसरति। तत्र राधाराधितः श्रीकृष्णचन्द्रः स्वयम् उदयति।

हे स्वामी! तुम्हारे चित्त में यह बात विचरण कर रही है कि तुम उस वृन्दावन से अलग हो गये हो। यह विचार करना छोड़ दो; क्योंकि तुम्हारा हृदय श्रीकृष्ण की चिन्ता करने के कारण प्रियतम श्रीकृष्ण से सदा जुड़ा

हुआ है। तुम्हारे हृदय में तो रस-रूप वृन्दावन सदा निवास कर रहा है। उस हृदय वृन्दावन में राधा द्वारा आराधित श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं उदित हो रहे हैं।।१६५।।

वदनमनुदिनं श्रीकृष्ण कृष्णोति नाम्ना
प्रणयविनयचेताश्चित्तजेता पुनीहि।
जनुरनुगमितस्याऽपीन्द्रियाणां नियन्तु-
र्मुरहरचरणाब्जं ध्यायतो भूः पदं तत्।।१६६।।

प्रणयविनयचेताः चित्तजेता मुरहरचरणाब्जम् ध्यायतः इन्द्रियाणाम् नियन्तुः जनुरनुगमितस्य (तव) तत् परम् भूः श्रीकृष्ण कृष्ण इति नाम्ना अनुदिनम् वदनम् पुनीहि।

प्रणय और विनय से युक्त चित्त वाले, चित्त को जीतने वाले आप प्रतिदिन श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण करते हुए अपने मुख को पवित्र करो। इन्द्रियों के नियन्ता तथा मुर राक्षस का वध करने वाले श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करने वाले तुम्हें उनके चरणों में पुनः स्थान मिले।।१६६।।

उच्चैः समुच्चार्य विचार्यमाणं
सर्वत्र तन्त्रे जप कृष्णमन्त्रम्।
प्रभोश्चरित्रामृतमत्र पीत्वा
संसारसर्पस्य जहाति(?जहीह) दर्पम्।।१६७।।

श‍ृणु वचनमिदं श्रीकृष्णगोविन्दराधा
रमणनवतमालश्यामगोलोकनाथ ।
इति विशदहृदोच्चैर्भण्यतां साधुबुद्धे
भवतु तव नितान्तम् तापशान्तिर्ममाऽपि।।१६८।।

सर्वत्र तन्त्रे विचार्यमाणम् कृष्णमन्त्रम् उच्चैः समुच्चार्य जप। अत्र प्रभोः चरितामृतम् पीत्वा संसारसर्पस्य इह दर्पम् (जहि)। साधुबुद्धे! इदम् वचनम् श‍ृणु। श्रीकृष्ण गोविन्द राधारमण नवतमालश्याम गोलोकनाथ इति विशदहृदा उच्चैः भण्यताम्। तव मम अपि नितान्तम् तापशान्तिः भवतु।

सम्पूर्ण तन्त्र में सर्वत्र विचार्यमाण श्रीकृष्ण नाममन्त्र का उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए जप करो। इस लोक में श्रीकृष्ण के चरितामृत का पान करके संसार-सर्प के दर्प का नाश करो। साधुमति वाले ब्राह्मण! इस बात को भली-भाँति सुन लो। श्रीकृष्ण, गोविन्द, राधारमण, नवतमालश्यामल,

गोलोकनाथ नामों का निरन्तर उच्च स्वर से उच्चारण करो; इससे तुम्हारे और हमारे भी तापों की आत्यन्तिक शान्ति हो॥१६७-१६८॥

दिव्यवृन्दावनकथासुधापूरेण पूरयन्।
मत्कर्णकुहरं कान्त प्रशान्तहृदयो भव॥१६९॥

कान्त! दिव्यवृन्दावनकथा-सुधापूरेण मत्कर्णकुहरम् पूरयन् प्रशान्तहृदयो भव।

हे प्राणनाथ! दिव्य वृन्दावन-कथा की सुधा के प्रवाह से मेरे कर्णकुहरों को भर दो और हृदय में शान्ति प्राप्त करो॥१६९॥

नारद उवाच—

इत्थं निगदितो विप्रकान्तया प्राणकान्तया।
अवदद् वदतां श्रेष्ठः प्रेम्णातिमधुरं वचः॥१७०॥

प्राणकान्तया विप्रकान्तया इत्थम् निगदितः वदताम् श्रेष्ठः प्रेम्णा अतिमधुरम् वचः अवदत्।

नारद ने कहा—प्राणों से प्रिय विप्रकान्ता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर विद्वानों में श्रेष्ठ उस ब्राह्मण ने प्रेमपूर्वक अतिमधुर वाणी में कहा॥१७०॥

ब्राह्मण उवाच—

शृणु भूयः कथां दिव्यां दिव्यवृन्दावनस्य ताम्।
सुखं मे जायते सुभ्रु मतिस्ते यत इदृशी॥१७१॥
अन्नप्रदानमात्रेण ययुः श्रीकृष्णसन्निधिम्।
ब्राह्मण्यः किमतो ब्रूमस्तेषां वै महनीयताम्॥१७२॥
भक्तिः रक्तिं विदधते ये कृष्णचरणाम्बुजे।
नित्यं तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दितचेतसः॥१७३॥

दिव्यवृन्दावनस्य ताम् दिव्याम् कथाम् भूयः शृणु। सुभ्रु ईदृशी (ते) मतिः। ब्राह्मण्यः अन्नप्रदानमात्रेण श्रीकृष्णसन्निधिम् ययुः अतः तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दितचेतसः ये नित्यम् कृष्णचरणाम्बुजे भक्तिम् विदधते तेषाम् वै महनीयताम् किम् ब्रूमः।

ब्राह्मण ने कहा—दिव्य वृन्दावन की उस दिव्य कथा को तुम फिर से सुनो; हे सुभ्रु! मुझे अत्यन्त सुख हो रहा है कि तुम्हारी ऐसी दिव्य मति बन गयी है। ब्राह्मण-पत्नियाँ श्रीकृष्ण को मात्र अन्न का दान देकर उनके सामीप्य की अधिकारिणी बन गयीं। इसलिये मैं कहता हूँ कि श्रीकृष्ण के गुणों को सुनने में जिनका चित्त आनन्दित होता है तथा श्रीकृष्ण के चरण- कमलों

में जिनकी नित्य भक्ति और आसक्ति बनी रहती है, उनकी महत्ता का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ॥१७१-१७३॥

पापानुतापविकला अपि चाण्डालयोनयः।
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्याः चेट्यो भृङ्गारिकादिकाः॥१७४॥
पुरा राधां समाराध्य प्राप्तास्तत्परमं पदम्।
नित्यं तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दितचेतसः॥१७५॥

पुरा पापानुतापविकलाः चाण्डालयोनयः अपि भृङ्गारिका-आदिकाः श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्याः चेट्यः राधाम् समाराध्य नित्यम् तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दितचेतसः ताः तत् परमम् पदम् प्राप्ताः।

पूर्व जन्म में पापों के अनुतापों से विकल, चाण्डाल योनियों में उत्पन्न भृंगारिका आदि श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी की चेटियों ने राधिका जी के गुण-गणों को सुनने के आनन्द से आनन्दित चित्त वाली होकर राधा जी की आराधना करके उस परम पद को प्राप्त किया॥१७४-१७५॥

सुबलोज्ज्वलगन्धर्वमधुमङ्गलरक्तकाः।
विजयाद्या रसालाद्याः पयोदाद्या विटादयः॥१७६॥
भ्रातृकल्पास्तु राधायाः श्रीकृष्णस्य प्रिया इमे।
अन्तर्बहिश्चराः सिद्धा अविरोधसमागमाः॥१७७॥

सुबलोज्ज्वलगन्धर्वमधुमङ्गलरक्तकाः इमे अन्तः बहिः चरा अविरोध-समागमाः सिद्धाः श्रीकृणस्य प्रिया।

सुबल, उज्ज्वल, रक्तक, मधुमंगल, विजय, रसाल, पयोद आदि गन्धर्व विट (सेवक) हैं। ये राधा जी को भाई की तरह प्रिय हैं। ये सभी सिद्ध बाहर, भीतर और अविरोध में भी आने-जाने वाले श्रीकृष्ण को अति प्रिय हैं॥१७६-१७७॥

आसन्नाः सर्वदा शुङ्गीपिशङ्गीकलकन्दलाः।
मञ्जुला विन्दुलामन्दामृदुलाद्यास्तु बालिकाः॥१७८॥

शुङ्गी, पिशङ्गी कलकन्दला मञ्जुला विन्दुला, मन्दा, मृदुला आद्या बालिकाः तु सर्वदा आसन्नाः।

शुंगी, पिशंगी, कलकन्दला, मञ्जुला, विन्दुला, मन्दा और मृदुला आदि बालिकाएँ सदा राधा जी के समीप रहती हैं॥१७८॥

समासमीनाः सुनदा यमुनाबहुलादयः।
भौमे वृन्दावने ह्येताः संसेव्य जगदीश्वरीम्॥१७९॥

प्राप्ता वृन्दावनं दिव्यं योगीन्द्रैर्यन्न लभ्यते।

समा समीना सुनदा यमुना बहुला आदयः हि एताः भौमे वृन्दावने जगदीश्वरीम् संसेव्य दिव्यम् वृन्दावनम् प्राप्ताः यत् योगीन्द्रैः न लभ्यते।

समा, समीना, सुनदा, यमुना, बहुला आदि इन बालिकाओं ने भौम वृन्दावन में जगदीश्वरी श्रीराधा जी की सेवा करके उस दिव्य वृन्दावन को प्राप्त कर लिया, जिसे बड़े-बड़े योगी भी नहीं प्राप्त कर पाते।।१७९।।

पीना वत्सतरी तुङ्गी कुक्कु मृदुमर्कटी।।१८०।।
कुरङ्गी रङ्गिणी ख्याता चकोरी चारुचन्द्रिका।
मयूरी सुन्दरी नाम्नी सारिके सूक्ष्मधीः शुभे।।१८१।।
यशांसि ललितादेव्याः ललितानि स्वनाथयोः।
पठन्त्यौ चित्रया वाचा ये चित्रीकुरुतः सखीम्।।१८२।।

पीना वत्सतरी, तुङ्गी, कुक्कु, मृदुमर्कटी, कुरंगी, रंगिणी, चकोरी चारुचन्द्रिका मयूरी, सुन्दरी नाम्नी सारिके ख्याता सूक्ष्मधीः। ललितादेव्याः ललितानि स्वनाथयोः चित्रया वाचा पठन्त्यौ ये सखीम् चित्रीकुरुतः।

मोटी बछिया, ऊँची कुतिया, छोटी बन्दरिया, रङ्ग-बिरङ्गी मृगी प्रसिद्ध है। चांदनी को चाहने वाली चकोरी मोरनी सुन्दरी और सूक्ष्मधी नामक दो सुन्दर सारिकायें ललितादेवी के यश और अपने स्वामियों की ललित क्रियायें मधुर वाणी से कहती हुई सखी को वाणी से आनन्दित करती हैं।।१८०-१८२।।

निजकुण्डेचरीं तुण्डिकेरीं नाम बालिकाम्।
दर्शयन्तीं गतेर्माद्यं प्रशशंस सदेश्वरी।।१८३।।
एतत्ते कथितं साध्वि राधादेव्याः सुखप्रदम्।
दासदासीवृन्दमिदं संक्षेपाच्छृणु तत्परम्।।१८४।।

ईश्वरी निजकुण्डेचरीम् तुण्डिकेरीम् नाम बालिकाम् गतेः माद्यम् दर्शयन्तीम् प्रशशंस। साध्वि! ते राधादेव्याः सुखप्रदम् एतत् दासदासीवृन्दम् संक्षेपात् कथितम्। तत्परम् शृणु।

ईश्वरी श्रीराधा अपने कुण्ड में स्नान करने वाली तुण्डिकेरी नाम की बालिका को चाल की मस्ती दिखाती हुई प्रशंसा करती है। हे साध्वि! राधा देवी को सुख देने वाले दास-दासीवृन्द का मैंने तुम्हारे समक्ष संक्षेप में वर्णन किया; अब आगे सुनो।।१८३-१८४।।

अथ कृष्णस्य राधायाः प्रियद्रव्याणि यानि च।
तानि ते कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये।।१८५।।

वृन्दावनं नाम वनं राधाकृष्णप्रियं महत्।
नैःश्रेयसाद्विना श्रेयः सर्वतः सुखदं परम्॥१८६॥

प्रिये! अथ ते कृष्णस्य राधायाः यानि प्रियद्रव्याणि तानि कथयिष्यामि (च); एकमनाः शृणुष्व। वृन्दावनम् नाम महत् वनम् राधाकृष्णप्रियम् नैःश्रेयसात् विना श्रेयः सर्वतः परम् सुखदम्।

हे प्रिये! अब मैं तुम्हें उन वस्तुओं को सुनाता हूँ, जो राधा और कृष्ण के लिए अतिप्रिय हैं। ध्यान से सुनो—उनमें वृन्दावन नाम का वन श्रीराधाकृष्ण को अतिप्रिय है। यहाँ बिना मोक्ष के ही कल्याण होता है। यह सभी ओर सब प्रकार का सुख देने वाला है॥१८५-१८६॥

असंख्यकल्पवृक्षाणां छायाशीतलमुत्तमम्।
श्रीकृष्णचरणद्वन्द्वलक्षणैर्लक्षितं सदा॥१८७॥
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैरम्भोजैरपि सम्भृतम्।
नवपल्लवशय्याभिर्दिव्याभिः क्वापि दीपितम्॥१८८॥
माद्यद्भिरनुनृत्यद्भिर्मधुपैः क्वापि झङ्कृतम्।

असंख्यकल्पवृक्षाणाम् छायाशीतलम् उत्तमम्। इदम् सदा श्रीकृष्णचरण-द्वन्द्वलक्षणैर्लक्षितम्। ध्वज-वज्र-अंकुश-अम्भोजैः अपि सम्भृतम्। क्वापि दिव्याभिः नवपल्लवशय्याभिः च दीपितम्। क्वापि माद्यद्भिः अनुनृत्यद्भिः मधुपैः झङ्कृतम्।

यहाँ असंख्य कल्पवृक्षों की उत्तम शीतल छाया है। यह वन सदा श्रीकृष्ण के चरणद्वन्द्वों के चिह्नों से चिह्नित है। ध्वज, वज्र, अंकुश, कुमुद से चिह्नित और कमलों से भरा है। कहीं नवपल्लव की दिव्य शय्याओं से शोभित है। कहीं उन्मत्त नृत्य करते हुए भ्रमरों की झंकार से झंकृत है॥१८७-१८८॥

क्वचिन्मयूरपक्षैश्च गोविन्दशिरसश्च्युतैः॥१८९॥
आकीर्णं नृत्यमानाया राधायाः पदचिह्नितैः।
सालक्तैरङ्कितं क्वापि मालाभिः कुसुमैः क्वचित्॥१९०॥
क्वचित् गलितभूषाभिर्भूषितं भूषितानने।
क्वचिन् नृत्यैः क्वचिद् गीतैः क्वचिद् वाद्यैर्मनोरमैः॥१९१॥
रम्यं श्रीकृष्णचन्द्रस्य रसमूर्तेः रतिस्थलम्।
सुवर्णवर्णवेदीभिरुद्दीप्तं मणिबालुभिः॥१९२॥

क्वचित् गोविन्दशिरसः च्युतैः मयूरपक्षैः आकीर्णम्; क्वापि नृत्यमानायाः

राधायाः सालक्तैः पदचिह्नितैः अङ्कितम्। क्वचित् मालाभिः कुसुमैः क्वचित् गलितभूषाभिः भूषितम्। भूषितानने! क्वचित् नृत्यैः क्वचित् गीतैः क्वचित् मनोरमैः वाद्यैः रम्यम्। इदम् रतिस्थलम् रसमूर्तेः श्रीकृष्णचन्द्रस्य सुवर्णवर्ण-वेदीभिः मणिबालुभिः उद्दीप्तम्।

कहीं श्रीकृष्ण के सिर से गिरे हुए मयूरपंखों से विकीर्ण है। कहीं नृत्य करती हुई श्रीराधिका जी के अलक्तक लगे हुए चरणचिह्नों से चिह्नित है। कहीं मालाओं से और कहीं फूलों से मण्डित है। कहीं गिरे हुए आभूषणों से भूषित है। हे सुमुखि! कहीं नाच से, कहीं गान से, कहीं मनोहर वाद्यों से यह रमणीय है। यह रतिस्थल रसमूर्ति श्रीकृष्ण की दिव्य मणिबालुका से निर्मित सुवर्ण के वर्ण की वेदी वाला है।।१८९-१९२।।

रत्नकुट्टिमसङ्घेन रत्नसिंहासनैः क्वचित्।
रमणीयमणिबद्धमूले नीपमहीरुहः।।१९३।।
यत्र कृष्णाङ्गसम्भूतः शीतलः शीतभानुवत्।
तन्मूले भगवान् श्यामो महामरकतद्युतिः।।१९४।।

क्वचित् रत्नकुट्टिमसङ्घेन क्वचित् रत्नसिंहासनैः नीपमहीरुहः रमणीय-मणिबद्ध मूले यत्र श्रीकृष्ण-अंगसम्भूतः शीतभानुवत् शीतलः महामरकतद्युतिः भगवान् श्यामः (विद्यते)।

कहीं रत्नों से शोभित भूमि है तो कहीं रत्न के सिंहासनों से वह वन रमणीय है। जहाँ मणिजटित कदम्ब के वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न शीतल किरणों वाला शीतल अर्थात् चन्द्रमा है। उस कदम्ब के मूल में उत्कृष्ट मरकत (=पन्ना) की कान्ति वाले साँवले भगवान् विराजते हैं।।१९३-१९४।।

बिभ्रत् पीताम्बरं चारु श्रीमन्निगमशोभनम्।
किङ्किणीकलझङ्कारान् हंसकौ हंसगामिनौ।।१९५।।
कुरङ्गनयनाचित्तकुरङ्गहरसिञ्जनौ ।
अङ्गदेरङ्गदाभिख्ये चक्वणे नामकङ्कणे।।१९६।।

श्रीमन् निगमशोभनम् चारुपीताम्बरम् बिभ्रत् किङ्किणीकलझङ्कारान् हंसगामिनौ हंसकौ कुरङ्गनयनाचित्तकुरङ्गहरसिञ्जनौ अंगदाभिख्ये अंगदेः चक्वणे नामकंकणे।

परमाराध्य वेदवाक्यों से शोभित-पूजित, सुन्दर पीताम्बर से अलंकृत, सुन्दर शब्द करने वाली किंकणी की झंकार से युक्त, हंस की तरह गमन

करने वाले, हंसकों वाले, मृग के समान सुन्दर नेत्रों से अद्भुत, कुरंग को भी तिरस्कृत करने वाले, सिञ्जिनी धारण करने वाले, अंगद नाम के आभूषण को अंग पर धारण करने वाले, सुन्दर शब्द करने वाले चक्वाण नाम के कंकण को हाथों में पहने हुए श्रीकृष्ण—॥१९५-१९६॥

मुद्रा(?द्रां) रत्नमुखीं दिव्यां नानारत्नविनिर्मिताम्।
हारं तारामणिं तद्वत् मणिमालां तडित्प्रभाम्॥१९७॥
बद्धराधाप्रतिकृतिनिष्कं हृदयमोदनम्।
कौस्तुभं च मणिश्रेष्ठं दत्तं कालियकान्तया॥१९८॥

नानारत्नविनिर्मिताम् दिव्याम् रत्नमुखीम् मुद्राम् तडित्प्रभाम् मणिमालाम् तद्वत् तारामणिम् हारम् बद्धराधाप्रतिकृतिनिष्कम् हृदयमोदनम् कालियकान्तया दत्तम् मणिश्रेष्ठम् कौस्तुभम् (धारयन् श्रीकृष्णः)।

विभिन्न रत्नों से निर्मित रत्नमुखी दिव्य मुद्रा (अंगूठी) को धारण करने वाले, विद्युत् की भाँति चमकने वाली और उसी तरह की तारामणि एवं हार को धारण किये हुए, हृदय को आनन्द देने वाले तथा राधा का चित्र लगे हुए (छाती पर लटकनों वाले) कालियनाग की पत्नी द्वारा दी गयी मणियों में श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि को मणिमाला में (धारण किये हुए श्रीकृष्ण)॥१९७-१९८॥

कुण्डले मकराकारे रतिरागाध(?धि)दैवते।
किरीटं रत्नसारं च चूडां भुवनमोहिनीम्॥१९९॥
रत्नबिम्बविडम्बं च शिखण्डिखण्डमण्डलम्।
आखण्डलस्य कोदण्डदण्डमण्डलखण्डकम्॥२००॥
रागवल्लीं च गुञ्जालीं तिलकं दृष्टिमोहनम्।
पत्रपुष्पमयीं मालां वनमालां पदावधि॥२०१॥

रतिरागाधिदैवते मकराकारे कुण्डले रत्नसारम् किरीटम् भुवनमोहिनीम् चूडाम् रत्नबिम्बविडम्बम् शिखण्डिखण्डमण्डलम् आखण्डलस्य कोदण्ड-दण्डमण्डलखण्डकम् दृष्टिमोहनम् तिलकम् रागवल्लीम् पत्रपुष्पमयीम् गुञ्जालीम् वनमालाम् पदावधि मालाम् (धारयन्)।

रति के राग को बढ़ाने वाले, मकराकृति कुण्डलों को धारण किये हुए, रत्नों के सार से बने हुए मुकुट को, भुवनमोहिनी चूड़ा को धारण किये हुए, रत्नों के बिम्ब को तिरस्कृत करने वाले, मोरों के मण्डल को मंडित करने वाले, इन्द्र के कोदण्ड (धनुष) के दण्ड को तिरस्कृत करने वाले,

जगत् दृष्टिमोहक तिलक को भाल पर धारण किए हुए, सुन्दर लताओं के पत्र-पुष्पों से निर्मित गुञ्जाओं की लालिमा से युक्त वनमाला को निगीर्ण अर्थात् तिरस्कृत करने वाली पादावलम्बिनी माला को (धारण किए हुए श्रीकृष्ण)।।१९९-२०१।।

वैजयन्तीं वै जयन्तीं कुसुमैः पञ्चवर्णकैः।
लीलापद्मं सदा स्मेरं पद्माननसमप्रभम्।।२०२।।
शरच्चन्द्राभिधं श्रीमन्मुकुरं मणिनिर्मितम्।
दिव्यरत्नस्फुरन्मुष्टिं तुष्टिदां नामकर्तरीम्।।२०३।।

पञ्चवर्णकैः कुसुमैः वै जयन्तीम् वैजयन्तीम् सदा स्मेरम् लीलापद्मम् पद्माननसमप्रभम्, शरच्चन्द्राभिधम् मणिनिर्मितम् श्रीमन्मुकुरम् दिव्यरत्नस्फुरन्मुष्टिम् तुष्टिदाम् नामकर्तरीम् (धारयन् श्रीकृष्णः)।

पाँच रङ्गों वाले फूलों से बनी हुई (तीनों लोकों को) भी जीतने वाली वैजयन्ती नामक माला को धारण किए हुए, कमलवत् मुख के समान सदा खिले हुए लीला-कमल को, शरत् चन्द्र के नाम वाले मणिनिर्मित मुकुर को, दिव्य रत्नों की मुठिया वाली तुष्टिदा नामक कर्त्तरी को धारण करने वाले (श्रीकृष्ण)।।२०२-२०३।।

मन्द्रघोषं विषाणं च वंशीं भुवनमोहिनीम्।
श्रीराधाहृदयाम्भोजहंसीमानन्दकन्दलीम् ।।२०४।।
षड्रन्ध्रबन्धुरं वेणुं ख्यातं मदनहुङ्कृतम्।
काकलीमूकितपिकां मुरलीं सरलाभिधाम्।।२०५।।
गौरीं च गुञ्जरीं रागावनुरागिणि रञ्जयन्।
गायन् श्रीराधिका देव्या नाममन्त्रं जगद्वशम्।।२०६।।

मन्द्रघोषम् विषाणम् च भुवनमोहिनीम् वंशीम् च श्रीराधाहृदयाम्भोजहंसीम् आनन्दकन्दलीम् षड्रन्ध्रबन्धुरम् मदनहुंकृतम् ख्यातम् वेणुम् काकलीमूकितपिकाम् सरलाभिधाम् मुरलीम् गौरीम् गुञ्जरीम् रागौ अनुरागिणि रञ्जयन् जगद्वशम् श्रीराधिकादेव्याः नाममन्त्रम् गायन् (श्रीकृष्णः)।

मन्द्रघोष करने वाले विशाण (सींग) को और भुवनमोहिनी वंशी को धारण किये हुए, श्रीराधाहृदयाम्भोज की हंसिनी को, आनन्द के कन्द से सराबोर। छः रन्ध्रों से युक्त मदन की हुंकृति के समान प्रसिद्ध वेणु को तथा कोयलों की काकली को भी मूकित करने वाली सरला नाम की मुरली में गौरी और गुञ्जरी रागों को बजाते हुए जगत् को वश में वश करने वाले श्रीराधा देवी के नाममन्त्र को गाते हुए (श्रीकृष्ण-)।।२०४-२०६।।

त्रैलोक्यमण्डनं नाम हेमदण्डं कराम्बुजे।
वीणां प्रवीणां महतीं महतामपि मोहने॥२०७॥
अनङ्गरङ्गिणीनाम्ना या शृङ्गारतरङ्गिणी।
पाशौ पशुवशीकारौ दोहनीममृतप्रदाम्।
शोभते सर्वशोभाढ्यो लीलया मधुराकृतिः॥२०८॥

महतामपि मोहने कराम्बुजे त्रैलोक्यमोहनम् नाम हेमदण्डम्, महतीम् प्रवीणाम् वीणाम् अनङ्गरंगिणीनाम्ना या शृङ्गारतरङ्गिणी पशुवशीकारौ पाशौ अमृतप्रदाम् दोहिनीम् सर्वशोभाढ्यो लीलया मधुराकृतिः श्रीकृष्णः शोभते।

महापुरुषों को मोहित करने वाले, कर-कमलों में त्रैलोक्यमोहन नाम का स्वर्ण दण्ड, अति मधुर स्वर प्रकट करने वाली महती नाम की प्रवीणा वीणा, अनङ्गरंगिणी नाम की शृंगारतरंगिणी को और पशुओं को सहज में ही वश में करने वाले पाशों को, अमृतरस प्रदान करने वाली दोहनी को धारण करने वाले, सकल शोभा के धनी, सहज ही मधुराकृति वाले श्रीकृष्ण उस दिव्य वृन्दावन में शोभित हो रहे हैं॥२०७-२०८॥

लावण्येन निकामकामकमनो राधादिगोपीमनो
यत्रापत्रपयन् सपत्रकुसुमं गण्डस्थले मण्डयन्।
वेणुं वादयते दयासमुदयात् धेनूर्वने चारयन्
तद् रेणूत्कटधूसरो नवघनश्यामद्युतिर्द्योतते॥२०९॥

लावण्येन निकामकामकमनः राधादिगोपीमनः अपत्रपयन् सपत्रकुसुमम् गण्डस्थले मण्डयन् दयासमुदयात् वेणुम् वादयते वने धेनूः चारयन् तद्रेणूत्कटधूसरः नवघनश्यामद्युतिः द्योतते।

अद्भुत लावण्य के प्रवाह से करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले, राधा आदि गोपीजनों के मन की लज्जा को हटाने वाले, पत्रसहित कुसुम से गण्डस्थल को अलंकृत करने वाले, दया के समुदय से वेणुवादन करते हुए, वनप्रान्त में गायों को चराने वाले, गोधूलि से धूसरित शरीर वाले अनवद्य अर्थात् अनिन्द्य श्याम कान्ति वाले श्रीकृष्ण वृन्दावन में द्योतित हो रहे हैं॥२०९॥

यन्मूले सुचरित्ररत्नघटया संघट्टिते निर्मले
स्वं बिम्बं व्रजबालकाः स्म नियतं मुह्यन्ति संलोच्यते।
सुच्छायोऽधिकशीतलः क्षितितले लक्ष्मीर्यतो लक्ष्यते
भूयः सुन्दरि सुन्दरो रसतरुर्भूयान्ममाक्ष्णः पथि॥२१०॥

यन्मूले सुचरित्ररत्नघटया संघट्टिते निर्मले क्षितितले व्रजबालकाः स्वं बिम्बम् नियतम् मुह्यन्ति स्म (?यः) सुच्छायः अधिकशीतलः सुन्दरः संलोच्यते, यतः, लक्ष्मीः लक्ष्यते, हे सुन्दरि! (सः) रसतरुः मम अक्ष्णः पथि पुनः भूयात्।

सुन्दर चरित्ररूपी रत्नों के जड़ाव से स्वच्छ और निर्मल जिस मूल में व्रजबालक अपने स्वरूप को प्रतिबिम्बित देखकर मोहित हो जाते हैं, जो इस पृथिवी पर सुन्दर छाया से भी अधिक शीतल है, जहाँ सर्वत्र लक्ष्मी का निवास दिखाई देता है। हे सुन्दरि! वे रसतरु श्रीकृष्ण मेरे नयनपथ के विषय हो जायँ।।२१०।।

श्रीकृष्णस्य वामपार्श्वे राधा सर्वेश्वरेश्वरी।
विद्युद्द्युतिविडम्बाङ्गी जगन्मोहनकारिणी।।२११।।
बिभ्रती करपद्माभ्यां पङ्कजद्वयमुत्तमम्।
कुटिलैः केशपाशैश्च बद्धधम्मिल्लमुज्ज्वलम्।।२१२।।
अलकालिकुलैः शश्वदाकुलं मुखपङ्कजम्।
तिलकं स्मरयन्त्राख्यं हारं कृष्णमनोहरम्।।२१३।।

श्रीकृष्णस्य वामपार्श्वे विद्युद्द्युतिविडम्बाङ्गी जगन्मोहनकारिणी सर्वेश्वरेश्वरी राधा करपद्माभ्याम् उत्तमम् पंकजद्वयम् बिभ्रती कुटिलैः च केशपाशैः बद्धधम्मिल्लम् उज्ज्वलम् अलकालिकुलैः शश्वद् आकुलम् मुखपङ्कजम् स्मरयन्त्राख्यम् तिलकम् कृष्णमनोहरं हारम् (धारयन्ती श्रीराधा)।

श्रीकृष्ण के वामभाग में विद्युत् की द्युति को अपमानित करने वाले शरीर को धारण करने वाली, जगन्मोहिनी, सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की स्वामिनी श्रीराधा जी शोभित हो रही हैं। वे अपने करकमलों में दो उत्तम कमल ली हुई हैं, कुटिल केशपाशों को उन्होंने उज्ज्वल जूडे की तरह बाँधा हुआ है। उनका मुखारविन्द भ्रमरों के समान काले बालों से घिरा हुआ है। उन्होंने कामदेव के यन्त्र की तरह श्रीकृष्ण को वश में करने वाले मनोहर तिलक को अपने भाल पर लगा रखा है।।२११-२१३।।

रोचनौ रत्नताटङ्कौ नासामुक्तां प्रभाकरीम्।
छत्रं कृष्णप्रतिच्छायं पादकं मदनाभिधम्।।२१४।।
स्यमन्तकान्यपर्यायं शङ्खचूडाशिरोमणिम्।
कान्त्या क्षिपन्तं चन्द्रार्कौ सौभाग्यमणिमुत्तमम्।।२१५।।
कटकांश्चटकाकारान् केयूरे मणिकर्बुरे।
कृष्णनामाङ्कितां मुद्रां विपक्षमदमर्दिनीम्।।२१६।।

काञ्चीं काञ्चनचित्राङ्गीं नूपुरे रत्नगोपुरे।
वृन्दावनेन्द्रमारुद्धे ययोः शिञ्जितमञ्जरी॥२१७॥

रोचनौ रत्नताटङ्कौ प्रभाकरीम् नासामुक्ताम् मदनाभिधम् कृष्णप्रतिच्छायम् पादकम् छत्रम् स्यमन्तक-अन्यपर्यायम् शंखचूडाशिरोमणिम् कान्त्या चन्द्रार्कौ क्षिपन्तम् उत्तमम् सौभाग्यमणिम् चटकाकारान् कटकान् च मणिकर्बुरे केयूरे विपक्षमदमर्दिनीम् कृष्णनामाङ्कितम् मुद्राम् काञ्चनचित्राङ्गीम् कृष्णनामाङ्कितम् मुद्राम् काञ्चीम् रत्नगोपुरे नूपुरे ययोः वृन्दावनेन्द्रम् आरुद्धे शिञ्जितमञ्जरी।

श्रीराधिका जी आकर्षक रत्नकुण्डलों को कान में पहनी हुई हैं। नाक में चमकने वाली मोती पहनी हुई हैं। मदन नाम की श्रीकृष्ण की प्रतिच्छाया जैसी प्रभावपूर्ण पादक को धारण की हुई हैं। स्यमन्तक मणि की पर्याय जैसी शंखचूड की शिरोमणि को और सूर्य-चन्द्र की कान्ति को अपने तेज से तिरस्कृत करने वाली उत्तम सौभाग्यमणि को धारण की हुई हैं। चटक के आकार के कटकों को पहनी हुई हैं। कर्बुर (चित्तकबरी) मणियों के केयूर पहनी हुई हैं। विपक्ष की चन्द्रावली ललिता आदि सखियों के मद का मर्दन करने के लिए श्रीकृष्ण नाम से अंकित अंगूठी को धारण की हुई हैं। रत्न और स्वर्ण से अभिचित्रित काञ्ची (करधनी) को धारण की हुई हैं। जाते हुए वृन्दावनेन्द्र श्रीकृष्ण को रोकने के लिए ध्वनि करने वाली मञ्जरी से युक्त रत्नजटित नूपुर पहनी हुई हैं॥२१४-२१७॥

वासो मेघाम्बरं नाम कुरुबिन्दनिभस्त(?भंत)था।
आद्यं स्वप्रियमभ्राभं रक्तमन्यं प्रियं प्रियम्॥२१८॥
सुधांशुदर्पहरणं दर्पणं मणिनिर्मितम्।
आनन्देनाऽप्यवनतां गोविन्दचरणाम्बुजे॥२१९॥
शलाकां शर्मदां हैमीं स्वस्तिदां रत्नकङ्कतीम्।
मल्लारश्च घनाश्रीश्च रागौ हृदयमोदिनौ॥२२०॥
आभ्यां श्रीकृष्णचरितं गायन्तीं चारुवल्लकीम्।

तथा कुरुबिन्दनिभः मेघाम्बरम् नाम वासः आद्यम् स्वप्रियम् अभ्राभम् अन्यम् रक्तम् प्रियम् सुधांशुदर्पहरणम् मणिनिर्मितम् दर्पणम्, गोविन्दचरणाम्बुजे आनन्देन अपि अवनताम् शलाकाम् शर्मदाम् हैमीम् स्वस्तिदाम् रत्नकङ्कतीम्, मल्लारः च घनाश्रीः च हृदयमोदिनौ रागौ आभ्याम् चारुवल्लकीम् श्रीकृष्ण-चरितम् गायन्तीम्।

श्रीराधा जी ने कुरुबिन्द (=लालमणी के रंग) के समान मेघाम्बर वस्त्र धारण किया है। श्रीकृष्ण की आभा को धारण करने वाला मणिदर्पण

हाथ में है। गोविन्द के चरणकमलों में आनन्द से अवनत शलाका (छोटी छड़ी) है। कल्याणप्रद रत्ननिर्मित कङ्की भी ली हुई है। हृदय को मोहित करने वाले घनाश्री और मल्हार रागों के द्वारा श्रीकृष्ण के चरित्र को गाने वाली, आनन्ददायिनी, स्वर्ण से निर्मित, कल्याणदायिनी, रत्नजड़ित वल्लकी को धारण की हुई हैं।।२१८-२२०।।

वल्लभ्यां चैव संगृह्य कृष्णध्यानपरायणा।।२२१।।
छालिक्यं दधितं नृत्यं कुर्वती सुमनोहरम्।
गायन्ती देवगान्धारं प्रशंसन्ती परं मुदा।।२२२।।
पुष्पशय्यागता देवी दिव्यपानरता क्वचित्।
ताम्बूलं विमलं चारु श्रीमत्कर्पूरवासितम्।।२२३।।
यच्छन्ती निजकान्ताय चर्वयन्ती शुचिस्मि(?स्थि)ता।
दोलायमाना हिन्दोलैः क्वचित् सिंहासनस्थिता।।२२४।।

वल्लभ्याम् संगृह्य कृष्णध्यानपरायणा छालिक्यम् दधितम् सुमनोहरम् नृत्यम् कुर्वती देवगान्धारम् गायन्ती, परम् मुदा प्रशंसन्ती, क्वचित् दिव्यपानरता, क्वचित् पुष्पशय्यागता, देवी श्रीमत्कर्पूरवासितम् विमलम् ताम्बूलम् चर्वयन्ती निजकान्ताय यच्छती चारु शुचिस्मिता क्वचित् सिंहासनस्थिता हिन्दोलैः दोलायमाना।

श्रीराधा जी कभी वलभी पर खड़ी होकर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के ध्यान में लगी रहती हैं। कभी मनोहर छालित और दाधीत नामक मनोहर नृत्य करती हुई देवगान्धार राग को गाती हुई, सखियों पर अति प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करती हैं। कभी पुष्पों की मनोहर शय्या पर बैठी हुई दिव्य अमृतरस का पान करती हैं। देवी श्रीमत् कर्पूर से सुगन्धित पवित्र ताम्बूल का चर्बण करती हैं एवं अपने स्वामी को देती हुई कभी उन्हें प्रसन्न करने के लिए पवित्र स्मित की कान्ति को विखेरती हुई, कभी हिंडोलों पर झूलती हुई, कभी सिंहासन पर बैठी हुई प्रतीत होती है।।२२१-२२४।।

क्वचित् क्रीडागिरौ रम्ये राधाकृष्णश्च क्रीडतः।
कन्दर्पकस्थलीनामवाटिकायां क्वचित् प्रिये।।२२५।।
यत्र कुण्डद्वयं राधाकृष्णनाम्ना विराजते।
कृष्णकुण्डे क्वचिद् राधा राधाकुण्डे क्वचिद् विभुः।।२२६।।
विहारं कुरुते नित्यं एकत्रैव क्वचिन्मिथः।
यदा सा प्रकृतिर्भूत्वा रिरंसति च केशवः।।२२७।।

राधाकुण्डविहारी स्यात् तदैव रसलीलया।
यदा सा पुरुषो भूत्वा रन्तुमिच्छति राधिका॥२२८॥

प्रिये! क्वचित् रम्ये क्रीडागिरौ क्वचित् कन्दर्पकस्थलीनामवाटिकायाम् राधाकृष्णः च क्रीडतः। यत्र राधाकृष्णनाम्ना कुण्डद्वयम् विराजते। क्वचित् कृष्णकुण्डे राधा क्वचित् राधाकुण्डे विभुः, नित्यम् क्वचित् एकत्रैव, क्वचिन् मिथः विहारम् कुरुते। यदा च सा प्रकृतिः केशवः भूत्वा च रिरंसति तदैव रसलीलया स राधाकुण्डविहारी स्यात्। यदा सा राधिका पुरुषो भूत्वा रन्तुम् इच्छति।

हे प्रिये! श्री राधाकृष्ण कभी रमणीय क्रीडापर्वत पर, कभी कन्दर्पक स्थली नाम की वाटिका में विहार करते हैं, वहाँ राधा और कृष्ण नाम के दो कुण्ड हैं। कभी कृष्णकुण्ड में राधा जी तो कभी राधाकुण्ड में श्रीकृष्ण, कभी एक होकर कभी अलग-अलग होकर परस्पर विहार करते हैं। जब श्रीराधा जी केशव बन कर रमण करती हैं तब श्रीकृष्ण राधाकुण्डविहारी हो जाते हैं। जब श्रीराधा पुरुष बनकर रमण करना चाहती हैं॥२२५-२२८॥

कृष्णकुण्डे तदा देवी विहरन्ती विशेज्जलम्।
ततो जलात् समुत्थाय नानालीलारसादिभिः॥२२९॥
कृत्वा विहारं संस्मृत्य स्वस्वरूपा भवेत् पुनः।
कृष्णे च राधिकायां च पुंस्त्रीभेदो न विद्यते॥२३०॥

तदा विहरन्ती देवी कृष्णकुण्डे जलम् विशेत्। ततः नानालीलारसादिभिः विहारम् कृत्वा जलात् समुत्थाय संस्मृत्य पुनः स्वस्वरूपा भवेत्। राधिकायाम् च कृष्णे च पुम्-स्त्रीभेदः न विद्यते।

तब विहार करती हुई देवी राधाकृष्णकुण्ड के जल में प्रवेश करती हैं। इसके बाद अनेक रसपूर्ण लीलाओं से विहार करके वह जल के बाहर आकर अपने स्वरूप का स्मरण करके राधारूप बन जाती हैं। वस्तुतः राधा-कृष्ण में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है॥२२९-२३०॥

कृष्णो वा राधिका देवी राधिका वा प्रभुः स्वयम्।
नाम्ना गोवर्धनो यत्र क्रीडाभूमिधरः परः॥२३१॥
नीलमण्डपिकाघट्टः कन्दरी मणिकन्दली।
घट्टो मानसगङ्गायाः पारङ्गो नाम विश्रुतः॥२३२॥
सुविलासतरा नाम तरिर्यत्र विराजते।
नाम्ना नदीश्वरः शैलो मन्दिरं स्फुरदिन्दिरम्॥२३३॥

आस्थानीमण्डपः पाण्डुगण्डशैलासनोज्ज्वलः।
आमोदवर्धनो नाम्ना परमामोदवासितः॥२३४॥

कृष्णो वा राधिका देवी राधिका वा स्वयम् प्रभुः। गोवर्धनः नाम्ना अपरः क्रीडाभूमिधरः यत्र मणिकन्दली कन्दरी मानसगंगाया नीलमण्डपिकाघटः पारङ्गः नाम घट्टः विश्रुतः। यत्र सुविलासतरा नाम तरिः विराजते। नदीश्वरः नाम्ना शैलः यत्र स्फुरद् इन्दिरम् मन्दिरम्। पाण्डुगण्डशैलः उज्ज्वलः आसनः परमामोदवासितः आमोदवर्धनः नाम्ना आस्थानीमण्डपः।

श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही कृष्ण हैं। दोनों में अभेद है। वहाँ गोवर्धन नाम का एक दूसरा क्रीडापर्वत है, जहाँ मणिजटित छोटी-छोटी गुफाएँ हैं। मानसगंगा के प्रसिद्ध नीलमंडपिका घाट और पारंग नामक घाट अति विख्यात हैं। उस गंगा में सुविलासतरा नाम की नौका विराज रही है। वहीं नदीश्वर नाम का पर्वत है, जिस पर लक्ष्मी की चमक से युक्त दिव्य मन्दिर है। पाण्डुगण्ड पर्वत की तरह उज्ज्वल आसन वाला, दिव्य गन्ध से सुवासित आमोदवर्धन नाम का सभामण्डप है॥२३१-२३४॥

पावनाख्यं सरः क्रीडाकुञ्जपुञ्जस्फुरन्नर(?ड)म्।
कुञ्जाः काममहातीर्था मन्दारमणिकुट्टिमाः॥२३५॥
न्यग्रोधराजो भाण्डीरः कृष्णराधाप्रियः सदा।
अरङ्गरङ्गभूर्नाम लीलापुलिनमुज्ज्वलम्॥२३६॥
राधाविरहदुःस्थस्य रुदतो वामनेत्रतः।
या धारा निर्गता सैव यमुनेति निगद्यते॥२३७॥
या धारा निर्गता दक्षनेत्राद् गङ्गेति सा मता।
या धारा नासिकामध्याद् गोमती सा शुचिस्मिते॥२३८॥

क्रीडाकुञ्जपुञ्जस्फुरन्नडम् पावनाख्यम् सरः। मन्दारमणिकुट्टिमाः कुञ्जाः काममहातीर्थाः न्यग्रोधराजः भाण्डीरः सदा राधाकृष्णप्रियः। अत्र अरङ्गरङ्गभूः नाम उज्ज्वलम् लीलापुलिनम्। राधाविरहदुःस्थस्य रुदतः (श्रीकृष्णस्य) वामनेत्रतः या धारा निर्गता सा एव यमुना इति निगद्यते। या धारा दक्षनेत्रात् निर्गता सा गंगा इति मता। शुचिस्मिते या धारा नासिकामध्यात् निर्गता सा गोमती।

वहाँ क्रीडाकुञ्जों के समूह से युक्त पावन नाम का सरोवर, जिसमें नड (नरकट नामक घास) झूमती रहती है, जो कामक्रीडा के लिये महातीर्थ है। वहाँ मन्दार वृक्षों के नीचे मणि से निर्मित कुंज हैं। भाण्डीर वन राधा-कृष्ण को सदा प्रिय है। यहाँ विभिन्न रंगों की चित्र-विचित्र भूमि है। ये प्रिया-प्रियतम के उज्ज्वल विहार तट हैं। राधा जी के विरह से कातर रोते हुए

श्रीकृष्ण के वाम नेत्र से प्रवाहित धारा ही यमुना है और दक्षिण नेत्र से प्रवाहित धारा ही गंगा है तथा नासिका के मध्य से बहने वाली धारा गोमती है—ऐसा मेरा मत है॥२३५-२३८॥

धाराभिस्तिसृभिः पूर्णं जातं कुण्डत्रयं महत्।
कृष्णदेहनिर्गताभिः पीतं तत्कामधेनुभिः॥२३९॥

कृष्णदेहनिर्गताभिः तिसृभिः धाराभिः महत् कुण्डत्रयम् पूर्णम् जातम् तत्कामधेनुभिः पीतम्।

श्रीकृष्ण की देह से प्रवाहित तीन धाराओं से तीन महान् कुण्ड परिपूर्ण हो गये और उनके जल का कामधेनुओं ने पान किया॥२३९॥

पुनस्ताभिः प्रच्युतास्तां अक्षय्याः सरितोऽभवन्।
गोमूत्रैर्यमुनाक्षीरैः गङ्गाविड्भिस्तु गोमती॥२४०॥
गोलोकमण्डना या सा यमुना कृष्णवल्लभा।
यमुनायां महातीर्थं खेलतीर्थमनुत्तमम्॥२४१॥
राधाकृष्णप्रियतरं खेलते यत्र राधिका।
अतिप्रेष्ठेन कृष्णेन सर्वदेवेश्वरेण च॥२४२॥
प्रियस्थानं मया प्रोक्तं प्रियद्रव्यं प्रियङ्करम्।
शरदिन्दुस्तु मुकुरो राधाकृष्णप्रियः सदा॥२४३॥

पुनः ताभिः गोमूत्रैः यमुनाक्षीरैः गोमती, गङ्गाविड्भिः प्रच्युताः ताः अक्षय्याः सरितः अभवन्। या गोलोकमण्डना सा यमुना कृष्णवल्लभा। यमुनायाम् अनुत्तमम् खेलतीर्थम् महातीर्थम् राधाकृष्णप्रियतरम् यत्र राधिका सर्वदेवेश्वरेण अतिप्रेष्ठेन श्रीकृष्णेन सह खेलते—इति प्रियस्थानम् मया प्रोक्तम्। प्रियद्रव्यम् प्रियंकरम् शरदिन्दुः तु मुकुरः सदा राधाकृष्णप्रियः।

पुनः उन तीन धाराओं—गोमूत्रों से, यमुना के क्षीर से और गोमती गंगा के प्रवाह से कभी न सूखने वाली अनेक सरिताएँ बन गयीं। जो गोलोक को शोभित करने वाली नदी यमुना है, वह श्रीकृष्ण को अतिप्रिय लगने वाली उस यमुना में महातीर्थों से भी अधिक उत्तम खेलतीर्थ है। यह खेलतीर्थ राधा-कृष्ण को अतिप्रिय है। यहाँ श्रीमती राधिका सर्वेश्वर अतिश्रेष्ठ श्रीकृष्ण के साथ सदा खेलती हैं। हे प्रिये! श्रीकृष्ण और राधा को प्रिय लगने वाले स्थानों का वर्णन कर दिया गया। अब उनकी प्रिय वस्तुओं को सुनाता हूँ। शरद का चन्द्र उनका दर्पण है, जो सदा राधा-कृष्ण को प्रिय है॥२४०-२४३॥

लीलापद्मं सदा स्मेरं व्यजनं मधुमारुतम्।
शिञ्ज(?ञ्जि)नीमञ्जुलसरं गेन्दुकश्चित्रकोरकः॥२४४॥
विलासकार्मणं नाम कार्मुकं स्वर्णचित्रितम्।
दिव्यरत्नस्फुरन्(?त्) पुष्टितुष्टिदा नामकर्तरी॥२४५॥
मन्द्रघोषो विषाणोऽस्य वंशी भुवनमोहिनी।
मणिरङ्गाट्टवीयुग्मं राधाकृष्णप्रियं परम्॥२४६॥

इति श्रीकृष्णयामले परब्रह्मलोकवर्णने सगणरहस्य-
वृन्दावनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

सदा स्मेरम् लीलापद्मम् मधुमारुतम् व्यजनम्। शिञ्जिनीमञ्जुलसरम्, चित्रकोरकः गेन्दुकः स्वर्णचित्रितम् विलासकार्मणम् नाम, दिव्यरत्नस्फुरत् कार्मुकम् पुष्टितुष्टिदा नाम कर्तरी, मन्द्रघोषः विषाणः, अस्य भुवनमोहिनी वंशी मणिरङ्गाट्टवी युग्मम् परम् राधाकृष्ण प्रियम्।

सदा खिला रहने वाला लीलापद्म, सुगन्धित हवा करने वाला बीजना, घंटी से मुखरित हार, कमल-चित्रित किया हुआ गेंद, स्वर्णचित्रित विलासकार्मण नाम का धनुष, दिव्य रत्नों की प्रभा को बिखेरने वाली पुष्टितुष्टिदा नाम की कर्तरी, गम्भीर घोष करने वाला विषाण, तीनों लोकों को मोहित करने वाली इनकी वंशी, मणिरंग अर्थात् मणिजटित रङ्गमञ्च एवं अट्टवी अर्थात् महल—ये दोनों राधा-कृष्ण को परम प्रिय हैं॥२४४-२४६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में वृन्दावन-वर्णन नामक सप्तम अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

अष्टमोऽध्यायः

वृन्दावनरहस्ये विद्याधरीसन्देहहरणम्

नारद उवाच—

ततस्तं भगवद्गाथागानसन्धानकारिणम्।
भूयः पप्रच्छ कुशला स्वामिनं वल्गुभाषितम्॥१॥

ततः कुशला (ब्राह्मणी) भगवद्गाथागानसन्धानकारिणम् वल्गुभाषितम् स्वामिनम् भूयः पप्रच्छ।

नारद जी ने कहा—इसके बाद अर्थात् दिव्य वृन्दावन का वर्णन सुनने के बाद उस चतुर ब्राह्मणी ने भगवद् गाथा के गान में संलग्न मधुर वाणी बोलने वाले अपने पति से पुनः पूछा॥१॥

ब्राह्मणी उवाच—

यत्ते ब्रह्मपुरस्योर्ध्वे कथितं पुरमद्भुतम्।
महाविष्णुशिरोदेशे सहस्त्रशिरसस्तथा॥२॥
मस्तकोपरि तत्रान्यं यदि विद्याधरेश्वर।
तदा तत्रैव भृङ्गारभङ्गुराद्याः कथं विभोः॥३॥
निवसन्ति भवन्तोऽपि तन्मे कथय निश्चितम्।

यत् ते ब्रह्मपुरस्य ऊर्ध्वे सहस्त्रशिरसः महाविष्णुशिरोदेशे अद्भुतम् पुरम् कथितम्। विद्याधरेश्वर! यदि तत्र मस्तकोपरि अन्यम् तदा तत्रैव विभोः भृङ्गारभङ्गुराद्याः तत्र भवन्तः अपि कथम् निवसन्ति? तत् मे निश्चितम् कथय।

ब्राह्मणी ने कहा—आपने ब्रह्मपुर के ऊपर हजारों शिर वाले तथा महाविष्णु के शिरोदेश में स्थित जिस अद्भुत वृन्दावन का वर्णन किया है, हे विद्याधरों के ईश्वर! यदि वहाँ मस्तक के ऊपर अन्य लोक हैं तो वहाँ पर विभु श्रीकृष्ण के भृङ्गार भंगुर आदि लोक कैसे स्थित हैं? आप भी उसमें कैसे निवास करते हैं? इस विषय को स्पष्ट करके बतलाइये॥२-३॥

क्वचित् कुरङ्गीभृङ्गारीसुरङ्गाद्याश्च योषितः॥४॥
अपि लक्ष्मीशिरोदेशे वसन्ति महदद्भुतम्।
एते मानुषनामानः कथमेषामुपर्यहो॥५॥
एष मे संशयो जातो हृदये हृदयेश्वर।

द्विभुजः कथितः कृष्णः त्वया योगेश्वरेश्वरः॥६॥
स कथं बहुशीर्षोऽपि तन्न जानामि तत्त्वतः।
सहस्रशीर्षो(?र्षः) पुरुषः प्रोक्तः सर्वेश्वरः प्रभुः॥७॥

क्वचित् कुरंगी, भृङ्गारी, सुरंगाद्याः योषितः अपि लक्ष्मीशिरोदेशे वसन्ति इति महद् अद्भुतम्। अहो एते मानुषनामानः एषाम् उपरि कथम् (तिष्ठन्ति)। हृदयेश्वर! मे हृदये एषः संशयः जातः। त्वया योगेश्वरेश्वरः श्रीकृष्णः द्विभुजः कथितः। सः कृष्णः बहुशीर्षः अपि कथम्? तत् तत्त्वतः न जानामि। सर्वेश्वरः सहस्रशीर्षः पुरुषः प्रभुः प्रोक्तः।

कुरंगी, भृंगारी, सुरंगा आदि स्त्रियाँ भी लक्ष्मी जी के शिरोदेश में रहती हैं—यह तो बड़े आश्चर्य का विषय है। अरे! ये मानव नाम वाले लोग लक्ष्मी और विष्णु के शिरोदेश में कैसे रहते हैं। हे प्राणनाथ! मेरे हृदय में यह सन्देह हो रहा है। आपने तो योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण को दो भुजाओं वाला कहा है, वह दो भुजा वाला कृष्ण सर्वेश्वर, सहस्र शिरों वाला कैसे हैं? यह बताओ॥४-७॥

ततोऽधिकतरत्वं च कृष्णस्य कथ्यते कथम्।
ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु व्यापकत्वेन संस्थितम्॥८॥

ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु व्यापकत्वेन संस्थितम् कृष्णस्य ततः अधिकतरत्वम् कथम् कथ्यते?

करोड़ों ब्रह्माण्डलोकों में व्यापक रूप में स्थित उन विष्णु की अपेक्षा आधिक्य कृष्ण की क्यों कही जाती है?॥८॥

घटे आकाशवन्नित्यं निर्विकारं निरञ्जनम्।
ज्योतीरूपं परं ब्रह्म सर्वगं सर्वविच्छिवम्॥९॥
ततोऽपि मही कृष्णस्य श्रूयते भवतो मुखात्।
सदाशिवाख्यं परमं लिङ्गमाद्यं निरामयम्॥१०॥
शिवशक्त्यात्मकं साक्षात् चिदानन्दं परात्परम्।
ततोऽपि कृष्णमाहात्म्यं श्रूयते भवतो मुखात्।
कथमेतत् सम्भवति संशयं छिन्धि सुव्रत॥११॥

घटे आकाशवत् नित्यम् निर्विकारम् निरञ्जनम् सर्वगम् सर्ववित् परम् ब्रह्म शिवम् ज्योतीरूपम् परमम् निरामयम् आद्यम् लिङ्गम् सदाशिव इति आख्यम्। ततः अपि कृष्णस्य मही भवतो मुखात् श्रूयते। चिदानन्दम् परात्परम् साक्षात् शिवशक्त्यात्मकम् ततोऽपि कृष्णस्य माहात्म्यम् भवतः मुखात् श्रूयते। एतत् कथम् सम्भवति? हे! सुव्रत संशयम् छिन्धि।

घट में आकाश की तरह वह नित्य, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वविद्, सब जगह व्याप्त, परम ब्रह्म, परमात्मा शिव ज्योतिस्वरूप हैं। निरामय, सबसे पहले उत्पन्न होने वाले लिङ्गरूप सदाशिव के नाम से विख्यात हैं। उनसे भी अधिक कृष्ण की महिमा है—यह आपके मुख से सुना है। चिदानन्द परात्पर परमात्मा साक्षात् शिवशक्ति स्वरूप हैं; फिर श्रीकृष्ण की महिमा उनसे अधिक है—ऐसा आपके मुख से सुना है। यह कैसे हो सकता है। हे सुव्रत! मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए॥९-११॥

नारद उवाच—

इति पृष्टः परं प्रेम्णा ब्राह्मण्या संशितव्रतः।
ब्राह्मणीं तामुवाचेदं क्षपयन् हृदि संशयम्॥१२॥

इति ब्राह्मण्या परम् प्रेम्णा पृष्टः संशितव्रतः (ब्राह्मणः) हृदि संशयम् क्षपयन् ताम् ब्राह्मणीम् इदम् उवाच।

नारदजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा प्रेमपूर्वक पूछे हुए उस ब्राह्मण ने ब्राह्मणी के हृदयगत सन्देह को नष्ट करते हुए उससे यह कहा॥१२॥

ब्राह्मण उवाच—

अनाद्यन्तमिदं भद्रे पुरं वृन्दावनाभिधम्।
ब्रह्मभूतं कामगमं सर्वकामैकपूरकम्॥१३॥
अत्यद्भुतमद्भुतानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
भक्त्या बिभर्ति शिरसि महाविष्णुर्जगत्पतिः॥१४॥
प्रभोः पादाम्बुजादेतज्जातं मे बिभ्रतः पुरम्।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डभर्ता वै भवितास्म्यहम्॥१५॥

भद्रे! सर्वकामैकपूरकम् कामगमम् ब्रह्मभूतम् इदम् वृन्दावन-अभिधम् पुरम् अनाद्यन्तम्; अद्भुतानाम् अद्भुतम्, मङ्गलानाम् च मङ्गलम् तत्पुरम् जगत्पतिः महाविष्णुः शिरसि भक्त्या बिभर्ति। बिभ्रतः मे प्रभोः पादाम्बुजात् एतत् पुरम् जातम्। अहम् अनन्तकोटिब्रह्माण्डभर्ता वै भविता अस्मि।

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्रे! सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला एकमात्र, इच्छानुसार जाने वाला, ब्रह्म की प्रतिमूर्ति यह दिव्य वृन्दावन नाम का पुर अनादि है। यह अद्भुतों में अति अद्भुत और मंगलकारियों में सबसे अधिक माङ्गलिक है। इसीलिए जगत्पति महाविष्णु इस पुर को भक्ति के साथ अपने शिर पर धारण करते हैं। यह देदीप्यमान पुर मेरे भरणकर्त्ता प्रभु के चरण-कमलों से उत्पन्न हुआ है। मैं ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का कर्त्ता-भर्त्ता हूँ॥१३-१५॥

सहस्रवदनो नागो महानन्त इति श्रुतः।
स सहस्रैः शिरोभिस्तद् बिभर्ति भुवनं विभोः॥१६॥
वसन्ति तत्र ये लोकाः कृष्णसेवापरायणाः।
सर्वे मनुष्यनामानो मानुष्यव्यवहारिणः॥१७॥
यावन्तो जन्तवो भद्रे नरश्रेष्ठास्त एव हि।
मानुष्यं दुर्लभं लोके तदेव क्षणभङ्गुरम्॥१८॥

सहस्रवदनः नागः महा-अनन्तः श्रुतः। सः सहस्रैः शिरोभिः विभोः तद् भुवनं बिभर्ति। तत्र ये लोकाः वसन्ति ते सर्वे मनुष्यनामानः मानुष्यव्यवहारिणः कृष्णसेवापरायणाः (सन्ति)। भद्रे! यावन्तः जन्तवः ते एव नरश्रेष्ठाः। हि लोके मानुष्यम् दुर्लभम् तद् एव क्षणभंगुरम्।

सुना है कि महा अनन्त नाग हजार मुख वाले हैं। नाग अपने हजार शिरों पर प्रभु श्रीकृष्ण के उस भुवन को धारण करते हैं। वहाँ जो लोग निवास करते हैं, सभी मनुष्य नाम वाले हैं और मनुष्यों के जैसा व्यवहार करते हैं। सभी कृष्णसेवापरायण हैं। हे भद्रे! वहाँ जितने भी जीव हैं, वे सब मनुष्यों की तरह श्रेष्ठ हैं। लोक में यह मानुष्य परम दुर्लभ है। यह क्षणभंगुर भी है॥१६-१८॥

वसन्ति तत्र ये नित्या मनुष्या ब्रह्मरूपिणः।
वयं च निर्मितास्तेन तच्छक्त्या निवसामहे॥१९॥
अपि तत्स्थस्य भृङ्गस्य ब्रह्मापि न समो भवेत्।
देवा अपि मनुष्यत्वमिच्छन्ति कमलानने॥२०॥
मानुष्यलोकमप्राप्य न किञ्चित्साध्यते जनैः।
अपि ब्रह्मत्वमाप्नोति मानुषीं योनिमाश्रिताः॥२१॥
तस्मान्मानुष्यधर्मा स भगवान् भूतभावनः।

तत्र ये मनुष्याः वसन्ति ते नित्याः ब्रह्मरूपिणः। तेन वयम् निर्मिताः तत्-शक्त्या निवसामहे। ब्रह्मा अपि तत्स्थस्य भृङ्गस्य समः न भवेत्। कमलानने! देवाः अपि मनुष्यत्वम् इच्छन्ति। जनैः मानुष्यलोकम् अप्राप्य किञ्चित् न साध्यते। मानुषीम् योनिम् आश्रित्य ब्रह्मत्वम् अपि आप्नोति। तस्मात् स भूतभावनः भगवान् मानुष्यधर्मा (अस्ति)।

उस वृन्दावन में जो मनुष्य रहते हैं, वे सभी नित्य एवं ब्रह्मरूप हैं। हमारा निर्माण भी स्वयं श्रीकृष्ण ने किया है। उन्हीं की शक्ति से हम वहाँ रहते हैं। ब्रह्मा भी वहाँ रहने वाली भृंगी की समता नहीं कर सकते। हे कमल के समान मुख वाली! देव मनुष्यत्व प्राप्त करना चाहते हैं; क्योंकि

मनुष्यत्व प्राप्त किये बिना प्राणी कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य लोक में जन्म लेकर जीव ब्रह्मत्व को भी प्राप्त कर लेता है; अतः वे भगवान् भूतभावन मानुष्य धर्म ग्रहण करते हैं।।१९-२१।।

मनुष्यरूपैः स्वाकारैर्भक्तिप्रेमसमन्वितैः।।२२।।
पूज्यते सर्वलोकेशः सर्वदा नरनीरधिः।
द्विभुजात् सकलं विश्वमुत्पन्नं कमलेक्षणे।।२३।।
नानाकारं निराकारं तस्मादेतच्चराचरम्।
बीजं तु द्विदलं प्रोक्तं व्यक्ताव्यक्तं शुचिस्मिते।।२४।।
तस्माद् बहुदलं तद्वद् शाखापल्लवसंहतम्।
एवं द्विभुजतः सर्वं विद्धि सत्यं वदाम्यहम्।।२५।।

नरनीरधिः सर्वलोकेशः स्वाकारैः मनुष्यरूपैः भक्तिप्रेमसमन्वितैः सर्वदा पूज्यते। कमलेक्षणे! द्विभुजात् तस्मात् एतत् निराकारम् चराचरम् सकलम् विश्वम् उत्पन्नम्। शुचिस्मिते! व्यक्ताव्यक्तम् बीजम् तु द्विदलम् प्रोक्तम्। तस्मात् बहुदलम् तद्वत् शाखापल्लवसंहतम्। एवम् द्विभुजतः सर्वम् विद्धि। अहम् सत्यम् वदामि।

नर-नीरधिरूप सर्वलोकेश श्रीकृष्ण भक्ति एवं प्रेम से युक्त अपने आकार के मनुष्यों द्वारा हमेशा पूजे जाते हैं। हे कमलेक्षणे! उन दो भुजा वाले प्रभु से यह निराकार तथा नाना आकार वाला चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है। हे शुचिस्मिते! व्यक्त एवं अव्यक्तरूप बीज दो दलों वाला होता है। उससे बहुदल वाला यह संसार उसी प्रकार उत्पन्न हो जाता है, जैसे दो दल वाले बीज से बहु शाखा और पल्लवों वाला वृक्ष। इसी तरह सारे संसार की उत्पत्ति का कारण दो भुजाओं वाले श्रीकृष्ण को ही जानो। मैं तुम से सत्य कहता हूँ।।२२-२५।।

यद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं स कृष्ण इति कथ्यते।
एकः कृष्णो द्विधाभूतो मुमुक्षुभजनैषिणोः।।२६।।
उपकाराय शुद्धात्मा वेदविद्भि स गीयते।
मुक्तो ब्रह्मपदं याति तदङ्गं ज्योतिरुत्तमम्।।२७।।
भक्तः कृष्णपदं साक्षात् सेवतेऽमलया धिया।
ज्योतीरूपं तु मुक्तानां भक्तानां द्विभुजाकृतिः।।२८।।

यद् सूक्ष्मम् परमं ब्रह्म स कृष्ण इति कथ्यते। स शुद्धात्मा एकः कृष्णः मुमुक्षुभजनैषिणोः उपकाराय द्विधाभूतः गीयते। मुक्तः तदङ्गम् उत्तमम् ज्योतिः ब्रह्मपदम् याति। भक्तः अमलया धिया साक्षात् कृष्णपदम् सेवते। (सः) मुक्तानाम् (कृते) ज्योतिःरूपम् भक्तानाम् (कृते) द्विभुजाकृतिः।

जो सूक्ष्म परंब्रह्म है, वह श्रीकृष्ण कहा जाता है। वेदवेत्ता लोग शुद्धात्मा एक ही कृष्ण को मोक्षेच्छु एवं भक्तों के उपकार के लिये दो रूपों में अवतीर्ण कहते हैं। मुमुक्षुजन मुक्त होकर उसके उत्तम ज्योतिरूप अङ्ग बन जाते हैं और भक्तजन निर्मल चित्त से कृष्ण के चरणों की साक्षात् सेवा करते हैं। इस तरह मुमुक्षुओं के लिए वे ज्योतिरूप हैं और भक्तों के लिए दो भुजाओं से युक्त आकृति वाले।।२६-२८।।

अपर्यन्तगुणत्वाच्च स महाविष्णुरुच्यते।
प्रकृतिः सा परा सूक्ष्मा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गं स सदाशिव उच्यते।।२९।।

अपर्यन्तगुणत्वात् सः महाविष्णुः उच्यते। सा परा सूक्ष्मा प्रकृतिः श्रीमत्-त्रिपुरसुन्दरी उच्यते। पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गम् सः सदाशिवः उच्यते।

अनन्त गुणों के कारण वह महाविष्णु कहे जाते हैं। उनकी परा सूक्ष्मा प्रकृति ही श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी कही जाती हैं तथा पुरुषप्रकृत्यात्मक लिङ्ग को सदाशिव कहा जाता है।।२९।।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कृष्णः साक्षात् क्रीडते गोपिकाभि-
र्गोपैः शश्वद्दुर्विभाव्यः समन्तात्।।३०।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दावनरहस्ये विद्याधरी-
सन्देहहरणं नाम अष्टमोऽध्याय।।८।।

सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा एकः देवः समन्तात् शश्वद् दुर्विभाव्यः। सः देवः कृष्णः साक्षात् गोपैः गोपिकाभिः सह क्रीडते।

एक ही देव सभी प्राणियों में छिपा हुआ, सर्वव्यापी, सब भूतों की अन्तरात्मारूप है, जो निरन्तर सबके लिए अकल्पनीय है; वही देव श्रीकृष्ण साक्षात् प्रकट होकर गोप और गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हैं।।३०।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में वृन्दावन रहस्य में विद्याधरीसन्देहहरण नामक अष्टम अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

नवमोऽध्यायः

भगवदुद्देशः

नारद उवाच—

इति हरिगुणगाथागानसन्धानदक्षं
विपुलपुलकपूर्णं विश्रुतास्त्राक्षिताक्षम्।
शिरसि पुटितहस्ता तत्पदान्तं निधाय
द्विजकुलमहिला तं चारुवाग्भिर्जगाद॥१॥

इति हरिगुणगाथागानसन्धानदक्षम् विपुलपुलकपूर्णम् विश्रुतास्त्राक्षिताक्षम् तम् द्विजकुलमहिला शिरसि पुटितहस्ता तत्पदान्तम् निधाय चारुवाग्भिः जगाद।

नारद जी ने कहा—इस प्रकार हरिगुणगाथागान के सन्धान में निपुण, अत्यन्त रोमाञ्चित शरीर वाले, निरन्तर प्रेमाश्रुओं से पूरित नेत्र वाले उस ब्राह्मण के चरणों में सिर से जुड़े हुए हाथों को रखकर द्विजकुल महिला ने सुन्दर वाणी में कहा॥१॥

ब्राह्मणी उवाच—

ब्रह्मन् यत्कथितं मह्यं वनं त्रैलोक्यमोहनम्।
समस्तजगदाधारं ज्योतीरूपं महत्पदम्॥२॥
दिव्यं वृन्दावनं नाम निर्मितं केन तत्पुरा।
तन्मे कथय प्राणेश गोविन्दप्रियबान्धव॥३॥

ब्रह्मन्! प्राणेश! गोविन्दप्रियबान्धव! यत् त्रैलोक्यमोहनम् समस्तजगदाधारम् ज्योतीरूपम् महत्पदम् वनम् मह्यम् कथितम् पुरा तत् दिव्यम् वृन्दावनम् नाम केन निर्मितम्? तत् मे कथय।

ब्राह्मणी ने कहा—हे ब्राह्मण! हे प्राणवल्लभ! हे गोविन्द के प्रिय बान्धव! जिस त्रैलोक्य-मोहन, समस्त जगत् के एकमात्र आधार, ज्योतीरूप, महत् पद वृन्दावन का आपने मेरे समक्ष वर्णन किया, उस दिव्य वृन्दावन को सर्वप्रथम किसने बनाया? यह आप मुझे बतलाइये॥२-३॥

ब्राह्मण उवाच—

वयमेतन्न जानीमो गीतवाद्यरताश्चिरम्।
रसोन्मत्ता जडात्मानो ज्ञानकर्मबहिष्कृताः॥४॥

सदाशिवोऽपि सम्पूर्णं नैवं वेत्ति महामतिः।
न ब्रह्मा शङ्करश्चापि न विष्णुस्तत्परं पदम्॥५॥
जानन्ति पद्मपत्राक्षे किमिन्द्राद्याः सुरेश्वराः।

पद्मपत्राक्षे! ज्ञानकर्मबहिष्कृताः रसोन्मत्ताः जडात्मानः चिरम् गीतवाद्यरताः वयम् एतत् न जानामि। महामतिः सदाशिवः अपि एवम् सम्पूर्णम् न वेत्ति। तत्परम् पदम् ब्रह्मा विष्णुः शङ्करः च अपि न जानन्ति तदा इन्द्राद्याः सुरेश्वराः अपि किम्।

ब्राह्मण ने कहा—हे कमल के पत्र की तरह नेत्र वाली! ज्ञानकर्म से बहिष्कृत, सदा रस में उन्मत्त, निरन्तर गीत-वाद्य कर्म में लगे हुए हम लोग यह नहीं जानते कि वृन्दावन का निर्माण किसने किया? इस तथ्य को तो महामति सदाशिव भी पूरी तरह नहीं जानते। उस परमपद वृन्दावन के रहस्य को ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी नहीं जानते; फिर इन्द्र आदि सुरेश्वरों का क्या कहना?॥४-५॥

वयं गोविन्दपादाब्जयशःकीर्तनलोभिताः॥६॥
पश्यन्तोऽन्यं न पश्यामो गोविन्दचरणं विना।
शृण्वन्तोऽन्यं न शृणुमो विना गोविन्दकीर्तनम्॥७॥

वयम् तु गोविन्दपादाब्जयशःकीर्तनलोभिताः पश्यन्तः अपि गोविन्दचरणम् विना अन्यम् न पश्यामः, शृण्वन्तः अपि गोविन्दकीर्तनम् विना अन्यम् न शृणुमः।

हे प्रिये! हम तो श्रीगोविन्द के चरणकमलों के यश को गाने के लोभी हैं; अतः देखते हुए भी हमें गोविन्द के चरणों के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता और सुनते हुए भी हमें श्रीगोविन्द के यशकीर्तन के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता॥६-७॥

महतः सुभगे भाग्याद् दैवाच्छ्रुतमिदं मया।
यत्त्वया पृष्टमाश्चर्यं वृन्दावनकृते शुभे॥८॥
वनेऽस्मिन् क्रीडतां गोपबालकानां मुखाच्छ्रुतम्।
क्रीडन्तस्ते च सुभगे श्रान्ता भाण्डीरकं वटम्॥९॥
गत्वा मूले तस्य तरोर्दिव्ये शाद्वलकोमले।
स्थाने निविष्टा अन्योन्यं कथां चक्रुः कुमारकाः॥१०॥

शुभे! यत् त्वया वृन्दावनकृते आश्चर्यम् पृष्टम्। सुभगे! महतः भाग्यात् दैवात् इदम् मया श्रुतम्। अस्मिन् वने क्रीडताम् गोपबालकानाम् मुखात् श्रुतम्। सुभगे क्रीडन्तः श्रान्ताः ते कुमारकाः भाण्डीरकम् वटम् गत्वा तस्य तरोः मूले दिव्ये शाद्वलकोमले स्थाने निविष्टा अन्योन्यम् कथाम् चक्रुः।

हे शुभे! आपने वृन्दावन की उत्पत्ति के विषय में जो आश्चर्यजनक प्रश्न किया है, हे सुभगे! मैंने वह महत् भाग्य और दैवयोग से वन में खेलते हुए गोप-बालकों के मुख से सुना था। एक बार खेलते हुए वे बालक बहुत थक कर भाण्डीर नामक वन में स्थित वट के पास गये और वृक्ष के मूल देश में दिव्य हरी-हरी कोमल घास वाले स्थान पर बैठ गये और वे गोपकुमार परस्पर कथा करने लगे अर्थात् बातें करने लगे॥८-१०॥

केचित् कृष्णकथां दिव्यां केचिव् राधाकथां तथा।
वृन्दावनकथां केचिद् गोलोकानां तथाऽपरे।
बलरामं पुरस्कृत्य पप्रच्छुर्वनचारिणः॥११॥

केचित् दिव्याम् कृष्णकथाम्; केचित् दिव्याम् राधाकथाम् केचित् वनचारिणः वृन्दावनकथाम् तथा अपरे गोलोकानाम् कथाम् बलरामम् पुरस्कृत्य पप्रच्छुः।

उन वनचारियों में से किसी ने दिव्य कृष्णकथा को, किसी ने दिव्य राधाकथा को, किसी ने दिव्य वृन्दावनकथा को तथा किसी ने गोलोक की कथा को श्रीबलराम जी से पूछा॥११॥

गोपबालका ऊचुः—

बलराम महाभाग श्रीकृष्णप्रियबान्धव।
वृन्दावनमिदं केन निर्मितं तद् वदस्व नः॥१२॥
त्वं चात्र कुत आयातः कोऽसि जातोऽसि कुत्र वा।
एतत्प्रश्नद्वयं देव वयं शुश्रूषवः परम्।
आख्याहि संशयं छिन्धि हृदये हृदयेश नः॥१३॥

महाभाग! बलराम! श्रीकृष्णप्रियबान्धव! इदम् वृन्दावनम् केन निर्मितम् तद् नः वदस्व। अत्र त्वम् कुत आयातः? कः असि? कुत्र जातः असि? प्रश्नद्वयम् देव! वयम् एतत् परम् शुश्रूषवः। हृदयेश! नः आख्याहि संशयम् छिन्धि।

गोपबालकों ने कहा—हे महाभाग बलराम! हे श्रीकृष्ण के प्रिय बान्धव! इस वृन्दावन को किसने बनाया ? यह हमें बताओ। तुम यहाँ कहाँ से आये हो? तुम कौन हो? तथा तुम कहाँ उत्पन्न हुए हो? हे देव! हम इन दो उत्तम प्रश्नों को सुनना चाहते हैं। अतः हे हृदयेश! हमें वृन्दावन और अपने विषय में बताइए और हमारे सन्देह को दूर कीजिए॥१२-१३॥

बलराम उवाच—

वृन्दावनमिदं केन निर्मितं व्रजबालकाः।
आत्मनोऽपि यथा जन्म न जानामि कुतोऽपि तत्॥१४॥

यूयं मत्पूर्वजन्मानि(?नः) इति मे हृदये स्मृतिः।
समुद्भूय पुरोऽपश्यं सूक्ष्मान् कृष्णहृदिस्थितान्॥१५॥

व्रजबालकाः! इदम् वृन्दावनम् केन निर्मितम् तथा आत्मनः अपि जन्म कुतः इति अपि न जानामि। यूयम् मत्पूर्वजन्मानः इति मे हृदये स्मृतिः। पुरा समुद्भूय कृष्णहृदि स्थितान् सूक्ष्मान् अपश्यम्।

बलराम जी ने कहा—हे व्रजबालकों! मैं नहीं जानता कि इस वृन्दावन को किसने बनाया। मैं यह भी नहीं जानता कि मेरा जन्म कहाँ हुआ है और मैं कहाँ से आया हूँ ? पर मेरे हृदय में यह स्मृति विद्यमान है कि तुम लोग मुझसे पहले उत्पन्न हुए हो। मैंने उत्पन्न होकर आप लोगों को श्रीकृष्ण के हृदय में सूक्ष्म रूप में स्थित देखा था॥१४-१५॥

ततो गोपीश्च गाश्चैव तथाऽन्यान् वनचारिणः।
अहं त्ववरजन्माऽस्मि कथं पृच्छन्ति मार्भकाः।
भवन्त एव जानन्ति गोविन्दस्य रहः परम्॥१६॥

ततः गोपीश्च गाः च एव तथा अन्यान् वनचारिणः (अपश्यम्)। अहम् तु अवरजन्मा अस्मि। अर्भकाः! (भवन्तः) मां कथम् पृच्छन्ति? गोविन्दस्य परम् रहः भवन्तः एव जानन्ति।

मैंने गोपियों, गायों तथा अन्य वनचरों को (वहीं कृष्ण के) हृदय में सूक्ष्म रूप में देखा था। मेरा जन्म तो आपके बाद हुआ है; फिर हे गोपबालकों! मुझसे वृन्दावन का रहस्य क्यों पूछ रहे हो? गोविन्द के परम रहस्य को तो आप गोपबालक ही जानते हैं॥१६॥

बालका ऊचुः—

गोविन्दस्य भवान् मान्यो यथा नान्यस्तथैव हि।
तन्मान्यतोऽस्मन्मान्योऽसि दासास्तव वयं विभो॥१७॥
यान्तं त्वामनुगच्छामः स्थितं त्वां पर्युपास्महे।
त्वयि हृष्टे वयं हृष्टाः क्लिष्टे क्लेशितमानसाः॥१८॥
वयं चानुगता राम कृष्णस्यानुम(?ग) ते त्वयि।
यत्तत्त्वं त्वं(?हि) जानासि तत्किं जानीमहे वयम्॥१९॥

गोविन्दस्य भवान् यथा मान्यः तथा हि अन्यः न। तत् मान्यतः अस्मद् अपि मान्यः असि। विभो! वयम् तव दासाः। यान्तम् त्वाम् अनुगच्छामः। स्थितम् त्वाम् परि-उपास्महे। त्वयि हृष्टे वयम् हृष्टाः। (त्वयि) क्लिष्टे क्लेशितमानसाः। राम! त्वयि कृष्णस्य अनुगते च वयम् अनुगताः। यत् तत्त्वम् त्वम् जानासि तत् वयम् किम् जानीमहे।

गोपबालकों ने कहा—(हे बलराम!) आप गोविन्द के लिए जितने सम्माननीय हैं, उतना अन्य कोई भी नहीं है। उनके सम्माननीय होने के कारण आप हमारे भी माननीय हैं। जब आप जाते हैं तो हम आपके पीछे-पीछे चलते हैं। यदि आप बैठ जाते हैं तो हम आपकी सेवा करते हैं। यदि आपको प्रसन्नता होती है तो हमारे मन में प्रसन्नता होती है। यदि आप दुःखी होते हैं तो हमें भी दुःख का अनुभव होता है। आपके कृष्ण के अनुगामी भी होने पर हम आपके अनुगत होते हैं। अतः जिस तत्त्व को आप जानते हैं, उसे हम कैसे जान सकते हैं?॥१७-१९॥

एवमेव विजानीमो नीपमूले स्थितस्य वै।
कृष्णस्याङ्गात् समुत्पन्ना दिव्यरूपा किशोरकाः॥२०॥
तत्कालसम्भवा किन्तु वयं वो गोपबालकाः।
तत्परं यत्कृतं तेन तत्सर्वं विद्महे परम्॥२१॥
विना राधासङ्गमं च विना त्वज्जन्मकारणम्।

वयम् एवम् एव विजानीमः यत् नीपमूले स्थितस्य श्रीकृष्णस्य अङ्गात् दिव्यरूपाः किशोरकाः समुत्पन्नाः किन्तु तत्कालसम्भवाः वयम् वः गोपबालकाः तत्परम् तेन यत् कृतम् राधासङ्गमम् विना त्वज्जन्मकारणम् विना तत्सर्वम् परम् विद्महे।

हम तो इतना जानते हैं कि नीप अर्थात् कदम्ब के मूल में स्थित श्रीकृष्ण के शरीर से दिव्य रूप वाले किशोर बालक उत्पन्न हुए। उस समय उत्पन्न होने वाले हम आपके गोपबालक श्री राधा जी के संगम और आपके जन्म के कारण को छोड़कर वह सब कुछ जानते हैं, जो हमारे जन्म के बाद श्रीकृष्ण ने किया है॥२०-२१॥

इत्युक्ते सुबलेनाथ हसन्ति तरवो लताः॥२२॥
पक्षिणो भ्रमराश्चैव जलस्थलनिवासिनः।
ततः स चकिताक्षस्तु लज्जितो मुसलायुधः।
वृक्षान् लताः पक्षिणस्तु पप्रच्छ स्वच्छया गिरा॥२३॥

अथ सुबलेन इति उक्ते तरवः लताः जलस्थलनिवासिनः भ्रमराः पक्षिणः च हसन्ति। ततः सः मुसलायुधः चकिताक्षः लज्जितः (सन्) स्वच्छया गिरा वृक्षान् लताः पक्षिणः तु पप्रच्छ।

सुबल के इस प्रकार के कहने पर वृक्ष, लता, जल, स्थल के जीव, भ्रमर तथा पक्षी हँसने लगे। इससे लज्जित एवं चकित नेत्रों वाले उन हलधर ने स्वच्छ वाणी में वृक्षों, लताओं और पक्षियों से पूछा॥२२-२३॥

बलराम उवाच—

यूयं पूर्वभवा वृक्षा गोविन्दप्रतिमूर्तयः।
पक्षिणः कल्पलतिकास्तत्त्वं ब्रूत जगत्प्रभोः॥२४॥
केनेदं निर्मितं श्रीमद्वृन्दावनमनुत्तमम्।
किमीहः स किमाधारः किंरूपः किंप्रियः परः।
तत्कथ्यतां महाभागा मह्यं शुश्रूषवे चिरम्॥२५॥

हे गोविन्दप्रतिमूर्तयः! वृक्षा! पक्षिणः! कल्पलतिकाः! यूयम् पूर्वभवाः जगत् प्रभोः तत्त्वम् ब्रूत। इदम् अनुत्तमम् श्रीमद्वृन्दावनम् केन निर्मितम्। स परः किम्-ईहः किम्-आधारः किम्-रूपः किम्-प्रियः? महाभागा! चिरम् शुश्रूषवे मह्यम् तत् कथ्यताम्।

हे गोविन्द की प्रतिमूर्तियों! वृक्षों! पक्षियों! और कल्पलताओं! आप पहले उत्पन्न होने वाले हैं। अतः जगत् के प्रभु श्रीकृष्ण के तत्त्व को सुनाओ कि इस दिव्य वृन्दावन को किसने बनाया? वह परतत्त्व कृष्ण किस इच्छा, किस आधार, किस रूप वाले हैं? उनको क्या प्रिय लगता है? हे महाभागों! सुनने की इच्छा वाले मुझको यह बतलाओ॥२४-२५॥

ब्राह्मण उवाच—

ततस्तं प्रेमवचनैर्बलरामं महाबलम्।
प्रणिपत्य च ते सर्वे वृक्षपक्षिलतागणाः।
ऊचुः प्रहृष्टमनसो गोविन्दस्मरणोत्सुकाः॥२६॥

ततः गोविन्दस्मरणोत्सुकाः ते सर्वे वृक्षपक्षिलतागणाः बलरामम् महाबलम् प्रणिपत्य प्रहृष्टमनसा प्रेमवचनैः ऊचुः।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद गोविन्द के स्मरण से उत्सुक वे सभी वृक्ष, पक्षी और लताएँ महाबली बलराम जी को प्रणाम करके प्रसन्नचित्त होकर प्रेमपूर्ण वाणी में बोले॥२६॥

तरव ऊचुः—

वयं तु पूर्वजन्मानो भगवद्देहसम्भवाः।
आत्मनश्चोपभोगार्थं सृष्टा भ्रूक्षेपमात्रतः॥२७॥
रहस्यज्ञा वयं तस्य देव नास्त्यत्र संशयः।
नान्यस्मै कथितुं शक्ताः तं विना पुरुषोत्तमम्॥२८॥
राधायां त्वयि गोविन्दे विशेषो नैव विद्यते।
तस्मै प्रष्टुं प्रयुज्येत नान्यो वक्तुं क्षमस्तु नः॥२९॥

पूर्वजन्मानः वयम् तु भगवद्देहसम्भवाः आत्मनः उपभोगार्थम् भ्रूक्षेपमात्रतः सृष्टाः वयम् तस्य देवस्य रहस्यज्ञाः अत्र संशयः न अस्ति। परम् तम् पुरुषोत्तमम् विना अन्यस्मै कथितुम् न शक्ताः। राधायाम् त्वयि गोविन्दे च विशेषः नैव विद्यते तत् तस्मै प्रष्टुम् प्रयुञ्ज्येत। नः अन्यः वक्तुम् न क्षमः।

वृक्षों ने कहा—पूर्व में उत्पन्न होने वाले हम सब भगवान् श्रीकृष्ण की देह से उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने अपने उपभोग के लिए भ्रूविक्षेपमात्र से हमारी रचना की। हम उन श्रीकृष्ण के रहस्यों को भली प्रकार जानते हैं; इसमें भी कोई संशय नहीं है। पर श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी को भी इस रहस्य को बतलाने में हम समर्थ नहीं हैं। राधिका जी, आप और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है। अतः आप उनसे ही इस प्रश्न (रहस्य) को पूछें। हममें से कोई अन्य इसे बताने में समर्थ नहीं है।।२७-२९।।

लता ऊचुः—

वयं तल्लोमजा देव तेनैव रोपिता इह।
तत्तत्त्वं सैव जानाति नान्यो जानाति कश्चन।।३०।।
किं वयं लतिका वृक्षाः पक्षिणो मुग्धचेतसः।
यावदेतद् वनं जातं तावज्जानीमहे वयम्।।३१।।
अयं वृन्दावनासीनः पुरुषः श्यामलाकृतिः।
स्त्रष्टाऽस्य विपिनस्याद्यः सर्ववित् कमलेक्षणः।।३२।।
किन्नु वृन्दावनं स्थानं कुतो जातमिति प्रभो।
न जानीम एतदर्थं केन वा निर्मितं पुरा।।३३।।

देव! वयम् तत् लोमजाः तेन एव इह रोपिताः। तत् तत्त्वम् स एव जानाति अन्यः कश्चन न जानाति। वयम् लतिकाः वृक्षाः पक्षिणः च मुग्धचेतसः। एतद् वनम् यावत् जातम् तावत् जानीमहे। वृन्दावनासीनः अयम् श्यामलाकृतिः पुरुषः कमलेक्षणः सर्ववित् अस्य विपिनस्य आद्यः स्त्रष्टा। किन्तु प्रभो! वृन्दावनम् स्थानम् कुतः जातम्? पुरा केन वा निर्मितम्? एतत् अर्थम् न जानीमः।

हे देव! हम श्रीकृष्ण के रोमों से उत्पन्न हुई हैं। उन्होंने हमें यहाँ रोपित किया है। इस तत्त्व को वे ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता। हम लता, वृक्ष, पक्षी आदि तो मुग्धचेता (जड़ प्रकृति) हैं। यह वन जबसे उत्पन्न हुआ है तब से हम जानती हैं। वृन्दावन में आसीन, यह श्यामल आकृति, कमलेक्षण सर्ववित् पुरुष ही इस वन का आद्य स्त्रष्टा है। किन्तु प्रभो! यह वृन्दावन कहाँ से उत्पन्न हुआ? पहले इसे किसने बनाया? इस विषय को हम नहीं जानतीं।।३०-३३।।

पक्षिण ऊचुः—

आदौ स्थानं ततो वृक्षास्ततस्ते लतिकाः स्थिताः।
वयं तत्र पक्षिणस्तु तदन्ते भ्रमरादयः॥३४॥
स्थानं विना कुतो वृक्षा लता वा वृक्षमाश्रिताः।
पक्षिणो वृक्षशोभार्थं वयं हि फलभोगिनः॥३५॥

आदौ स्थानम्, ततः ते वृक्षा, ततः लतिकाः स्थिताः। वयम् पक्षिणः तत्र तद्-अन्ते भ्रमरादयः। स्थानम् विना वृक्षाः वृक्षमाश्रिताः लताः वा वयम् कुतः वृक्षशोभार्थम् पक्षिणः हि फलभोगिनः।

पक्षियों ने कहा—बलराम जी! सबसे पहले स्थान उत्पन्न होता है, उसके बाद वृक्ष उत्पन्न होते हैं। वृक्षों के बाद उन पर स्थित लताएँ उत्पन्न होती हैं। इसके बाद वृक्षों पर बैठने वाले पक्षीगण होते हैं और उनके बाद भ्रमर आदि उत्पन्न होते हैं। बिना स्थान के वृक्ष और वृक्षों पर आश्रित लताएं कैसे हो सकते हैं ? हम वृक्षों की शोभा के लिए हैं और पक्षी वृक्षों की शोभा के लिए उत्पन्न हुए हैं। पक्षी फलभोगी हैं॥३४-३५॥

तत्रैव भ्रमरा नित्यं जाताः पुष्पद्रुमेषु च।
भ्रमन्ति मधुपानार्थं दिव्यपानपरायणाः॥३६॥
तथा जलचराद्येवं सरित्सु च सरःसु च।
पक्षिणो हंसचक्राह्वसारसाद्या महौजसः।
कृष्णप्रीतिकराः सर्वे तद्देहप्रभवा वयम्॥३७॥

तत्रैव पुष्पद्रुमेषु भ्रमराः जाताः नित्यम् दिव्यपानपरायणाः (भ्रमराः) मधुपानार्थम् भ्रमन्ति। तथा सरित्सु च सरःसु च जलचरादि एवम् तत्-देहप्रभवाः हंसचक्राह्वसारसाद्याः वयम् महौजसः पक्षिणः सर्वे कृष्णप्रीतिकराः।

उसी वृन्दावन में पुष्पद्रुमों पर भ्रमर उत्पन्न हुए हैं। नित्य दिव्यपान-परायण ये भ्रमर मधुपान के लिए उड़ते रहते हैं। इसी तरह नदी और सरोवर में जलचर जीव-जन्तु उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं की देह से उत्पन्न होने वाले हंस, चक्रवाक, सारस आदि तथा महा ओजस्वी हम पक्षीगण श्रीकृष्ण के लिए आनन्द देने वाले हैं॥३६-३७॥

मृगा ऊचुः—

वयं गोविन्दनयनकटाक्षप्रभवा विभो।
वृन्दावनचराः सर्वे मोहितास्तस्य मायया॥३८॥
तद् वंशीमधुरारावहृतश्रवणचेतसः।
तद्रूपाः कृष्णनयनास्तत्प्रेमवशगाश्चिरम्॥३९॥

न जानीमः येन जातं स्थानमेतन्मनोहरम्।
वनमेतत् कल्पितं वा पशवो मुग्धचेतसः॥४०॥

विभो! गोविन्दनयनकटाक्षप्रभवाः वयम् सर्वे वृन्दावनचराः तस्य मायया मोहिताः। तद् वंशीमधुर आरावहृतश्रवणचेतसः तद् रूपाः तत् प्रेमवशगाः कृष्ण-नयनाः पशवः मुग्धचेतसः वयम् न जानीमः केन एतत् मनोहरम् स्थानम् जातम्? केन वा एतत् वनम् कल्पितम्?

मृगों ने कहा—हे विभो! श्रीगोविन्द के नेत्रकटाक्ष से हमारा जन्म हुआ है। उनकी माया से मोहित वृन्दावन में विचरण करने वाले हम सभी के कान और चित्त उनकी वंशी की मधुर ध्वनि से मोहित रहते हैं। उनके रूप वाले हम उनके प्रेम के आधीन हैं। कृष्णनयन अर्थात् काले नेत्रों वाले अथवा कृष्णमयी आँखों वाले मुग्धचित्त हम पशुवर्ग यह नहीं जानते कि इस दिव्य मनोहर स्थान का निर्माण किसने किया? अथवा यह किसकी कल्पना से उत्पन्न हुआ?॥३८-४०॥

यद् रहस्यं भवज्जन्म तदाश्चर्यं जगत्प्रभो।
जानन्तोऽपि न जानीमः कथितुं तन्न युज्यते॥४१॥
प्रश्नमेतन्महाभाग श्रीगोविन्दं रसाम्बुधिम्।
निवेदय रहस्यं तन्नान्योऽस्ति कथितुं क्षमः॥४२॥

जगत्प्रभो! भवत् जन्म यद् रहस्यम् तद् आश्चर्यम् जानन्तः अपि (वयम्) न जानीमः। तत् कथितुम् न युज्यते। महाभाग! एतत् प्रश्नम् रसाम्बुधिम् श्रीगोविन्दम् निवेदय। तत् रहस्यम् कथितुम् क्षमः अन्यः न अस्ति।

हे जगत् के स्वामी! आपके जन्म का जो रहस्य है, वह आश्चर्य है। उसे जानते हुए भी हम लोग नहीं जानते। उसे कहना उचित नहीं है। महाभाग! बलराम! यह प्रश्न रसाम्बुधि श्रीकृष्ण के समक्ष निवेदित कीजिए। इस रहस्य को उनके अतिरिक्त कोई भी नहीं कह सकता॥४१-४२॥

वृक्षपक्षिमृगादीनां श्रुत्वा वाक्यं हितं प्रियम्।
बलरामो महाभागः सर्वेषां प्रियकारकः॥४३॥
उपसंगम्य गोविन्दं वेणुवादनतत्परम्।
पपात दण्डवद् भूमौ चरणाम्भोरुहान्तिके॥४४॥
पादपद्मं भगवतो ध्वजवज्राङ्कुशाङ्कितम्।
ब्रह्मज्योतिर्मयनखं सिषेच नेत्रवारिभिः॥४५॥

वृक्षपक्षिमृगादीनाम् हितम् प्रियम् वाक्यम् श्रुत्वा सर्वेषाम् प्रियकारकः

महाभागः बलरामः वेणुवादनतत्परम् गोविन्दम् उपसंगम्य चरणाम्भोरुहान्तिके भूमौ दण्डवत् पपात। ध्वजवज्राङ्कुशाङ्कितम् भगवतो ब्रह्मज्योतिर्मयनखम् पादपद्मम् नेत्रवारिभिः सिषेच।

ब्राह्मण ने कहा—वृक्षों, पक्षियों तथा मृगादिकों के हितकारक एवं प्रिय वाक्यों को सुनकर सबके लिए प्रियकारक श्रीबलराम जी वेणुवादन में तत्पर गोविन्द के पास गये और उनके चरणाम्बुजों के समीप पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़े। ध्वज, वज्र, अङ्कुश से चिह्नित भगवान् के ब्रह्मज्योर्तिमय नख वाले चरणकमलों को नेत्रजल से अभिषिञ्चित कर दिया॥४३-४५॥

एतस्मिन्नेव समये दिव्यरूपा सरस्वती।
सर्वभूतहितार्थाय कृष्णतत्त्वविवित्सया॥४६॥
जिह्वाग्रस्था जगद्योनेर्बलरामस्य धीमतः।
सा वै जगाद मधुरं येन प्रीतोऽभवत् प्रभुः॥४७॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे भगवदुद्देशः नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

एतस्मिन् एव समये कृष्णतत्त्वविवित्सया सर्वभूतहितार्थाय जगद्योनेः धीमतः बलरामस्य जिह्वाग्रस्था सा दिव्यरूपा सरस्वती वै मधुरम् जगाद येन प्रभुः प्रीतः अभवत्।

इसी समय सभी प्राणियों के हित के लिए कृष्णतत्त्व को जानने की इच्छा वाले जगत् के उत्पत्तिकारक बुद्धिमान् बलराम के जिह्वाग्र पर स्थित उस दिव्यरूपा सरस्वती ने अति मधुर वाणी में कहा, जिससे प्रभु श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए॥४६-४७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में भगवदुद्देश नामक नवम
अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

दशमोऽध्याय:

वृन्दावनरहस्यनिरूपणम्

श्रीबलराम उवाच—

राधाकान्त जगन्नाथ श्रीमद्गोलोकनागर।
श्यामसुन्दर गोपीश गोकुलानन्दचन्द्रमा:॥१॥
वृन्दावनसुखानन्द पीतवासप्रिय: प्रभो।
ब्रह्मपादाम्बुजज्योतिर्व्याप्तलोकत्रयान्तर ॥२॥
शब्दब्रह्ममयीवंशीप्रिय पद्मदलेक्षण।
प्रेमभक्तिपुष्पमयवनमालाविभूषित ॥३॥
गोविन्द गोगणार्तिघ्न गोपते गोगणाश्रित।
प्रसीद देव पद्माक्ष गोपीजनमनोहर॥४॥
कथयस्वात्मनस्तत्त्वमतिगुह्यं महाप्रभो।
कस्त्वं का राधिका देवी को वाऽहं शंस मे विभो॥५॥

श्रीमद्गोलोकनागर जगन्नाथ श्यामसुन्दर गोकुलानन्दचन्द्रमा: गोपीश राधाकान्त वृन्दावनसुखानन्द। पीतवासप्रिय: ब्रह्मपादाम्बुजज्योति:व्याप्तलोकत्रयान्तर शब्दब्रह्ममयीवंशीप्रिय पद्मदलेक्षण प्रेमभक्तिपुष्पमयवनमालाविभूषित गोगणार्तिघ्न गोगणाश्रित पद्माक्ष गोपीजनमनोहर देव प्रभो गोविन्द प्रसीद। महाप्रभो आत्मन: अतिगुह्यम् तत्त्वम् कथयस्व। त्वम् क:? राधिका वा का? अहम् क: मे शंस।

श्रीबलराम ने कहा—श्रीमद्गोपाल नागर, जगत् के नाथ, श्यामसुन्दर, गोकुल के आनन्दचन्द्र, गोपियों के स्वामी, वृन्दावन के सुखानन्द, पीताम्बरप्रिय, ब्रह्मपादाम्बुजज्योति, प्रेम और भक्ति के पुष्पों से युक्त वनमाला धारण करने वाले, गोविन्द, गोगणों के कष्टों को दूर करने वाले, गोगणों के आश्रय, लोकत्रयों में व्याप्त, शब्दमयी वंशी को चाहने वाले, कमल के समान नेत्र वाले, गोपीजनों के मन को हरण करने वाले, देव पद्माक्ष प्रभो गोविन्द! प्रसन्न हो जाओ, प्रसन्न हो जाओ। हे प्रभो! अपने अति रहस्यमय तत्त्व को सुना दो। तुम कौन हो? राधा कौन है? तथा हे विभु! मैं कौन हूँ? कृपा कर बता दो॥१-५॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अहमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः।
शब्दब्रह्ममयः साक्षात् स्वयं प्रकृतिरीश्वरः॥६॥
आद्यन्तरहितः स्थूलसूक्ष्मातीतः परात्परः।
स्वयंज्योतिः स्वयंकर्त्ता स्वयंहर्ता स्वयंप्रभुः॥७॥

अहम् आत्मा, परम् ब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रहः साक्षात् शब्दब्रह्ममयः, स्वयम् प्रकृतिः, ईश्वरः, आद्यन्तरहितः स्थूलसूक्ष्मात् अतीतः, परात्परः, स्वयम् ज्योतिः, स्वयम् कर्त्ता, स्वयम् हर्ता, स्वयम् प्रभुः (अस्मि)।

श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं आत्मा हूँ। परंब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, साक्षात् शब्दब्रह्ममय, स्वयं प्रकृति और ईश्वर भी मैं ही हूँ। मैं आदि और अन्त से रहित, स्थूल-सूक्ष्ममय, परात्पर, स्वयंज्योति, स्वयं कर्त्ता, स्वयं हर्ता और स्वयं प्रभु हूँ॥६-७॥

कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटिसृष्टिविनाशकृत् ।
सदाशिवमहाविष्णुविष्णुब्रह्मादिकारकः ॥८॥
नराकृतिर्नित्यरूपी वंशीवाद्यप्रियः सदा।
इन्द्रनीलमणिश्यामो द्विभुजो मधुराकृतिः॥९॥
पूर्णेन्दुकोटिवदनो लीलालावण्यवारिधिः।
पुण्डरीकदलाकारनयनः प्रेमसागरः॥१०॥
जितकामधनुर्दिव्यभ्रूलतो वनितोत्सवः।
नित्यत्रिभङ्गललितस्तिर्यग्ग्रीवातिसुन्दरः ॥११॥

कटाक्षमात्रकोटिब्रह्माण्डसृष्टिविनाशकृत्, सदाशिवमहाविष्णुविष्णु-ब्रह्मादिकारकः, नित्यरूपी, सदा वंशीवाद्यप्रियः, इन्द्रनीलमणिश्यामः, मधुराकृतिः, नराकृतिः, द्विभुजः, कोटिपूर्णेन्दुवदनः, लीलालावण्यवारिधिः, प्रेमसागरः, पुण्डरीकदलाकारनयनः, जितकामधनुः, दिव्यभ्रूलतः, वनितोत्सवः, ललितः, नित्यत्रिभंगः, तिर्यक्ग्रीवातिसुन्दरः (अहम् एव)।

कटाक्षमात्र के पात से कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि और विनाश करने वाला, सदाशिव, महाविष्णु विष्णु ब्रह्मा आदि का कारण, नित्यरूपी, सदा वंशीवाद्य को प्रेम करने वाला, इन्द्रनीलमणि की तरह श्याम शरीर वाला, लीलालावण्य का समुद्र, प्रेमरस का सागर, कमल के आकार के नेत्रों वाला, अपनी दिव्य भ्रूलताओं से कामदेव के धनुष को जीतने वाला, गोपवनिताओं के साथ उत्सव वाला, ललित, नित्य सुन्दर, त्रिभंगी, तिर्यक् ग्रीवा से अति सुन्दर (मैं ही हूँ)॥८-११॥

शब्दब्रह्ममयीवंशीवादनो रसवारिधिः।
वनमाली पीतवासाः सुकुञ्चितशिरोरुहः॥१२॥
बर्हिबर्हकृतोत्तंसः पारिजातावतंसकः।
शुद्धप्रेमानन्दमयः सर्वदा नवयौवनः॥१३॥
काले कालस्वरूपोऽहं कालात्मा कालगोचरः।
कालातीतः सर्वसहः सर्वकारणकारणम्॥१४॥
चित्स्वरूपो ज्ञानरूपोऽद्वितीयः सर्वदृक् परः।
एतद्रूपः सदैवाऽहं ह्रासवृद्धी न मे क्वचित्।
बलराम जगद्योने! किं भूयः प्रष्टुमिच्छसि॥१५॥

शब्दब्रह्ममयीवंशीवादनः रसवारिधिः वनमाली, पीतवासाः, सुकुञ्चित-शिरोरुहः, बर्हिबर्हकृतोत्तंसः, पारिजातावतंसकः, शुद्धप्रेमानन्दमयः, सर्वदा नव-यौवनः, अहम् काले कालस्वरूपः, कालात्मा, कालगोचरः, सर्वसहः, काला-तीतः, सर्वकारणकारणम्, चित्स्वरूपः, ज्ञानरूपः, अद्वितीयः, सर्वदृक्, परः सदा एव अहम् एतत् रूपः। मे ह्रासवृद्धी क्वचित् न। जगद्योने बलराम! भूयः किम् प्रष्टुम् इच्छसि?

शब्दब्रह्ममयी वंशी को बजाने वाला, रससागर, वनमाली, पीताम्बर-धारी, कुञ्चित बालों वाला, मोरपंख को मुकुट बनाकर पहनने वाला, पारिजातपुष्पों को कान का आभूषण बनाने वाला, शुद्ध प्रेमानन्दमय, सर्वदा नवयौवनयुक्त, काल के समय कालरूप, कालात्मा, कालगोचर, सब कुछ सहने वाला, काल से परे, सभी कारणों का कारण, चित्स्वरूप, ज्ञानरूप, अद्वितीय, सब कुछ देखने वाला, सर्वसाक्षी सदा मैं ही हूँ। मैं सदा इस अर्थात् एक रूप वाला हूँ। मेरा न कभी ह्रास होता है, न वृद्धि। हे जगत् को उत्पन्न करने वाले बलराम! और क्या पूछना चाहते हो?॥१२-१५॥

बलराम उवाच—

अनन्तसूर्यचन्द्राग्निप्रकाशसदृशं तव।
तनुपादनखज्योतिः किमिदं तद् वदस्व मे॥१६॥

तव तनुपादनखज्योतिः अनन्तसूर्यचन्द्र-अग्निप्रकाशसदृशम्। इदम् किम्? तत् मे वदस्व।

श्रीबलराम ने कहा—आपके शरीर और पादनख की ज्योति अनन्त सूर्यों, चन्द्रों और अनन्त अग्नि के प्रकाश के समान है। यह क्या है? यह मुझे बताइए॥१६॥

श्रीकृष्ण उवाच—

यद्भयाद् वान्ति वाताः सूर्यस्तपति यद्भयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्भारं वहति मेदिनी॥१७॥
यतो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
यतो वाचो निवर्तन्तेऽ(?न्त अ)प्राप्य मनसा सह॥१८॥
ज्योतिर्ब्रह्ममयं तेजो मच्छरीराद् विनिर्गतम्।
ममानेन न भेदोऽस्ति ब्रह्मज्योतिर्वरं परम्॥१९॥

यद्भयात् वाताः वान्ति, यद्भयात् सूर्यः तपति, इन्द्रः वर्षति, अग्निः दहति, मेदिनी भारम् वहति, यतः स्थावराणि चराणि च भूतानि जातानि, यतः अप्राप्य मनसा सह वाचः निवर्तन्ते (सः अहम्)। मत् शरीरात् ब्रह्ममयम् तेजःज्योतिः ब्रह्मज्योतिः परम् वरम् विनिर्गतम्। मम अनेन भेदः न अस्ति।

जिसके भय से हवा बहती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलती है, पृथ्वी भार वहन करती है, जिसके शरीर से चर और अचर भूत (प्राणी) उत्पन्न हुए हैं, जिसे प्राप्त किये बिना ही मन के साथ वाणी लौट आती है अर्थात् मूक हो जाती है, वह मैं ही हूँ। मेरे ही शरीर से ब्रह्ममय तेज वाली परम श्रेष्ठ ज्योति उत्पन्न हुई है। मुझमें और इस ब्रह्मज्योति में भेद नहीं है॥१७-१९॥

पृथिव्यापोवह्निरूपैर्वायुरूपैस्तथैव च।
आकाशरूपैर्नानेव भाति सर्वत्र सर्वतः॥२०॥
ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु मत्तेजस्तत् सनातनम्।
सर्वजीवान्तरे बाह्ये भाति सर्वगतं सदा॥२१॥
आकाशवत् सदा दृश्यं जलाधारे यथा रविः।
दुर्लभं दुर्गमं तद्वद् दुर्दर्शं सर्वगं शुचिः(?चि)॥२२॥
शुभदं मोक्षदं सत्यं पादाङ्गुष्ठाद्विनिर्गतम्।
एतज्ज्ञात्वा योगिनस्तु यान्ति निर्वाणमुत्तमम्॥२३॥

तत् सनातनम् मत् तेजः पृथिवी आपः वह्निरूपैः तथा आकाशरूपैः सर्वतः नाना इव सर्वत्र भाति। ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु सर्वजीवान्तरे बाह्ये च सर्वगतम् सदा भाति। जल-आधारे यथा रविः तथा मत्तेजः आकाशवत् सदा दृश्यम् तदवत् सर्वगम् दुर्दर्शम्, दुर्लभम्, दुर्गमम् शुचि शुभदम् मोक्षदम् सत्यम् पादांगुष्ठाद् विनिर्गतम्। एतत् ज्ञात्वा योगिनः उत्तमम् निर्वाणम् यान्ति।

मेरा वह तेज पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप से सब ओर अनेक रूपों में सर्वत्र प्रतीत होता है। मेरा ही वह सनातन तेज है, जो

करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डों में सभी प्राणियों के अन्तःस्तल में तथा बाहर सर्वगत होकर सदा सुशोभित होता है। वह तेज कठिनाई से दिखाई देता है। जीवों के लिए दुर्लभ तथा दुर्गम है। पवित्र शुभ देने वाला, मोक्ष प्रदान करने वाला सत्य तेज मेरे ही पाद के अंगुष्ठ से निकला है। जिस प्रकार जल के आधार तालाब आदि में सूर्य दिखायी देता है, इसी प्रकार मेरा तेज आकाश की भाँति सर्वत्र दिखाई देता है, इसे भली प्रकार जानकर योगी उत्तम परम गति को प्राप्त करते हैं।।।२०-२३।।

श्रीबलराम उवाच—

बल(?न)मेतत् कुतो जातं यत्र तिष्ठसि नित्यदा।
अनेकचन्द्रतारार्ककोटिकोटिसमच्छविः ॥२४॥
नानावृक्षलताकीर्णं नानामृगगणावृतम्।
नादितं पक्षिभिर्भृङ्गैः सर्वर्तुभिरधिष्ठितम्॥२५॥
गीतवाद्यादिभिर्नित्यं मुदितं सर्वतः सुखम्।
गोपीगोपगणाकीर्णं गोवत्सैरुपशोभितम्॥२६॥
अनेकयोजनायामं बहुयोजनविस्तृतम्।
सर्वाश्चर्यमयं देव किमिदं तद् वदस्व मे॥२७॥

एतत् वनम् कुतः जातम्? अनेकचन्द्रतारार्ककोटिकोटिसमच्छविः (त्वम्) यत्र नित्यदा तिष्ठसि, तद् नानावृक्षलताकीर्णम्, नानामृगगणावृतम्, पक्षिभिः भृङ्गैः नादितम्, सर्व-ऋतुभिः अधिष्ठितम्, गीतवाद्यादिभिः नित्यम् मुदितम्, सर्वतः सुखम्, गोपीगोपगणाकीर्णम्, गोवत्सैः उपशोभितम्, अनेकयोजनायामम् बहुयोजनविस्तृतम्, सर्वाश्चर्यमयम्, इदम् किम्? देव! मे वदस्व।

श्रीबलराम ने कहा—यह (तेजोमय वृन्दावन) कहाँ से उत्पन्न हुआ? करोड़ों-करोड़ों चन्द्र, तारा, सूर्य के समान छवि वाले आप जहाँ नित्य रहते हैं, नाना वृक्ष-लताओं से घिरा हुआ, अनेकों मृगसमूहों से आवृत, पक्षी और भ्रमरों के शब्द से निनादित, सभी ऋतुओं की शोभा से अधिष्ठित, गीत-वाद्यों से नित्य आनन्दित, सब ओर से सुख प्रदान करने वाला, गोप और गोपियों के गणों से भरा हुआ, गो और गोवत्सों से उपशोभित, अनेकों योजन तक फैला हुआ, अनेकों योजन ऊँचा, सभी तरह से आश्चर्य उत्पन्न करने वाला यह अद्भुत वृन्दावन क्या है? हे देव! मुझे बताइए।।२४-२७।।

श्रीकृष्ण उवाच—

एकोऽनेकस्वरूपोऽहं सर्वशक्तिमयः पुमान्।
मद्देहादुद्गतं ज्योतिः सर्वभूतमयं परम्॥२८॥

अहम् एकः एव पुमान् सर्वशक्तिमयः अनेकस्वरूपः। सर्वभूतमयम् परम् ज्योतिः मद्देहात् उद्गतम्।

श्रीकृष्ण ने कहा—मैं एक ही पुरुष सर्वशक्तिमय अनेक रूपों वाला हूँ। सब प्राणियों को अपने अन्दर धारण करने वाली यह परम ज्योति मेरे शरीर से प्रकट हुई है॥२८॥

पृथ्वीमयं जलमयं तेजोमयमनामयम्।
मरुन्मयं व्योममयं सर्वभूतमकल्मषम्॥२९॥
तस्मादेतत् परं जातं स्थानं सर्वनमस्कृतम्।
चिन्तामणिमयी भूमिरमृतं जलमत्र वै॥३०॥
ब्रह्मतेजोमयं ज्योतिस्त्रैलोक्योद्दीपकं महत्।
सुखस्पर्शः सदा वायुः शब्दब्रह्ममयं शुभम्॥३१॥
प्रकाशरूपमाकाशमच्छमानन्दमन्दिरम्।
अत्र गोवर्धनो नाम पर्वतः प्रीतिवर्धनः॥३२॥

पृथ्वीमयम् जलमयम् तेजोमयम् मरुन्मयम् व्योममयम् अनामयम् सर्वभूतम् अकल्मषम् तस्मात् सर्वनमस्कृतम् परम् स्थानम् जातम्। अत्र भूमिः चिन्तामणिमयी वै जलम् अमृतम्। महत् त्रैलोक्य-उद्दीपकम् ब्रह्मतेजोमयम् ज्योतिः शब्दब्रह्ममयं शुभम्। सदा सुखस्पर्शः वायुः, प्रकाशरूपम् आकाशम् अच्छम् आनन्दमन्दिरम्। अत्र प्रीतिवर्धनः नाम पर्वतः।

जो पृथ्वी, जल, वायु और आकाशमय है तथा जो सभी प्राणियों को पाप से मुक्त करने वाला ब्रह्म है; सबके लिए प्रणमनीय यह परम स्थान उसी से उत्पन्न हुआ है। यहाँ की भूमि चिन्तामणियों से बनी हुई है और यहाँ का जल अमृतमय है। यहाँ ब्रह्मतेजोमय ज्योति का प्रकाश है। यह प्रकाश तीनों लोकों को प्रकाशित करता है। यहाँ ब्रह्ममय तथा शुभ, सदा स्पर्श से सुख देने वाली वायु प्रवाहित होती है। यहाँ का आकाश भी प्रकाशमय है। यहाँ के प्रत्येक भवन स्वच्छ तथा आनन्द के मन्दिर हैं। यहाँ प्रेम को बढ़ाने वाला गोवर्धन नाम का पर्वत है॥२९-३२॥

महालक्ष्म्याः श्रियश्चैव पुरुषश्चाहमव्ययः।
प्रतिवारिघटे यद्वत् सूर्योऽप्येको बहूयते(?द्यते)॥३३॥
प्रतिचक्षुरहं तद्वत् सर्वदास्मि वने बल।
मल्लोमवृन्दतो जातं वनमेतत् सुशोभनम्॥३४॥
तेन वृन्दावनं नाम प्रथितं वनमुत्तमम्।
मम पादाम्बुजाञ्जाता दासी वृन्देति नामतः॥३५॥

महालक्ष्म्याः श्रियः च अहम् एव अव्ययः पुरुषः। यद्वत् एकः हि सूर्यः प्रतिवारिघटे बहूद्यते तद्वत् वने प्रतिचक्षुः अहम् सर्वदा अस्मि। बल! एतत् सुशोभनम् वनम् मत् लोमवृन्दतः जातम्। तेन उत्तमवनम् वृन्दावनम् नाम प्रथितम्। मम पादाम्बुजात् जाता वृन्दा इति नामतः दासी।

महालक्ष्मी और श्री का मैं ही अव्यय पुरुष हूँ। जिस प्रकार एक सूर्य प्रत्येक जलघट में प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार मैं प्रत्येक चक्षु में प्रतिबिम्बित हूँ। हे बलराम! यह सुशोभन वन मेरे लोमवृन्दों अर्थात् रोमसमूहों से उत्पन्न होता है। रोमसमूहों से उत्पन्न होने के कारण वृन्दावन नाम से प्रसिद्ध है। मेरे चरणकमलों से वृन्दा नाम की दासी उत्पन्न हुई।।३३-३५।।

तयैवारोपितं नित्यं तयैव परिरक्षितम्।
सेचितं(?सिञ्चितं) चामृतरसैर्वनमत्यन्तमुत्तमम्।।३६।।
तेन वृन्दावनं नाम वनमत्यन्तदुर्लभम्।
एतन्मनसि सञ्चिन्त्य परमानन्दमुत्तमम्।।३७।।
जनः प्राप्नोति विपुलं तदेवानुदिनं स्मर।
अयं नीपतरुः श्रीमान् पृष्ठदण्डात् समुद्गतः।।३८।।
मम प्रियतरः शश्वत् सर्वर्तुकुसुमोत्सवः।
यस्य मूले सदैवाऽहं तिष्ठामि मधुराकृतिः।।३९।।

तया एव आरोपितम् अत्यन्तम् उत्तमम् वनम्, तया एव परिरक्षितम् नित्यम् सिञ्चितम् च। तेन अत्यन्तदुर्लभम् वनम् वृन्दावनम् नाम। जनः एतत् मनसि सञ्चिन्त्य उत्तमम् विपुलम् परमानन्दम् प्राप्नोति। तत् एव अनुदिनम् स्मर। अयम् श्रीमान् नीपतरुः मम पृष्ठदण्डात् समुद्गतः सर्वऋतुकुसुमोत्सवः मम शश्वत् प्रियतरः मधुराकृतिः। अहम् सदा एव यस्य मूले तिष्ठामि।

उस वृन्दा नाम की दासी ने इस अत्यन्त उत्तम वन को आरोपित, अभिरक्षित और नित्य अभिसिञ्चित किया। अतः अत्यन्त दुर्लभ यह वृन्दावन नाम का वन है। मनुष्य अपने मन में ऐसा चिन्तन करके विपुल उत्तम परम आनन्द को प्राप्त करता है। उन्हीं की तरह तुम भी इसका नित्यप्रति स्मरण करो। यह जो नीप (कदम्ब) का शोभायुक्त वृक्ष है, वह मेरे पृष्ठदण्ड से उत्पन्न हुआ है। सभी ऋतुओं वाले कुसुमोत्सव से परिपूर्ण यह मुझे हमेशा अत्यन्त प्रिय है। मधुर आकृति वाला मैं सदा ही इस नीप के मूल में निवास करता हूँ।।३६-३९।।

मत्पादाङ्गुलितो जाताः पञ्चैव तरवः शुभाः।
सन्तानकादयः सर्वे सर्वरत्नमयाः स्थिराः।।४०।।

सन्तानकः पारिजातो मन्दारो हरिचन्दनः।
कल्पवृक्ष इति ख्याता ज्वलज्ज्वलनसन्निभाः॥४१॥
स्वर्णमूला मणिस्कन्धा दिव्या मरकतच्छदाः।
मुक्तावैडूर्यपुष्पाढ्याः पद्मरागफलोत्तमाः॥४२॥

सन्तानकादयः सर्वरत्नमयाः स्थिराः शुभाः सर्वे पञ्च एव तरवः मत्पादाङ्गुलितः जाताः। (ते) सन्तानकः पारिजातः मन्दारः हरिचन्दनः कल्पवृक्षः इति ख्याताः ज्वलत्-ज्वलनसन्निभाः स्वर्णमूलाः मणिस्कन्धाः दिव्याः मरकतच्छदाः मुक्तावैदूर्यपुष्पाढ्याः पद्मरागफलोत्तमाः।

सन्तानक आदि सर्वरत्नमय, स्थिर, शुभ, सभी पाँचों वृक्ष मेरी पादाङ्गुलियों से उत्पन्न हुए हैं। ज्वलत् अग्नि के समान दीप्तियुक्त ये पाँचों सन्तानक, पारिजात, मन्दार, हरिचन्दन और कल्पवृक्ष के नाम से विख्यात हैं। इनकी जड़ें सोने की हैं, तने (स्कन्ध) मणियों की हैं एवं दिव्यमरकतों के पत्ते हैं। मुक्ता और वैदूर्य मणि के फूलों से ये सदा लदे रहते हैं। इन पर पद्मराग के उत्तम फल लगे हैं॥४०-४२॥

धाराभी रसयुक्ताभीर्वर्षन्तः सर्वतो दिशः।
मच्छ्वासान्निर्गतो वायुः शीतलः सुमनोहरः॥४३॥
स कालिन्दीवारिबिन्दून् नानापुष्परजोवहः।
मनसो मे समभवन्नाकेशाः सर्वतो दिशः॥४४॥

(इमे वृक्षाः) सर्वतः दिशः रसयुक्ताभिः धाराभिः वर्षन्तः। सुमनोहरः शीतलः वायुः मत् श्वासात् निर्गतः। नानापुष्परजोवहः स कालिन्दीवारिबिन्दून् वहति। सर्वतः दिशः नाकेशाः मे मनसो समभवन्।

ये वृक्ष सभी दिशाओं में रसयुक्त धाराओं की वर्षा करने वाले हैं। सुमनोहर शीतल वायु मेरी श्वास से प्रकट हुआ है। यह सभी दिशाओं में विभिन्न पुष्पों की रज को तथा कालिन्दी के जलकणों को लेकर बहता है। सब दिशाओं में स्थित देवगण मेरे मन से उत्पन्न हुए हैं॥४३-४४॥

भासयन्तो वनं सर्वमत्यन्तं सुखदैः करैः।
चक्षुषस्तु तथैवार्का ग्रहनक्षत्रनायकाः॥४५॥
मनसो मे समभवन् नाकेशाः सर्वतोदिशः।
भासन्ते भाभिरिष्टाभिः सुखदाभिरितस्ततः॥४६॥
अर्कः शीतलतां याति शशाङ्को याति चोष्णताम्।
इच्छया मे भगवतो वृन्दावनविहारिणः॥४७॥

सुखदैः करैः सर्वम् वनम् अत्यन्तम् भासयन्तः, ग्रहनक्षत्रनायकाः अर्काः चक्षुषः अभवन् तथा एव सर्वतः दिशः भासयन्तः नाकेशाः मे मनसः समभवन्। (ते) इतः ततः इष्टाभिः सुखदाभिः भाभिः भासन्ते। वृन्दावनविहारिणः भगवतः मे इच्छया अर्कः शीतलताम् याति शशाङ्कः च उष्णताम् याति।

उसी तरह ग्रहों और नक्षत्रों के नायक सूर्य, जो अपनी सुखकर किरणों से सम्पूर्ण वन को सभी ओर से प्रकाशित करते हैं, सभी ओर देखते रहते हैं। सभी दिशाओं के दिक्पाल मेरे मन से उत्पन्न हुए हैं। वे इधर-उधर अपनी शुभ सुखद प्रभा से भासित होते रहते हैं। मुझ वृन्दावनविहारी भगवान् की इच्छा से सूर्य शीतलता प्रदान करता है और चन्द्रमा उष्णता प्रदान करने लगता है।।४५-४७।।

स्वर्णरौप्यमणिमहावैदूर्याद्यैर्विनिर्मिताः ।
कुट्यः सन्त्यत्र विविधाः मम देहविनिःसृताः।।४८।।
प्रतिकल्पद्रुमतले राजन्ते चन्द्रसूर्यवत्।
निकुञ्जा अत्र शोभन्ते लताभिर्वेष्टिताः शुभाः।।४९।।
नादिता भ्रमरीवृन्दैर्मधुमत्तकलस्वनैः।
मत्केशपाशसञ्जातैः गन्धर्वैरिव गायनैः।।५०।।

अत्र मम देहविनिःसृताः विविधाः स्वर्णरौप्यमणिमहावैदूर्याद्यैः विनिर्मिताः कुट्यः। प्रतिकल्पद्रुमतले सूर्यचन्द्रवत् राजन्ते। अत्र लताभिः वेष्टिताः शुभाः निकुञ्जाः शोभन्ते। मत्केशपाशसञ्जातैः भ्रमरीवृन्दैः मधुमत्तकलस्वनैः गन्धर्वैः गायनैः इव नादिताः।

यहाँ मेरे शरीर से उत्पन्न मणिकुट्टियाँ हैं, जो अनेकों स्वर्ण, रजत, मणि, माणिक्य आदि महारत्नों से बनी हुई हैं। यहाँ लताओं से शोभित सुन्दर निकुञ्ज शोभायमान हो रहे हैं। इनमें मेरे केशपाश से उत्पन्न भ्रमरसमूह मधुर स्वर से उसी प्रकार सुन्दर नाद करते रहते हैं, जैसे गन्धर्व सुन्दर, मधुर, उन्मत्त स्वर से गान करते हैं।।४८-५०।।

मदीयनयनप्रान्तजातैर्बर्हिगणैः शुभैः।
शब्दायमाना नृत्यद्भिश्चित्रिता घनबन्धुभिः।।५१।।
सुवर्णवालुकाभूमौ ध्वजवज्राङ्कुशादिभिः।
मत्पादपद्मचिह्नैश्च लक्षितं लक्षणान्वितम्।।५२।।
मम कालस्वरूपस्य निमेषाद् ऋतवश्च षट्।
तैरेव सेवितं नित्यं वनमेतत् समन्ततः।।५३।।

(इमे निकुञ्जाः) मदीयनयनप्रान्तजातैः नृत्यद्भिः शुभैः घनबन्धुभिः बर्हिणौः शब्दायमानाः चित्रिताः। (एतद् वृन्दावनम्) सुवर्णवालुकाभूमौ मत् पादचिह्नैः ध्वजवज्रांकुशादिभिः लक्षितम् लक्षणान्वितम्। कालस्वरूपस्य मम निमेषाद् षट् ऋतवः च। एतत् वनम् समन्ततः तैः एव नित्यम् सेवितम्।

ये निकुञ्ज मेरे नेत्रप्रान्त से उत्पन्न नृत्य करते हुए मेघबन्धु शुभ मयूरगणों से चित्रित एवं शब्दायमान रहते हैं। यहाँ की भूमि स्वर्ण के बालू की है जिन पर मेरे चरणों के चिह्न, ध्वज, वज्र, अंकुश आदि सदा चिह्नित रहते हैं। कालस्वरूप मेरे नेत्रपलकों से ऋतुएँ उत्पन्न हुई हैं। वे इस वन की सभी ओर से नित्य सतत् सेवा करती हैं।।५१-५३।।

मम सप्तस्वराज्जाताः पक्षिणो दिव्यरूपिणः।
कोकिलः सारसो हंसः कपोतः शुकसारिकाः।।५४।।
दात्यूहश्च मदोन्मत्ता मन्नामगुणगायकाः।
श्वेतपीतारुणश्यामा नानावर्णाश्च केचन।।५५।।
मन्मनोहारिणः सर्वे शब्दब्रह्मस्वरूपिणः।
एतत्ते कथितं गुह्यं गोपायस्व समाहितः।
वृन्दावनरहस्यं तत् सर्वतन्त्रेषु निष्ठितम्।।५६।।

कोकिलः सारसः हंसः कपोतः शुकसारिकाः दात्यूहः दिव्यरूपिणः पक्षिणः मम सप्त स्वरात् जाताः। एते मदोन्मत्ताः मत् नामगुणगायकाः। केचन श्वेत-पीत-अरुण-श्यामा नानावर्णाः च। मन्मनोहारिणः सर्वे शब्दब्रह्मस्वरूपिणः। एतत् ते गुह्यम् कथितम् समाहितः गोपायस्व। तत् वृन्दावनरहस्यम् सर्वतन्त्रेषु निष्ठितम्।

मेरे सप्त स्वरों से कोकिल, सारस, हंस, कपोत, शुक एवं सारिका तथा दात्यूह आदि दिव्य रूपधारी पक्षी उत्पन्न हुए हैं। मदोन्मत्त ये पक्षी मेरे नाम और गुणों का गायन करते रहते हैं। इनमें कुछ श्वेत, कुछ पीले, कुछ लाल और कुछ काले वर्ण के हैं। सभी मेरे मन का हरण करने वाले साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। हे बलराम! मैंने यह वृन्दावन का रहस्य आपको बता दिया। यह अति रहस्यमय है, अतः इसे छिपाकर रखो। यह वृन्दावन-रहस्य सभी तन्त्रों में निहित है।।५४-५६।।

ब्राह्मण उवाच—

इति निगदति कृष्णे राधिकायां सतृष्णे
भगवति बलरामः पूर्णकामश्चिराय।
विनयनयमनोज्ञां प्रेममाधुर्यधुर्यां

वदनसदनमध्ये कामम‌ङ्गीचकार॥५७॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दावनरहस्यनिरूपणं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

राधिकायाम् सतृष्णे कृष्णे भगवति इति निगदति बलरामः पूर्णकामः (सन्) चिराय विनयनयमनोज्ञाम् प्रेममाधुर्यधुर्याम् वदनसदनमध्ये कामम् अंगीचकार।

ब्राह्मण ने कहा—राधिका के प्रति सतृष्ण भगवान् श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने पर श्रीबलराम पूर्णकाम हो गये। उन्होंने विनय और नय से मनोज्ञ प्रेम एवं माधुर्य की पूर्णता को प्राप्त होकर वदनरूप सदन के मध्य में तृप्ति का अनुभव किया॥५७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में वृन्दावन-रहस्यनिरूपण नामक दशम अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबलरामप्रश्ने शब्दब्रह्म-स्वरूपिण्याः वंशिकायाः प्रादुर्भावः

श्रीबलराम उवाच—

भगवन् सर्वभूतेश लोकाध्यक्ष परात्पर।
वंशी तवाधरे केयं नित्यरूपा विराजते।
जाता कथमिहाश्चर्यं तन्मे कथय सत्पते॥१॥

भगवन्! सर्वभूतेश! लोकाध्यक्ष! परात्पर! तव अधरे वंशी नित्यरूपा विराजते। इयम् का? इह कथम् जाता? सत्पते! तत् आश्चर्यम् मे कथय।

बलराम जी ने कहा—हे सभी भूतों के स्वामी! हे लोकाध्यक्ष! परात्पर! भगवन्! आपके अधरों पर यह वंशी नित्यरूप होकर विराजती है। यह कौन है? यहाँ कैसे उत्पन्न हुई? मुझे इस विषय में अति आश्चर्य है। हे सत्पते! कृपा कर इसे मुझको बतलाइए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ममैवाधरबिम्बस्था सरस्वत्या इयं तनुः।
महाप्रलयकालान्ते जाता परमतुष्टये॥२॥

मम अधरबिम्बस्था इयम् सरस्वत्या एव तनुः। महाप्रलयकालान्ते परमतुष्टये जाता।

श्रीकृष्ण ने कहा—मेरे अधरबिम्बों पर स्थित यह वंशी सरस्वती का ही शरीर है। महाप्रलयकाल के समय मेरी तुष्टि के लिए यह उत्पन्न हुई है॥२॥

श्रीबलराम उवाच—

महाप्रलयकालोऽसौ कथं स्यात् कथ्यतां विभो।
अधरे वा कथं तस्या वासस्ते पुरुषोत्तम॥३॥

पुरुषोत्तम! असौ महाप्रलयकालः कथम् स्यात्। ते अधरे तस्याः कथम् वा वासः। हे विभो! कथ्यताम्।

श्रीबलराम ने कहा—हे पुरुषोत्तम! यह महाप्रलयकाल कैसे होता है? तुम्हारे अधर पर इसका वास क्यों हुआ? हे विभो! बतलाइए॥३॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्थं स पृष्टः श्रीकृष्णः प्रणयाविष्टचेतस(? सा)।
बलरामेण सर्वेषामवदद् वदतां वरः॥४॥

प्रणयाविष्टचेतसा इत्थम् पृष्टः वदताम् वरः (सः श्रीकृष्णः) सर्वेषाम् अवदत्।

ब्राह्मण ने कहा—इस प्रकार प्रणय से आविष्ट चित्तवाले श्रीबलराम जी के द्वारा पूछे गये प्रवाचकों में श्रेष्ठ वे श्रीकृष्ण सबसे कहने लगे॥४॥

श्रीकृष्ण उवाच—

आकीटब्रह्मपर्यन्तं जीवानां बलराम भोः।
सर्वेषां मुक्तिकालो वै महाप्रलय उच्यते॥५॥

भो बलराम! आकीटब्रह्मपर्यन्तम् सर्वेषाम् जीवानाम् वै मुक्तिकालः प्रलयकालः उच्यते।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे बलराम! लघु कीट से लेकर ब्रह्म-पर्यन्त सभी जीवों का मुक्तिकाल ही प्रलयकाल कहलाता है॥५॥

तस्मिन् काले जले भूमिर्जलं वैश्वानरे तथा।
वैश्वानरस्तु मरुति मरुन्नभसि लीयते॥६॥
ततो नभश्च महति प्रकृत्यां च तथा महान्।
गुणाः सत्त्वादयश्चापि लीयन्ते तत्र सारतः॥७॥
गुणेषु लीयमानेषु गुणवन्तो महौजसः।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या रजःसत्त्वतमोभुवः॥८॥
क्रमशस्ते विलीयन्ते तत्रैव गुणकर्मिणः।
शम्भुर्ब्रह्मणि ब्रह्मा च विष्णौ सत्त्वगुणान्विते॥९॥
विष्णुश्चैव महाविष्णौ कोटिब्रह्माण्डविग्रहे।
स एव हि महाविष्णुः प्रभविष्णुः सदाशिवे॥१०॥
पुंप्रकृत्यात्मके दिव्ये महाप्रकृतिसंज्ञके।

तस्मिन् काले भूमिः जले, जलम् वैश्वानरे, वैश्वानरः मरुति तथा मरुत् नभसि लीयते। ततः नभः महति तथा महान् प्रकृत्याम् च (लीयते)। तत्र सत्त्वादयः गुणाः अपि च सारतः लीयन्ते। गुणेषु लीयमानेषु रजःसत्त्वतमोभुवः ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः गुणवन्तः महौजसः गुणकर्मिणः ते क्रमशः तत्र एव विलीयन्ते। शम्भुः ब्रह्मणि, ब्रह्मा च सत्त्वगुणान्विते विष्णौ, विष्णुः च कोटिब्रह्माण्डविग्रहे महाविष्णौ (लीयते) स एव हि महाविष्णुः प्रभविष्णुः पुंप्रकृत्यात्मके दिव्ये महाप्रकृतिसंज्ञके सदाशिवे लीयते।

उस प्रलयकाल में भूमि जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में लीन हो जाता है। इसके बाद आकाश महत् में, महत् प्रकृति में लीन हो जाता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति में क्रमशः तीनों गुण लीन हो जाते हैं। गुणों के लय होने के कारण रज, सत्त्व और तम आदि गुणों से उत्पन्न होने वाले महाशक्तिशाली ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी गुणवान् होने के कारण क्रमशः वहीं लीन हो जाते हैं। तमोगुणप्रधान शिव ब्रह्मा में, रजोगुणप्रधान ब्रह्मा रज और तम गुणों के साथ सत्त्वगुणप्रधान विष्णु में लीन हो जाते हैं। विष्णु रज, तम एवं सत्त्व के साथ अनेक कोटिब्रह्माण्डों के शरीर वाले महाविष्णु प्रभविष्णु पुरुषप्रकृत्यात्मक दिव्य महाप्रकृति नामक सदाशिव में प्रवेश कर जाते हैं।।९-१०।।

सोऽपि ज्योतिर्मये सूक्ष्मे साक्षान्मद्धामरूपके।।११।।
लयं यातेष्वथैतेषु सूक्ष्मे ब्रह्मणि केवले।
मम श्यामशरीरे तत्प्रविष्टं ज्योतिरुज्ज्वलम्।।१२।।
अतः सर्वे देवगणा मम देहसमाश्रिताः।
तथा देव्यश्च सर्वाणि भूतानि भूतभावनः।।१३।।
सूक्ष्मरूपाणि तिष्ठन्ति प्राप्तनिष्ठानि लक्षशः।
सूक्ष्मभूताः सूक्ष्मभूते मम तेजस्यनन्तके।।१४।।

स अपि सूक्ष्मे ज्योतिर्मये साक्षात् मत् धामरूपके लयम् याति। अथ केवले सूक्ष्मे ब्रह्मणि एतेषु लयम् यातेषु तत् उज्ज्वलम् ज्योतिः मम श्यामशरीरे प्रविष्टम् (भवति)। अतः सर्वे देवगणाः मम देहसमाश्रिताः। देव्यश्च तथा भूतभावनः सर्वाणि भूतानि सूक्ष्मरूपाणि लक्षशः प्राप्तनिष्ठानि सूक्ष्मभूताः मम सूक्ष्मभूते अनन्तके तेजसि तिष्ठन्ति।

वह सदाशिव भी मेरे धामरूप दिव्य सूक्ष्म ज्योति में लीन हो जाते हैं। केवल ज्योतिरूप सूक्ष्म ब्रह्म में इन सबके लीन हो जाने पर वह सूक्ष्म ब्रह्मरूप उज्ज्वल ज्योति भी मेरे इस श्याम शरीर में प्रवेश कर जाती है। इस तरह सभी देवगण और देवियाँ मेरे देह के आश्रित रहते हैं। भूतों को जन्म देने वाले (भगवान् शिव) तथा सारे भूत लाखों गुने निष्ठा को प्राप्त होकर सूक्ष्म रूप को प्राप्त करके मेरे सूक्ष्म भूत कभी न समाप्त होने वाले असीम तेज में जा छिपते हैं।।११-१४।।

प्रविशन्ति यतो जीवा हतप्राणा हतेन्द्रियाः।
ततः सर्वे न जानन्ति मामकं विश्वतोमुखम्।।१५।।
स्थूलं वाप्यथवा सूक्ष्मं सूक्ष्मासूक्ष्मपरं च वा।

यतो जीवाः हतप्राणाः हतेन्द्रियाः प्रविशन्ति ततः सर्वे पाप् स्थूलम् अथवा सूक्ष्मम् वा सूक्ष्मासूक्ष्मपरम् च एकम् विश्वतोमुखम् न जानन्ति।

चूँकि सभी जीव हत प्राण और हत इन्द्रियों वाले होकर मेरी ज्योति में प्रवेश करते हैं; इसलिए वे सभी स्थूल अथवा सूक्ष्म अथवा सूक्ष्म-स्थूल से परे मेरे विश्वतोमुख वाले रूप को नहीं जानते।।१५।।

यदि कश्चिज्जनस्तस्मिन् काले तिष्ठति सेन्द्रियः।।१६।।
तदा जानाति किं सूक्ष्मं किं स्थूलं मामजं विभुम्।
यत्तु दृश्यं तद् विनाशि यददृश्यं तदक्षयम्।।१७।।
दृश्यादृश्यपरं नित्यं कृष्णं मां सर्वसाक्षिणम्।
जानीहि त्वं महाबाहो व्यक्ताव्यक्तं परात्परम्।।१८।।

तस्मिन् काले यदि कश्चित् सेन्द्रियः जनः तिष्ठति तदा किम् सूक्ष्मम् किम् स्थूलम् माम् अजम् विभुम् जानाति। यत्तु दृश्यम् (रूपम्) तद् विनाशि यद् अदृश्यम् तद् अक्षयम्। त्वम् महाबाहो! कृष्णम् माम् दृश्यादृश्यपरम् सर्वसाक्षिणम् व्यक्ताव्यक्तम् परात्परम् नित्यम् जानीहि।

उस प्रलयकाल में यदि कोई जीव इन्द्रियों के साथ रहता है तो वह सूक्ष्म अथवा स्थूल रूप वाले मुझ सर्वव्यापक अज और नित्य को जान लेता है। (मेरा) जो (रूप) दिखाई देता है, वह विनाशी है और जो दिखाई नहीं देता, वह अविनाशी है। हे महाबाहो बलराम! तुम मुझ श्रीकृष्ण को दृश्य एवं अदृश्य से भी परे, सबका साक्षी, व्यक्त-अव्यक्त से भी परात्पर एवं नित्य समझो।।१६-१८।।

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।१९।।
तस्मादहं सूक्ष्ममयोऽस्म्यहं स्थूलमयः पुमान्।
अहमात्मा परं ब्रह्म प्रकृतिश्चाहमुत्तमा।।२०।।
सदाशिवो महाविष्णुर्महालक्ष्मीरहं परा।
त्वमहं च तथा दुर्गा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।।२१।।
विष्णुश्चाहं सत्त्वगुणः सर्वे चान्ये मदंशकाः।

यस्मात् अहम् क्षरम् अतीतः अक्षराद् अपि च उत्तमः अस्मि। अतः लोके वेदे च पुरुषोत्तमः (इति) प्रथितः अस्मि। तस्माद् अहम् सूक्ष्ममयः स्थूलमयः पुमान् अस्मि। अहम् एव आत्मा, परम् ब्रह्म च, उत्तमा प्रकृतिः अहम् एव। सदाशिवः, महाविष्णुः, परा महालक्ष्मीः अहम्। अहम् त्वम् च सृष्टि-स्थिति-अन्तकारिणी दुर्गा, सत्त्वगुणः विष्णुः। अहम् अन्ये सर्वे मद्-अंशकाः च।

जिस कारण मैं क्षर एवं अक्षर दोनों से परे हूँ; इसलिए लोक और वेद में पुरुषोत्तम नाम से विख्यात हूँ। इस तरह मैं सूक्ष्म एवं स्थूलमय पुरुष हूँ। मैं ही आत्मा हूँ। परंब्रह्म और उत्तमा प्रकृति भी मैं ही हूँ। सदाशिव महाविष्णु और महालक्ष्मी भी मैं ही हूँ। तुम, मैं और दुर्गा इस सृष्टि के क्रमशः कर्त्ता, भर्त्ता और हर्त्ता हैं। सत्त्वगुण से युक्त विष्णु मैं ही हूँ। अन्य सभी मेरे ही अंश हैं॥१९-२१॥

महाप्रलयकाले च यदङ्गे मम यत्स्थितिः॥२२॥
तानहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना बल।
वैकुण्ठनायका नित्यं विष्णवः सत्त्वमूर्तयः॥२३॥
आश्रित्य चरणाम्भोजे धरण्यश्च सहस्रशः।
लक्ष्मील(?र्ल)क्ष्मीस्तथा वृन्दा भक्ता ये शरणैषिणः॥२४॥
ब्रह्माण्डं पालयन्त्येते मम शक्त्युपबृंहिता।
मम सत्त्वं समाश्रित्य ब्रह्माणः सृष्टिहेतवः॥२५॥

बल! यत् महाप्रलयकाले मम अङ्गे यत् स्थितिः तान् अहम् कथयिष्यामि एकमनाः शृणुष्व। सत्त्वमूर्तय विष्णवः नित्यम् वैकुण्ठनायकाः धरण्यः लक्ष्मीः लक्ष्मीः वृन्दा सहस्रशः ये शरणैषिणः भक्ताः चरणाम्भोजे आश्रित्य (तिष्ठन्ति) मम शक्ति उपबृंहिताः ब्रह्माण्डम् पालयन्ति एते मम सत्त्वम् समाश्रित्य ब्रह्माणः सृष्टिहेतवः (भवन्ति)।

हे बलराम! महाप्रलयकाल में मेरे अङ्ग में जिनकी स्थिति होती है, उन्हें मैं सुनाऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनो। नित्य वैकुण्ठ के स्वामी, सत्त्वमूर्ति विष्णु आदि पृथ्वी, लक्ष्मी (धन की देवता) (विष्णु की पत्नी), वृन्दा, हजारों-हजारों मेरी शरण चाहने वाले भक्त मेरे चरणों का आश्रय लेकर रहते हैं। ये मेरी शक्ति से युक्त होकर ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं। मेरे सत्त्वगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा आदि सृष्टि के कारण बनते हैं॥२२-२५॥

रजोगुणमयास्ते वै ज्ञानात्मानो महौजसः।
चतुर्मुखाः अष्टमुखाः षोडशास्यास्तथा परे॥२६॥
द्वात्रिंशद्वदनाः केचिच्चतुषष्टिमुखास्तथा।
अनन्तवदनाः सर्वे ह्यनन्तगुणकीर्तयः॥२७॥
सृष्टिं कुर्वन्ति सततं मम शक्त्युपबृंहिताः।
अहङ्कारे तथा रुद्राः पञ्चवक्त्रा महोज्ज्वलाः॥२८॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशास्त्रिनेत्रा दीर्घमन्यवः।
व्याघ्रचर्माम्बरधराः सुचारुदशबाहवः॥२९॥

देवर्षिसिद्धगन्धर्वचारणैः किन्नरैरपि।
वेष्टिताः शक्तिनिकरैस्तथा दशमुखा बल॥३०॥

ज्ञानात्मानः महौजसः रजोगुणमयाः ते वै चतुर्मुखाः अष्टमुखाः षोडशास्याः तथा परे द्वात्रिंशद्वदना केचित् च चतुषष्टिमुखाः तथा अनन्तवदनाः सर्वे हि अनन्तगुणकीर्तयः मम शक्ति-उपबृंहिताः सततम् सृष्टिम् कुर्वन्ति। अहंकारे रुद्राः तथा महोज्ज्वलाः पञ्चवक्त्राः शुद्धस्फटिकसङ्काशाः त्रिनेत्राः व्याघ्रचर्माम्बराः सुचारुदशबाहवः दीर्घमन्यवः देवर्षिसिद्धगन्धर्वचारणैः किन्नरैः शक्तिनिकरैः वेष्टिताः।

ज्ञानस्वरूप महातेजस्वी रजोगुणमय वे चार, आठ, सोलह और बत्तीस मुख वाले, कुछ अनन्त मुखों वाले, अनन्त गुण कीर्त्ति वाले ब्रह्मा मेरी शक्ति से पूरित होकर निरन्तर सृष्टि का कार्य करते रहते हैं। हे बलराम! अहङ्कार तत्त्व में स्थित रुद्र पाँच मुखों वाले तथा अत्यन्त उज्ज्वल हैं। उनका शरीर शुद्ध स्फटिक मणि की तरह धवल है। उनके तीन नेत्र और दश भुजाएँ हैं। वे व्याघ्रचर्म धारण करते हैं। हे बलभद्र! ये दश मुख वाले ब्रह्मा दीर्घ क्रोध से युक्त हैं तथा देवर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और किन्नरों की शक्ति से घिरे हुए हैं॥२६-३०॥

विंशदास्यास्त्रिंशदास्याश्चत्वारिंशन्मुखास्तथा ।
पञ्चाशद्वदनाः केचित् षष्टिवक्त्रास्तथा परे॥३१॥
शतवक्त्राः सहस्त्रास्या लक्षकोटिमुखास्तथा।
क्षयं कुर्वन्त्यजाण्डेषु मम शक्त्युपबृंहिताः॥३२॥
हस्तावाश्रित्य तिष्ठन्ति मरुत्वन्तो महौजसः।
सहस्त्रनयनाः केचिल्लक्षकोटीक्षणास्तथा॥३३॥

हे बल! दशमुखाः विंशदास्याः त्रिंशदास्याः चत्वारिंशन्मुखाः तथा पञ्चाशद्वदनाः केचित् षष्टिवक्त्राः तथा अपरे शतवक्त्राः सहस्रास्याः लक्षकोटिमुखाः (एते रुद्राः) मम शक्त्युपबृंहिता अजाण्डेषु क्षयं कुर्वन्ति। महौजसः मरुत्वन्तः सहस्त्रनयनाः केचित् लक्षकोटीक्षणाः तथा हस्तौ आश्रित्य तिष्ठन्ति।

हे बलराम! ये रुद्र, दश मुख, बीस मुख, तीस मुख, चालीस मुख, पचास मुख तथा कोई साठ मुख अथवा अन्य सौ मुख, हजार मुख, लाख मुख धारण कर मेरी शक्ति से पूर्ण होकर ब्रह्माण्डों में संहार करते रहते हैं। महातेजस्वी, शक्ति के पुञ्ज तथा हजारों एवं लाखों नेत्रों वाले इन्द्र मेरे हाथों का आश्रय लेकर रहते हैं॥३१-३३॥

नेत्रे मम समाश्रित्य सूर्या लक्षसहस्त्रशः।
सहस्त्ररश्मयः केचिल्लक्षकोट्यंशुराशयः॥३४॥

तेजोभिः प्रतिब्रह्माण्डं प्रकाशन्ते ममाज्ञया।
तिष्ठन्ति मम आश्रित्य शशाङ्काः शीतरश्मयः॥३५॥
शमयन्ति जगत्तापं बीजानि जनयन्ति च।

मम नेत्रे समाश्रित्य लक्षसहस्रशः सूर्याः सहस्त्ररश्मयः केचित् लक्षकोटि-श्रुतरश्मयः ममाज्ञया प्रतिब्रह्माण्डम् तेजोभिः प्रकाशन्ते। शीतरश्मयः शशाङ्काः मम (नेत्रे) आश्रित्य तिष्ठन्ति जगत् तापम् शमयन्ति बीजानि च जनयन्ति।

लाखों हजार सूर्य मेरे नेत्रों का आश्रय लेकर हजारों अथवा करोड़ों लाख तेजयुक्त किरणों को धारण करते हैं। ये मेरी आज्ञा से प्रत्येक ब्रह्माण्ड को अपने तेज से प्रकाशित करते हैं। शीतरश्मि चन्द्रमा मेरे (नेत्रों) का आश्रय लेकर संसार के ताप को शान्त करते और बीजों को उत्पन्न करते रहते हैं॥३४-३५॥

अश्विनीपुत्रनिबहो मन्नासापुटमाश्रितः॥३६॥
विदध्याद्व्याधिरहितं सर्वभूतं विभूतिमत्।
मम तालुं समाश्रित्य वरुणा लोकपालकाः॥३७॥
रसैर्नानाविधैर्भान्ति नियतं दिव्यमूर्तयः।
ममैव मर्मस्थानानि समाश्रित्य समीरणाः॥३८॥
लोकपालाः स्पर्शगुणाः सर्वभूतशुभा(?खा)वहाः।
श्रोत्रे मम समाश्रित्य दिशश्च विदिशस्तथा॥३९॥
शब्दलिङ्गाश्च तिष्ठन्ति सर्वभूतसुखप्रदाः।
त्वचं मम समाश्रित्य औषध्यस्तरवस्तथा॥४०॥
हितार्थं सर्वभूतानां मयि तिष्ठन्ति नित्यशः।
मेढ्रं मम समाश्रित्य नानाब्रह्माण्डवासिनः॥४१॥
प्रजानां पतयः सर्वे प्रशान्ताः शान्तमूर्तयः।
रेतोभूताश्च नियतं सृजन्तो यतमानसाः॥४२॥

अश्विनीपुत्रनिबहः मन्नासापुटमाश्रितः विभूतिमत् सर्वभूतम् व्याधिरहितम् विदध्यात्। लोकपालकाः दिव्यमूर्तयः वरुणाः मम तालुम् समाश्रित्य नानाविधैः रसैः नियतम् भान्ति। लोकपालाः स्पर्शगुणाः समीरणाः मम एव मर्मस्थानानि समाश्रित्य सर्वभूतसुखावहाः। दिशः विदिशः तथा मम श्रोत्रे समाश्रित्य शब्दलिङ्गाः च सर्वभूतसुखप्रदाः तिष्ठन्ति। तथा औषध्यः तरवः मम त्वचम् समाश्रित्य सर्वभूतानाम् हितार्थम् नित्यशः मयि तिष्ठन्ति। प्रशान्ताः शान्तमूर्तयः नाना-ब्रह्माण्डवासिनः सर्वे प्रजानाम् पतयः मम मेढ्रम् समाश्रित्य रेतोभूताः यतमानसाः नियतम् सृजन्तः (सन्ति)।

(सूर्यपुत्र) अश्विनीकुमारगण मेरे नासापुट का आश्रय लेकर विभूति-युक्त होकर सभी प्राणियों को रोगमुक्त करते हैं। दिव्य आकृति वाले लोकपाल वरुण मेरे तालु का आश्रय लेकर अनेक प्रकार के रसों को धारण कर शोभित होते हैं। स्पर्श गुण वाले लोकपाल वायु मेरे मर्म (हृदय) का आश्रय लेकर सभी जीवों में सुख का संचार करते हैं। शब्दगुण से युक्त दिशायें एवं विदिशाएँ मेरे कानों का आश्रय लेकर सभी भूतों को सुख देने वाली हैं। औषधि और वृक्ष मेरी त्वचा का आश्रय लेकर सभी भूतों के हित के लिए नित्यशः मेरे शरीर में निवास करते हैं। प्रशान्तचित्त तथा शान्तिमूर्ति, अनेक ब्रह्माण्डों में निवास करने वाले प्रजापति मेरे मेढ्र (=लिङ्गमूल) का आश्रय लेकर वीर्यभूत होकर जीवों को उत्पन्न करते हैं।।३६-४२।।

पायुं मम समाश्रित्य मित्रा लोकेश्वराश्चिरम्।
मम बुद्धिं समाश्रित्य नियतं देवपुरोधसः।।४३।।
दीव्यन्ति शुक्रसहिताः पण्डिता ज्ञाननिश्चिताः।
मम नाभिं समाश्रित्य कामानि विविधानि च।।४४।।
प्रत्यजाण्डं नरस्थानि प्रकाशन्ते महाबलाः।
शिरो मम समाश्रित्य द्यावो भान्ति सहस्रशः।।४५।।
मुखबाहूरुपादेषु वर्णास्तिष्ठन्ति मे विभोः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः।।४६।।

मित्रा (भूत्वा) मम पायुम् समाश्रित्य चिरम् लोकेश्वराः तिष्ठन्ति। देवपुरोधसः मम बुद्धिम् समाश्रित्य ज्ञाननिश्चिताः पण्डिताः शुक्रसहिताः दीव्यन्ति। महाबलाः नरस्थानानि विविधानि कामानि मम नाभिम् समाश्रित्य प्रति-अजाण्डम् प्रकाशन्ते। मम शिरः समाश्रित्य सहस्रशः द्यावः भान्ति। मे विभोः मुखबाहूरुपादेषु ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः च वर्णाः सहस्रशः तिष्ठन्ति।

मित्रगण मेरे पायु (मलद्वार) का आश्रय लेकर लोकपाल बने रहते हैं। देवों के पुरोहित बृहस्पति शुक्र के साथ मेरी बुद्धि का आश्रय लेकर निश्चयात्मक ज्ञान के पंडित होकर दीप्यमान होते हैं। मनुष्यों में रहने वाली विविध कामनाएँ मेरी नाभि का आश्रय लेकर प्रत्येक जीव में उत्पन्न होती रहती हैं। महाबली हजारों स्वर्ग मेरे शिर का आश्रय लेकर प्रकाशित होते हैं। मुझ विभु के मुख, बाहु, ऊरु और पैरों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण हजारों की संख्या में निवास करते हैं।।४३-४६।।

ममैव जठरे नित्यं कोटिब्रह्माण्डधारकः।
प्रभविष्णुर्महाविष्णुस्तिष्ठत्यतुलशक्तिमान् ।।४७।।

शक्तयो राधिकाद्याश्च त्रिपुराद्यास्तथाऽपराः।
दुर्गाद्याः दुर्गतारिण्योऽपरास्तेजोंऽशसम्भवाः॥४८॥
तिष्ठन्ति मम वामांशे दक्षिणांशे च मे भवान्।
जिह्वास्थलं समाश्रित्य मम देवी सरस्वती॥४९॥
विलसत्यतुला नीला प्रेमसारस्वतान्तरे।

कोटिब्रह्माण्डधारकः अतुलशक्तिमान् प्रभुविष्णुः महाविष्णुः मम एव जठरे नित्यम् तिष्ठति। राधिकाद्याः त्रिपुराद्याः दुर्गतारिण्यः दुर्गाद्याः अपराः शक्तयः मम तेजोंऽशसम्भवाः मम वामांशे तिष्ठन्ति। भवान् च मे दक्षिणांशे तिष्ठति। अतुला नीला देवी सरस्वती मम जिह्वास्थलम् समाश्रित्य तिष्ठति।

कोटिब्रह्माण्डों को धारण करने वाले प्रभविष्णु अर्थात् शक्तिशाली अतुल शक्तियों से युक्त महाविष्णु मेरे जठर में नित्य निवास करते हैं। राधिका, त्रिपुरा आदि, कठोर कष्टों का निवारण करने वाली दुर्गा तथा अन्य शक्तियाँ मेरे ही तेज से उत्पन्न हुई हैं तथा सदा मेरे वामभाग में रहती हैं। आप मेरे दक्षिण भाग में रहते हैं। अतुला नीला देवी सरस्वती मेरी जिह्वा का आश्रय लेकर रहती हैं॥४७-४९॥

एतस्मिन्नन्तरे सैव वागीशा मां मनोहरम्॥५०॥
भ्रमन्तं विपिने दृष्ट्वा कोटिचन्द्रनिभाननम्।
पीताम्बरं घनश्यामं नवकञ्जदलेक्षणम्॥५१॥
समान-कर्ण-विन्यस्त-स्फुरन्मकरकुण्डलम्।
सुचारुबाहुयुगलं नानालङ्करणोज्ज्वलम्॥५२॥
सुनसं सुन्दरग्रीवं कौस्तुभोद्भासितोरसम्।
श्रीवत्सलोमावलिभि(?भी) राजन्तीभिर्विराजितम्॥५३॥
आजानुगतया नीपरुचालङ्कृतकन्धरम्।
पञ्चवर्णपुष्पचारुमालयाऽपि सुशोभितम्॥५४॥
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटे रत्ननूपुरैः।
भासितं सस्मितं दिव्ये निकुञ्जे जनवर्जिते॥५५॥

एतस्मिन् अन्तरे प्रेमसारस्वतान्तरे विपिने कोटिचन्द्रनिभाननम् घनश्यामम् नवकञ्जदलेक्षणम् पीताम्बरम् मनोहरम् माम् भ्रमन्तम् दृष्ट्वा, समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम्, सुचारुबाहुयुगलम्, नाना-अलंकरणोज्ज्वलम्, सुनसम्, सुन्दरग्रीवम्, कौस्तुभोद्भासितोरसम्, राजन्तीभिः श्रीवत्सरोमावलिभिः विराजितम्, नीपरुचा-अलङ्कृतकन्धरम्, आजानुगतया पंचवर्णपुष्पचारुमालया सुशोभितम् हेमाङ्गदतुलाकोटिरत्ननूपुरैः भासितम्, सस्मितम् माम् एतस्मिन् प्रेमसारस्वतान्तरे विपिने अन्तरे जनवर्जिते दिव्ये निकुञ्जे भ्रमन्तम् दृष्ट्वा सा एव वागीशा।

करोड़ों चन्द्रमाओं के समान मुख वाले, नवकञ्ज के दल के समान नेत्र वाले, घन की तरह श्याम वर्ण वाले, पीताम्बरधारी, समान (= दोनों) कानों में चमकते हुए मकरकुण्डलों को धारण करने वाले, सुन्दर बाहुयुगल वाले, अनेकों अलंकारों की प्रभा से उज्ज्वल, सुन्दर नासिका वाले, सुन्दर ग्रीवा वाले, कौस्तुभ मणि से अलंकृत कन्धर (स्कन्ध) वाले, पाँच रंग के पुष्पों से गुथी हुई तथा घुटनों तक लटकती सुन्दर माला वाले, स्वर्ण और अतुल कोटि रत्नों के नूपुर एवं अन्य अंगद आदि आभूषणों को धारण करने वाले, मुझको प्रेमसागर के समान वन के जनवर्जित इस दिव्य निकुञ्ज के अन्दर भ्रमण करता हुआ देखकर वह वाणी की अधीश्वरी देवी।।५०-५५।।

जिह्वामूलाद्विनिःसृत्य दीव्यन्ती सा सरस्वती।
दिव्यरूपधरा सुष्ठु कटाक्षयति सुस्मिता।
प्रेम्णाऽतिमधुरं कान्ता प्रोवाच वचनं शनैः।।५६।।

सा दिव्यरूपधरा सुस्मिता कान्ता सरस्वती कटाक्षयति। जिह्वामूलात् विनिःसृत्य प्रेम्णा अतिमधुरम् वचनम् शनैः प्रोवाच।

वह दिव्यरूपधारिणी सुस्मिता कान्ता सरस्वती नेत्रों से कटाक्ष करती हुई म्रेरे जिह्वामूल से निकलकर प्रेम से अति मधुर वचनों को धीरे-धीरे बोली।।५६।।

सरस्वती उवाच—

मामिच्छेति जगत्कान्त श्यामसुन्दरविग्रह।
त्वयाऽहं रतिमिच्छामि रतिनाथ सनातन।।५७।।

श्यामसुन्दरविग्रह! जगत्कान्त! सनातन! प्रिय! त्वया रतिम् इच्छामि इति। माम् इच्छ।

सरस्वती ने कहा—हे श्याम सुन्दर शरीर वाले! जगत् के स्वामी! सनातन! रतिनाथ! मैं तुम्हारे साथ रमण करना चाहती हूँ। तुम मुझे चाहो।।५७।।

त्रिभुवनजनबन्धो पूर्णकारुण्यसिन्धो
कलय मयि दृगन्तं स्वान्तजः शान्त आस्ताम्।
भवति रतिरतीव प्राणकान्तेऽतिकान्ते
मुखरयति मुखं मे किं करोमि क्व यामि।।५८।।

त्रिभुवनजनबन्धो! पूर्णकारुण्यसिन्धो! मयि दृगन्तम् कलय। स्वान्तजः शान्तः आस्ताम्। अतिकान्ते प्राणकान्ते भवति अतीव रतिः मे मुखम् मुखरयति। किम् करोमि? क्व यामि?

हे तीनों भुवनों के जनों के बन्धु! पूर्ण कारुण्यसिन्धु! मुझ पर आप अपने दृगन्तों (कटाक्ष) का पात कीजिए, जिससे मेरे प्राणों का अन्त करने वाला काम शान्त हो जाए। अति मधुर प्राणप्रिय आपके प्रति मेरा प्रेम प्रगाढ़ हो रहा है, जो मेरे मुख को वाचाल बना रहा है। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?।।५८।।

नीलेन्दीवरसुन्दराक्षियुगलं बिम्बाविडम्बाधरं
लीलालोलकपोलमण्डलतले कुण्डोल्लसत्कुण्डलम्।
विद्युद्विद्युति चारुपीतवसनं स्मेरस्मरस्मारिणं
श्यामं मोहनमोहनं प्रियतमं दृष्ट्वैव मुग्धास्म्यहम्।।५९।।

नीलेन्दीवरसुन्दर-अक्षियुगलम्, बिम्बाविडम्बाधरम्, लीलालोलकपोल-मण्डलतले कुण्डोल्लसत्कुण्डलम्, विद्युत् विद्युति चारुपीतवसनम्, स्मेरस्मर-स्मारिणम् मोहनमोहनम् प्रियतमम् श्यामम् दृष्ट्वा एव अहम् मुग्धा अस्मि।

नीलकमल की तरह सुन्दर नेत्र वाले, बिम्बाफल को तिरस्कृत करने वाले अधरों वाले, विद्युत् के समान चमकीले सुन्दर पीताम्बर को धारण करने वाले, काम के स्मित अर्थात् मुस्कराहट का स्मरण कराने वाले, काम को भी मोहित करने वाले, हे प्रियतम श्याम! आपको देखकर मैं मोहित हो गयी हूँ।।५९।।

मधुमधुरिममत्तैः षट्पदैर्गुञ्जमानैः
स्फुरति तिमिरपुञ्जं वञ्जुलैर्मञ्जुकुञ्जे।
लसितहसितभासा गुञ्जयन्तं जयन्तं
हरिहरिभुवि कस्त्वां नानुरज्येत जन्तुः।।६०।।

मधुमधुरिममत्तैः षट्पदैः गुञ्जमानैः वञ्जुलैः मञ्जुकुञ्जे तिमिरपुञ्जम् स्फुरित-लसित-हसितभासा गुञ्जयन्तम् जयन्तम् हरिहरिभुवि कः जन्तुः त्वाम् न अनुरज्येत?

मधु की मधुरिमा से उन्मत्त भौंरों के द्वारा गुंजायमान बेंत के वृक्षों से अन्धकारयुक्त बनाने वाले मनोहारी कुल वाले विष्णु के भी विष्णु की भूमि इस वृन्दावन में अपनी लसित-हसित कान्ति से गुञ्जार करने वाले काम को भी जीतने वाले आपके प्रति कौन प्राणी अनुरक्त नहीं होगा?।।६०।।

रतिरतिजरतीनामप्यहो श्याममूर्ते
भव भवति गतं(?ता) किं किं पुनर्यौवनानाम्।
श्रुतिवियति सुरूपं देवदेहानुरूपं
यदि चलति चलामः किं पुनर्दृक्पुरस्तात्।।६१।।

हे श्याममूर्त्ते! हे भव! अतिजरतीनाम् अपि भवति रतिः गता भवति पुनः यौवनानाम् किम्? देवदेहानुरूपम् सुरूपम् यदि श्रुतिवियति चलति (तर्हि वयम्) चलामः दृक् पुरस्तात् किम्।

हे श्याममूर्त्ते! हे संसार के कारण! आपके प्रति अत्यन्त वृद्ध स्त्रियों की भी अति प्रगाढ़ रति होती है, फिर हम युवतियों की क्या बात? देवताओं के शरीर जैसा आपका यह सुन्दर रूप यदि हमारे कर्णविवर में भी पड़ जाता है तो हम चल देती हैं, फिर आँखों के सामने रहने पर क्या पूछना॥६१॥

दिनमनु दिननाथः स्वैः करैः पद्मिनीनां
वदनमलिनिमानं नाशयेद् वासयेच्च।
अपि सकलकलाभिर्द्योतको दिग्वधूनां
कथमह कुमुदिन्यां चन्द्रमा नो दयालुः॥६२॥

हे हरे! दिननाथः अनुदिनम् स्वैः करैः पद्मिनीनाम् मलिनिमानम् वदनम् नाशयेत् वासयेत् च। सकलकलाभिः दिग्वधूनाम् द्योतकः चन्द्रमा कुमुदिन्याम् कथमह दयालुः नो।

हे हरि! भगवान् दिनमणि प्रतिदिन अपने किरणस्वरूपी करों से मलिनवदन पद्मिनियों की मलिनता का नाश करके उन्हें सुवासित करते हैं। इसी तरह सभी कलाओं से पूर्ण निशानाथ दिग्वधुओं को सर्वतः प्रकाशित करने वाले होकर कुमुदिनी पर भी दयालु होकर कृपा की वर्षा क्यों नहीं करते॥६२॥

मेघश्यामशरीरधीर भगवन् संसारसारस्य ते
तद्रूपामृतसागरेषु तनुते तृप्तिं तनूमात्रकः।
शुष्कं काष्ठचयं विना घनघुणैर्जीर्णं विशीर्णं पुनः
पाषाणं च विना विना मृततनुं नित्यं विशीर्णं विना॥६३॥

हे मेघश्यामशरीरधीर! भगवन्! संसारसारस्य ते रूपामृतसागरेषु तनूमात्रकः तृप्तिम् तनुते तद् घनघुणैः जीर्णम् विशीर्णम् शुष्कम् काष्ठचयम् विना पाषाणम् च विना मृततनुम् विना अथवा पशुघ्नम् विना पुनः (न कोऽपि कुर्यात्)।

हे मेघ के समान श्याम शरीर वाले! परम धीर! भगवन्! आपके संसारसाररूप रूपामृत समुद्र में से जो थोड़ी-सी ही तृप्ति प्राप्त करता है, वह घुनसमूह द्वारा जीर्ण-शीर्ण शुष्क काष्ठसमूह के बिना, पाषण के बिना, मृत शरीर के बिना अथवा पशुओं का वध करने वाले दयाहीन व्यक्ति के बिना और कोई नहीं हो सकता॥६३॥

तरणिदुहितृनीरैर्निर्भरस्नानकारी
तदमलकमलान्तः षट्पदप्रेमपत्न्याः।
मधुररुतविधात्र्या मान्त्य(?न्त्र)दीक्षाकृ(?द)द्य
प्रसरित(?रति) नववायुर्योषितां हर्तुमायुः।।६४।।

तरणिदुहितृनीरैः निर्भरस्नानकारी मधुररुतविधात्र्याः षट्पदप्रेमपत्न्याः अमलकमलान्तः मान्त्य(?न्त्र)दीक्षाकृद् अद्य नववायुः योषिताम् आयुः हर्तुम् प्रसरति।

हे हरि! सूर्यदुहिता यमुना के जल में निरन्तर स्नान करने वाले नव वायु ने प्रफुल्ल कमल के अन्तः भाग में बैठकर मधुर शब्द करने वाली भ्रमर की प्रेम पत्नी से (मृत्यु प्रदान करने के) मन्त्र की दीक्षा प्राप्त कर ली है और आज वही दीक्षित नववायु युवतियों की आयु का हरण करने के लिए बह रहा है।।६४।।

(मम कुचद्वन्द्वे स्वं पादपद्मं निधाय)
सपदि परमबन्धोः कृन्धि कन्दर्पदर्पम्।
तव वदनमुदीक्ष्य प्राणनाथस्य सत्यं
क्षणमपि धृतिहीनो(?ना) नोच्छ्वसंत्य-
(?नोच्छ्वसिम्यद्य) सद्यः।।६५।।

हे कृष्ण! सद्यः मम कुचद्वन्द्वे पादपद्मम् निधाय परमबन्धोः कन्दर्पदर्पम् सपदि कृन्धि। प्राणनाथस्य तव वदनम् उदीक्ष्य सत्यम् धृतिहीनः अद्य क्षणमपि न उच्छ्वसिमि।

हे कृष्ण! मेरे दोनों स्तनों पर अपने पादारविन्द को स्थापित करके अपने इस कन्दर्पदर्प का शीघ्रता से नाश कर दो। हे प्राणनाथ! यह सत्य है कि आपके मुख को एक बार देख लेने पर ही मैं धैर्यहीन हो गयी हूँ और एक क्षण के लिए भी श्वास नहीं ले पा रही हूँ।।६५।।

रचयसि वचनं चेत् कान्त कान्तं नितान्तं
तव हि रहितजीवाः किं च वक्तुं न शक्याः।
मयि दयित कुरुष्व प्रेमगाढोपगूढं
भवतु हिमतनोस्ते स्पर्शतस्तापशान्तिः।।६६।।

हे कान्त! चेत् नितान्तम् कान्तम् वचनम् रचयसि हि तव रहितजीवाः किञ्च वक्तुम् न शक्याः। दयित! मयि प्रेमगाढोपगूढम् कुरुष्व। ते हिमतनोः स्पर्शतः तापशन्तिः भवतु।

हे कान्त! यदि नितान्त कमनीय वचनों को आप रचते हैं तब आपके

अतिरिक्त कोई भी जीव किञ्चित् भी बोलने में समर्थ नहीं होता है। हे प्रिय! मेरे ऊपर आप प्रेम से गाढ़ आलिङ्गन करो, ताकि हिम की तरह शीतल शरीर वाले आपके स्पर्श से मेरे तापों की शान्ति हो जाए॥६६॥

क्रीडामानवरूपिणो भगवतो रूपेण धर्मा हृता
मर्मस्पर्शनदर्शने विततरङ्गेनाऽपि नीतं मनः।
सर्वं सर्वत एव कर्ममधुरं स्मेरेण विस्मारितं
श्रीश्रीकृष्ण स्वतृष्णया मम पुनः प्राणैः प्रयाणं कृतम्॥६७॥

क्रीडामानवरूपिणः भगवतो रूपेण धर्माः हृता। मर्मस्पर्शनदर्शने विततरङ्गे अपि मनः न नीतम्। सर्वतः एव सर्वम् कर्ममधुरम् स्मेरेण विस्मारितम्। श्रीश्रीकृष्ण! स्वतृष्णया मम प्राणैः पुनः प्रयाणम् कृतम्।

क्रीडामानस्वरूप धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के रूप के द्वारा हमारे सभी धर्मों का अपहरण कर लिया गया है। हे विस्तृत कामकला में कुशल श्रीकृष्ण! अब मर्मस्पर्शन-दर्शन में ही मन नहीं लगता। हमारे सभी आवश्यक कर्म भी आपके स्मित मुख ने विस्मारित कर दिए हैं। हे श्री श्रीकृष्ण! आपकी तृष्णा से मेरे प्राण पुनः प्रयाण कर रहे हैं॥६७॥

कान्त प्रान्तरमेतदद्भुतमसौ कुञ्जः कृतो वञ्जुलैः
गुञ्जत् षट्पदपुञ्जमञ्जुलतमो मध्ये तमः पूरितः।
राकानायकरोचिषाऽपि रजनी रोचिष्मती राजते
तत् किं मां समुपेक्षसे नवरसां वेशाधिकां नायिकाम्॥६८॥

कान्त! असौ कुञ्जः वञ्जुलैः अद्भुतम् कृतः। मध्ये च गुञ्जत् षट्पदपुञ्जमुञ्जलतमः तमः पूरितः। राकानायकरोचिषा रजनी अपि रोचिष्मती राजते, तत् नवरसाम् वेशाधिकाम् नायिकाम् माम् किम् समुपेक्षसे?

हे कान्त! यह कुञ्ज वञ्जुलों (बेतों) के द्वारा अन्दर-अन्दर अद्भुत बना दिया गया है। इसके मध्य में गुञ्जार करते हुए सुन्दरतम भ्रमरों की श्यामता से यह कुञ्ज और अधिक अन्धकारित हो रहा है। निशानाथ की धवल किरणों से रजनी उद्दीपित होकर अधिक आकर्षक बन गयी है। फिर कामोद्दीपन के सभी उपकरणों के विद्यमान होते हुए भी आप नवयौवन से परिपूर्ण अतिसुन्दर वस्त्रों से युक्त मुझ नायिका की क्यों उपेक्षा कर रहे हैं॥६८॥

मनो हृतं मानसमोषकेन
कृतं कृतं (? ता) तत्र च नास्ति मे क्षतिः।
प्राणान् (?असून्) गृहीत्वा रसिकेन्द्र किं च ते
विधेहि शान्तिं मयि धेहि दृष्टिम् (? त्वं दृशम्)॥६९॥

मानसमोषकेन मनोहृतम् कृतम् तत्र मे क्षतिः न कृता अस्ति। रसिकेन्द्र! प्राणान् गृहीत्वा ते किम्। मयि दृष्टिम् देहि शान्तिम् च विधेहि।

मन को चुराने वाले (आपके द्वारा) मेरा मन चुरा लिया गया है; किन्तु इससे मेरी कोई हानि नहीं की गयी। पर हे रसिकों के स्वामी! मेरे प्राणों को लेकर आपका क्या लाभ होगा? अरे आप मेरे ऊपर अपनी कटाक्षदृष्टि का स्नेह पात करें और मुझे शान्ति प्रदान करें।।६९।।

ब्राह्मण उवाच—

एवमुक्ते सरस्वत्या मौनीभूय परः पुमान्।
अतिष्ठदिष्टहृदयः सुप्तमीन इव(? यथा) ह्रदः(?दे)।।७०।।

सरस्वत्या एवम् उक्ते परः पुमान् मौनीभूय इष्टहृदयः ह्रदः सुप्तमीन इव अतिष्ठत्।

ब्राह्मण ने कहा—सरस्वती के इस प्रकार कहने पर परम पुरुष श्रीकृष्ण मौन होकर अपने हृदय में उसी प्रकार स्थिर हो गये, जैसे तालाब में सोया हुआ मीन स्थिर हो जाता है।।७०।।

ततः सा प्रेमसंस्निग्धहृदया हृदयाधिपम्।
चक्षुष्कोणेन पश्यन्तं वनं वृन्दावनाभिधम्।
लक्षयन्ती पुनर्वाणी प्रोवाच मधुरस्वना।।७१।।

ततः प्रेमसंस्निग्धहृदया वाणी चक्षुष्कोणेन वनम् पश्यन्तम् वृन्दावनाधिपम् लक्षयन्ती पुनः मधुरस्वना प्रोवाच।

इसके बाद प्रेम से संस्निग्ध हृदय वाली वाणी अर्थात् सरस्वती अपने नेत्रकोणों से वन को देखने वाले वृन्दावन के स्वामी तथा हृदयराज्य के स्वामी को सम्बोधित करती हुई मधुर और स्निग्ध वाणी में कहने लगी।।७१।।

सरस्वती उवाच—

उक्ता प्रेमकथा स्मितामृतरसैः संस्नापिता ते तनु-
र्बाहुः स्वर्णमृणालमूलमनिशं सन्दर्शितं तृष्णाया।
श्रीश्रीकृष्ण तथापि चेन्न विहितं युष्मादृशां(शा) मे हितं
किं मूढोऽसि किमत्र वा न चतुरं(?रः) किं वा न जीवी स्मरः।।७२।।

प्रेमकथा उक्ता, स्मितामृतरसैः ते तनुः संस्नापिता, अनिशम् तृष्णाया स्वर्णमृणालमूलम् बाहुः सन्दर्शितम्। श्रीश्रीकृष्ण! तथापि युष्मादृशा मे हितम् चेत् न विहितम्, तत् किम् मूढो असि? वा अत्र किम् न चतुरः? वा किम् स्मरः जीवी न?

सरस्वती ने कहा—हे श्रीकृष्ण! मैंने प्रेम की कथाओं को तुम्हें सुनाया। स्मित के अमृतरस से तुम्हारे शरीर को अच्छी तरह नहला दिया।

बार-बार तृष्णा के साथ स्वर्णमृणाल के मूल की-सी अपनी भुजाओं को दिखाया, फिर भी आप जैसे पुरुष के द्वारा मेरा कोई हित नहीं किया गया। इससे मुझे बताओ कि क्या तुम रसहीन मूढ व्यक्ति हो? अथवा प्रेमरस के व्यापार में चतुर नहीं हो? अथवा कामदेव अब जीवित नहीं है?॥७२॥

वक्षोरुहस्वर्णपयोरुहाभ्यां
भुजे (?प्रभो) भुजादण्डसुमण्डिताभ्याम्।
मुखेन्दुपीयूषरसैस्तथाऽपि
न चेत्प्रसन्नोऽसि (वै) मनोभवो मृतः॥७३॥

(प्रभो!) भुजादण्डसुमण्डिताभ्याम् वक्षोरुहस्वर्णपयोरुहाभ्याम् मुखेन्दु-पीयूषरसैः तथापि न प्रसन्नः असि चेत् मनोभवः मृतः।

हे प्रभो! श्रीकृष्ण! भुजदण्डों से सुमण्डित वक्ष पर उत्पन्न होने वाले स्वर्णसमान स्तनों एवं मुखचन्द्र के अमृतरस से भी यदि आप प्रसन्न नहीं होते हैं तो निश्चित ही कामदेव मर चुका है॥७३॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्युक्तो भगवान् कृष्णो वाग्देव्या प्रेमलिप्सया।
नो चचाल न नो(?चो)वाच दृशा विपिनमैक्षत॥७४॥

वाग्देव्या प्रेमलिप्सया इति उक्तः भगवान् कृष्णः दृशा विपिनम् ऐक्षत नो चचाल न च उवाच।

ब्राह्मण ने कहा—वाणी सरस्वती के द्वारा प्रेम की लिप्सा से ऐसा कहने पर भगवान् श्रीकृष्ण नेत्रों से वृन्दावन की ओर देखते रहे। वे न तो विचलित हुए और न ही कुछ बोले॥७४॥

इङ्गितज्ञा ततो वाणी वसन्तं पुरतो हरिम्।
स्मितैः संस्नापयामास वसन्तवर्णनोत्सुका॥७५॥

ततः इङ्गितज्ञा वसन्तवर्णनोत्सुका वाणी पुरतः वसन्तम् हरिम् स्मितैः संस्नापयामास।

इसके बाद बाहरी अङ्ग-चेष्टाओं के द्वारा हृदय की बातों को समझने में कुशल, वसन्त के वर्णन के लिए उत्सुक सरस्वती सामने स्थित हरि को अपनी मधुर मुस्कान से स्नान कराने लगी॥७५॥

ऋतुराजं वर्णयितुमथारभत सुव्रता।
वाग्देवता देवताभिः सेविता भावितासकृत्॥७६॥

अथ देवताभिः सेविता असकृत् भाविता सुव्रता वाग्देवता ऋतुराजम् वर्णयितुम् आरभत।

इसके बाद अनेक देवियों से सेवित सुन्दर व्रत धारण करने वाली देवताओं से अनेकों बार भावित वाग्देवी ने ऋतुराज वसन्त का वर्णन आरम्भ कर किया।।७६।।

सरस्वती उवाच—

मन्दश्चन्दनमारुतश्चलति यत् क्रीडारथः केतवः
चूतानां मुकुलानि यस्य महिषी स्मेरानना माधवी।
छत्रं यस्य च केसरस्य कुसुमं यद्दर्पणश्चन्द्रमा
दण्डे(?ण्डो) यस्य च चम्पकस्य कलिका राजा ऋतूनामयम्।।७७।।

अयम् ऋतूनाम् राजा, यत् मन्दः चन्दनमारुतः चलति तत् अस्य क्रीडारथः, चूतानाम् मुकुलानि, केतवः; स्मेरानना माधवी यस्य महिषी, केसरस्य कुसुमम् यस्य छत्रम्, चन्द्रमा यस्य दर्पणः, चम्पकस्य च कलिका यस्य दण्डः।

देवी सरस्वती बोली—चन्दन की गन्ध को लेकर बहने वाली मन्द वायु ही इसका क्रीडारथ है, आम्र मञ्जरियाँ ही इसके रथ की पताकायें हैं, स्मित मुख वाली माधवी इसकी पटरानी है, केसर का पुष्प इसका छत्र है, चन्द्रमा इसका दर्पण है तथा चम्पक की कलिका इसका दण्ड है। इस प्रकार यह वसन्त ऋतुओं का राजा है।।७७।।

यद्‌ दूताः किल कोकिलाः कलरवैः केलीकलास्तन्वते
सेना यस्य शिलीमुखाः कलकली कोलाहलं कुर्वते।
पुष्पान्तःकुहरे पुरोहितहतो यस्य स्मरं(?स्मर-)स्मारकः
शृङ्गारोत्तरतन्त्रकस्य विपिने राजा ऋतूनामयम्।।७८।।

अयम् ऋतूनाम् राजा वसन्तः यद्दूताः किल कोकिलाः कलरवैः केली-कलाः तन्वते। शिलीमुखाः यस्य सेना कलकली कोलाहलम् कुर्वते। यस्य स्मरस्मारकः पुरोहित पुष्पान्तःकुहरे हतः विपिने।

अपने कलरव से केलिकला बढ़ाने वाले कोकिल ही इसके दूत हैं। कलकली कोलाहल करने वाले भ्रमर ही इसकी सेना है। कामदेव की याद कराने वाला जिसका सुगन्धपुरोहित वायु पुष्प के अन्तःकुहर में मारा गया, वन में शृङ्गारोत्तरतन्त्र का तथा ऋतुओं का राजा यह वसन्त है।।७८।।

मधुस्त्रवद्भिः कुसुमैर्मनोहरैर्मधुव्रतव्रातवृतैः ससौरभैः।
कुहूरुतैः कोकिलकामिनीनां मधुः सिषेवे मधुसूदन त्वाम्।।७९।।

हे मधुसूदन! मधुस्त्रवद्भिः मनोहरैः ससौरभैः कुसुमैः मधुव्रतव्रातवृतैः कोकिलकामिनीनाम् कुहूरुतैः त्वाम् (अयम्) मधुः सिषेवे।

हे मधुसूदन! मधु को गिराते हुए, मनोहर सौरभयुक्त तथा भ्रमरसमूह

से घिरे हुए सुमनों के द्वारा और कोकिलरूपी कामिनियों के मनोहर संगीत से यह वसन्त आपकी सेवा कर रहा है॥७९॥

यत्पाद्यानि मधूनि चूतमुकुलं यस्यार्घ्यमर्घ्यान्वितं
यस्यैवाचमनीयमद्भुतमितोऽमन्दो मरन्दोऽधिकम्।
पुष्पं यस्य समन्ततोऽप्यविरतं गन्धानुबन्धोत्तमं
यद् भूयो मलयानिलो विषकलो यस्य प्रदीपो विधुः॥८०॥

(अयम् ऋतूनाम् राजा वसन्तः) मधूनि यत्-पाद्यानि, अर्घ्यान्वितम्, चूत-मुकुलम् यस्य अर्घ्यम्, इतः अमन्दः अधिकम् मरन्दः यस्य अद्भुतम् आचमनीयम् एव, यस्य समन्ततः अविरतम् गन्धानुबन्धोत्तमम् पुष्पम्, यस्य भूयः मलयानिलः विषकलः, विधुः यस्य प्रदीपः।

(यह ऋतुओं का राजा वसन्त है) पुष्पों का पराग जिसके पैर धोने का जल है। आम्र की कली जिसका अर्घ्य से युक्त अर्घ्य है। इधर अधिक मात्रा में बहने वाला अद्भुत मरन्द (मधु) जिसका आचमन का जल है। इसके चारों ओर सघन फैले हुए पुष्प ही जिसका उत्तम गन्ध है। निरन्तर चारों ओर बहने वाला मलय पर्वत का पवन ही इसका धूप है और चन्द्रमा ही इसका प्रज्ज्वलित दीपक है॥८०॥

नैवेद्यं च फलादि यस्य विलसत् पत्रोपरि भ्राजते
वाद्यं माद्यदुदारकोकिलगणो लीलालको यस्य च।
यत्पुङ्खा भ्रमराः सुविभ्रमभृतः स्वं मस्तकं नामभि-
र्वल्ली-वायुविधूत-पल्लव-महो नव्यातिनव्यं द्रुतम्॥८१॥

पत्रोपरि विलसत् फलानि यस्य नैवेद्यम् भ्राजते। माद्यत् लीलालकः उदार-कोकिलगणः यस्य वाद्यम् च। सुविभ्रमभृतः भ्रमराः यत् पुङ्खाः। द्रुतम् नव्यातिनव्यम् वायुविधूतपल्लवम् स्वंमस्तकम्।

पत्रों के ऊपर विकसित फल आदि ऋतुराज वसन्त का नैवेद्य है। उन्मत्त एवं उदार लीलापरायण कोकिलगण ही जिसका वाद्य है। सुन्दर विभ्रम से पूरित भ्रमर ही जिसकी पुंखा है। वायु के द्वारा हिलाकर नीचे की ओर झुकाये गये नवीनातिनवीन पल्लव ही उसका मस्तक है, जिन्हें नाम ले-लेकर शीघ्रता से लताएँ प्रणाम के लिए झुकाती जा रही हैं॥८१॥

यस्याचार्यवरो विचारचतुरः सर्पत्यसौ दर्पतः
शृङ्गारोत्तरतन्त्रमन्त्रनिपुणः कन्दर्प इष्टः पुनः।
वासन्त्या निजकान्तयाऽप्यनुगतो लोकत्रयीमोहनं
कर्त्तुं साधु मधु मधुद्विषमपि त्वां किं यजन्त्य(?त्य)ञ्जसा॥८२॥

यस्य विचारचतुरः आचार्यवरः असौ शृङ्गारोत्तरतन्त्रमन्त्रनिपुणः इष्टः कन्दर्पः पुनः दर्पतः सर्पति। वासन्त्या निजकान्तया अपि अनुगतः मधुद्विषम् अपि साधु मधु कर्तुम् लोकत्रयीमोहनम् त्वाम् किम् अञ्जसा यजति।

जिसका आचार्य शृङ्गारोत्तर कार्य के तन्त्र-मन्त्र में निपुण विचारचतुर सबका इष्ट यह काम दर्प के साथ विचरण कर रहा है। यह काम अपनी वासन्ती कान्ता से अनुगत होकर मधुद्विष (मधु के शत्रु) को साधु मधु (मधु का मित्र) बनाने के लिए तीनों लोकों को मोहित करने वाले हे श्रीकृष्ण! यह तुम्हारा उचित रूप से यजन कर रहा है।।८२।।

मधुरिपुमपि सख्यू रूपचौरं च दृष्ट्वा
मधुरिह कुसुमेषोः कोकिलैरन्वकारम्।
तरुणतरुभिरुच्चैस्त्वां परीहासदक्षो
विकिरति मरुतोऽसौ केतकीधूलिभारम्।।८३।।

इह मधुरिपुम् अपि मधुसख्युः रूपचौरम् दृष्ट्वा कोकिलैः कुसुमेषोः अन्वकारम् असौ परीहासदक्षः मरुतः उच्चैः तरुणतरुभिः त्वाम् केतकी-धूलिभारम् विकिरति।

इधर वसन्त ने मधुरिपु को भी सखियों के रूप की चोरी करने वाला देखकर कोकिलों के द्वारा कामदेव के अनुकूल करा दिया। परिहास करने में दक्ष यह वायु भी ऊँचे-ऊँचे तरुण वृक्षों से तुम्हारे ऊपर केतकी के परागधूल के भार को बिखेर रहा है।।८३।।

मधूकमाद्यन्मधुपालिपालितः पिकेन चञ्चत्पुरपाणिलालितः।
विलोलमौलिर्मुकुलै रसालयं क्रियाद्रसालः सुदृशां दृशां मुदम्।।८४।।

मधूकमाद्यन्मधुपालिपालितः पिकेन चञ्चत् पुरपाणिलालितः विलोलमौलिः रसालः मुकुलैः सुदृशाम् दृशाम् मुदम् रसालयम् क्रियात्।

महुए के मस्त पराग के मद से उन्मत्त भ्रमरों द्वारा पालित, कोकिल के चञ्चल पुरपाणि से लालित, चंचल मूर्धा वाला यह रसाल (आम) मुकुलों (बौर) के द्वारा सुन्दरियों के नेत्रों को रसपूर्ण कर रहा है।।८४।।

अशोकपुष्पाण्यरुणारुणानि स्मरस्य रोषाग्निकणा इवाऽभवन्।
प्रियेण हीना वरयोषितोऽटवीर्दग्धुं समर्थानि वृतानि वायुभिः।।८५।।

अरुणारुणानि अशोकपुष्पाणि स्मरस्य रोषाग्निकणाः इव अभवन्। प्रियेण हीनाः वरयोषितः अटवीः दग्धुम् वायुभिः समर्थानि वृतानि।

लाल-लाल अशोक के पुष्प कामदेव की क्रोधाग्नि के कण से प्रतीत हो रहे हैं। प्रतीत होता है कि प्रिय से विरहित नायिकाओं ने अटवी (घने

जङ्गलों) को दग्ध करने के लिए वायु के द्वारा समर्थ का वरण कर लिया है।।८५।।

कलिन्दकन्याजलशीतलेन समीरितो मन्दसमीरणेन।
दलैश्च पुष्पैश्च फलैश्च शश्वद्रङ्गो लवङ्गो तप आततान।।८६।।

कलिन्दकन्याजलशीतलेन मन्दसमीरणेन समीरितः रङ्गलवङ्गः शश्वद् दलैः च पुष्पैः च तपः आततान।

कलिन्द पर्वत की तनया यमुना के शीतल जल के स्पर्श से शीतल, मन्द पवन के द्वारा समीरित, पत्र-पुष्प और फलों द्वारा निरन्तर आनन्द करने वाला यह लवङ्ग तप कर रहा है।।८६।।

उदेति पीयूषकरः करोति दिशां प्रकाशं भवतो मुखोपमाम्(?पमम्)।
लुब्धं सुधादानकरः सुरेभ्यो नभस्यसौ किं रभसा तपस्यति।।८७।।

पीयूषकरः उदेति भवतः मुखोपमम् दिशाम् प्रकाशम् करोति किम् सुरेभ्यः सुधादानकरः लब्धुम् असौ नभसि रभसा तपस्यति।

चन्द्रमा उदित हो रहा है। वह दिशाओं में आपके मुख के समान प्रकाश कर रहा है। देवताओं को अमृतदान करने वाला यह क्या आपके मुख की समानता पाने के लिए तप कर रहा है?।।८७।।

सकोरका पुन्द्रकवीरुदेषा सम्मोहयामास मनो मुनेरपि।
चूतद्रुमे वायुविधूतविद्रुमा चिरं भ्रमद्भिर्भ्रमरैः समाकुला।।८८।।
कुहुः कुहुः कोकिलकामिनीनां कलाद्धुराः केलिगिरो बभूवुः।
अनेककालार्जितमानभाजां मानक्षपेव स्मरदूतिकानाम्।।८९।।

एषा सकोरका पुन्द्रकवीरुद् मुनेरपि मनः मोहयामास। चूतद्रुमे वायुविधूतविद्रुमाः भ्रमद्भिः भ्रमरैः चिरम् समाकुलाः। कोकिलकामिनीनाम् कलोद्धुराः कुहुः कुहुः अनेककालार्जितमानभाजाम् स्मरदूतिकानाम् केलिगिरः मानक्षपा इव बभूवुः।

यह कोरकों (कलियों) से युक्त पुन्द्रक लता मुनियों का भी मन मोहित कर रही है। आम्र के वृक्षों पर वायु से हिलाये हुए विद्रुम अर्थात् मूंगे उड़ते हुए भ्रमरों से भरे हैं। कोकिलकामिनियों के कुहू-कुहू के सुन्दर स्वर दीर्घकाल से मान में बैठी हुई स्मर-दूतिकाओं के मान को दूर करने के लिए बन रहे हैं।।८८-८९।।

माद्यन्ति भृङ्गाः कुसुमावलीषु माध्वीकमच्छिद्य निजप्रियामुखात्।
पिबन्ति कूजन्ति च दीर्घनिःस्वनं विदूरयन्ति प्रमदाऽतिदुर्मदम्।।९०।।

तमालमालां(? ला) विदलद्भिरद्भुतं दलैर्नवीनैर्वनदेवतार्च्चनैः।
कस्तूरिकागन्धमुपाहरन्ति किं हरे तव श्यामशरीरसाम्यतः॥९१॥

कुसुमावलीषु भृङ्गाः निजप्रियामुखात् माध्वीकम् आच्छिद्य माद्यन्ति, पिबन्ति, दीर्घनिःस्वनम् कूजन्ति, प्रमदाः अतिदुर्मदम् विदूरयन्ति। हरे तव श्यामशरीरसाम्यतः वनदेवता तमालमालाः अद्भुतम् वनदेवतार्चनः विदलद्भिः नवीनैः दलैः किम् कस्तूरिकागन्धम् उपाहरन्ति?।

कुसुमावलियों पर भ्रमर अपनी प्रियाओं के मुख से छीन कर मधुरस को छक कर पी रहे हैं। देर तक ध्वनि करते हुए गुञ्जार कर रहे हैं। वे प्रमदाओं के दुर्मद को दूर हटा रहे हैं। तमाल वृक्षों की पंक्तियाँ वनदेवताओं की पूजा वाली अद्भुत फूटती हुई नवीन कोपलों के द्वारा हे कृष्ण! क्या आपके साँवले शरीर की तुलना के कारण कस्तूरी की गन्ध ले आ रही हैं॥९०-९१॥

हेमचम्पकहिरण्यवेतसो निर्गतभ्रमरधूमदर्शनात्।
संरुदन्त्य इह प्रोषितकान्ताः कारयन्ति कुचमौक्तिकमैत्रीम्॥९२॥
तद्धूलियुक्तोदरपाणियुग्मः प्रसूनबाणस्य सखाऽयमुद्भटः।
प्राणान् ग्रहीतुं विरहातुराणां शल्यं दधौ केतकिकैतवेन॥९३॥

निर्गतभ्रमरधूमदर्शनात् इह रुदन्त्यः प्रोषितकान्ताः कुचमौक्तिकमैत्रीम् कारयन्ति। अयम् प्रसूनबाणस्य उद्भटः सखा तद्धूलियुक्त-उदरपाणियुग्मः विरहातुराणाम् प्राणान् ग्रहीतुम् केतकिकैतवेन शल्यम् हेमचम्पकहिरण्यवेतसः सन् दधौ।

सोने के रंग की चम्पा और स्वर्णिम वेंत से निकलते हुए भ्रमररूपी धूमदर्शन से रोती हुई प्रोषितपति कान्ताएँ उनकी अपने कुचमुक्ताओं के साथ मित्रता कर रही हैं। यह भ्रमर कामदेव का उद्भट् मित्र है, अतः पुष्पों की परागधूलि से युक्त उदर और पाणियुग्म वाला यह वसन्त विरहातुर लोगों के प्राणों को निकालने के लिए केतकी के व्याज से शल्य (बाण) का सन्धान किया है॥९२-९३॥

पद्मानि सद्मानि मरालवध्वाः प्रवेष्टुकामानिह षट्पदौघान्।
प्रमाद्यतो हुङ्कृतिवावदूकांस्तरङ्गहस्तैर्यमुना निषेधति॥९४॥
करुणांस्तरुणान् हसन्ति किं विलसद्भिः कुसुमैः समन्ततः।
तरुणीः कुरुते (?) वशे न चेन्मरणं वः शरणं भविष्यति॥९५॥

मरालवध्वाः सद्मानि पद्मानि प्रवेष्टुकामान् हुंकृतिवावदूकान् प्रमाद्यतः षट्पदौघान् यमुना तरंगहस्तैः निषेधति। समन्ततः कुसुमैः विलसद्भिः करुणान् तरुणान् हसन्ति चेत् तरुणीः वशे न कुरुते(?) मरणम् वः शरणम् भविष्यति।

मराल-वधुओं के कमलों के महलों में प्रवेश की इच्छा वाले, हुंकृति की वाचालता वाले मस्त भ्रमरों को यमुना अपने तरङ्गरूपी हाथों से रोक रही है। चारों ओर से कुसुमों के साथ विलास करने वाली युवतियाँ करुणायोग्य युवकों पर हँस रही हैं। यदि वे युवतियों को वश में नहीं कर लेते तो तुम्हारे लिए मरण ही शरण बनेगा॥९४-९५॥

स किंशुको बालदिवाकरांशुकं
दधत् प्रसूनं(न)प्रचयं प्रकाशितम्।
यूनामुरोदारुणरक्तसिक्तान्
नखानिह स्मारयति स्मरस्य॥९६॥

बालदिवाकरांशुकम् दधत् स किंशुकः प्रसूनप्रचयम् प्रकाशितम् स्मरस्य यूनाम् उरोदारुणरक्तसिक्तान् नखान् इह स्मारयति।

बाल सूर्य की किरणरूपी वस्त्र को धारण करने वाले ये किंशुक यहाँ खिले हुए पुष्पों के समूह के व्याज से युवकों के हृदय को फाड़कर रक्त में डूबे हुए कामदेव के नाखूनों का स्मरण कर रहे हैं॥९६॥

भुजङ्गमागर्तमुपासते स्म ते
चलद् बलं तं पथिका विवृण्वते।
जह्नु(?हु)र्वनं दावकृशानुना कृशं
कुरङ्गशावाः प्लुतिरङ्गशालिनः॥९७॥

ते पथिकाः तम् भुजङ्गम् आगर्त्तम् उपासते स्म चलत् बलम् विवृण्वते। प्लुतिरङ्गशालिनः कुरङ्गशावाः दावकृशानुना कृशम् वनम् जहुः।

हे वसन्त! वे पथिक उन साँपों को बिलों में जाते हुए देखते हैं। चलते हुए बल का विवरण करते हैं। कूदने वाले मृग-शावक इस वन को दावाग्नि से कृश समझ कर छोड़ दिये। तात्पर्य यह है कि वन में किंशुक के वृक्षों पर आये हुए लाल पुष्पों को देखकर पथिकों का मन आह्लादित हो रहा है; इसलिये वे आपकी उपासना कर रहे हैं और कूदने की कला में निपुण मृगशावक दावाग्नि के द्वारा क्षीण संभाल वन को छोड़ दिये हैं॥९७॥

भ्रमरैः कोकिलैः पुष्पैर्मुकुलैः स्तबकैर्दलैः।
साहाय्यं कुरुते स्मैष पुष्पेषोः सुहृदो जये॥९८॥

एषः (वसन्तः) सुहृदः पुष्पेषोः जये भ्रमरैः कोकिलैः मुकुलैः स्तबकैः दलैः साहाय्यम् कुरुते स्म।

वसन्त अपने मित्र कामदेव की विजय में भ्रमरों, कोकिलों, मुकुलों पुष्पों, स्तवकों और दलों के द्वारा सहायता करता था॥९८॥

एवं वदन्तीं वाग्देवीं सर्वभूतमनोरमाम्।
ततोऽरुणदृशा दृष्ट्वा कृष्णः क्रोधवशं गतः॥९९॥

कृष्णः सर्वभूतमनोरमाम् वाग्देवीम् एवम् वदन्तीम् अरुणदृशा दृष्ट्वा तम् क्रोधवशम् गतः।

इस प्रकार बोलती हुई सभी प्राणियों के मन को रमण कराने वाली वाग्देवी को लाल-लाल नेत्र से देखकर श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गये॥९९॥

अवदद् वदतां श्रेष्ठो मेघगम्भीरया गिरा।
संकल्पकल्पनाभिज्ञः प्रज्ञः सार्वज्ञकर्मणि॥१००॥

संकल्पकल्पना-अभिज्ञः सार्वज्ञकर्मणि प्रज्ञः वदताम् श्रेष्ठः (श्रीकृष्णः) मेघगम्भीरया गिरा अवदत्।

संकल्प और कल्पना को जानने वाले, सार्वज्ञ कर्म के विशेषज्ञ, वक्ताओं में परम श्रेष्ठ, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण मेघगम्भीर वाणी में बोले॥१००॥

श्रीकृष्ण उवाच—

किं वल्गसे पुरस्तान्मे प्रगल्भा त्वं पुमानिव।
इतोऽपयाहि कल्याणि कल्याणं स्वं यदीच्छसि॥१०१॥

मे पुरस्तात् प्रगल्भा त्वम् पुमान् इव किम् वल्गसे? कल्याणि! यदि स्वम् कल्याणम् इच्छसि (तर्हि) इतः अपयाहि।

श्रीकृष्ण ने कहा—मेरे सामने चतुर स्त्री तुम पुरुष की भाँति क्या कह रही हो? हे कल्याणि! यदि तुम अपना कल्याण चाहती हो तो यहाँ से चली जाओ॥१०१॥

आत्मारामोऽस्मि कामार्ते न च रंस्ये त्वया समम्।
विकारकारणेनापि ह्यविकारी पुरुषोत्तमः (नरोत्तमः)॥१०२॥

कामार्ते! अहम् आत्मारामः अस्मि। त्वया च समम् न रंस्ये। अहम् विकारकारणेन अपि अविकारी नरोत्तमः (अस्मि)।

हे कामपीडिते! मैं आत्माराम हूँ। तुम्हारे साथ रमण नहीं करूँगा। विकार के कारणों के उपस्थित होने पर भी मैं अविकारी पुरुषोत्तम हूँ॥१०२॥

अद्भुतं चारुचरितं मयैवाद्य विलोकितम्।
यद्देहात्त्वं समुत्पन्ना तेन सार्द्धं रिरंससि॥१०३॥

अद्य एव मया अद्भुतम् चारुचरितम् विलोकितम्। त्वम् यद्देहात् समुत्पन्ना तेन सार्द्धम् रिरंससि।

आज ही मैंने अद्भुत सुन्दर चरित्र देखा। तू जिसके शरीर से उत्पन्न हुई है, उसी के साथ रमण करना चाहती है॥१०३॥

तद्भवद्देशं पृच्छामि (?तत्त्वद्देशं पिपृच्छामि)
गच्छ गच्छ मम स्थलात्।
स्थावरत्वमितो यतस्तुष्टोऽस्मि गच्छ भामिनि॥१०४॥

तत् त्वत् देशम् पृच्छामि। मम स्थलात् गच्छ गच्छ। भामिनि! इतः स्थावरत्वम् गच्छ यतः तुष्टः अस्मि।

इसलिए मैं तेरे स्थान को पूछता हूँ। तू मेरे स्थान से दूर चली जा, दूर चली जा। यहाँ से जाकर स्थावरत्व (जड़त्व) को प्राप्त कर, जिससे हे भामिनि! मैं प्रसन्न हो सकूँ॥१०४॥

कम्पमाना ततो देवी प्रोवाच ब्रह्मरूपिणी।
रुदन्ती गद्गदगिरा दीर्घनिःश्वासशालिनी॥१०५॥

ततः कम्पमाना दीर्घनिःश्वासशालिनी ब्रह्मरूपिणी रुदन्ती देवी गद्गदगिरा प्रोवाच।

इसके बाद कम्पित देहयष्टि वाली, लम्बी-लम्बी श्वास लेती हुई, रोती हुई, ब्रह्मरूपिणी सरस्वती देवी गद्गद वाणी से बोली॥१०५॥

सरस्वती उवाच—

त्वमेव सर्वभूतात्मा भूतानामीश्वरः प्रभो।
भर्ता भ्राता पिता चाथ त्वं सुतः सुहृदुत्तमः॥१०६॥

प्रभो! त्वम् एव सर्वभूतात्मा, सर्वभूतानाम् ईश्वरः, भर्ता भ्राता पिता च अथ त्वम् एव उत्तमः सुतः सुहृत् च।

सरस्वती ने कहा—हे प्रभो! तुम ही सर्वभूतात्मा, सभी प्राणियों के स्वामी, पति, भ्राता, पिता, पुत्र और उत्तम मित्र भी हो॥१०६॥

त्वत्तो भूतं भविष्यं च वर्तमानं च यद् विभो।
कृष्ण किं वा करिष्यामि क्व यास्यामि वदस्व तत्॥१०७॥

विभो! त्वत्तः एव यत् भूतम् भविष्यम् वर्तमानम् च। हे कृष्ण! तत् वदस्व। अहम् किम् वा करिष्यामि? क्व च यास्यामि ?

हे सर्वव्यापक प्रभु! सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान तुमसे ही प्रकट हो रहे हैं। हे कृष्ण! फिर बताओ कि मैं क्या करूँ? और कहाँ जाऊँ?॥१०७॥

मनो गृहीतं भवता श्यामसुन्दरविग्रह।
श्यामधाम भवद्रूपं दृष्ट्वाऽहमिह मूर्च्छिता॥१०८॥

तत्त्वया रन्तुमिच्छामि प्राणिनां प्राणनायक।
भवतो वचनादेव यास्यामि दुरवस्थितिम्॥१०९॥
स्थावरत्वमपीच्छामि त्यक्तुं त्वां नहि कामये।

हे श्यामसुन्दरविग्रह! भवता मनो गृहीतम्। हे श्यामधाम! भवद् रूपम् दृष्ट्वा इह अहम् मूर्च्छिता। प्राणिनाम् प्राणनायक! तत् त्वया रन्तुम् इच्छामि। भवतः वचनात् एव दुरवस्थितिम् यास्यामि। अहम् स्थावरत्वम् अपि इच्छामि परम् त्वाम् त्यक्तुम् नहि कामये।

हे श्यामसुन्दर विग्रह! आपने मेरा मन हर लिया है। इस कारण मैं आपके साथ रमण करना चाहती हूँ। हे प्राणियों के प्राणनायक! श्यामधाम! आपके रूप को देखकर मैं यहाँ मूर्च्छित हो रही हूँ! अब आपकी आज्ञा से ही दुःखदायी स्थिति में भी चली जाऊँगी। मैं स्थावरत्व को भी सहन कर सकती हूँ; किन्तु तुम्हारे सामीप्य को त्याग कर जीवित रहना नहीं चाहती॥१०८-१०९॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ततः सन्तुष्टहृदयः सदयोऽमहमुवाच ताम्॥११०॥
कम्पमानां मन्त्रयोनिं गायत्रीमातरं बल।
अव्यर्थवचनश्चास्मि सर्वशक्तिसमृद्धिमान्॥१११॥
याहि स्थावरतां भद्रे न त्वां त्यक्ष्यामि मा रुद।

बल! ततः सन्तुष्टहृदयः सदयः अहम्(? दः) कम्पमानाम् मन्त्रयोनिम् गायत्रीमातरम् ताम् उवाच यत् अहम् सर्वशक्तिसमृद्धिमान् अव्यर्थवचनः च अस्मि। भद्रे! स्थावरताम् याहि। मा रुदः। त्वाम् न त्यक्ष्यामि।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे बलदेव! इससे सन्तुष्ट चित्त वाला होकर अत्यन्त दया के साथ मैंने काँपती हुई, मन्त्रों को प्रकट करने वाली गायत्री की माता सरस्वती से कहा कि मैं सर्वशक्तियों से समृद्धशाली हूँ। मेरा वचन असत्य नहीं होता। अतः तुम स्थावरत्व को प्राप्त करो। रोओ मत। मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा॥११०-१११॥

ततो दिव्ये मणिमये स्थाने देवी सरस्वती॥११२
अविवासानन्तफणा का वा सा शतपर्वणी।
सर्वरत्नमयी वृन्दावने मत्परिपालिते॥११३॥
तृणवासस्य महिषी राजयन्ती दिशस्त्विषा।
यामहं तत्त्वतो जाने तथैव च सदाशिवः॥११४॥

ततः देवी सरस्वती मत्परिपालिते वृन्दावने मणिमये दिव्ये स्थाने

अनन्तफणा शतपर्वणी सर्वरत्नमयी वा सा का (अभूत्) अविवासा त्विषा दिशः राजयन्ती तृणवासस्य महिषी इव (अस्ति)। याम् अहम् तथा सदाशिवः तत्त्वतः जाने।

इसके बाद देवी सरस्वती मेरे द्वारा पालित वृन्दावन में दिव्य मणिमय स्थान में अनन्तफण शतपर्व वाली रत्नमयी होकर दिशाओं को सुशोभित करती हुई तृणवास की महिषी-सी होकर वह क्या बन गई, इसे तत्त्वतः मैं और सदाशिव ही जानते हैं।।११२-११४।।

महाविष्णुश्च जानाति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
जानन्ति भैरवी चापि कदाचिद् वा मुनीश्वराः।।११५।।
देवकिन्नरयक्षाद्यास्त्वां न जानन्ति केचन।
सैषा देवी स्थावरत्वं गता मत्कोपमात्रतः।।११६।।

महाविष्णुः च जानाति। ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः भैरवी च कदाचित् मुनीश्वराः वा जानन्ति। केचन देवकिन्नरयक्षाद्याः त्वाम् च न जानन्ति। सा एषा देवी मत्कोपमात्रतः स्थावरत्वम् गता।

और इस घटना को महाविष्णु जानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और भैरवी भी तथा कदाचित् मुनीश्वर लोग भी जानते हैं। कुछ देव, किन्नर, यक्ष आदि तुम्हें नहीं जानते कि वह देवी सरस्वती मेरे क्रोधमात्र से स्थावरत्व को प्राप्त हो गयी।।११५-११६।।

एवं वाग्वादिनी देवी भ्रष्टश्री धरणीं गता।
स्थावरत्वं गतायां तु सरस्वत्यां महाबल।।११७।।
निःशब्दाः सकला लोका निःशब्दं विपिनं मम।
न कुहुं कोकिलाश्चैव कुर्वन्ति भ्रमरा अपि।।११८।।
नीरावाः सम्बभूवुस्ते पक्षिणो वनवासिनः।

एवम् भ्रष्टश्रीः वाग्वादिनी देवी धरणीम् गता। महाबल! सरस्वत्याम् स्थावरत्वम् गतायाम् सकलाः लोकाः निःशब्दाः (जाताः)। मम च विपिनम् निःशब्दम् जातम्; कोकिलाः च एव कुहुम् न कुर्वन्ति। ते भ्रमराः वनवासिनः पक्षिणः नीरावाः सम्बभूवुः।

इस तरह भ्रष्टश्री होकर वाग्वादिनी देवी सरस्वती पृथ्वी पर चली गयी। हे महाबल बलराम! सरस्वती के स्थावर हो जाने पर समस्त लोक शब्दरहित हो गये। मेरा अपना वृन्दावन भी मूक हो गया। कोकिलों की कुहू-कुहू समाप्त हो गयी। वे भ्रमर तथा सभी वनवासी पक्षी भी शब्दरहित हो गये।।११७-११८।।

ततोऽहं विस्मयाविष्टो नखाग्रात् कर्त्रिकां शुभाम्॥११९॥
सृष्ट्वा तया रत्नमय्या वंशकान्तां चकर्त ताम्।
तन्मध्यपर्वद्वितये हस्तद्वयमिते शुभे॥१२०॥

ततः विस्मयाविष्टः अहम् नखाग्रात् शुभाम् कर्त्रिकाम् सृष्ट्वा तया रत्नमय्या शुभे तन्मध्यपर्वद्वितये हस्तद्वयमिते वंशकान्ताम् ताम् चकर्त।

इसके बाद आश्चर्ययुक्त होकर मैंने अपने नखाग्र से शुभ छुरी बनाकर रत्नमयी उसके द्वारा वंशकान्ता के दो हाथ की लम्बाई वाले सुन्दर पर्वों को काट दिया॥११९-१२०॥

अन्तश्छिद्रा सरन्ध्रा च मुरली चारुनादिनी।
द्वादशाङ्गुलमानस्तु वेणुः सर्वजनप्रियः॥१२१॥
सप्तदशाङ्गुलिमिता वंशी सम्मोहिनी परा।
अर्धाङ्गुलान्तरोन्मानतारादिविवराष्टका ॥१२२॥

अन्तःछिद्रा सरन्ध्रा चारुनादिनी मुरली द्वादशाङ्गुलिमानः च सर्वजनप्रियः वेणुः परा सम्मोहिनी सप्तदशाङ्गुलिमिता वंशी। अर्धाङ्गुलान्तर-उन्मान-तारादि-विवराष्टका।

तब अन्तःछिद्र वाली, रन्ध्रयुक्त, सुन्दर शब्द वाली मुरली प्रकट हुई। बारह अंगुल प्रमाण की वेणु प्रकट हुई, जो सर्वजनप्रिय थी। सत्रह अंगुल लम्बी परा सम्मोहिनी वंशी प्रकट हुई, इसमें अर्ध अंगुल पर दिव्य नाद प्रकट करने वाले तारादि आठ विवर (छिद्र) थे॥१२१-१२२॥

आनन्दिनी महानन्दा जगदाकर्षिणी परा।
महाप्रलयकालादौ यद्वृत्तं कर्म मत्कृतम्॥१२३॥
तत्सर्वं चैव जानाति सर्ववेदस्वरूपिणी।
कृतमेतत् त्रयं यत्नात् परमानन्दहेतुकम्॥१२४॥

आनन्दिनी, महानन्दा, परा जगदाकर्षिणी सर्ववेदस्वरूपिणी महाप्रलय-कालादौ यद् वृत्तम् यद् मत्कृतम् कर्म तत्सर्वम् एव जानाति। परमानन्दहेतुकम् एतत् त्रयम यत्नात् कृतम्।

महानन्दा वंशी परास्वरूपी तथा जगत् को आकर्षण करने में समर्थ है। महाप्रलयकाल में मेरे द्वारा किए हुए सभी कर्मों को और घटनाओं को सर्वज्ञान-स्वरूपिणी यह अच्छी तरह जानती है। मैंने परम आनन्द की हेतु-भूत इन तीनों (मुरली, वेणु और वंशी) को प्रयत्नपूर्वक बनाया॥१२३-१२४॥

अथोऽशतस्ततस्तस्या धनुः सप्त विनिर्मितम्।
निकुञ्जे स्थापितं सर्वं देवतानां हितेच्छया॥१२५॥

ऊर्ध्वांशतश्च तस्या वै त्रिदण्डध्वज एव च।
एतस्मिन्नेव काले सा वाग्देवी ब्रह्मरूपिणी।
तुष्टाव मधुराभिश्च वाग्भिर्मामीश्वरेश्वरम्॥१२६॥

ततः तस्याः अधः अंशतः सप्त धनुः विनिर्मितम्। सर्वदेवानाम् हितेच्छया निकुञ्जे स्थापितम्। तस्याः च ऊर्ध्वांशतः वै त्रिदण्डध्वजः एव। एतस्मिन् एव काले सा ब्रह्मरूपिणी वाग्देवी मधुराभिः वाग्भिः ईश्वरेश्वरम् माम् तुष्टाव।

इसके बाद उसके अधो अंश से सात धनुष बनाए गए और वे सभी देवों के हित की इच्छा से निकुञ्ज में स्थापित कर दिये गये। उसके ऊर्ध्वांश से तीन दण्ड उत्पन्न हुए। इसी समय ब्रह्मरूपिणी वाग्देवी ने मधुर वाणी से सभी ईश्वरों के ईश्वर मेरी स्तुति की॥१२५-१२६॥

सरस्वती उवाच—

ॐ नमस्ते नमस्ते स कोऽपि ते पारगो नहि।
कारुण्यामृतसिन्धो त्वमपराधं क्षमस्व मे॥१२७॥

ओ३म् नमः ते नमः ते। सः कः अपि ते पारगः नहि। कारुण्यामृतसिन्धो त्वम् मे अपराधम् क्षमस्व।

सरस्वती ने कहा—ओ३म् आपको प्रणाम है, आपको प्रणाम है। वह कोई भी नहीं है, जो आपके पार जा सके। हे करुणामृत के सागर! आप मेरे अपराध को क्षमा करें॥१२७॥

नमो नमस्ते पुरुष प्रधान प्रधानपुंसोरपि दुर्विभाव्य।
सनातनं ब्रह्म तवाङ्गतेजस्तेजस्विने सर्वमहेश्वराय॥१२८॥
यस्यांशभूता विधिविष्णुरुद्राः कुर्वन्ति सृष्टिस्थितनाशकर्म।
स एव यस्यांशकलाविशेषस्तमव्ययं त्वां शरणं प्रपद्ये॥१२९॥

प्रधान! पुरुष! प्रधानपुंसोरपि दुर्विभाव्य! ते नमः। सनातनम् तेजस्विने ब्रह्म तव अङ्गतेजः! सर्वमहेश्वराय ते नमः नमः। यस्य अंशभूताः विधिविष्णुरुद्राः सृष्टिस्थितिनाशकर्म कुर्वन्ति एवम् यस्य अंशकलाविशेषः तम् अव्ययम् त्वाम् शरणम् प्रपद्ये।

हे प्रधान पुरुष! हे प्रकृति और पुरुष दोनों के लिये अबोध्य! आपको बार-बार नमस्कार है। सनातन ब्रह्म आपके अङ्ग का तेज है। हे तेजस्वी! हे सर्वमहेश्वर! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। जिसके अंशभूत ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जगत् की सृष्टि, पालन और नाश करते रहते हैं, यह सब जिसकी कलाविशेष हैं, मैं उस अव्यय आपकी शरण ग्रहण करती हूँ॥१२८-१२९॥

त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव त्वमेव तेजः पवनस्त्वमेव।
नभस्त्वमेवासि रथाङ्गपाणे विना भवन्तं न च किञ्चिदस्ति॥१३०॥

रथाङ्गपाणे त्वम् एव भूमिः। सलिलम् त्वम् एव, त्वम् एव तेजः, पवनः त्वम् एव, नभः त्वम् एव असि। भवन्तम् विना किञ्चिद् न अस्ति।

तुम ही भूमि हो, तुम ही जल हो, तुम ही तेज और तुम्हीं वायु हो। हे चक्र को हाथ में धारण करने वाले! तुम ही आकाश हो। आपके बिना कुछ भी नहीं है।।१३०।।

त्वमर्यमा त्वं क्षणदाधिनाथ-
स्त्वमेव सौम्यस्त्वमसीह जीवः।
त्वमेव शुक्रो मिहिरात्मजस्त्वं
राहुस्त्वमेवासि च केतवस्त्वम् (?त्वमेव केतुः)॥१३१॥

त्वम् अर्यमा, त्वं क्षणदाधिनाथः, त्वम् एव सौम्यः, त्वम् एव जीवः, त्वम् एव शुक्रः, मिहिर-आत्मजः त्वम्, त्वम् एव राहुः, त्वम् एव केतुः।

तुम ही अर्यमा अर्थात् सूर्य हो। तुम ही रात्रिनाथ अर्थात् चन्द्रमा हो। तुम ही बुध हो। तुम ही देवगुरु बृहस्पति हो। तुम ही शुक्र हो। तुम ही सूर्य-पुत्र शनि हो, तुम्हीं राहु और तुम्हीं केतु हो।।।१३१।।

वारास्त्वं तिथयो लग्नं राशयो मासवत्सराः।
पक्षौ मूहुर्ताः करणाः कालस्त्वं कालधर्मवान्॥१३२॥

त्वम् वाराः, राशयः लग्नम् मासवत्सराः पक्षौ मुहूर्ताः करणाः त्वम् एव। कालः त्वम् कालधर्मवान्।

तुम ही राशि, तिथि, वार, लग्न, मास तथा वर्ष, दोनों पक्ष, मुहूर्त और करण हो। तुम ही कालधर्म को धारण करने वाले काल हो।।१३२।।

त्वमेव सर्वं सकलाधिनाथ विनैव ते किञ्चन वस्तु नास्ति।
परं हि दीनान् दयसे दयालो दयामपि श्याम कथं जहासि॥१३३॥

हे सकलाधिनाथ त्वम् एव सर्वम्। ते विना किञ्चन वस्तु एव नास्ति। दयालो! परम् दीनान् हि दयसे। श्याम कथम् दयाम् अपि जहासि।

हे! सब के स्वामी सब-कुछ आप ही हैं। आपके बिना कोई वस्तु नहीं है। हे दयालो! आप दीनों पर दया करते हैं। हे श्याम! दया को क्यों छोड़ते हैं।।१३३।।

मायाभ्रमी(?मि)भ्रमितमानसनक्रचक्रं
संसारसागरमनङ्गतरङ्गदुःस्थम् ।

प्राञ्चः परञ्च(?राश्च) इह मध्यगताश्च लोका
ज्ञात्वा तरन्ति भवतश्चरणारविन्दम्॥१३४॥

मायाभ्रमिभ्रमितमानसनक्रचक्रम् अनङ्गतरङ्गदुःस्थम् इह संसारसागरम् प्राञ्चः पराश्च लोकाः भवतः चरणारविन्दम् ज्ञात्वा तरन्ति।

मायारूपी भँवर में भ्रमित मानसरूप नक्रसमूह वाले, काम की अनेकों तरंगों से कठिन, संसारसागर को पूर्व-पश्चिम एवं मध्यगत लोग आपके चरणारविन्द का ध्यान करके पार कर जाते हैं॥१३४॥

त्वमेव शक्तिः परमा त्वमेव
सदाशिवः सर्वशिवप्रदो नः।
विष्णुर्महांस्त्वं विधिविष्णुशम्भव-
स्त्वमेव देवो त्वदृते न किञ्चित्॥१३५॥

इन्द्रस्त्वमेव ज्वलनस्त्वमेव
त्वमेव कालोऽस्ति(लो निऋचि) निर्ऋतिस्त्वम् (?मेव)।
त्वमेव पाशी पवनस्त्वमेव
नृवाहनस्त्वं गिरिशस्त्वमेव॥१३६॥
ब्रह्मा त्वमेवाहिवरस्त्वमेव
त्वत्तोऽन्यदास्ते न च किञ्च वस्तु।

त्वम् एव परमा शक्तिः, त्वम् एव नः सर्वशिवप्रदः सदाशिवः। त्वम् एव महाविष्णुः, विधिविष्णुशम्भवः देवः त्वम् एव, त्वद् ऋते न किञ्चित्। इन्द्रः त्वम् एव। ज्वलनः त्वम् एव। त्वम् एव कालः निर्ऋतिः च त्वम्। त्वमेव पाशी पवनः त्वम् एव, नृवाहनः त्वम्, त्वम् एव गिरिशः। त्वम् एव ब्रह्मा, त्वम् एव अहिवरः। त्वत्तः अन्यत् च किञ्च वस्तु न, (यत्) आस्ते।

हे मुकुन्द! आप ही परमा शक्ति हैं। आप ही हमें कल्याण देने वाले सदाशिव हैं। आप ही महाविष्णु हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तथा देव हैं। आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इन्द्र, अग्नि, काल, निर्ऋति, पवन एवं पाशी (वरुण) आप ही हैं। आप ही नृवाहन (कुबेर) और गिरीश भी हैं। आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही शेषनाग हैं। आपसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है॥१३५-१३६॥

श्रीकृष्ण वामन हरे मधुकैटभारे
पद्मापते कमलनेत्र मुकुन्द विष्णो॥१३७॥
दीनेश भूमिधर भूमगुणौघसिन्धो
मां पाहि ईश करुणावरुणालयस्त्वम्।

सारङ्गपाणेऽच्युतदीनबन्धो
समस्तलोकेश्वरवृन्दवन्द्य ॥१३८॥
ममास्थिरायाः स्थिररूप देव
क्षमस्व सर्वं परितोऽपराधम्।

श्रीकृष्ण! वामन! हरे! मधुकैटभारे! पद्मापते! कमलनेत्र! मुकुन्द! विष्णो! दीनेशः! भूमिधर! भूमगुणौघसिन्धो! ईश! त्वम् करुणावरुणालयः (असि) माम् पाहि। अस्थिरायाः मम स्थिररूपदेव! परितः सर्वम् अपराधम् क्षमस्व।

हे श्रीकृष्ण! हे वामन! हे हरे! हे मधु और कैटभ के शत्रु! कमला के पति! कमलेक्षण! हे मुकुन्द! हे विष्णु! सम्पूर्ण लोकों के स्वामीसमूह के द्वारा वन्दनीय! चक्रपाणि! अच्युत दीनबन्धो! दीनेश भूमिधरभूमगुणसमूह अर्थात् बड़े-बड़े गुणों का सागर ईश! आप करुणावरुणालय हैं। आप मेरी रक्षा करें। मुझ चंचला के हे स्थिर रूप वाले देव श्रीकृष्ण! सभी अपराधों को सब ओर से क्षमा कर दें।।१३७-१३८।।

ये देवलोका धृतदीर्घशोकाः संसारसंतापितसर्वदेहाः॥१३९॥
समाश्रयन्ते तव पादपद्मं ते (?निर्वृतिं) कृष्ण परां लभन्ते।
किं वर्णयामो भवतो महित्वं योगेश्वरस्यापि सदीश्वरस्य॥१४०॥

हे कृष्ण! ये धृतदीर्घशोकाः संसारसंतापितसर्वदेहाः देवलोकाः तव पादपद्मम् समाश्रयन्ते ते पराम् शान्तिम् लभन्ते। योगेश्वरस्य अपि सदीश्वरस्य भवतः महित्वम् किम् वर्णयामः।

हे कृष्ण! दीर्घ शोक को धारण करने वाले, संसार के दुःखों से तप्त शरीर वाले जो देवलोक आपके चरणकमलों का आश्रय लेते हैं, वे पर निर्वृति अर्थात परम शान्ति को प्राप्त करते हैं। हे योगेश्वर! हे सदीश्वर! आपकी महिमा का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ।।१३९-१४०।।

अपाङ्गभङ्ग्या हि करोषि सृष्टिं स्थितिं लयं विश्वसृगच्युतेशः।
तवैव पादाम्बुजधूलिहारिणीं नाकस्त्रवन्तीं दुरितौघहारिणीम्॥१४१॥
योगेश्वरो भक्तिविनम्रमूर्त्या धृत्वा विषादी च सदाशिवोऽभूत्।
तवाश्रिता ये पदपङ्कजं प्रभो समाश्रयास्ते जगतां भवन्ति॥१४२॥

हे विश्वसृग्! अच्युत! ईश! अपाङ्गभङ्ग्या हि सृष्टिम् स्थितिम् लयम् च करोषि। तव एव पादाम्बुजधूलिहारिणीम् दुरितौघहारिणीम् नाकस्त्रवन्तीम् धृत्वा भक्तिविनम्रमूर्त्या विषादी योगेश्वरः सदाशिवः अभूत्। प्रभो! ये तव पदपंकजम् आश्रिताः ते जगताम् समाश्रयाः भवन्ति।

हे विश्व का निर्माण करने वाले अच्युत! ईश! आप अपनी अपाङ्ग की भङ्गी से ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और लय करते रहते हैं। आपके चरणकमल की धूलि को धोने वाली, स्वर्ग से निकलने वाली, पापसमूह की नाशक गंगा की धारा को अपने शिर पर धारण करके भक्ति से विनम्र मूर्ति वाले, विष का पान करने वाले योगेश्वर शिव सदाशिव हो गये। हे प्रभो! जो भी आपके पदपंकजों का आश्रय लेता है, वह समस्त जगत् का आश्रयदाता बन जाता है।।१४१-१४२।।

कुरु प्रसादं मम चञ्चलायाः क्षमस्व कृष्णाऽगणितापराधम्।
त्वमेव विष्णुः स्थितये जनानां तथा विधाताप्यसि सृष्टिहेतुः।।१४३।।
विनाशहेतुर्जगतां कपाली तस्मै नमोऽनन्तगुणाय कस्मै।
श्यामस्त्वमेको बहवस्त्वदङ्गाः पीतारुणश्वेतविचित्ररूपाः।।१४४।।

हे श्रीकृष्ण! प्रसादम् कुरु, मम चञ्चलायाः अगणितापराधम् क्षमस्व। प्रजानाम् स्थितये त्वम् एव विष्णुः तथा सृष्टिहेतुः विधाता अपि असि। जगताम् विनाशहेतुः कपाली त्वम् एव। अनन्तगुणाय तस्मै कस्मै नमः। श्यामः त्वम् एकः त्वद्-अङ्गाः बहवः पीतारुणश्वेतविचित्ररूपाः।

हे कृष्ण! प्रसन्न हो जाइये। मुझ चंचला के अगणित अपराधों को क्षमा कीजिए। प्रजाओं के पालन के समय आप विष्णुरूप हैं। प्रजाओं की उत्पत्ति के समय आप ही ब्रह्मारूप हैं तथा प्रजाओं के विनाश के समय आप ही कपाली शिव का रूप ग्रहण करते हैं। ऐसे अनन्त गुणों वाले उस किसी देव को मैं प्रणाम करती हूँ। हे श्याम! तुम एक ही हो किन्तु आपके अङ्गभूत देवता पीत अरुण तथा श्वेत आदि विचित्र-विचित्र अनेक रूप वाले हैं।।१४३-१४४।।

भूता भविष्या भगवन्भवन्तो
भवन्तमाद्यं समुपाश्रयन्ते।
नादिर्न मध्यो (?ध्यं) न च तेऽवसानो (?नं)
न वाऽगुणी त्वं सगुणो न चासि।।१४५।।
न वेदवित्त्वामपि वेदकोऽन्यो
का वाऽस्मि देव क्षमया क्षमस्व।
त्वमेव सम्मोहमहौषधिर्नृणां
त्वत्तो भवेत् शश्वदहो महोदयः।।१४६।।

भगवन्! भूताः भविष्याः भवन्तः च जनाः भवन्तम् आद्यम् समुपाश्रयन्ते। ते न आदिः न च मध्यम्। न च अवसानम्, त्वम् अगुणी सगुणः च असि।

वेदविद् अपि त्वाम् न वेदकः अन्यः का वा अस्मि। देव क्षमया क्षमस्व। त्वमेव नृणाम् सम्मोहमहौषधिः (असि)। अहो त्वत्तः एव शश्वत् महोदयः भवति।

हे भगवन्! भूतकालिक, भविष्यकालिक एवं वर्तमानकालिक जन आद्य आपकी ही उपासना करते हैं। न आपका आदि है, न मध्य है और न अन्त। आप न अगुणी और न सगुण रूप वाले हैं। वेद को जानने वाले भी आपको नहीं जानते, अन्य मुझ जैसे कैसे जान सकते हैं। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। आप मनुष्यों को सम्मोहन करने वाली महा-औषधि हैं। अरे! आपसे ही लोगों का निरन्तर महोदय होता रहता है।।१४५-१४६।।

तवैव पादाम्बुजमाश्रितास्मि प्रभो प्रसीद क्षमया क्षमस्व।
त्वमेव शीतांशुसहस्रतुल्यो हिमोपमश्चन्दनराशिशीतलः।।१४७।।
साधारधाराधरदेह देव प्रसीद शान्तिं कुरु तापितायाः।
न ते गुणोक्तौ चतुरश्चतुर्मुखो न पञ्चवक्त्रोऽपि च सञ्चचार।।१४८।।

प्रभो! प्रसीद। तव एव पादाम्बुजम् आश्रिता अस्मि। त्वम् एव शीतांशु-सहस्रतुल्यः, हिमोपमः, चन्दनराशिशीतलः असि। क्षमया क्षमस्व। साधारधा-राधरदेह देव! तापितायाः शान्तिम् कुरु। प्रसीद ते गुण-उक्तौ चतुर्मुखः न चतुरः तथा पञ्चवक्त्रोऽपि न संचचार।

हे प्रभो! प्रसन्न हो जाइये। मैं तुम्हारे ही चरणकमलों के आश्रित हूँ। तुम हजारों शीतांशुओं (चन्द्रमाओं) के समान हो। आप हिम के समान हो। चन्दनराशि के समान शीतल हो। हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधार देह वाले देव! मुझ सन्तापित का ताप शान्त कर दो और प्रसन्न हो जाओ। आपके गुणकथन में चार मुख वाले ब्रह्मा और पाँच मुख वाले भगवान् शिव भी समर्थ नहीं हैं।।१४७-१४८।।

षडाननो यत्र जडाननोऽभूत् सहस्रशीर्षास्तमजस्रमातनोत्।
तत्रैकवक्त्रा वत केह वामा वकी वराकीव विशीर्णशीला।।१४९।।

षडानन यत्र जडाननः अभूत्। सहस्रशीर्षाः तम् अजस्रम् आतनोत्, तत्र एकवक्त्रा वामा का। वराकी वकी इव विशीर्णशीला का।

छः मुख वाले षडानन जिसका वर्णन करने में जडानन अर्थात् मौन हो जाते हैं। सहस्र शिर वाले शेषनाग भी निरन्तर गायन करते हुए भी इस विषय में अपने को असमर्थ पाते हैं, उसका वर्णन करने में विशीर्ण शीला एक मुख वाली मैं स्त्री बेचारी बगुली की भाँति होकर कैसे समर्थ हो सकती हूँ।।१४९।।

त्वन्मायया भ्राम्यति विश्वमेतद्
विश्वं(? श्व-) प्रभो देव मयि प्रसीद।
न ते विदुर्वेदविदः पुराणाः
पुराणमाद्यं पुरुषं पुराणम्।
अपाङ्गभङ्गेन विधेहि देव
प्रभोः(?भो) प्रसीद क्षमया क्षमस्व॥१५०॥
श्यामसुन्दर मामिच्छ न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे।
कृतं मया तपो घोरं प्राप्तुं त्वां दुरवग्रहम्॥१५१॥

हे विश्वप्रभो! एतद् विश्वम् त्वत् मायया भ्राम्यति। हे देव! मयि प्रसीद। वेदविदः पुराणाः ते आद्यम् विश्वम् पुराणम् पुराणम् पुरुषम् (स्वरूपं) न विदुः। देव अपाङ्गभङ्गेन माम् विधेहि। प्रभो! क्षमया क्षमस्व, प्रसीद। श्यामसुन्दर! त्वाम् इह त्यक्तुम् न उत्सहे। त्वाम् प्राप्तुम् मया दुरवग्रहम् घोरम् तपः कृतम्।

हे देव! यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हारी माया से भ्रमित होता रहता है। हे विश्व के स्वामी! मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। वेदों को जानने वाले वे पुराण भी तुम आद्य पुराणपुरुष को नहीं जान पाते। हे देव! मुझे अपनी अपाङ्गभङ्गिमा से कृतार्थ कर दो। अपनी क्षमाशक्ति से मुझे क्षमा कर दो और प्रसन्न हो जाओ। हे श्यामसुन्दर! आप मेरी कामना करें। इस लोक में मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती। तुम्हें प्राप्त करने के लिए मैंने घोर तप किया है॥१५०-१५१॥

यत्र तत्रैव जन्मास्तु प्रसादान्निग्रहात् तव।
मद्वाञ्छितो भवत्सङ्गो मामनुगृह्णातु सर्वदा॥१५२॥

तव प्रसादात् निग्रहात् वा यत्र तत्र एव जन्म अस्तु। मद् वाञ्छितः सर्वदा भवत् सङ्गः माम् अनुगृह्णातु।

हे प्रभो! आपकी कृपा से अथवा आपके अभिशाप से जहाँ-कहीं भी मेरा जन्म हो। मेरी तो यही इच्छा है कि आप सर्वदा अपने साहचर्य से मुझे कृतार्थ करते रहें॥१५२॥

बलराम उवाच—

ततः किमकरोद्देवी किं वा त्वमकरोः प्रभो।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् श्रोतुं कौतूहलं परम्॥१५३॥

प्रभो! ततः देवी किम् अकरोत् त्वम् वा किम् अकरोः। भगवन् तत् मम आचक्ष्व तत् श्रोतुम् परम् कौतूहलम् अस्ति।

बलराम ने कहा—हे प्रभो! इसके बाद उस देवी सरस्वती ने क्या

किया? तथा आपने क्या किया ? भगवन्! यह जानने को मेरे हृदय में परम कौतूहल है। कृपा कर मुझे बताइये।।१५३।।

श्रीकृष्ण उवाच—

बलराम महाभाग भूयो देवी सरस्वती।
मामेव परितुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरञ्जसा।।१५४।।
प्रणयाविष्टहृदया हृदयानन्दकारिणी।
अजस्रस्रवदस्राक्षी स्वेदवारिप्रपूरिता।।१५५।।

महाभाग बलराम! भूयः अजस्रस्रवद् अस्राक्षी स्वेदवारिप्रपूरिता प्रणयाविष्टहृदया हृदयानन्दकारिणी देवी सरस्वती इष्टाभि वाग्भिः अञ्जसा माम् एव परितुष्टाव।

श्रीकृष्ण ने कहा—महाभाग बलराम! निरन्तर आँसुओं से भीगे नेत्रों वाली, स्वेद वारि से पूरित, प्रेम से आविष्ट हृदय वाली, हृदय को आनन्द देने वाली देवी सरस्वती पुनः प्रिय वाणी से अमृत वर्षाती हुई मेरी ही प्रार्थना करने लगी।।१५४-१५५।।

सरस्वती उवाच—

जय जय कारणकारण विष्णो
जय जयिनां जयि निरवधि विष्णो।
जय धरणीधर धरणिपते
जय सुजनव्रजवृजिनहते जय।।१५६।।

कारणकारण! विष्णो! जय जय। निरवधि जयिनाम् जयि विष्णो! जय जय। धरणीधर! धरणिपते! सुजनव्रजवृजिनहते! जय जय।

सरस्वती ने कहा—हे कारण के भी कारण विष्णु! विजय के जयी निरवधि विष्णु! आपकी जय हो, जय हो। हे पृथ्वी को धारण करने वाले पृथ्वीपति! सुजनों के समूह की विपत्तियों का नाश करने वाले! आपकी जय हो, जय हो।।१५६।।

जय देवाधिपमौलिविलासी(?सिन्)-
जय चेतो हररूपविकासी(?सिन्)।
जय रससागर करुणासिन्धो
जय नवनागर निरुपधिबन्धो।।१५७।।

देवाधिपमौलिविलासिन्! चेतोहररूपविकासिन्। जय जय। रससागर करुणासिन्धो! नवसागर! निरुपधिबन्धो! जय जय।

हे देवराज इन्द्र के मुकुट पर विराजित! आपकी जय हो। हे चित्त को हरण करने वाले रूप को धारण करने वाले! आपकी जय हो। हे रससागर! हे करुणासिन्धो आपकी जय हो। हे नये चतुर! हे निष्कारणबन्धो! आपकी जय हो॥१५७॥

जय जगदुद्भवयोनिरनादे जय वेदात्मकवेदविदादे।
जय विषमाशुग समसुषमान्त जय शामितशमनभयसुशान्त॥१५८॥
जय कल्पान्तसुकल्पिततल्प जय नतकल्पमहीरुगनल्प।
जय कमलोदरसोदरदृष्टे जय परिपालितबहुतरसृष्टे॥१५९॥

जगद्-उद्भवयोनिः अनादे! वेदात्मकवेदविद्! आदे! जय जय। विषमाशुग! समसुषमान्त! जय जय। शामितशमनभय! सुशान्त! जय जय! कल्पान्तसुकल्पित! तल्प! अनल्प! नतकल्प! महीरुग्! अनल्प जय जय। कमलोदरसोदरदृष्टे! परिपालितबहुतर! सृष्टे! जय जय।

जगद् की उत्पत्ति के जनक! अनादि! ज्ञानमय वेदों के वेत्ता! प्रथम पुरुष! आपकी जय हो, जय हो। विषम बाण अर्थात् कामदेव के समान सुषमा की सीमा! सभी भयों का शमन कर उन्हें शान्त करने वाले हे सुशान्त! आपकी जय हो, जय हो। हे कल्पान्त में सुन्दर आसन-रचना वाले! हे कल्पवृक्ष को नत करने वाले! अनल्प! आपकी जय हो, जय हो। हे कमल के समान नेत्र वाले! सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करने वाले श्रीकृष्ण! आपकी जय हो, जय हो॥१५८-१५९॥

जय गणनायकनाथ हरे जय
(?जय)भवसागरतरणतरे जय।
जय वृन्दावनविपिनविहारी(?रिन्)
जय दानवगणमुण्डनका(?रिन्)॥१६०॥
जय यमिनां हृदयाम्बुजगामी(?मिन्)
जय वामाकुलकेलिसुकामी(?मिन्)।
जय पीतांशुकवेष्टितमूर्ते
जय मुनिमोहमनोरथपूर्ते॥१६१॥
जय रिपुवारिधिशोषाऽगस्ते
जय भुवने परिगीतसमस्ते।
जय युवजनगणमानसचोर
जय लीलामयनित्यकिशोर॥१६२॥

गणनायकनाथ हरे! जय जय। भवसागरतरणतरे! जय जय। वृन्दावन-विपिनविहारिन्! जय जय। दानवगणमुण्डनकारिन्! जय जय। यमिनाम् हृदया-म्बुजगामिन्! वामाकुलकेलिसुकामिन्! जय जय। पीतांशुकवेष्टितमूर्ते! मुनिमोह-मनोरथपूर्ते! जय जय। रिपुवारिधिशोषाऽगस्ते भुवने परिगीतसमस्ते! जय-जय। युवजनगणमानसचोर! लीलामयनित्यकिशोर! जय जय।

हे गणनायकनाथ! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो। हे संसारसागर को पार करने में नौकारूप! आपकी जय हो। हे वृन्दावन विपिन में नित्य रमण करने वाले श्रीकृष्ण! आपकी जय हो, जय हो। हे राक्षससमूह को मारने वाले! आपकी जय हो। हे यम-नियमों का पालन करने वालों के हृदय कमल पर विराजने वाले! सुन्दरियों के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा वाले! आपकी जय हो, जय हो। जय हो। हे शत्रुरूपी समुद्र को सुखाने में अगस्त ऋषि के समान! समस्त भुवनों में परिगीत! युवाओं के मन को चुराने वाले! नित्य लीलामय नित्य किशोर! आपकी जय हो, जय हो॥१६०-१६२॥

जय कनकाङ्गदसङ्गतबाहो जय कमलास्यकलानिधिबाहो।
जय जगतीतलवलयनिदान जय नानासुखकलितनिधान॥१६३॥
जय कलिकल्मषराशिविमोक्ष जय वरपापिगणार्पितमोक्ष।
जय नरकिन्नरदनुजनिबन्ध जय सुरनागगणैरभिनन्द्य॥१६४॥

हे कनकाङ्गदसंगतबाहो! कमलास्यकलानिधिबाहो! जय जय। हे जगती-तल-वलयनिदान! नानासुखकलितनिधान! जय जय। कलिकल्मषराशिविमोक्ष! जय, वरपापिगण-अर्पितमोक्ष! जय, नरकिन्नरदनुजनिबन्ध! जय, सुरनागगणैः अभिनन्द्य! जय।

हे स्वर्ण अङ्गद को भुजा में धारण करने वाले! हे कमलानन! चन्द्रमा के समान भुजदण्ड वाले! आपकी जय हो, जय हो। हे पृथ्वीतल के एकमात्र निदान! आप अनेकों सुखों के निधान है, आपकी जय हो, आपकी जय हो। कलि की निकृष्ट पापराशि को शान्त करने में समर्थ, आपकी जय हो। बड़े पापियों के समूह को भी मोक्ष देने में समर्थ, आपकी जय हो। मनुष्य, किन्नर एवं दनुजों को बन्धन में रखने वाले! आपकी जय हो। हे सुर नागगणों के अभिनन्दनीय! आपकी जय हो॥१६३-१६४॥

जय सेवितपदविपदपनोद जय नित्यं रसकेलिसमोद।
जय जय हरिहर परिहर रोषं जय करुणां कुरु मे जहि दोषम्॥१६५॥
नमस्ते समस्तेश्वरस्येश्वराय नमस्ते नमस्ते महिम्नां वराय।
प्रसीदावसीदामि गाढं चिराय प्रभो नीलजीमूतयूथाधिपाय॥१६६॥

हे सेवितपदविपद्-अपनोद! नित्यम् रसकेलिसमोद! जय जय। हरिहर जय जय। रोषम् परिहर। करुणाम् कुरु। मे दोषम् जहि। समस्तेश्वरस्य-ईश्वराय महिम्नाम् वराय नमस्ते नमस्ते। प्रभो! नीलजीमूतयूथाधिपाय नमस्ते चिराय गाढम् अवसीदामि प्रसीद।

जो भक्त आपके श्रीचरणों की सेवा करते हैं, उनकी विपत्तियों को मिटाने वाले! नित्य रास-क्रीडा में आनन्द लेने वाले! आपकी जय हो, जय हो। समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर आप महिमाशाली प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ आपको प्रणाम है। हे प्रभो! आप नील मेघों के यूथ के स्वामी हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। मैं बहुत काल से अत्यधिक कष्ट का अनुभव कर रही हूँ, कृपा कर आप प्रसन्न हो जाइए॥१६५-१६६॥

प्रभो त्वत्प्रसादान्न किञ्चापलभ्यं
य एवाश्रयन्ते पदं ते विलभ्यम्।
नमस्ते कदम्बस्त्रजा शोभिताय
नमस्ते सुवर्णांशुकेनावृताय॥१६७॥

प्रभो! त्वत्-प्रसादात् न किञ्च अपलभ्यम् ये एव ते पदम् एव आश्रयन्ते ते विलभ्यम्। कदम्बस्त्रजा शोभिताय सुवर्णांशुकेनावृताय ते नमः।

हे प्रभो! आपकी कृपा से कुछ भी अलभ्य नहीं है। जो आपके चरणों का आश्रय प्राप्त करते हैं, वे आपकी कृपा के पात्र बन जाते हैं। कदम्ब की माला से सुशोभित आपको नमस्कार है। स्वर्णिम पीताम्बर को धारण करने वाले! आपको प्रणाम, आपको प्रणाम है॥१६७॥

नमस्ते किरीटे मयूरच्छदाय
नमस्ते कपोले सपुष्पच्छदाय।
नमस्तेऽस्तु कर्णे(?श्रोत्रे)
मणि(?लसत्)कुण्डलाय
नमस्ते मुखाम्भोजनुर्मण्डलाय॥१६८॥
नमस्ते कपोलोल्लसच्चन्द्रकाय
नमस्तेऽरुणाम्भोजपत्रेक्षणाय।
नमस्तेऽरुणौष्ठाय बिम्बाधराय
नमस्ते लसत्स्मेरदिव्यस्मराय॥१६९॥

किरीटे मयूरच्छदाय ते नमः। कपोले सुपुष्पच्छदाय ते नमः। कर्णे मणिकुण्डलाय ते नमः अस्तु। मुखाम्भोजनुःमण्डलाय ते नमः। कपोलोल्लसत् चन्द्रकाय अरुणाम्भोजपत्रेक्षणाय ते नमः। अरुणौष्ठाय बिम्बाधराय ते नमः। स्मेरलसत् दिव्यस्मराय ते नमः।

मुकुट में मयूरपक्ष धारण करने वाले आपको प्रणाम है। कपोलों पर पुष्पों का गुच्छ धारण करने वाले आपको प्रणाम है। कानों में मणिकुण्डल से सुशोभित आपको प्रणाम है। कमल के समान मण्डित चन्द्रक अर्थात् चन्द्रमा के समान वृत्त धारण करने वाले आपको नमस्कार है। लाल कमल के दल के समान नेत्रवाले आपको प्रणाम है, प्रणाम है। लाल बिम्ब के समान अधरोष्ठ वाले, सदा स्मितवदन दिव्य कामदेव आपको प्रणाम है, प्रणाम है॥१६८-१६९॥

नमस्ते त्रिरेखाढ्यकण्ठोच्छ्रिताय नमस्ते शिलापीठवक्षःस्थलाय।
नमस्तेऽस्तु मुक्ताफलालङ्कृताय नमस्ते भ्रमत्षट्पदैर्झंकृताय॥१७०॥
नमस्ते भुजादण्डसंमण्डिताय नमस्तेंऽसचञ्चद्वतंसाश्रिताय।
नमस्तेऽरुणाद्योतपाणिद्वयाय नमस्तेऽस्तु नाभीगभीरह्रदाय॥१७१॥

त्रिरेखाढ्यकण्ठोच्छ्रिताय ते नमः शिलापीठवक्षःस्थलाय ते नमः। मुक्ताफलालङ्कृताय ते नमः। भ्रमत्षटपदैः झंकृताय ते नमः अस्तु। भुजादण्डसंमण्डिताय ते नमः, अंसचञ्चद! अवतंसाश्रिताय ते नमः ते नमः। अरुणद्योतपाणिद्वयाय नाभीगभीरह्रदाय ते नमः ते नमः अस्तु।

तीन रेखाओं से पूर्ण, अतएव उच्छ्रित कण्ठ वाले आपको नमस्कार है। शिलापीठ की तरह चौड़े वक्षःस्थल वाले आपको प्रणाम है। मुक्ता फलों से अलंकृत तथा मंडराते हुए और शब्द करते हुए भ्रमरों से युक्त आपको हमारा प्रणाम है, प्रणाम है। भुजादण्डों से शोभित, कन्धों पर लटकते हुए अवतंशों से शोभित आपको प्रणाम है, प्रणाम है। दो अरुण कमलों के समान दो भुजाओं वाले तथा ह्रद (सर) के समान गम्भीर नाभि वाले आपको प्रणाम है, प्रणाम है॥१७०-१७१॥

नमस्तेऽरुणावासपादाम्बुजाय नमस्ते नखेन्दुद्युतिद्योतिताय।
नमस्ते मनोभूशतैर्वाञ्छिताय नमस्ते जगन्मोहसम्मोहनाय।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते प्रियाय प्रसीद प्रभो मे प्रसीद प्रसीद॥१७२॥

अरुणावासपादाम्बुजाय ते नमः। नखेन्दुद्युतिद्योतिताय ते नमः। मनोभूशतैः वाञ्छिताय ते नम ते नमः। जगन्मोहसम्मोहनाय ते नमः। प्रियाय ते नमः। नमस्ते नमस्ते। प्रभो! मे प्रसीद प्रसीद प्रसीद।

अरुणावास चरणकमल वाले आपको प्रणाम है। नखचन्द्र की द्युति से द्योतित आपको प्रणाम है। सैकड़ों कामदेवों द्वारा वाञ्छित आपको प्रणाम है। जगत् के सम्मोह को भी मोहित करने वाले प्रिय आपको बार-बार प्रणाम है, प्रणाम है। हे प्रभो! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये॥१७२॥

श्रीकृष्ण उवाच—

इतः परं स्थिरा कान्ते भव त्वं स्थिरमानसे।
तवैव वदनाम्भोजच्यवद्वागमृतार्णवे॥१७३॥
स्नानात् पानात् सुतृप्तोऽस्मि न त्वां त्यक्ष्यामि मा रुदः।
अद्यानवद्यचरिते करिष्यामि तवेप्सितम्॥१७४॥

कान्ते! स्थिरमानसे! इतः परम् त्वम् स्थिरा भव। तवैव वदनाम्भोजच्यवत् वागमृतार्णवे स्नानात् पानात् सुतृप्तः अस्मि। त्वाम् न त्यक्ष्यामि। मा अरुदः। अनवद्यचरिते! अद्य तव ईप्सितम् करिष्यामि।

हे कान्ते! स्थिरमानसे! अब तुम स्थिर हो जाओ। तुम्हारे वदनाम्भोज से बहने वाले वाग्-अमृत-सागर में स्नान करके तथा अमृतपान करके मैं तृप्त हो गया हूँ। मैं तुम्हें कभी नहीं त्यागूँगा। रोओ मत। हे पवित्र चरित्र वाली! आज मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा॥१७३-१७४॥

इदं स्तोत्रं पठिष्यन्ति ये नरा रचितं त्वया।
तेषामेवास्मि नियतं प्रेमभक्तिप्रदायकः॥१७५॥
बलरामेत्युक्तवति मयि सा न च किञ्चन।
प्रोवाच लज्जापाथोधिनिमग्ना कलितांशुका॥१७६॥

ये नराः त्वया रचितम् इदम् स्तोत्रम् पठिष्यन्ति तेषाम् एव अहम् नियतम् प्रेमभक्तिप्रदायकः अस्मि। बलराम! इति उक्तवति मयि लज्जापाथोधिनिमग्ना कलितांशुका सा न किञ्चन प्रोवाच।

जो लोग तुम्हारे द्वारा रचित इस स्तोत्र का पाठ करेंगे, उन्हें मैं निश्चित ही प्रेमा भक्ति प्रदान करूँगा। हे बलराम! मेरे ऐसा कहने पर लज्जा के सागर में निमग्न होकर घूंघट निकाल कर उस वाणी ने आगे कुछ नहीं कहा॥१७५-१७६॥

ततः सा परमप्रीत्या क्रोडे कृत्वा सुचुम्बिता।
वंशी तद(?द्दे)हसम्भूता परमानन्दचेतसा॥१७७॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुश्रोणि पुनर्मे रसनान्तरे।
यावद् ब्रह्माण्डब्रह्माण्डकर्तृनेव सृजाम्यहम्॥१७८॥
भूतानां सृष्टितः पूर्वं सम्भूय ब्रह्मणो मुखात्।
प्राप्य तस्यैव पत्नीत्वं शापान्मुक्ता भविष्यसि॥१७९॥

ततः परमप्रीत्या परमानन्दचेतसा तद्देहसम्भूता सा वंशी मया क्रोडे कृत्वा सुचुम्बिता। सुश्रोणि! उत्तिष्ठ यावत् ब्रह्माण्डब्रह्माण्डकर्तृन् एव सृजामि पुनः मे

रसनान्तरे वस। भूतानाम् सृष्टितः पूर्वम् ब्रह्मणो मुखात् सम्भूय तस्यैव पत्नीत्वम् प्राप्य शापात् मुक्ता भविष्यति।

इसके बाद परम प्रीति और परमानन्द से युक्तचित्त मैंने अपने से ही उत्पन्न होने वाली उस वंशी को गोद में उठाकर उसका चुम्बन किया और कहा कि हे सुश्रोणि! उठो-उठो, जब तक ब्रह्माण्डों एवं ब्रह्माण्डों के बनाने वालों का मैं सृजन करता हूँ तब तक तुम मेरे रसनान्तर में वास करो। पुनः सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी के मुख से उत्पन्न होकर उन्हीं की पत्नी बनकर तुम मेरे शाप से मुक्त हो जाओगी।।१७७-१७९।।

ततः सरस्वती तूर्णं सा जिह्वामूलमागता।
हसन्ती परिहासेन मामुवाच विशङ्किता।।१८०।।

ततः तूर्णम् जिह्वामूलम् आगता सा सरस्वती हसन्ती परिहासेन विशंकिता माम् उवाच।

इसके बाद शीघ्र ही मेरे जिह्वामूल में आकर हँसती हुई उस सरस्वती ने परिहास से आशंकित होकर मुझसे कहा।।१८०।।

सरस्वती उवाच—

भगवन् वक्तुकामाऽस्मि त्रासान्न त्वां वदाम्ययये।
यत्कृतं भवता तन्न क्लीबेन क्रियते न किम्।।१८१।।
किन्त्वेकस्यापराधस्य शाप एको ममोचितः।
शापद्वयं त्वया दत्तं त्वामहं शप्तुमुत्सहे।।१८२।।

अये भगवन्! त्वाम् वक्तुकामा अस्मि, त्रासात् न वदामि। यत् भवता कृतम् तत् किम् क्लीबेन न क्रियते। किन्तु मम एकस्य अपराधस्य एकः शापः उचितः। त्वया शापद्वयम् दत्तम्। अतः अहम् त्वाम् शप्तुम् उत्सहे।

हे भगवन्! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ; किन्तु आपके भय से नहीं कह पा रही हूँ। प्रभो! आपने इस समय जो किया, क्या वह किसी नपुंसक द्वारा नहीं किया जाने योग्य था। मेरे एक अपराध के लिए मुझे एक ही शाप उचित था; किन्तु आपने मुझे दो शाप दिये हैं। अतः मैं भी आपको शाप देना चाहती हूँ।।१८१-१८२।।

स्वदेहजां च मां यस्माद् विगर्हयसि केशव।
तस्मात् स्वाङ्गजया सार्धं रंस्यत्याग्रहिलो भवान्।।१८३।।
जगत्सर्वं त्वयि न्यस्तं न्यस्ताः प्रकृतयस्तथा।
पुरुषाश्च तथा कृष्ण त्वमेवैकः सनातनः।।१८४।।

यस्माद् केशव! भवान् स्वदेहजाम् माम् विगर्हयसि तस्मात् स्वाङ्गजया सार्द्धम् आग्रहिलः रंस्यति। कृष्ण! त्वयि सर्वम् जगत् न्यस्तम् तथा प्रकृतयः पुरुषाः च। त्वयि एव न्यस्ताः त्वम् एव एकः सनातनः।

हे केशव! क्योंकि आपने अपनी देह से उत्पन्न होने वाली मेरी भर्त्सना की है; इसलिये मैं आपको शाप देती हूँ कि आप भी अपनी अंगजा के साथ ही आग्रहयुक्त होकर रमण करेंगे। हे कृष्ण! यह सारा जगत् तुम्हारे में ही स्थित है। सभी प्रकृतियाँ और पुरुष सब आपके अन्दर ही स्थित हैं; क्योंकि आप ही एकमात्र सनातन हो।।१८३-१८४।।

त्वय्येव प्रलयं यन्ति उत्पतन्ति रमन्ति च।
त्वामेव विपिने दृष्ट्या रिरंसा रमया मया।।१८५।।
कृतेयं(?मं) सर्वदोषघ्न क्षमस्व दोषमीश्वर।
इत्युक्त्वा सा महादेवी विरराम सरस्वती।।१८६।।

(पुरुषः प्रकृतय चः) त्वयि एव प्रलयम् यन्ति रमन्ति उत्पतन्ति च। त्वाम् एवम् विपिने दृष्ट्वा रमया मया इयम् रिरंसा कृता। सर्वदोषघ्न! ईश्वर! दोषम् क्षमस्व—इति उक्त्वा सा महादेवी सरस्वती विरराम।

हे प्रभो! ये पुरुष और प्रकृतियाँ तुम्हारे ही अन्दर प्रलय को प्राप्त होती हैं, उत्पन्न होती हैं और रमण करती हैं। इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न आपको इस वृन्दाविपिन में देखकर मेरे मन में भी आपके साथ रमण करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो गयी। हे ईश्वर! आप सभी दोषों (पापों) को क्षमा करने वाले हैं। मेरे द्वारा किए हुए इस पाप को क्षमा करें। यह कहकर वह महादेवी सरस्वती चुप हो गयी।।१८५-१८६।।

अहं तु लज्जया किञ्चित् तामुवाच यशस्विनीम्।
अनेन विधिना सेव्या वंशी मे प्राणवल्लभा।।१८७।।
बिम्बाधराम्बुजाधस्तान्मधुमत्तालिनिःस्वना ।
शब्दब्रह्ममयी साक्षाद् मृतसञ्जीवनी परा।।१८८।।

अहम् तु किञ्चित् लज्जया ताम् यशस्विनीम् उवाच। अनेन विधिना मे प्राणवल्लभा वंशी सेव्या। शब्दब्रह्ममयी मधुमत्तालिनिःस्वना मृतसंजीवनी परा (वंशी) बिम्बाधराम्बुजाधस्तात् (भविष्यति)।

मैं किञ्चित् लज्जित होता हुआ उस यशस्विनी वंशी से कहा। इस प्रकार वंशी मेरी प्राणवल्लभा है, मैं सदा इसकी सेवा करता हूँ। अमृत का पान करने के कारण भ्रमरों की झंकार से युक्त, मृत जीवों को जीवन प्रदान करने वाली पराशक्ति साक्षात् शब्दब्रह्ममयी तथा मधुमत्त भ्रमर के समान

शब्द करने वाली यह वंशी मेरे नीचे वाले बिम्बाधर के नीचे सदा रहेगी॥१८७-१८८॥

यस्याः कलरवं श्रुत्वा निर्जीवोऽपि सजीवताम्।
प्राप्तवान् बलरामात्र महाविष्णुर्निदर्शनम्॥१८९॥
वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं तरुणशैलमृदां तथा।
द्रावणं रवमात्रेण करोति क्षणमात्रतः॥१९०॥

बलराम! यस्याः कलरवम् श्रुत्वा निर्जीवः अपि सजीवताम् प्राप्तवान्, अत्र महाविष्णुः निदर्शनम्। इयम् क्षणमात्रतः रवमात्रेण वह्नेः शैत्यम्, तथा तरुशैल-मृदाम् द्रावणम् करोति।

बलराम! इसके मधुर कलरव को सुनकर निष्प्राण जीव सजीव हो जाते हैं; इस विषय में महाविष्णु उदाहरण हैं। यह शब्दमात्र से अग्नि को शीतल, तरु शैल तथा मृदा को द्रव बना देती है॥१८९-१९०॥

ममत्वाद् माधवे सेयं सर्वाह्लादनकारिणी।
सदाशिवेशानरुद्रविष्णुब्रह्मपुरातनी ॥१९१॥
या सम्मोहनकारिणी त्रिजगतां संस्तम्भिनी वारिणो
या शश्वत् कुलमानिनी कुलवसच्चेतोवशीकारिणी।
याऽप्युच्चाटननाटिनी रिपुहृदां संनादिता संस्थिता
सेयं चित्रमहौषधिर्विजयतां वंशी सदोन्मादिनी॥१९२॥

माधवे ममत्वाद् सा इयम् सर्वाह्लादनकारिणी सदाशिव-ईशान-रुद्र-विष्णु, ब्रह्मपुरातनी अस्ति। या त्रिजगताम् सम्मोहनकारिणी, वारिणः संस्तम्भिनी, या शश्वत् कुलमानिनी कुलवसच्चेतःवशीकारिणी, या संनादिता संस्थिता रिपुहृदाम् अपि उच्चाटननाटिनी, सा इयम् चित्रमहौषधिः उन्मादिनी वंशी सदा विजयताम्।

माधव में ममत्व होने के कारण यह वंशी सबको आनन्द प्रदान करती है। सदाशिव ईशान ब्रह्मा रुद्र एवं विष्णु से पुरातन हैं। तीनों लोकों को सम्मोहित करने वाली, जल को जमा देने वाली, निरन्तर कुल के मान को धारण करने वाली, कुल की मर्यादाओं में रहने वालों के चित्त का हरण करने वाली है तथा सन्नादित होने पर शत्रुओं के हृदयों में उच्चाटन कर देती है। अद्‌भुत महौषधि सदा उन्माद को जन्म देने वाली यह वंशी सदा जयशील है॥१९१-१९२॥

वंशीमाहात्म्यमेतद् वि(?ये)पठिष्यन्ति द्विजातयः।
श्रोष्यन्ति च (?ते) भविष्यन्ति द्रुतं द्रुतं कवीश्वराः॥१९३॥

ममैव चरणाम्भोजे भक्तिस्तेषां सुनिश्चला।
भविष्यति महाबाहो सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।१९४।।

ये द्विजातयः एतत् वंशीमाहात्म्यम् पठिष्यन्ति श्रोष्यन्ति च ते द्रुतम् द्रुतम् कवीश्वराः भविष्यन्ति। तेषाम् मम एव चरणाम्भोजे सुनिश्चला भक्तिः भविष्यति। महाबाहो! अहम् सत्यम् सत्यम् वदामि।

जो भी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) इस वंशीमाहात्म्य को नित्य पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे शीघ्र से शीघ्र कवीश्वर हो जायेंगे तथा मेरे चरणकमलों में उनकी निश्चल भक्ति दृढ़ हो जायेगी। हे महाबाहो बलराम! मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ।।१९३-१९४।।

मोक्षार्थी लभते मोक्षं भुक्त्यर्थी भुक्तिमाप्नुयात्।
कामार्थी लभते कामं श्रूयतां मुरलीरुतम्।।१९५।।

इति श्रीकृष्णयामले महामन्त्रे श्रीकृष्णबलरामप्रश्ने शब्दब्रह्मस्वरूपिण्याः वंशिकायाः प्रादुर्भावनामाको एकादशोऽध्यायः।।११।।

मुरलीरुतम् श्रूयताम् मोक्षार्थी मोक्षम् लभते, भुक्त्यर्थी भुक्तिम् आप्नुयात्, कामार्थी कामम् लभते।

हे बलराम! मुरली की ध्वनि को सुनने वालों में से मोक्षार्थी को मोक्ष, भोग चाहने वाले को भोग तथा कामार्थी को इच्छानुसार फल प्राप्त होता है—ऐसा निश्चय है।।१९५।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में श्रीकृष्ण-बलरामप्रश्न के सन्दर्भ में शब्दब्रह्मस्वरूपिणी वंशी का प्रादुर्भाव नामक ग्यारहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

द्वादशोऽध्यायः

कृष्णदिव्यवृन्दावनरहस्यान्तर्गताभिन्नराधारहस्ये श्रीराधाऽविर्भावभगवत्त्रिभङ्गनित्यरूपाविर्भावः

श्रीबलराम उवाच—

भगवन् परमश्रेष्ठ श्रेष्ठवंशीकथा श्रुता।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि त्रिभङ्गत्वं कथं तव॥१॥
तन्मे कथय गोविन्द बिन्दाद्यानन्दसन्ततम्।
त्वं हि गुह्यस्योपदेष्टा स्वात्मनो नापरः क्वचित्॥२॥

परमश्रेष्ठ भगवन्! श्रेष्ठ वंशीकथा श्रुता। इदानीम् तव त्रिभंगत्वम् कथम् इति श्रोतुम् इच्छामि। बिन्दाद्यानन्दसन्ततम् तम् मे कथय। गोविन्द त्वम् हि स्वात्मनः गुह्यस्य उपदेष्टा न अपरः क्वचित्।

बलराम जी ने कहा—हे परमश्रेष्ठ भगवन्! श्रेष्ठ वंशी की श्रेष्ठ कथा मैंने सुनी। अब मैं आपके त्रिभङ्गत्व के विषय में सुनाना चाहता हूँ। हे गोविन्द! आप ही अपने रहस्यों के गूढ़ भाव को समझाने में समर्थ हैं। अन्य कोई दूसरा इनका रहस्य नहीं बता सकता॥१-२॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणु ते कथयिष्यामि बलराम यथा मम।
त्रिभङ्गत्वं कामिनीनां मनोनयनरञ्जनम्॥३॥
महानन्दाभिधां वंशीं कराभ्यां प्रतिगृह्य वै।
प्रहसद्वदनो लीलारसचञ्चलमानसः॥४॥
जगाम शनकैर्नीपमूलमानन्दविग्रहः।
तस्मिन् दिव्यतरोर्मूले मणिबद्धे महाप्रभे॥५॥
सुवर्णवेदिकामध्ये निर्मले प्रतिबिम्बिते।
संपश्यन्नात्मनात्मानं स्वयमेव विमोहितः॥६॥

बलराम! कामिनीनाम् मनोनयनरञ्जनम् मम त्रिभङ्गत्वम् यथा ते कथयिष्यामि शृणु। महानन्दाभिधाम् वंशी, कराभ्याम् प्रतिगृह्य प्रसन्नवदनः लीलारसचञ्चलमानसः आनन्दविग्रहः शनकैः नीपमूलम् जगाम। तस्मिन् महाप्रभे मणिबद्धे दिव्यतरोः मूले सुवर्णवेदिकामध्ये निर्मले प्रतिबिम्बिते आत्मना आत्मानम् संपश्यन् स्वयमेव विमोहितः।

श्रीकृष्ण ने कहा—बलराम! कामिनियों के मनोनयन को आनन्द देने वाला मेरा त्रिभङ्गित्व जिस कारण है, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ—सुनो! एक बार महानन्दा नाम की अपनी वंशी को हाथों में लेकर प्रसन्नमन, लीलारस के लिए चंचल मन वाला, साक्षात् आनन्दविग्रह मैं धीरे से कदम्ब के मूल में पहुँचा। महाप्रभा से युक्त मणिजड़ित उस दिव्य वृक्ष के मूल में स्वर्णवेदिका के मध्य में निर्मल प्रतिबिम्ब में मैंने स्वयं को देखा। उस प्रतिबिम्ब को देखकर मैं स्वयं मुग्ध हो गया।।३-६।।

अतसीपुष्पवर्णाभं मूर्ध्ना बद्धशिरोरुहम्।
कोटीन्दुसुन्दरमुखं सुनसं सुस्मिताधरम्।।७।।
रक्तपद्मदलाकारनयनं भ्रूलतोन्नतम्।
सुचारुकर्णविन्यस्तराजन्मकरकुण्डलम् ।।८।।
सुरदं शोभनग्रीवं नानालङ्करणोज्ज्वलम्।
द्विभुजं वेणुमुद्राढ्यं पीनवक्षःस्थलाश्रयम्।।९।।

अतसीपुष्पवर्णाभम्, सुनसम्, सुस्मिताधरम्, कोटि-इन्दुसुन्दरमुखम्, मूर्ध्ना बद्ध-शिरोरुहम्, रक्तपद्मदलाकारनयनम्, भ्रूलतोन्नतम्, सुचारुकर्णविन्यस्तरा-जन्मकरकुण्डलम् सुरदम्, शोभनग्रीवम्, नानालंकरणोज्ज्वलम्, द्विभुजम्, वेणु-मुद्राढ्यम्, पीनवक्षःस्थलाश्रयम्, (रूपम् दृष्ट्वा विमोहितः)।

अतसी के पुष्प के वर्ण की-सी आभा वाले, सुन्दर पुष्ट नासिका वाले, सुस्मित अधरों वाले, मूर्धा पर बँधे हुए बालों वाले, करोड़ों चन्द्रमाओं के समान मुख वाले, रक्त कमल के दल के आकार वाले नेत्रों वाले, उन्नत भ्रूलता वाले, सुन्दर कर्ण पर विराजित मकराकृति कुण्डलों वाले, सुन्दर दन्तपंक्ति वाले, सुन्दर शोभन ग्रीवा वाले, अनेकों अलंकारों से सजे हुए दोनों हाथों में वेणु की शोभा धारण करने वाले, विशाल वक्षःस्थल वाले स्वयं को देखकर मैं आत्ममुग्ध हो गया।।७-९।।

आजानुलम्बितश्रीमद्वनमालाविराजितम् ।
वैजयन्त्या मालया च मणिना कौस्तुभेन च।।१०।।
श्रीवत्सरोमावलिभिः सर्वभूतमनोहरम्।
सुकटिं पीतवसनं सुजानूरुसुजङ्घकम्।।११।।
सुकोमलतराङ्घ्र्यब्जनखचन्द्रविराजितम् ।
ततो मे मुग्धचित्तस्य बभूव सरसं मनः।।१२।।

आजानुलम्बितश्रीमद्वनमालाविराजितम्, वैजयन्त्या मालया कौस्तुभेन च

मणिना श्रीवत्सरोमावलिभिः सर्वभूतमनोहरम्, सुकटिम्, पीतवसनम्, सुजानूरु-सुजङ्घकम्, सुकोमलतराङ्घ्रि, अब्जनखचन्द्रविराजितम् प्रतिबिम्बम् दृष्ट्वा मुग्धचित्तस्य मे मनः ततः सरसं बभूव।

जानुओं तक लम्बी श्रीमद्वनमाला से विराजित, वैजयन्तीमाला से कौस्तुभ मणि से तथा श्रीवत्स चिह्न की रोमावलि से सुशोभित, सर्व प्राणियों के मन को हरने वाले, सुन्दर कमर वाले, पीताम्बर वाले, सुन्दर जानु ऊरु और सुन्दर जङ्घाओं वाले, सुकोमलतर चरणतलों वाले, कमलनख चन्द्र से विराजित अपने प्रतिबिम्ब को देखकर मोहित चित्त वाले मेरा मन उस समय सरस हो गया।।१०-१२।।

ततः शृङ्गारनामायं रसः प्रादुर्बभूव ह।
श्यामवर्णः सुखमयः सर्वलोकैकमोहनः।।१३।।
रसादानन्द आनन्दादनुभावो बभूव ह।
आत्मना रन्तुमिच्छामि नारी भूत्वा पृथग्वपुः।।१४।।

ततः सुखमयः श्यामवर्णः सर्वलोकैकमोहनः शृङ्गारनामा अयम् रसः प्रादुर्बभूव। रसात् आनन्दः आनन्दात् अनुभावः ह बभूव। पृथक्वपुः नारी भूत्वा आत्मना रन्तुमिच्छामि।

इसके बाद सुखमय श्यामवर्ण सम्पूर्ण लोकों को मोहित करने वाला श्रृंगार नाम का यह रस प्रादुर्भूत हो गया। रस से आनन्द और आनन्द से अनुभाव उत्पन्न हुआ तथा अलग से नारीरूप धाण कर मैं अपने इस शरीर के साथ रमण की इच्छा करने लगा।।१३-१४।।

इति सञ्चिन्त्यमानस्य मनस्तद्रसतां गतम्।
स्वयमेव द्विधा भूत्वा परमानन्दरूपिणी।।१५।।
रसस्वरूपिणी चाहं स्वयंरूपा विनिर्गता।
विद्युत्पुञ्जसमा गौरी दिव्याभरणभूषिता।।१६।।
त्रैलोक्यमोहनी कान्ता नीलाम्भोजदलेक्षणा।
सुदती सुस्मिता सुभ्रूः सुकपोलतलोज्ज्वला।।१७।।

इति संचिन्त्यमानस्य मे मनः तद्रसताम् गतम्। स्वयम् एव द्विधा भूत्वा च अहम् परमानन्दरूपिणी रसस्वरूपिणी स्वयंरूपा विद्युत्पुञ्जसमा दिव्याभरण-भूषिता त्रैलोक्यमोहनी नीलाम्भोजदलेक्षणा सुदती सुस्मिता सुभ्रू सुकपोलत-लोज्ज्वला गौरी कान्ता विनिर्गता।

इस प्रकार चिन्तन करने मात्र से मेरा मन तद्रसरूपता को प्राप्त हो

गया और मैं स्वयं दो रूपों को प्राप्त हो गया। मेरे शरीर से परमानन्द-स्वरूपिणी, रस की साक्षात् मूर्ति, स्वयं आकाशीय विद्युत्-समूह के समान गौर वर्ण वाली, दिव्य आभरणों से अलंकृत, त्रैलोक्य का सम्मोहन करने वाली, नीलकमल दलों के समान विशाल नेत्रों वाली, सुन्दर दन्तपंक्ति वाली, सुन्दर भौहों वाली, सुन्दर और उज्ज्वल कपोलतलों से युक्त स्वयं-रूपा गौरी कान्ता उत्पन्न हुई॥१५-१७॥

वक्त्रालकालिसंशाली चक्रपद्मा मनोहरा।
मन्दारमालाविभ्राजत्सुकुञ्चितशिरोरुहा ॥१८॥
कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटिसम्मोहकारिणी ।
कोटिकन्दर्पलावण्या सुनसा सुन्दरी वरा॥१९॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डला ।
कम्बुग्रीवा महादेवी नानाभरणराजिता॥२०॥

वक्त्रालकालिसंशाली, चक्रपद्मा, मनोहरा, मन्दारमालाविभ्राजत् सुकुञ्चित-शिरोरुहा, कटाक्षमात्रकोटिब्रह्माण्डसम्मोहकारिणी, कोटिकन्दर्पलावण्या, सुनसा सुन्दरी वरा, समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डला, कम्बुग्रीवा, नानाभरणराजिता महादेवी (विनिर्गता)।

मुखमण्डल पर अलकावली से शोभित, चक्र और पद्म से युक्त मनोहर, मन्दार के पुष्पों की माला से शोभित कुञ्चित केशों वाली, कटाक्ष-मात्र से ही करोड़ों ब्रह्माण्डों को मोहित करने वाली, करोड़ों कामदेवों से भी अधिक रूप-लावण्य वाली, सुन्दर नासिका एवं दन्तपंक्ति वाली, समान रूप से दोनों कानों में दिव्य ज्योति विकीर्ण करने वाली मकराकृति कुण्डलों से अलंकृत, शंख के समान ग्रीवा वाली, अनेकों अलंकारों से अलंकृत महादेवी प्रकट हुई॥१८-२०॥

मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षोरुहद्वया ।
मृणाललिताभ्यां च पङ्कजद्वयमुत्तमम्॥२१॥
रक्तपद्मदलाकाररक्ताभ्यामरुणच्छविः ।
नानालङ्कारयुक्ताभ्यां नखांशुचयराजितम्॥२२॥
कराभ्यां बिभ्रती चारु वैजयन्तीविभूषिता।
सिंहवत्तनुकङ्कालन्यस्तदिव्यपटावृता ॥२३॥
सुवर्णरत्नघटिताकिङ्किणीजालमण्डिता ।
लावण्यसरिदावर्तचारुनाभिसरोरुहा ॥२४॥

सुभगा शोभनकटिः सुनितम्बा सुखावहा।
सुचारुकदलीस्तम्भतुल्यजानुविराजिता ॥२५॥
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमोहिनी ।
जितकूर्मोन्नतपदा रत्ननूपुररञ्जिता॥२६॥

मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षोरुहद्वया, मृणाललतिताभ्यां रक्तपद्मदलाकार-रक्ताभ्याम् कराभ्याम् नखांशुचयराजितम् उत्तमम् पंकजद्वयम् बिभ्रती, चारुनाभि-सरोरुहा, सुभगा, शोभनकटिः, सुनितम्बा, सुखावहा, सुचारुकदलीस्तम्भतुल्य-जानुविराजिता, लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमोहिनी, जितकूर्मोन्नतपदा, रत्न-नूपुररञ्जिता (विनिर्गता)।

मुक्ताहारों की लताओं से सुशोभित पीन वक्षःस्थल वाली, लाल कमल के दल की तरह रक्त आभा वाले तथा मृणालदण्ड की तरह ललित नख की किरणों से शोभित दोनों हाथों में दो उत्तम कमल ली हुई, सौन्दर्यसरित् में उत्पन्न होने वाली, भंवर के समान सुन्दर नाभिकमल वाली, सुन्दर शोभन कमर वाली, सुन्दर नितम्बों वाली, सुख देने वाली, सुन्दर कदलीस्तम्भ की तरह जानुओं से विराजित, लावण्य की कदली के समान जंघायुगल से मोहित करने वाली, सुन्दर कूर्म को जीतने वाले ऊँचे चरण कमलों वाली, रत्नों के नूपुर धारण करने वाली श्री मेरे शरीर से प्रकट हुई॥२१-२६॥

तस्या विनिर्गतायास्तु रत्नालङ्कारवाससाम्।
ध्वनिनाकृष्टचित्तोऽहं तां पश्यामि मुहुर्मुहुः॥२७॥
ततो मे विस्मयो जातः काऽसाविह समागता।
किं वा सरस्वती भूयो दिव्यरूपधरा स्वयम्॥२८॥

विनिर्गतायाः तस्या तु ध्वनिना आकृष्टचित्तः अहम् रत्नालंकारवाससाम् ताम् मुहुर्मुहुः पश्यामि। ततो मे विस्मयः जातः इह असौ का ? किम् वा दिव्यरूपधरा स्वयम् सरस्वती भूयः समागता।

मेरे शरीर से निर्गत उस वाली ध्वनि से आकृष्ट मन वाला मैं रत्नजटित अलंकारों एवं वस्त्रों उसे बार-बार देखता रहा। इसके बाद मुझे आश्चर्य हुआ कि यह कौन है? क्या दिव्य रूप धारण कर स्वयं सरस्वती फिर से आ गयी है?॥२७-२८॥

द्वितीया मे तनुर्वेयं स्वसुखार्थमुपस्थिता।
इत्थं वितर्कितस्यापि ममैव मधुराकृतेः॥२९॥
तां दिदृक्षोर्मदोन्मत्तां राधिकां मोहनाकृतिम्।
आत्मानमर्पयन्तीञ्च कटाक्षबाणवर्षिणीम्॥३०॥

सुवर्णमेघमालां च विद्युद्भूषणभूषिताम्।
परमानन्दसम्मुग्धचित्तचातकपक्षिणम् ॥३१॥
परमानन्दलोभेन लुब्धस्य रसवारिधेः।
मुग्धस्यात्मप्रदानार्थं वीक्षतो मुखमण्डलम्॥३२॥
तिर्यग्ग्रीवत्वमगमन्मम सर्वेश्वरस्य तु।

वा इयम् मे द्वितीया तनुः स्वसुखार्थम् उपस्थिता। इत्थम् वितर्कितस्य मधुराकृतेः मम अपि दिदृक्षोः मदोन्मत्ताम्, मोहनाकृतिम्, कटाक्षबाणवर्षिणीम्, सुवर्णमेघमालाम्, विद्युद्भूषणभूषिताम् आत्मानम् अर्पयन्तीम् ताम् राधिकाम् परमानन्दसम्मुग्धचित्तचातकपक्षिणम् परमानन्दलोभेन आत्मप्रदानार्थम् वीक्षतः लुब्धस्य रसनिधेः मुग्धस्य सर्वेश्वरस्य मम मुखमण्डलम् तिर्यग्ग्रीवत्वम् अगमत्।

अथवा यह मेरा ही दूसरा शरीर है, जो अपने ही सुख के लिए उपस्थित हुआ है। इस प्रकार तर्क-वितर्क से युक्त मुझ मधुराकृति का मन मदोन्मत्त, मोहनी आकृति वाली, कटाक्ष बाणों की वर्षा करने वाली, सुवर्ण की मेघमाला के समान, शरीर पर विद्युत् प्रभा के आभूषणों से अलंकृत, स्वयं को समर्पित करने के लिए उत्सुक उस राधिका को और परमानन्द से मुग्ध चित्तरूपी चातक पक्षी वाले मुखमण्डल को देखने की इच्छा वाले, पूर्ण रूप से मुग्ध मन वाले रसनिधि मुझ सर्वेश्वर का मुखमण्डल टेढ़ी गर्दन वाला हो गया।।२९-३२।।

तत्प्रेम्णो रसमिश्राच्च परमानन्दयोगतः॥३३॥
उल्लासादात्मनः साक्षाद् बहुरूपत्वमिच्छतः।
आलिङ्गितस्यैव सख्याद् वक्षो दक्षिणदिग्गतम्॥३४॥
ततो गोपाः षडङ्गेभ्यो जाताः श्रीसुबलादयः।

परमानन्दयोगतः तत्प्रेम्णः रसमिश्रात् उल्लासात् च साक्षात् आत्मनः बहुरूपत्वम् इच्छतः सख्यात् आलिङ्गितस्य एव वक्षः दक्षिणदिग्गतम्। ततः षडङ्गेभ्यः श्रीसुबलादयः गोपाः जाताः।

उसके प्रेमरस के मिश्रण से उत्पन्न उल्लास से और परमानन्द के योग से तथा साक्षात् अपने को अधिक रूपों में प्रकट करने की इच्छा वाले सख्यभाव से आलिङ्गन को उत्सुक मेरा वक्षःस्थल थोड़ा दक्षिण की ओर झुक गया। इसके बाद मेरे षड् अंगों से श्रीसुबल आदि गोप प्रकट हो गये।।३३-३४।।

पुनरङ्गे प्रविविशुर्विद्युत्पुञ्जा इवाम्बुधेः॥३५॥
पश्यन्तस्तां वरारोहां लज्जयाऽधोमुखा द्रुतम्।

(ते) ताम् वरोहाम् पश्यन्तः लज्जया अधोमुखाः द्रुतम् विद्युत्पुञ्जाः अम्बुधेः इव पुनः अङ्गे प्रविविशुः।

जैसे समुद्र से उत्पन्न विद्युत्पुञ्ज पुनः उसी में प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह मेरे शरीर से उत्पन्न वे (गोप) सुन्दर आरोह वाली उस (राधा) को देखते हुए लज्जा से शिर नीचे कर शीघ्र ही पुनः मेरे अंग में प्रवेश कर गये॥३५॥

तत्प्रेमपाशसम्बद्धचित्तस्य चरणद्वयम्॥३६॥
मणिनूपुरयुग्मेन शृङ्खलाबद्धवद् बभौ।
ततो मम पदाम्भोजाद्रक्तकाद्या महौजसः॥३७॥
तुष्टुवुः प्रेमवचसा प्रणयाविष्टचेतसा।
हे नाथ चरणं त्वमेकमस्मभ्यं दर्शय प्रभो॥३८॥

तत्प्रेमपाशबद्धचित्तस्य (मम) चरणद्वयम् मणिनूपुरयुग्मेन शृङ्खलाबद्धवतः बभौ। ततः महौजसः मम पादाम्भोजात् महौजसः रक्तकाद्याः प्रणयाविष्टचेतसा प्रेमवचसा तुष्टुवुः—हे नाथ! हे प्रभो! त्वम् अस्मभ्यम् एकम् चरणम् दर्शय।

उसके प्रेमपाश में बद्धचित्त वाले मेरे दोनों चरण मणिनूपुर की शृंखला से बंधे हुए के समान हो गये। इसके बाद महान् तेजयुक्त मेरे चरणाम्भोज से निकले हुए रक्तक आदि (गोपों) ने प्रणय से आविष्ट चित्त के द्वारा प्रेमपूर्ण वचनों से मुझे प्रसन्न करते हुए स्तुति की—हे नाथ! हे प्रभो! आप हमें एक चरण का दर्शन करा दें॥३६-३८॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां तुष्टये स्वयमेव हि।
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजलक्षणं दक्षिणं पदम्॥३९॥
तिर्यग्ग्रीवमुदार-श्रीर्ब्रह्म-विष्णु-शिवार्चितम् ।
अकार्षं राम सततं यतोऽहं भक्तवत्सलः॥४०॥

तेषाम् तत् वचनम् श्रुत्वा उदारश्रीः अहम् स्वयम् एव तेषाम् तुष्टये हि ध्वज-वज्र-अंकुश-अम्भोजलक्षणम्, ब्रह्म-विष्णु-शिवार्चितम् दक्षिणपदम् तिर्यग्ग्रीवम् अकार्षम्। राम! यतः अहम् सततम् भक्तवत्सलः।

उनके उन वचनों को सुनकर स्वयं ही उनकी सन्तुष्टि के लिए मैंने ध्वज-वज्र-अंकुश तथा कमल के चिह्नों से अंकित, श्री ब्रह्मा, विष्णु और शिव के द्वारा नित्य वन्दित अपने सीधे पैर को तिर्यग्ग्रीवा वाला अर्थात् टेढ़ा कर दिया। हे बलराम! क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ॥३९-४०॥

कृत्वामनोऽपि दुःखौघं भक्तानां सुखकारकः।

भक्ता मम प्रिया नित्यं भक्तानामस्म्यहं प्रियः॥४१॥
एतान्येव कारणानि त्रिभङ्गत्वं गतस्य मे।
नित्यं सत्यं चित्स्वरूपमानन्दरसविग्रहम्॥४२॥

मनोऽपि दुःखौघम् कृत्वा (अहम्) भक्तानाम् सुखकारकः (यतोहि) नित्यम् भक्ताः मम प्रियाः अहम् (च) भक्तानाम् प्रियः अस्मि। मम त्रिभङ्गत्वम् गतस्य एतानि एव कारणानि। अहम् आनन्दरसविग्रहम् नित्यम् चित्स्वरूपम् सत्यम् अस्मि।

मन को घोर कष्टों की अवस्था में रखकर भी मैं भक्तों को सुख देने वाला हूँ; क्योंकि भक्त मुझे नित्य प्रिय हैं और मैं भी भक्तों को प्रिय हूँ। हे बलराम! मेरे त्रिभङ्ग होने के ये ही कारण हैं; अन्यथा मैं आनन्दरसविग्रह, नित्य, सत्य और चित्स्वरूप हूँ॥४१-४२॥

रूपमेतत् सदा ध्यायन् महाविष्णुस्तपश्चरेत्।
ब्रह्मैवेदं हृदि ध्यात्वा सृष्टिकृच्चासकृद् विभो।
रुद्रोऽपीदं चित्स्वरूपं ध्यात्वा सिद्धिमितो गतः॥४३॥

एतत् रूपम् सदा ध्यायन् महाविष्णुः तपः चरेत्। ब्रह्मा इदम् एव ध्यात्वा असकृत् सृष्टिकृत् च। रुद्रः अपि इदम् चित्स्वरूपम् ध्यात्वा इतः सिद्धिम् गतः।

इस त्रिभङ्गी रूप का सदा ध्यान करते हुए महाविष्णु तप करते रहते हैं। हे विभु (राम)! ब्रह्मा इसी रूप का ध्यान करते हुए निरन्तर सृष्टि करते रहते हैं तथा रुद्र भी इस चित्स्वरूप का ध्यान करके सिद्धि को प्राप्त हुए॥४३॥

एतत् त्रिभङ्गरसविग्रहमादिभूतं
भूतेशविष्णुविधिचित्रविचित्रसेव्यम् ।
ध्यात्वा त्रिभङ्गचरितं परितः शृणोति
यस्तस्य हृत्सरसिजे सततं वसामि॥४४॥

आदिभूतम् भूतेशविष्णुविधिचित्रविचित्रसेव्यम् एतत् त्रिभङ्गरसविग्रहम् ध्यात्वा यः (नरः) त्रिभङ्गचरितम् परितः शृणोति तस्य हृत्सरसिजे (अहम्) सततम् वसामि।

भूतों के स्वामी शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा द्वारा चित्र-विचित्र रूप से सेवित मेरे इस त्रिभङ्ग रसविग्रह (शरीर) का ध्यान करता हुआ जो व्यक्ति इस त्रिभङ्गचरित्र को एकान्त मन से सुनता है, उसके हृदय-कमल में मैं निरन्तर निवास करता हूँ॥४४॥

इति ते सर्वमाख्यातं त्रिभङ्गचरितं मम।
बलराम महाबाहो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥४५॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे कृष्णदिव्यवृन्दावन-रहस्यान्तर्गताभिन्नराधारहस्ये श्रीराधाऽविर्भावभगवत्त्रिभङ्गनित्यरूपाविर्भावनामाको द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

महाबाहो बलराम! इति मम सर्वम् त्रिभङ्गचरितम् ते आख्यातम्। भूयः किम् श्रोतुम् इच्छसि ?

महाबाहो श्री बलराम जी! मैंने आपको अपना त्रिभङ्गचरित्र इस प्रकार सुना दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥४५॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में श्रीकृष्णवृन्दावन-रहस्यान्तर्गत भिन्नराधारहस्य-श्रीराधा-आविर्भाव-भगवत्त्रिभङ्गनित्यरूपाविर्भाव नामक बारहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

त्रयोदशोऽध्यायः

कृष्णराधारहस्ये सम्मोहनचिन्तामणिमहौषधिरूपाविर्भावः

श्रीबलराम उवाच—

ततः किमभवत् पश्चात् त्रिभङ्गत्वं गते त्वयि।
तन्मे कथय गोविन्द यदि तेऽस्ति कृपा मयि॥१॥

गोविन्द! ततः पश्चात् त्वयि त्रिभङ्गत्वम् गते किम् अभवत्? यदि ते मयि कृपा अस्ति, तत् मे कथय।

हे गोविन्द! उसके बाद तुम्हारे त्रिभङ्गत्व को प्राप्त होने पर क्या हुआ? यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा है तो वह मुझे बतलाइए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

तद्रूपबद्धचित्तस्य स्पृहा तस्यां ममाऽभवत्।
रिरंसामि तया सार्धं न च मां सा प्रसीदति॥२॥
अतिमुग्धमना दैन्यं दिधीर्षामि पुनः पुनः।
अत्यन्तं निकटं भूत्वा सापि दूरस्थिता भवेत्॥३॥

तद् रूपबद्धचित्तस्य मम तस्याम् स्पृहा अभवत्। तया सार्धम् रिरंसामि, च सा मां न प्रसीदति। अतिमुग्धमनाः अत्यन्तम् निकटम् भूत्वा पुनः पुनः दैन्यम् दिधीर्षामि। सा अपि दूरस्थिता भवेत्।

श्रीकृष्ण ने कहा—उस त्रिभङ्गत्व रूप में आबद्धचित्त मेरी उस 'श्री' में स्पृहा (इच्छा) हो गयी। उसके साथ रमण करने की लालसा जाग्रत हो गयी; किन्तु वह मुझसे प्रसन्न नहीं हो रही थी। मैं अत्यन्त आसक्तचित्त होकर उसके अति निकट होकर बार-बार अपना दैन्य भाव प्रकट करने लगा; किन्तु वह मुझसे दूर होती गयी॥२-३॥

यदि दूरस्थितां मत्वा निजचेतोनिवारिताम्।
तदा वामांशभागाऽस्ति क्वणत्काञ्चनकङ्कणा॥४॥
धावमानेव (?च) न प्राप्या तिष्ठतः सम्मुखस्थिता।
ममात्मारामचित्तस्य चित्तमाकर्षती सती॥५॥
कदाचिन्मम पृष्ठस्था मायाझङ्कृतनूपुरा।
हसत्याच्छाद्य हस्ताभ्यां गाढं नेत्रसरोरुहैः(?हौ)॥६॥

(अहम्) यदि (ताम्) दूरस्थिताम् मत्वा निजचेतः निवारिताम् (कृतवान्) तदा क्वणत्काञ्चनकङ्कणा सा वामांशभागा अस्ति। धावमाने च न प्राप्या। तिष्ठतः संमुखस्थिता। आत्मारामस्य मम चित्तम् आकर्षती सती माया-झङ्कृतनूपुरा कदाचित् मम पृष्ठस्था हस्ताभ्याम् नेत्रसरोरुहौ गाढम् आच्छाद्य हसति।

यदि मैंने उसे दूरस्थित मानकर अपने चित्त से अलग कर दिया तो काञ्चन कंकणों से सुन्दर ध्वनि करती हुई वह मेरे वाम भाग में स्थित प्रतीत हुई। जब मैं उसे पाने के लिए दौड़ा तो वह मेरी पहुँच से दूर हो गयी और जब मैं खड़ा हो गया तो मेरे सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। मुझ आत्माराम के चित्त को आकर्षित करती हुई वह माया के नूपुरों से मधुर ध्वनि करती हुई कभी मेरे पीठ के पीछे जाकर मेरे नेत्रकमलों को अपने हाथों से कसकर ढँक दिया और हँसने लगी।।४-६।।

तद्रूपमुग्धचित्तस्य मम निश्चेतनस्य वा।
अलङ्काराणि मालेव वासांसि मुरलीं तथा।।७।।
आकृष्य त्वरितं याति नाऽहं प्राप्नोमि हस्ततः।

तद् रूपमुग्धचित्तस्य निश्चेतनस्य वा माला इव मम अलंकाराणि वासांसि मुरलीं तथा माला आकृष्य इव त्वरितम् याति अहम् हस्ततः न प्राप्नोमि।

उसके रूप से मुग्ध चित्त वाला अथवा चेतनाशून्य हुये मेरे अलंकारों, वस्त्रों और मुरली को वह माला की भाँति खींच कर शीघ्र चली जाती है; किन्तु मैं उसे हाथ से पकड़ नहीं पाता।।७।।

एवं शश्वन्महादेवी मोहयित्वा मुहुर्मुहुः।।८।।
आयाति याति सा नित्यं न मनाग् वशगा मम।
तच्चित्ताकर्षणोपायो मनसा चिन्तितो मया।।९।।

एवम् शश्वद् सा महादेवी (माम्) मोहयित्वा मुहुर्मुहुः आयाति याति च। मनाग् मम वशगा न भवति। मया तत् चित्ताकर्षणोपायः मनसा चिन्तितः।

इस तरह निरन्तर वह महादेवी मेरे मन को मोहित करती हुई आती और चली जाती थी। वह तनिक भी मेरे वश में नहीं हुई। अतः मेरा मन उसके चित्त को आकर्षित करने का उपाय सोचने लगा।।८-९।।

मणिमन्त्रौषधैरेव दुःसाध्यमपि साध्यते।
तस्मादेषाऽखर्वगर्वा वशगा मे भविष्यति।।१०।।
ततः स्वयं मणिश्चाहमभवं स्मृतिमात्रतः।

चिन्तामणिरिति ख्यातश्चिन्तिते सर्वकामदः॥११॥
यो बध्नाति मणिं कण्ठे स हि वाञ्छाफलं लभेत्।

दुःसाध्यम् अपि मणिमन्त्रौषधैः साध्यते एव। तस्माद् एषा अखर्वगर्वा मे वशगा भविष्यति। ततः च अहम् स्मृतिमात्रतः स्वयम् मणिः अभवम्। चिन्तिते सर्वकामदः चिन्तामणिः इति ख्यातः। यो हि मणिम् कण्ठे बध्नाति स हि वाञ्छाफलम् लभेत्।

कठिनता से साधित होने वाला कार्य मणि-मन्त्र तथा औषधियों से सुगमता से सिद्ध हो जाता है। इसलिए मैंने विचार किया कि अत्यधिक गर्व वाली यह मणि-मन्त्र और औषधियों से ही वशगामिनी हो सकती है। तब मैं स्मृतिमात्र से ही मणि बन गया। यह मणि चिन्तामणि नाम से विख्यात थी, जो चिन्तन करने-मात्र से ही इच्छित फल प्रदान करती है। जो भी इस मणि को कण्ठदेश में बाँध लेता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥१०-११॥

मोहनाख्यो महामन्त्रः स्वयमेवाहमव्ययः॥१२॥
मत्पूर्वं देवता देहे प्रविष्टं(?ष्टा) वै मदाज्ञया।
कामाशां प्रकृतेर्वशमंशं वृन्दावनक्षितेः॥१३॥
ब्रह्मांशमेकतां नीतं परं ब्रह्म द्वयात्मकम्।
तदेवाहं तत्प्रकृतिस्तत्कामस्तत्परं पदम्॥१४॥

अव्ययः अहम् स्वयम् एव मोहनाख्यः महामन्त्रः। पूर्वम् मदाज्ञया मत् देहे देवताः वै प्रविष्टाः। वृन्दावनक्षितेः प्रकृतेः कामाशाम् अंशं। द्वयात्मकम् परम् ब्रह्म ब्रह्मांशम् एकताम् नीतम् तदा एव अहम् तत्प्रकृतिः तत् कामः तत्परम् पदम्।

अव्यय मैं स्वयं ही मोहन नाम का महामन्त्र बन गया। पहले मेरी आज्ञा से मेरे शरीर में देवताओं ने प्रवेश किया था। मैं अपनी इच्छा से वृन्दावन की भूमि की प्रकृति के अंशमात्र का वशवर्ती हो गया। द्वयात्मक परम ब्रह्म की प्रकृति से एकात्मकता हो गयी। मैं वही हूँ। वह मेरी प्रकृति है। मैं उसका चाहने वाला हूँ और मैं उसका परम पद हूँ॥१२-१४॥

एकमेवाक्षरं ब्रह्म सर्वदेवस्य मोहनम्।
अस्य स्मरणमात्रेण वशगाः सर्वदेवताः॥१५॥
या विद्या ये तथा मन्त्रा एतदक्षरवर्जिताः।
न सिद्धिर्विद्यते तासु तेषु राम सुनिश्चितम्॥१६॥

एकम् एव अक्षरम् ब्रह्म सर्वदेवस्य मोहनम्। अस्य स्मरणमात्रेण सर्वदेवताः

वशगाः। राम! ये मन्त्राः तथा या विद्या एतत् अक्षरवर्जिताः तासु तेषु सिद्धिः न विद्यते इति सुनिश्चितम्।

यही एक अक्षर ब्रह्म है, जो सभी देवों को मोहित करने वाला है। इसके स्मरणमात्र से सभी देव वश में हो जाते हैं। हे बलराम! इस अक्षर के बिना सभी मन्त्र तथा सभी विद्याएँ कभी सिद्धि नहीं दे सकती है—यह निश्चित है॥१५-१६॥

ततो वृन्दारण्यभूमावौषधिश्चाहमव्यया।
भूत्वा तस्या वशोपायं करोम्येकमना बल॥१७॥
चिन्तामणिमणिमालां कोट्यम्बरमणिप्रभाम्।
गले बध्वा चिन्तयामि तां कामवशगश्चिरम्॥१८॥
नानौषधिप्रयोगेण विधाय तिलकादिकम्।
तामाकर्षितुमिच्छामि सर्वाकर्षणकारिणीम्॥१९॥

बल! ततः वृन्दारण्यभूमौ अहम् अव्यया औषधिः भूत्वा एकमनाः तस्याः वशोपायम् करोमि। कोटि-अम्बरमणिप्रभाम् चिन्तामणिमणिमालाम् गले बध्वा चिरम् कामवशगः चिन्तयामि। नाना-औषधि-प्रयोगेण तिलकादिकम् विधाय सर्वाकर्षणकारिणीम् ताम् आकर्षितुम् इच्छामि।

हे बलराम! इसके बाद मैं वृन्दावन की भूमि पर अव्यय औषधि बन कर एकान्त चित्त से उसको वश में करने का उपाय कर रहा हूँ। करोड़ों सूर्यों की प्रभा के समान प्रभा वाली चिन्तामणियों की मणिमाला को गले में पहनकर निरन्तर उसको वश में करने का चिन्तन कर रहा हूँ। अनेकों औषधियों के प्रयोग से तिलक आदि लगाकर सबको आकर्षित करने वाली उसको आकर्षित करना चाहता हूँ॥१७-१९॥

ततः सा राधिका सिद्धयोगिनीगणवन्दिता।
अदृश्यरूपतां याता मम मस्तकभूषणम्॥२०॥
मयूरपिच्छं समणिं सञ्जहारातिलीलया।
पुनः पूर्वकृतां मालामलङ्काराणि वाससी॥२१॥
मह्यं दत्वा गता दूरं मनो मे कीदृशं कृतम्।

ततः सिद्धयोगिनीगणवन्दिता सा राधा अदृश्यरूपताम् याता। मम समणिम् मस्तकभूषणम् मयूरपिच्छम् अतिलीलया सञ्जहार। पुनः पूर्वकृताम् मालाम् अलंकाराणि वाससी मह्यं दत्वा दूरम् गता। मे मनः कीदृशम् कृतम्।

तब सिद्ध योगिनियों के गणों से पूजित वह राधा अदृश्य हो गयी और

उसने मेरे मस्तक के मणियुक्त आभूषण एवं मयूर पंख का हरण कर लिया। उसके पश्चात् पूर्व में हरण की हुई माला अलंकारों और वस्त्रों को मुझे वापस करके दूर चली गयी। उसने मेरा मन कैसा कर दिया॥२०-२१॥

ततोऽहमस्या वश्यार्थं मन्त्रं भुवनमोहनम्॥२२॥
ध्यात्वा तद्रूपममलं जजाप परमाद्भुतम्।
मनसा तेन जप्तेन कामः प्रादुर्बभूव यः॥२३॥
तेनैव मोहिता देवी मम वश्याऽभवत् क्षणात्।
स कामस्तां संनिरीक्ष्य स्वयमेव विमुग्धताम्॥२४॥
ततो जहास सा बाला कोटिचन्द्रनिभानना।
मन्त्रस्य शक्त्या सम्मुग्धा सुस्निग्धा साऽधिकं मयि॥२५॥

ततः अहम् अस्या वश्यार्थम् तद् अमलम् रूपम् ध्यात्वा परमाद्भुतम् भुवनमोहनम् मन्त्रम् जजाप। मनसा तेन जप्तेन यः कामः प्रादुर्बभूव तेन एव मोहिता देवी क्षणात् मम वश्या अभवत्। सः कामः ताम् संनिरीक्ष्य स्वयम् एव विमुग्धताम् (गतः)। ततः कोटिचन्द्रनिभानना सा बाला जहास। मंत्रस्य शक्त्या सा सम्मुग्धा मयि अधिकम् सुस्निग्धा।

इसके बाद मैंने उसे वश में करने के लिए उस राधिका का ध्यान करके उस परम अद्भुत भुवनमोहन मन्त्र का जप किया। मन से उस मन्त्र का जप करने के कारण कामदेव प्रकट हो गया। उसके द्वारा मुग्ध वह देवी क्षणमात्र में ही मेरे वश में हो गयी। वह कामदेव भी उसके रूप को देखकर स्वयं विमुग्ध हो गया। यह देखकर करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति के समान मुख वाली वह बाला जोर से हँसने लगी। मन्त्र की शक्ति के कारण वह मुग्ध बाला मेरे ऊपर अधिक स्नेहयुक्त हो गयी॥२२-२५॥

असौ सम्मोहनो मन्त्रः साक्षात्कामकलात्मकः।
महाप्रकृतिरूपोऽपि स्वयं च परमः पुमान्॥२६॥
अस्मात् प्रकृतयः सर्वाः सम्भविष्यन्ति चापराः।
अस्माद् वै पुरुषाः सर्वे त्रैलोक्यं सचराचरम्॥२७॥

असौ सम्मोहनः मन्त्रः साक्षात् कामकलात्मकः। महाप्रकृतिरूपः अपि स्वयम् परमः पुमान् सर्वाः अपराः प्रकृतयः अस्माद् सम्भविष्यन्ति। अस्मात् एव सर्वे पुरुषाः सचराचरम् त्रैलोक्यम् च सम्भविष्यन्ति।

यह सम्मोहन मन्त्र साक्षात् काम की कलाओं से युक्त है। महा प्रकृति रूप होता हुआ भी यह साक्षात् स्वयं परम पुमान् (श्रीकृष्ण) ही है। इसी से

सभी अपरा प्रकृति चर अचर त्रैलोक्य एवं सभी पुरुष उत्पन्न होंगे।।२६-२७।।

ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु मन्त्रोऽयं सर्वमोहनः।
मोहनस्तम्भनाकर्षमारणोच्चाटनानि च।
भवन्त्यत्र न सन्देहस्त्वहमेव स्वयं मनुः।।२८।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे कृष्णराधारहस्ये सम्मोहनचिन्तामणि-महौषधिरूपाविर्भावनामा त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु अयम् मन्त्रः सर्वमोहनः। (अनेन) मोहनस्तम्भन-आकर्षण-मारण-उच्चाटनानि भवन्ति। अत्र सन्देहः न। (यतः) अहम् एव।

यह मन्त्र कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का मोहन करने वाला है। इसके द्वारा मोहन, स्तम्भन, आकर्षण, मारण तथा उच्चाटन होते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है; क्योंकि मैं स्वयं ही मन्त्ररूप हूँ।।२८।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में श्रीकृष्णराधारहस्य सम्मोहन-चिन्तामणि महौषधिरूपाविर्भाव नामक तेरहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

चतुर्दशोऽध्यायः

राधावशीकारे भुवनेश्युत्पत्ति-र्भगवन्मुखविनिर्गता वर्णमालास्तुतिः

श्रीकृष्ण उवाच—

वशगापि महादेवी यदि नातिप्रसीदति।
ततस्तां स्तोतुमारब्धवानहं प्रेमगद्‌गदः॥१॥
शब्दब्रह्ममयीं वंशीं मूर्च्छयन् स्वरसम्पदा।
ततो व्यक्तोऽव्यक्तरूपोऽसौ नादः सप्तविधोऽभवत्॥२॥

यदि वशगा अपि महादेवी न अतिप्रसीदति ततः प्रेमगद्‌गदः शब्दब्रह्ममयीम् वंशीम् स्वरसम्पदा मूर्च्छयन् ताम् स्तोतुम् आरब्धवान्। ततः अव्यक्तरूपः सप्तविधः नादः अभवत्।

वशवर्ती हो जाने पर भी वह महादेवी जब अति प्रसन्न नहीं हुई तब मैंने प्रेम से गद्‌गद होकर शब्दब्रह्ममयी अपनी वंशी में स्वरसम्पदा से मूर्च्छनापूर्ण उसकी प्रार्थना करना आरम्भ किया। तब वह अव्यक्तस्वरूप नाद सात प्रकार के स्वरों में व्यक्त हो गया॥१-२॥

श्रीकृष्ण उवाच—

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः ।
पञ्चमश्चेति तैर्नादैः रागाः समभवंश्च षट्॥३॥
एकैकस्यानुगामिन्यो रागिन्यः षट् षडुज्ज्वलाः।
तथा तालगणाश्चैव त्रयो ग्रामास्तथैव च॥४॥
ताराद्याश्च त्रयश्चैव मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
ततो भगवती देवी गायत्री त्रिपदाऽभवत्॥५॥

निषाद-ऋषभ-गान्धार-षड्ज-मध्यम-धैवताः पंचमः च इति। तैः नादैः षट् रागाः समभवन्। एक-एकस्य अनुगामिन्यः षट् षट् उज्ज्वलाः रागिन्यः तथा त्रयः तालगणाः च तथा एव त्रयः ग्रामाः त्रयः ताराद्याः च एकविंशतिः मूर्च्छनाः ततः भगवती देवी त्रिपदा गायत्री अभवत्।

इससे निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम और धैवत नाद उत्पन्न हुए। इन नादों से छः राग उत्पन्न हुए। एक-एक राग का अनुसरण करने

वाली छः छः उज्ज्वल रागिनियाँ उत्पन्न हुईं तथा तीन तालसमूह एवं तीन ग्राम उत्पन्न हुए। तीन तार आदि के साथ इक्कीस मूर्च्छनाएँ उत्पन्न हुईं। तब भगवती देवी त्रिपदा गायत्री प्रकट हुई।।३-५।।

ततोऽपि वेदाश्चत्वारः श्रुतयश्च ततः पराः।
ततोऽपि देहजैर्देवैः सस्त्रीकैः सूक्ष्ममूर्तिभिः।।६।।
स्वरै रागै रागिनीभिस्तालैर्ग्रामैस्तथैव च।
ताराद्यैर्नादभेदैश्च मूर्च्छनाभिः समन्ततः।।७।।
गायत्र्या च महादेव्या वेदैश्च श्रुतिभिः सह।
प्रसादनार्थं तस्या वै स्वयमेवाहमव्ययः।।८।।

ततः चत्वारः वेदाः, ततः पराः श्रुतयः ततः अपि देहजैः सस्त्रीकैः सूक्ष्ममूर्तिभिः देवैः स्वरैः रागैः रागिनीभिः तालैः ग्रामैः तथा ताराद्यैः नादभेदैः च मूर्च्छनाभिः स्वयम् अहम् एव श्रुतिभिः वेदैः गायत्र्या महादेव्या सह तस्या प्रसादनार्थम्—।

उससे चारो वेद और श्रुतियाँ उत्पन्न हुईं। इसके बाद देह से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के साथ सूक्ष्म रूप देवों द्वारा, स्वरों, रागों, रागिनियों, तालों, ग्रामों तारों, आदि नादभेदों और मूर्च्छनाओं के द्वारा मैंने स्वयं वेदों, श्रुतियों तथा त्रिपदा महादेवी गायत्री के साथ उसे प्रसन्न करने के लिए—।।६-८।।

सर्वदेवस्तुतः सर्वदेवताहृदयेश्वरः।
अस्तु वै (?वम्) श्लक्ष्णया वाचा भविष्यद्गुणनामभिः।।९।।

सर्वदेवताहृदयेश्वर सर्वदेवस्तुतः अहम् श्लक्ष्णया वाचा भविष्यद् गुण-नामभिः अस्तुवम्।

सभी देवों का हृदयेश्वर सभी देवों द्वारा वन्दना किया गया मैं उसके गुणों एवं नामों से अत्यन्त विनम्र वाणी से उसकी प्रार्थना किया।।९।।

ॐ अनादिरूपे चिच्छक्तिज्ञानानन्दप्रदायिनि।
आदिदेवार्चिते नित्ये राधिके शरणं भव।।१०।।
इन्दुकोटिसमानास्ये इन्दीवरदलेक्षणे।
ईश्वरीशानजननि राधिके त्वं भजस्व माम्।।११।।

ओउम् आदिदेवार्चिते! अनादिरूपे! ज्ञानानन्दप्रदायिनि चित्शक्ति नित्ये ! राधिके! शरणम् भव। इन्दुकोटिसमानास्ये इन्दीवरदलेक्षणे! ईश्वरि! ईशानजननि राधिके! त्वम् माम् भजस्व।

आदिदेव द्वारा वन्दनीय, अनादि रूप वाली चित्! शक्ति ज्ञान और

आनन्द प्रदान करने वाली नित्या! हे राधिके! मेरी शरण बनो। करोड़ों चन्द्रमाओं के समान मुख वाली!, कमलदल के समान नेत्रों वाली! ईशान की जननी! ईश्वरी! राधिके! तुम मुझे प्राप्त करो।।१०-११।।

उज्ज्वले उज्ज्वलरसप्रिये परमदुर्लभे।
ऊर्ध्वाऽधोव्यापिनीचारुतनुश्रीजितमन्मथे ।।१२।।
ऋतुषट्कसुखामोदयुक्ताङ्गेऽनङ्गवर्धिनि ।
ऋक्ष(?अक्ष)मालाधरे धीरे राधिके त्वं भजस्व माम्।।१३।।

उज्ज्वले! उज्ज्वलरसप्रिये! परमदुर्लभे! अधः ऊर्ध्वः व्यापिनी चारुतनुश्रीजितमन्मथे! ऋतुषट्कसुखामोदयुक्ताङ्गे! अनङ्गवर्धिनि! अक्षमालाधरे। धीरे! राधिके! त्वम् माम् भजस्व।

हे उज्ज्वल! हे उज्ज्वल रस से प्रेम करने वाली, परम दुर्लभ! नीचे और ऊपर को व्याप्त, सुन्दर शरीर वाली शोभा से कामदेव को जीतने वाली! छः ऋतुओं की सुन्दर सुखकर गन्ध से युक्त शरीर वाली, अनङ्ग का वर्धन करने वाली, अक्षमाला का धारण करने वाली हे धीरे राधिके! तुम मुझे प्राप्त करो।।१२-१३।।

एकानेकस्वरूपाऽसि नित्यानन्दस्वरूपिणी।
ॐकारानन्दहृदये राधे किं मामुपेक्षसे।।१४।।
ओमित्येकाक्षराकारे क्षराक्षरपरापरे।
ॐकारध्वनिसम्भूतानन्दरूपे निरामये।।१५।।
बिन्दुरूपे निरालम्बे परब्रह्मस्वरूपिणि।
अप्यधिष्ठानरूपायै शब्दातीते नमोऽस्तु ते।।१६।।

एक-अनेक-स्वरूपा नित्य-आनन्द-स्वरूपिणी असि ॐकारानन्दहृदये राधे माम् किम् उपेक्षसे। ओ३म् इति एकाक्षर-आकारे क्षराक्षरपरापरे ॐकारध्वनिसम्भूत-आनन्दरूपे निरामये बिन्दुरूपे निरालम्बे परब्रह्मस्वरूपिणि शब्दातीते अपि अधिष्ठानरूपायै ते नमः अस्तु।

आप एक और अनेक रूपों वाली हैं। नित्य और आनन्दस्वरूपिणी हैं। ॐकार की ध्वनि से आपके हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है। ऐसी हे राधे! आप मेरी क्यों उपेक्षा करती हैं। आप ओ३म् इस एकाक्षर के रूप वाली हैं। आप क्षर और अक्षर से परे हैं। ॐकार की ध्वनि से उत्पन्न आनन्द रूप वाली हैं। आप निरामय और बिन्दुरूप हैं। निरालम्ब परब्रह्म-स्वरूपा हैं। आप शब्द से परे हैं। अधिष्ठानरूपा आपके लिए मैं प्रणाम करता हूँ।।१४-१६।।

कमले कालिकाकान्ते कुटिलकुन्तले वरे।
कामप्रदे कामिनि त्वं कामुकं किङ्करं कुरु॥१७॥
खरांशुकोटिसङ्काशे खञ्जरीटविलोचने।
खले रम खलीकारे खेलस्व खगवाहने॥१८॥
गलन्मदगजग्रामगमने गणनायिके।
गगनाब्जगते गीते गच्छ मां गरुडध्वजम्॥१९॥

कमले कालिकाकान्ते कुटिलकुन्तले कामप्रदे वरे कामिनि! त्वम् कामुकं किङ्करं कुरु। खरांशुकोटिसंकाशे खञ्जरीटविलोचने खगवाहने खले रम खली-कारे खेलस्व। गलन्मदगजग्रामगमने गणनायिके गगनाब्जगते गीते मां गरुडध्वजम् गच्छ।

हे कमले! हे कालिका की कान्ते! हे कुटिल केशों वाली! काम देने वाली श्रेष्ठ कामिनि! तुम कामुक को अपना सेवक बना लो। करोड़ों सूर्यों के समान तेज वाली खञ्जरीट (=खञ्जन पक्षी) के समान नेत्रों वाली! खगवाहने! मेरे साथ ही रमण करो। मुझसे दुर्व्यवहार करने करने वाली तुम मेरे साथ खेलो। टपकते हुए मद वाले गजसमूहों के समान गति वाली हे गणनायिके! सूर्य के अस्त हो जाने पर गान करने योग्य राधिके! मुझ गरुड़ध्वज को प्राप्त हो जाओ॥१७-१९॥

घर्मबिन्दुशोभितास्ये घूर्णमानाक्षिघुर्घुरि।
घनसारेण घटिते घ्राणाग्रगजमौक्तिके॥२०॥
चारुचन्दनचर्चाङ्गि चराचरविचारिणि।
चकोराक्षिचञ्चलाभे मां किं चकर्थ चञ्चलम्॥२१॥

घर्मबिन्दुशोभितास्ये घूर्णमानाक्षिघुर्घुरि! घनसारेण घटिते घ्राणाग्रगज-मौक्तिके! चारुचन्दनचर्चाङ्गि चराचरविचारिणि चकोराक्षिचञ्चलाभे किम् माम् चञ्चलम् चकर्थ।

स्वेदबिन्दुओं से शोभित मुख वाली, चञ्चल नेत्रों से निरन्तर घूरने वाली, कर्पूर से रचित शरीर वाली, नासिका के अग्रभाग में गजमुक्ता को धारण करने वाली, सुन्दर चन्दन से चर्चित अंग वाली, चराचर में विचरण करने वाली, चकोर के नेत्र के समान चञ्चल आभा वाली, विद्युत् के समान आभा वाली, मुझे क्यों चंचल कर रही हो॥२०-२१॥

छन्दांसि छद्ममानुष्या छटया छादितानि ते।
छदप्रिये छोटिकया छविशक्तिनिभा भव॥२२॥

जगज्जननि जन्तूनां जीवातो जन्मवर्जिते।
जलजास्ये जलेशानि मां जानीहि जनप्रिये॥२३॥

ते छन्दांसि छद्ममानुष्या छटया छादितानि। छदप्रिये! छोटिकया छवि-शक्तिनिभा भव। जलजास्ये जलेशानि जन्मवर्जिते जन्तूनाम् जीवात् जगज्जननि जनप्रिये मां जानीहि।

तुमने उन वेदों का मानवीय छद्म छटा से रक्षा की है। हे छदप्रिये! चुटकी के द्वारा छविशक्ति के समान हो जाओ। कमलवदने, जल की स्वामिनि! आज तुम प्राणियों की जीवनी शक्ति हो। हे जगज्जननी! जनप्रिये! मुझे अच्छी तरह समझो॥२२-२३॥

झटिति ज्ञानविदिते झञ्झाझर्झररूपिणि।
झिण्टीकुसुमसंशोभा(?भे)पराभाविनि मामव॥२४॥
टं टं टमिति टङ्कारिघण्टोल्लसितमानसे।
टलस्थलाधारस्थाने त्राहि मां शरणागतम्॥२५॥
ठःद्वयानन्दसङ्काशे चकोरप्रियकारिणि।
ठकाराक्षररूपे त्वं त्राहि मां काममोहितम्॥२६॥

झटिति ज्ञानविदिते! झञ्झाझर्झररूपिणि! झिण्टीकुसुमसंशोभेपराभाविनि माम् अव। टम् टम् टम् इति टङ्कारि घण्टोल्लसितमानसे! टल-स्थल-आधार-स्थाने मां शरणागतम् त्राहि। चकोरप्रियकारिणि ठःद्वयानन्दसंकाशे ठकाराक्षर-रूपे! त्वम् काममोहितम् माम् त्राहि।

ज्ञान के द्वारा शीघ्र जानने योग्य, झञ्झा (तीव्र वायु) की झर्झर गतिरूपी! झिण्टी के पुष्प की-सी शोभा वाली, पराभाविनि, हे राधिके! मेरी रक्षा करो। टं टं टंकार करने वाले घण्टा की ध्वनि से आनन्दित मन वाली!, हे राधिके! आप जड़ एवं चेतन की आधारभूत हो। आप शरण में आये हुए मेरी रक्षा करो। चकोर को मुखचन्द्र का दर्शन कराकर आनन्द देने वाली! आप स्वाहा-स्वाहा के आनन्द के समान हैं। आपका रूप ठकार अक्षर का है, आप काममोहित मेरी रक्षा करो॥२४-२६॥

डिं डिं डिं डिमडाङ्कारि वेणुवादविनोदिनि।
विनोदय डकाराख्ये स्मरेण चिरदुःखितम्॥२७॥
ढक्काराधननन्दिचित्ते ढुण्ढिनाथार्चिताङ्घ्रिके।
ढकारवर्णरूपे त्वमात्मानमुपढौकय॥२८॥
तरुणी तरुणानन्द(?न्दे) तापिनि तनुरूपतः।
तपस्विनां तपोगम्ये तत्त्वं तारिणि तारय॥२९॥

डिं डिं डिं डिमडाङ्कारि! वेणुवादविनोदिनि! डकाराख्ये स्मरेण चिरदुःखितम् विनोदय। ढक्काराधननन्दिचित्ते! ढुण्डिनाथ-अर्चिताङ्घ्रिके! ढकारवर्णरूपे त्वम् आत्मानम् उपढौकय। तरुणी-तरुणानन्दे तनुरूपतः तापिनि तपस्विनाम् तपोगम्ये तारिणि। तत् त्वम् तारय।

डमरू के डिं डिं ध्वनि से आनन्द का अनुभव करने वाली! वेणुवादन से विनोदित होने वाली, डकार नाम वाली हे राधिके! दीर्घकाल से काम-पीड़ित मुझको आनन्द प्रदान करो। ढक्का अर्थात् डमरू की आराधना से प्रसन्नचित्त! ढुण्ढिनाथ (गणेश) द्वारा वन्दित चरणों वाली! ढकार वर्ण के रूप वाली हे राधिके! तुम अपने को प्रकट करो। हे तरुणी! नवयौवने! अपने शरीर के रूप से मुझे तापित करने वाली! तपस्वियों के लिए तप से गम्य! हे संसारसागर से पार करने वाली! हे राधिके! मेरा उद्धार कर दो।।२७-२९।।

स्थिरानन्दे स्थिरप्रज्ञे स्थिरप्रेमरसप्रदे।
स्थिरसर्वेश्वररूपे त्वं (?त्वम)स्थिरं मां स्थिरं कुरु।।३०।।
देवाधिदेवतामौले दीव्यन्ती दिविदीपिका।
दयामयि दकाराख्ये दूनं नूनं दयस्व माम्।।३१।।
धन्ये धर्मप्रिये धीरे धर्माधर्मविवर्जिते।
धराधरधरोद्धारधुरीणे धर माऽधुना।।३२।।

स्थिरानन्दे! स्थिरप्रज्ञे! स्थिरप्रेमरसप्रदे! स्थिरसर्वेश्वररूपे! अस्थिरम् माम् स्थिरम् कुरु। देवाधिदेवतामौले! दीव्यन्ती दिविदीपिका दयामयि! दकाराख्ये नूनम् मां दूनम् दयस्व। धन्ये! धर्माधर्मविवर्जिते! धराधरधर-उद्धारधुरीणे अधुना मां धर।

स्थिर आनन्द वाली, स्थिर बुद्धि वाली, स्थिर प्रेमरस प्रदान करने वाली हे सर्वेश्वरी! स्थिरे! राधिके! मुझ अस्थिर चित्त को स्थिरता प्रदान करो। देवता के आद्य देव के मौलिक सदृश्य हे राधे! आप आकाश के सूर्य की तरह तेजयुक्त हैं। हे दयामयि! हे दकार के नाम वाली! आप निश्चित ही मुझ दुःखी पर दया करो। हे धन्या! धर्मप्रिये! धीरे! धर्माधर्मविवर्जिते! राधिके! गिरिराज को धारण करने वाले श्रीकृष्ण का उद्धार करने में सर्वश्रेष्ठ हे राधिके! अब मुझे धारण करो।।३०-३२।।

नित्यानित्ये निरालम्बे नित्यानन्दलतोन्नते।
नमस्ते नर्तने नीलनयने नयशालिनि।।३३।।
परब्रह्मस्वरूपाऽसि परमानन्दवन्दिते।
पाथोजपुलिनप्रीते पुनीहि पथिकं प्रिये।।३४।।

फुल्लाम्भोजातवदने फलरूपिणि फेत्कृते।
फलत्कपालफलके फलिनं त्वं कुरुष्व माम्॥३५॥

नित्यानित्ये! निरालम्बे! नित्यानन्दलतोन्नते! नर्तने! नीलनयने! नयशालिनि! ते नमः। परमानन्दवन्दिते! पाथोजपुलिनप्रीते! परब्रह्मस्वरूपा असि। प्रिये पथिकं पुनीहि। फुल्लाम्भोजातवदने! फेत्कृते! फलरूपिणि! फलत्कपालफलके! त्वम् मां फलिनम् कुरुष्व।

नित्य और अनित्य रूप वाली! निरालम्बे (आधाररहित) नित्य आनन्द की उन्नत लतिके! नर्तन के समय नील नेत्रों को धारण करने वाली नीति का पालन करने वाली हे राधिके! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यमुना के तट से स्नेह करने वाली आप परब्रह्मस्वरूपा हैं। हे प्रिये! यमुनातट-विहारी इस कृष्ण को पवित्र कर दो। पूर्ण विकसित कमल के समान मुख वाली, फलरूपिणी, फल तक पहुँचा देने वाली हे राधिके! तुम मुझे फलयुक्त कर दो॥३३-३५॥

ब्रह्मज्योतिःव्रते बाले वरुणालयवासिनि।
वरे चरय मां वीरे वचनामृतवर्षिणि॥३६॥
भावानन्दे भवानन्दे भावाभावविवर्जिते।
भवभाविनि भावानां भवनं भूतिभाविनि॥३७॥
मन्दमन्दस्मिते मुग्धे मधुराक्षरमोदिते।
माद्यन्ती मकरन्देन मालामपि मत्तामपि॥३८॥

ब्रह्मज्योतिःव्रते! बाले! वरुणालयवासिनि! वचनामृतवर्षिणि! वरे! वीरे! माम् चरय। भावानन्दे! भवानन्दे! भावाभावविवर्जिते! भवभाविनि! भावानां भवने! भूतभाविनि! मन्दमन्दस्मिते! मुग्धे! मधुराक्षरमोदिते! मत्ताम् अपि मालाम् मकरन्देन माद्यन्ती (मां फलिनं कुरु)।

हे ब्रह्मज्योतिरूपे! बाले! वरुणलोक में निवास करने वाली! वचनामृत की वर्षा करने वाली! हे श्रेष्ठ वीरे! मुझे प्राप्त हो जाओ। हे भाव के आनन्द में निमग्न! हे भव को आनन्द देने वाली ! भाव एवं अभाव से रहित!, संसार को उत्पन्न करने वाली!, भावों को जन्म देने वाली! तथा प्राणियों को उत्पन्न करने वाली हे राधिके! (मेरे ऊपर कृपा करो) मन्द-मन्द स्मित से युक्त हे मुग्धे! आप मधुर अक्षरों से प्रसन्न होने वाली हैं। उन्मत्त माला को भी आप अपने मकरन्द से उन्मादित बना देती हैं॥३६-३८॥

यज्ञालये यज्ञरूपा(?पे) योगिनां योगमूर्तिका(?के)।
यतिनां यत्त(?यात)पोलभ्या यायामि शरणं हि ताम्॥३९॥

रम्ये रक्तेक्षणे राधे राधिके रमणीरमे।
रामे मनोरमे रत्नमाले रम मया समम्॥४०॥

यज्ञालये यज्ञरूपे योगिनाम् योगमूर्तिके यतिनाम् या तपोलभ्या ताम् शरणम् हि यायामि। रम्ये! रक्तेक्षणे! राधे! रमणीरमे! राधिके! रामे! मनोरमे! रत्नमाले! मया समम् रम।

हे यज्ञालया! हे यज्ञरूपा! हे योगियों के लिए योग की मूर्ति! यतियों को तप से प्राप्त होने वाली, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। हे रमणीया! हे रक्त नेत्र वाली! रमणियों को रमण कराने वाली हे राधिके! हे रामे! हे मनोरमे! हे रत्नमाले! आप मेरे साथ रमण करें॥३९-४०॥

रेफस्तु सर्वमन्त्राणामाधारः कथ्यते बुधैः।
तस्याधानस्वरूपेयं तेन राधेति साध्यते॥४१॥
रेफस्तु वह्निराख्यातो यज्ञे वह्निः प्रतिष्ठिताः(?तः)।
देवाः प्रतिष्ठिता यज्ञे ततो वर्षं तदौदनम्॥४२॥
ततस्तु सर्वभूतानि नानावर्णाकृतीनि च।
सर्वं तदाधीयते यत्तेन राधेति कथ्यते॥४३॥

रेफः तु बुधैः सर्वमन्त्राणाम् आधारः कथ्यते। तस्य आधानस्वरूपा इयम्। तेन राधा इति साध्यते। रेफः वह्निः अख्यातः। वह्नि यज्ञे प्रतिष्ठितः। देवाः यज्ञे प्रतिष्ठिताः ततो वर्षम् ततः ओदनम्। ततस्तु सर्वभूतानि नानावर्णाकृतीनि तत् सर्वं तेन यत् आधीयते (अतः) राधा इति कथ्यते।

रेफ को विद्वान् लोग सभी मन्त्रों का आधार कहते हैं। उस रेफ को धारण करने वाली यह देवी राधा नाम से विख्यात है। रेफ को अग्नि का बीज कहते हैं। अग्नि यज्ञ में प्रतिष्ठित है। देवता यज्ञ में प्रतिष्ठित रहते हैं। उनसे वर्षा होती है। वर्षा से अन्न होता है। अन्न से अनेक रंग, अनेक आकृतियों वाले अनेक जीव पलते हैं? इन सबको अपने अन्दर धारण करने के कारण आप राधा कही जाती हैं॥४१-४३॥

नानाविधै रसैर्भावैर्जगत्स्थावरजङ्गमम्।
स्त्रष्टुं प्राप्ता मया त्वं हि राधिका कार्यसाधिका॥४४॥
मम देहस्थितैः सर्वैर्देवैर्ब्रह्मपुरोगमैः।
आराधिता यतस्तस्माद् राधेति परिकीर्तिते(?र्त्यसे)॥४५॥

नानाविधैः रसैः भावैः स्थावरजङ्गमम् जगत् स्त्रष्टुं मया प्राप्ता। त्वम् हि कार्यसाधिका (असि)। मम देहस्थितैः सर्वैः ब्रह्मपुरोगमैः देवैः यतः आराधिता तस्मात् राधा इति परिकीर्त्त्यसे।

अनेक रसों और भावों से जड़-चेतनरूप जगत् की सृष्टि करने के लिये तुमको मैंने पाया। सभी कार्य को सफल करने के कारण तुम राधिका हो। मेरे शरीर में स्थित सभी ब्रह्म आदि देवों द्वारा तुम्हीं आराधित होती हो; इसलिए तुम राधा कही जाती हो।।४४-४५।।

लक्ष्मी लक्षलक्षिते त्वं लक्ष्यलक्षणलक्षणे।
ललामललिते लास्य लीलालापिनि मामव।।४६।।
वासुदेवार्चिते विद्ये वेदवादबहिर्गते।
वरदे वसनावीते वलन्ती बलिनं कुरु।।४७।।

लक्षलक्षिते लक्ष्यलक्षणलक्षणे लक्ष्मीः ललामललिते लास्यलीलालापिनि त्वम् माम् अव। वेदवादबहिर्गते वरदे वसनावीते विद्ये वासुदेवार्चिते वलन्ती बलिनम् कुरु।

लक्ष को प्राप्त करने वाली! आप सुलक्षणों की परिभाषा हैं। आप साध्या लक्ष्मी हैं। आप ललाम एवं ललित हैं। नृत्य लीला का बोध कराने वाली हैं। आप मेरी रक्षा करें। वासुदेव के द्वारा पूजित हे वेद के वादों अर्थात् सिद्धान्तों से परे रहने वाली! हे वरदायिनि! वसनावीत अर्थात् वस्त्रों से शोभायमान विद्या अनुरक्त होती हुई आप मेरे पर कृपा वर्षाते हुए मुझे बल प्रदान करें।।४६-४७।।

शब्दातीते शब्दरूपे शान्ते सर्वादिरूपिणि।
शाश्वती त्वं शक्तिकले श्रय मां शक्तिशालिनम्।।४८।।
समस्तस्य प्रिये साध्वि सीमन्तोपरिसंस्थिते।
सकले सकलेशानि नित्यं मे स्याः सहायिनि।।४९।।

शब्दार्तीते शब्दरूपे शान्ते सर्वादिरूपिणि त्वम् शाश्वती शक्तिकाले शक्तिशालिनम् माम् श्रय। समस्तस्य प्रिये सीमन्तोपरिसंस्थिते सकले सकलेशानि साध्वि नित्यम् मे सहायिनि स्याः।

शब्द से परे शब्द रूप वाली हे शान्ते! आप सबसे पहले रूप ग्रहण करने वाली हैं। आप कालातीत हैं। शक्ति की कला हैं। आप मुझ शक्तिशाली को आश्रय प्रदान करें। आप सबके लिए प्रिय हैं। सबके मौलि पर आपका स्थान है। हे पूर्ण सबकी स्वामिनि! हे साध्वि! नित्य मेरी सहायक बनो।।४८-४९।।

षट्पदी षट्पदी चञ्चद् वनमालाविभूषिते।
षड्ऋतूत्सवसम्पन्ने षण्मुखेशे दयस्व माम्।।५०।।

षट्चक्रैकनिवा(?कवा)सिनि षड्दर्शनविदर्शिते।
षट्कर्मणां कर्मषट्कविधात्री षड्रिपुञ्जया॥५१॥

षट्पदी षट्पदीचंचद्वनमालाविभूषिते! षड्ऋतु-उत्सव सम्पन्ने! षण्मुखेश! माम् दयस्व। षड्दर्शनविदर्शिते षट्चक्रैकवासिनि! षट्कर्मणाम् कर्मषट्क विधात्री षड्रिपुञ्जया।

छः पैरों वाली चंचल भ्रमरियों से गुंजित, वनमाला से विभूषित, षडऋतुओं के उत्सवों से सम्पन्न, षण्मुख अर्थात् कार्त्तिकेय की स्वामिनि! मुझ पर दया करो। छः दर्शन आपके ही गुणों का गान करते हैं। आप षट्चक्रों में निवास करती हैं। षट्कर्मों का कर्मत्व आपसे ही पूरा होता है। आप काम, क्रोध आदि षड्रिपुओं को जीतने वाली हैं॥५०-५१॥

हंसरूपे हेमगर्भे हंसगामिनि हारिणि।
हंसकारकृतप्राणे कथं हरसि मां क्षणात्॥५२॥
क्षमारूपे क्षमाशीले क्षीणमध्ये क्षणान्विते।
अक्षमालाधरे देवि सिद्धविद्ये नमोऽस्तु ते॥५३॥

हंसरूपे! हेमगर्भे! हंसगामिनि! हंसकारकृतप्राणे! हारिणि! कथम् माम् क्षणात् हरसि। क्षमारूपे! क्षमाशीले! क्षीणमध्ये! क्षणान्विते! सिद्धविद्ये! अक्षमालाधरे देवि! ते नमः अस्तु।

हे हंस के समान रूप (धवलता) वाली! हे हेमगर्भा! हंस की तरह गमन करने वालों को भी पराजित करने वाली! हंसकार (ब्रह्म) रूप वाली! क्यों क्षणमात्र में मेरा हरण करती हो? हे क्षमाशीला क्षमारूपा क्षीणमध्या कालरूपा सिद्धा विद्या अक्षमाला को धारण करने वाली देवि राधिके! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥५२-५३॥

एवं स्तुता मया देवी कृष्णेन परमात्मना।
प्रससाद रसमयी योगिनामपि दुर्लभा॥५४॥

एवम् मया परमात्मना कृष्णेन स्तुता योगिनाम् अपि दुर्लभा रसमयी सा देवी प्रससाद।

इस प्रकार से मुझ परमात्मा कृष्ण द्वारा प्रार्थना किए जाने पर योगियों को भी परम दुर्लभ वह रसमयी देवी राधा प्रसन्न हो गयी॥५४॥

राधां (?धा) निरीक्ष्य सप्रेमदृष्ट्या सपदि मामपि।
समाश्वास्यैकमनसा बद्धया ह्यतिमुद्रया॥५५॥
वामेन पाणिपद्मेन पद्मयुक्तेन शोभना।
आत्मानं दातुकामापि किञ्चिन्नोवाच लज्जया॥५६॥

सपदि सप्रेमदृष्ट्या राधा माम् अपि संनिरीक्ष्य बद्धया अतिपुष्ट्या एकमनसा समाश्वास्य पद्मयुक्तेन वामेन पाणिपद्मेन अभययुक्तेन शोभना आत्मानम् दातुकामा अपि लज्जया किञ्चित् न उवाच।

शीघ्र ही प्रेमपूर्ण दृष्टि से राधा ने मेरी ओर देखा और अति बद्ध मुद्रा से एक मन होकर मुझे आश्वासन दिया। और अतिशोभना वह राधा अपने बाँयें पाणिपद्म से स्वयं को देने के लिए आतुर होते हुये भी लज्जा के कारण कुछ भी नहीं बोली।।५५-५६।।

ततोऽहं च जगत्स्वामी तस्या रूपेण मोहितः।
निक्षिप्य मुरलीं भूमौ तामालिङ्गितुमुत्तमाम्।।५७।।
एतस्मिन्नेव समये तद्देहप्रतिबिम्बतः।
चतुर्भुजा कापि शक्तिः तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत्।।५८।।

ततः जगत्स्वामी अहम् तस्या रूपेण मोहितः सन् मुरलीम् भूमौ निक्षिप्य उत्तमाम् ताम् आलिङ्गितुम् (प्रवृत्तः)। एतस्मिन्नेव समये तत् देहप्रतिबिम्बतः कापि चतुर्भुजा शक्तिः तिष्ठ तिष्ठ इति च अब्रवीत्।

इसके बाद त्रैलोक्यनाथ मैं उसके रूप को देखकर मोहित हो गया और मुरली को भूमि पर फेंक कर उसका आलिङ्गन करने के लिए उठा लिया। उसी समय उसके शरीर के प्रतिबिम्ब से कोई चार भुजा वाली शक्ति प्रकट हुई और 'रुको रुको' इस प्रकार मुझसे बोली।।५७-५८।।

इमामेकाकिनीं प्राप्य बलात्त्वं रन्तुमिच्छसि।
सापि पाशाङ्कुशधरा वराभयकराऽपरा।।५९।।
रक्तवर्णा त्रिनेत्रा च रक्ताम्बरसमुज्ज्वला।
रक्ताभरणमालाढ्या समुत्तुङ्गस्तनद्वया।।६०।।

त्वम् इमाम् एकाकिनीम् प्राप्य बलात् रन्तुम् इच्छसि। सा अपरा अपि पाशाङ्कुशधरा वराभयकरा रक्तवर्णा त्रिनेत्रा रक्ताम्बरसमुज्ज्वला रक्ताभरण-मालाढ्या समुत्तुङ्गस्तनद्वया।

तुम इसे अकेले पाकर बलपूर्वक इसके साथ रमण करना चाहते हो। इससे अभिन्न वह भी पाश, अंकुश आदि को धारण करने वाली, हाथ में वर एवं अभय मुद्रा धारण करने वाली, रक्तवर्ण की तीन नेत्रों वाली, रक्ताम्बर धारण करने वाली, रक्त आभरणों और मालाओं को अपने विशाल दोनों स्तनों पर धारण किए हुए थी।।५९-६०।।

रत्ननूपुरसम्पद्भ्यां पद्भ्यां सम्पाद्य वेदिकाम्।
नानारत्नमयीं दिव्यां ज्वलज्ज्वलनसन्निभाम्।।६१।।

जपन्तीं मोहनं मन्त्रं क्रींकारं भुक्तिमुक्तिदम्।
आकर्षयन्ती नितरामङ्कुशेन मनो मम॥६२॥
बन्धयन्ती प्रेमदाम्ना हसन्ती वामपाणिना।
मा भयं कुरु सर्वेश प्राप्स्यसीमां वराङ्गनाम्॥६३॥

रत्ननूपुरसम्पद्भ्याम् पद्भ्याम् नानारत्नमयीम् ज्वलज्ज्वलनसन्निभाम् दिव्याम् वेदिकाम् सम्पाद्य भुक्तिमुक्तिदम् मोहनम् क्रींकारम् मन्त्रम् जपन्तीम् अंकुशेन मम मनः नितराम् आकर्षयन्ती हसन्ती प्रेमदाम्ना बन्धयन्ती वामपणिना सर्वेश मा भयम् कुरु इमाम् वराङ्गनाम् प्राप्स्यसि।

रत्नों से जटित नूपुरों को चरणों में धारण करने वाली वह; अनेक रत्नों से बनी हुई प्रज्ज्वलित अग्नि के समान आभा वाली; दिव्य वेदिका का निर्माण करके भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाले, सबका सम्मोहन करने वाले, क्रींकारयुक्त मन्त्र का जप करती हुई अंकुश से मेरे मन को अत्यधिक आकर्षित करती हुई; हटाती हुई; प्रेम की रस्सी से मुझे बांधती हुई; वाम पाणि से मुझे सम्बोधित करती हुई बोली—हे सर्वेश! डरो मत; तुम इस वराङ्गना को प्राप्त करोगे॥६१-६३॥

वन्दितां सकलैर्देवैः सर्वशक्तिशिखामणिम्।
वरं दास्यामि ते कृष्ण प्रसन्नवदनो भव॥६४॥
प्रकृतिस्त्वं पुमांश्च त्वं त्वमहं त्वमियं विभो।
आत्मारामोऽसि भगवन् विमोहोऽयं कुतस्त्वयि॥६५॥

सकलैः देवैः वन्दिताम् सर्वशक्तिशिखामणिम् प्राप्स्यसि इति ते वरम् दास्यामि कृष्ण! प्रसन्नवदनो भव। विभो! त्वम् प्रकृतिः त्वम् पुमान् त्वम् अहम् त्वम् इयम् विभो भगवन् आत्मारामः असि। त्वयि अयम् विमोहः कुतः?

सभी देवों के द्वारा वन्दनीय, सभी शक्तियों की शिखामणि इस रमणी को तुम प्राप्त करोगे—यह मैं तुम्हें वर देती हूँ। हे कृष्ण! प्रसन्नमुख हो जाओ। हे विभो! तुम प्रकृति और पुरुष दोनों हो। मैं और यह बाला आपका ही रूप हैं। आप तो आत्माराम हैं; तुम्हें इस प्रकार का विमोह कहाँ से हो गया?॥६४-६५॥

इत्येवं च प्रजल्पन्ती कल्पयन्ती सुकल्पनाम्।
आविराम महादेवी सर्वशक्तिशिरोमणिः॥६६॥

इति एवम् च प्रजल्पन्ती सुकल्पनाम् कल्पयन्ती सर्वशक्तिशिरोमणिः महादेवी आविराम।

इस प्रकार कहती हुई सुन्दर कल्पनाओं की कल्पना करती हुई वह सर्वशक्तिशिरोमणि महादेवी सामने प्रकट हो गयी।।६६।।

श्रीकृष्ण उवाच—

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो जाताऽसि सुन्दरि।
किमर्थमिह वाऽऽयाता कथ्यतां मा विलम्ब्यताम्।।६७।।

कञ्जपलाशाक्षि! त्वम् का? सुन्दरि! कुतः जाता असि? इह वा किमर्थम् आयाता; कथ्यताम् मा विलम्ब्यताम्।

श्रीकृष्ण ने कहा—कमलदल के समान विशाल नेत्र वाली, हे सुन्दरि! तुम कौन हो? तुम कहाँ से उत्पन्न हुई हो? यहाँ क्यों आयी हो? मेरे प्रश्नों का समाधान करो, विलम्ब मत करो।।।६७।।

भुवनेश्वरी उवाच—

अहमस्या महादेव्या द्वितीया मूर्तिरुत्तमा।
महामायाऽस्मि देवेश जगन्मोहनरूपिणी।।६८।।

अहम् अस्याः महादेव्याः उत्तमा द्वितीया मूर्तिः। देवेश! जगन्मोहनरूपिणी महामाया अस्मि।

भुवनेश्वरी ने कहा—मैं इस महादेवी की ही उत्तमा द्वितीया मूर्ति हूँ। हे देवेश! मैं जगत् को मोहित करने में समर्थ महामाया हूँ।।६८।।

तव वक्त्रोदितां श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिरसायनीम्।
इहाऽऽयातास्मि वरद वरं दातुं समुद्यता।
किमिच्छसि जगत्स्वामिंस्तुभ्यं दास्यामि तद्विभो।।६९।।

तव वक्त्रोदिताम् श्रुतिरसायनीम् स्तुतिम् श्रुत्वा इह आयाता अस्मि। हे वरद! (अहम्) वरम् दातुम् समुद्यता। जगत् स्वामिन्! किम् इच्छसि? विभो! तद् तुभ्यम् दास्यामि।

हे वरद! तुम्हारे मुख से उत्पन्न श्रुतिरसायनरूप स्तुति को सुनकर मैं यहाँ आयी हूँ। मैं तुम्हें वर देना चाहती हूँ। हे जगत् के स्वामी! क्या चाहते हो? विभो! मैं वह वस्तु तुम्हें प्रदान करूँगी।।६९।।

श्रीकृष्ण उवाच—

प्रसन्ना यदि मे देवी (?वि) वरमेकं प्रयच्छतु।
असौ भवतु सुप्रीता गौराङ्गी विश्वमोहिनी।।७०।।
तव प्रसादात् यद्येषा वश्या मम भवत्युत।
ममापि पूज्या भवती भविता भुवनेश्वरी।।७१।।

हे देवि! यदि मे प्रसन्ना एकम् वरम् प्रयच्छतु। असौ विश्वमोहिनी गौराङ्गी सुप्रीता भवतु। यदि एषा तव प्रसादात् मम वश्या भवति उत भवती भुवनेश्वरी ममापि पूज्या भविता।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवि! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही वर प्रदान कीजिए कि यह विश्वमोहनी गौराङ्गी मुझ पर प्रसन्न हो जाय। यदि यह आपकी कृपा से मेरी वशगामिनी हो जायेगी तो हे भगवती भुवनेश्वरी! आप भी मेरे लिए पूज्या हो जायेंगी।।७०-७१।।

भुवनेश्वरी उवाच—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् प्रधानपुरुषेश्वर।
भ(?भ)विता तव वश्येयं राधा त्रैलोक्यसुन्दरी।।७२।।
यदा त्वया वर्णमालास्तुतिर्वश(?शं)करी कृता।
तदैवेयं महादेवी स्वयं तव वशं गता।।७३।।
संनिरीक्ष्य भवद्रूपं त्रैलोक्यातिमनोहरम्।
आकर्ण्य वंशीनिनदं का स्त्री न स्याद्विमोहिता।।७४।।

हे प्रधानपुरुषेश्वर ! महायोगिन्! कृष्ण! कृष्ण! इयम् त्रैलोक्यसुन्दरी राधा तव वश्या भविता। त्वया यदा वशंकरी वर्णमालास्तुतिः कृता तदा एव इयम् महादेवी स्वयम् तव वशं गताः त्रलोक्यातिमनोहरम् भवद् रूपम् संनिरीक्ष्य वंशीनिनदम् आकर्ण्य का स्त्री विमोहिता न स्यात्।

श्रीभुवनेश्वरी ने कहा—हे प्रधान पुरुषों के ईश्वर महायोगिन्! श्रीकृष्ण! यह त्रैलोक्यसुन्दरी राधा आपके वश में होगी। जब आपने वश में करने वाली वर्णमाला स्तुति की तभी से यह स्वयं महादेवी तुम्हारे वश में हो गयी। त्रैलोक्य में अति मनोहर आपके रूप को देखकर तथा आपकी वंशी का नाद सुनकर कौन स्त्री है, जो आपके वश में न हो जाय।।७२-७४।।

त्वया प्रोक्तमिदं स्तोत्रं राधामोहनमोहनम्।
यः पठेत्तस्य तुष्टाऽसौ प्रदास्यति मनोगतम्।।७५।।
नूनं तद्वशगा नित्यं विश्वं च सचराचरम्।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभाः सदा।।७६।।

यः त्वया प्रोक्तम् राधामोहनम् इदम् स्तोत्रम् पठेत् तस्य असौ तुष्टा (सती) मनोगतम् प्रदास्यति। नूनम् सचराचरम् विश्वम् नित्यम् तद्वशगाः तस्य दर्शनमात्रेण सदा वादिनः निष्प्रभाः (भविष्यन्ति)।

जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा गाये हुए राधा को मोहित करने वाले इस स्तोत्र को पढ़ेगा, उससे प्रसन्न होकर यह देवी उसकी इच्छा पूर्ण करेगी। निश्चय

ही चर और अचर यह सारा विश्व उसके वश में हो जायेगा। उसके दर्शनमात्र से प्रतिवादी सदा प्रभाहीन हो जायेंगे।।७५-७६।।

ध्यात्वा देवीं जगद्योनिमादिभूतां सनातनीम्।
राधां त्रैलोक्यविजयां जयां सर्वसुखप्रदाम्।।७७।।
जपम(?न्न)ष्टाऽक्षरं मन्त्रं पठन् स्तोत्रं समाहितः।
प्रणमेत् परया भक्त्या करस्थास्तस्य सिद्धयः।।७८।।
धर्मार्थकाममोक्षाद्या अणिमालघिमादयः।

यः जगद्योनिम् आदिभूताम् सर्वसुखप्रदाम् सनातनीम् जयाम् त्रैलोक्यविजयाम् राधाम् देवीम् ध्यात्वा समाहितः (सन्) स्तोत्रम् पठन् अष्टाक्षरम् मन्त्रम् जपन् परया भक्त्या प्रणमेत् तस्य अणिमालघिमादयः सिद्धयः धर्मार्थकाममोक्षाद्याः करस्थाः (भविष्यन्ति)।

जो इस संसार की कारण आदिभूता, सर्वसुखप्रदा, सनातनी, जया, तीनों लोकों को जीतने वाली देवी राधा का ध्यान करता हुआ एकान्तचित्त से स्तोत्र का पाठ करता हुआ अष्टाक्षर मन्त्र का जप करेगा और अत्यन्त भक्ति से प्रणाम करेगा, उसको अणिमा लघिमा आदि सिद्धियाँ एवं धर्म अर्थ आदि पुरुषार्थ प्राप्त हो जायेंगे।।७७-७८।।

अथ तस्या महामन्त्रं कथयामि शृणुष्व तम्।।७९।।
क्लीबं वह्निसंयुक्तमनन्तं तदनन्तरम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं राधिकायै ततः परम्।।८०।।
हृदयान्तो महादेव्या मनुरष्टाक्षरः परः।
अस्य स्मरणमात्रेण किन्न सिध्यति साधनम्।।८१।।

अथ तस्याः महामन्त्रम् कथयामि; तम् शृणुष्व। क्लीबम् अन्तम् वह्निसंयुक्तम् तदनन्तरम् अनन्तम् नादबिन्दुकलायुक्तम् ततः परम् 'राधिकायै' हृदयान्तः महादेव्याः अष्टाक्षरः परः मनुः। अस्य स्मरणमात्रेण किम् साधनम् न सिध्यति ?

अब मैं उस देवी के महामन्त्र को कहता हूँ, उसे सुनो। आरम्भ में क्लीं (ॐ) कर उसके बाद वह्निसंयुक्त अनन्त बीज (=आ) को अन्त में रखकर उसे 'राधिकायै' और अन्त में हृदय (कहना चाहिए), नाद बिन्दु कला से युक्त करने से यह अद्भुत अष्टाक्षर मन्त्र होता है। उसके स्मरणमात्र से कौन ऐसा फल है जो सिद्ध न हो जाए। (मन्त्र—ॐ रां राधिकायै नमः)।।७९-८१।।

इदं स्तोत्रमसौ मन्त्रो यस्य वाचि प्रवर्तते।
त्रैलोक्यसुन्दरी राधा चित्ते यस्य सदा स्थिता॥८२॥
तस्य वाक्सिद्धिरतुला धनधान्यादिसम्पदः।
भविष्यन्ति न सन्देहो भुवनेशीवचो यथा॥८३॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधावशीकारे भुवनेश्युत्पत्तिर्भगवन्मुखविनिर्गता वर्णमालास्तुतिर्नामा चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

इदम् स्तोत्रम् असौ मन्त्रः यस्य वाचि प्रवर्तते यस्य च चित्ते त्रैलोक्यसुन्दरी राधा सदा स्थिता तस्य वाक्सिद्धिः अतुला धनधान्यादिसम्पदः भविष्यन्ति (अत्र) सन्देहः न यथा भुवनेशी वचः।

यह वर्णमाला स्तोत्र तथा यह अष्टाक्षर मन्त्र जिसकी वाणी में प्रवर्तित रहेगा तथा जिसके चित्त में त्रैलोक्यसुन्दरी श्रीराधा सदा निवास करेगी, उसे वाक्सिद्धि तथा अतुल धन-धान्यादि सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जायेंगी; इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि यह भुवनेश्वरी का वचन है॥८२-८३॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधावशीकार में भुवनेश्युत्पत्ति एवम् भगवन्मुखविनिर्गता वर्णमालास्तुति नामक चौदहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

पञ्चदशोऽध्यायः

दिव्यवृन्दावनोपाख्यानेगोलोक-निर्माणभुवनेश्वरीमोहनम्

श्रीबलराम उवाच—

स्तुत्यन्ते च महादेव्यास्त्वयि लब्धवरे सति।
किं कृतं भुवेश्वर्या त्वया वा किं तदुच्यताम्॥१॥

महादेव्याः स्तुति-अन्ते त्वयि लब्धवरे सति त्वया भुवनेश्वर्या वा किम् कृतम्? तद् उच्यताम्।

श्रीबलराम ने कहा—महादेवी की स्तुति के बाद महादेवी से वर मिल जाने पर तुमने तथा महादेवी भुवनेश्वरी ने क्या किया? यह बतलाइये॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ततोऽहं प्रकृतिं नित्यामुवाच भुवनेश्वरीम्।
देवि यस्ते वरो दत्तस्तथ्यं तं कुरु सुव्रते।
अन्यथा त्वादृशीनां च वचनं कीदृशं भवेत्॥२॥

ततः अहम् नित्याम् प्रकृतिम् भुवनेश्वरीम् उवाच—देवि सुव्रते ! ते यः वरः दत्तः तम् तथ्यम् कुरु अन्यथा त्वादृशीनाम् वचनम् कीदृशम् भवेत्।

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके बाद मैंने उस नित्या प्रकृति भुवनेश्वरी से कहा—हे देवि सुव्रते! तुमने जो वर प्रदान किया है, उसे सत्य करो; अन्यथा तुम्हारी जैसी शक्तियों की वाणी व्यर्थ हो जायेगी॥२॥

ब्राह्मण उवाच—

ततः कृष्णपरीक्षार्थं मनसा साऽप्यचिन्तयत्।
समस्तभुवनेशानी सदा त्रैलोक्यवन्दिता॥३॥
अयं विश्वेश्वरो देवो भवेद्वा न भवेदथ।
कथमस्मै वरो दत्तः किमर्थं विजने वने॥४॥
इत्याशङ्क्य पुनः साध्वी मेघगम्भीरया गिरा।
ईषद्धसितसुस्निग्धा जगाद भुवनेश्वरी॥५॥

ततः सदा त्रैलोक्यवन्दिता समस्तभुवनेशानी सा अपि कृष्णपरीक्षार्थम् मनसा अचिन्तयत्। अयम् विश्वेश्वरः देवः भवेत् अथवा न भवेद; विजने वने

किमर्थम् अस्मै कथम् वरः दत्तः इति आशंक्य साध्वी भुवनेश्वरी ईषत् हसित-सुस्निग्धा पुनः मेघगम्भीरया गिरा जगाद।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद सर्वदा त्रिभुवन द्वारा वन्दिता, समस्त भुवनों की स्वामिनी वह देवी श्रीकृष्ण की परीक्षा करने हेतु मन में विचार करने लगी कि यह विश्वेश्वर देव हैं भी या नहीं? इस विजन वन में मैंने इन्हें क्यों यह वर दे दिया। इस आशंका से उस साध्वी भुवनेश्वरी ने थोड़ा हँसती हुई पुनः मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा।।३-५।।

भुवनेश्वरी उवाच—

तया देव्यानन्दमय्या विहर्तुं यदि ते मनः।
भगवञ्छृणु भवेद्वाक्यं नानृतं कथयाम्यहम्।।६।।

यदि ते मनः तया आनन्दमय्या देव्या सह विहर्तुम् (अस्ति तर्हि) भवेद् वाक्यम् न अनृतम्।

भुवनेश्वरी ने कहा—हे भगवन्! यदि आपका मन उस आनन्दमयी देवी के साथ रमण करना चाहता है तो सुनो। मैं आपसे यह कहती हूँ कि मेरा वाक्य असत्य नहीं होगा।।६।।

नानाविभवसंयुक्तान् गृहानतिमनोहरान्।
विचित्ररत्नरचितान् सर्वर्तुसुखदान् कुरु।।७।।
रत्नभित्त्यावृतां वाटीं दिव्याट्टालकगोपुराम्।
राजतारकूटकूटकोष्ठां स्वर्णैरलङ्कृताम्।।८।।
रत्नकूटैर्महाहर्म्यैः महामरकतस्थलैः।
शोभितां सकलैश्वर्ययुक्तां मुक्तापरिष्कृताम्।।९।।

नानाविभवसंयुक्तान् विचित्ररत्नरचितान् सर्वत्रृतुसुखदान् अतिमनोहरान् गृहान् कुरु। स्वर्णैः अलंकृताम् राजतारकूटकूटकोष्ठाम् दिव्याट्टालकगोपुराम् रत्नभित्त्यावृताम् महाहर्म्यैः रत्नकूटैः महामरकतस्थलैः शोभिताम् सकलैश्वर्य-युक्ताम् मुक्तापरिष्कृताम् वाटीम् कुरु।

आप अनेकों वैभव से भरे हुए, विचित्र रत्नों से बने हुए, सभी ऋतुओं में सुख देने वाले अति मनोहर घर बनाइये; जो स्वर्ण से अलंकृत आरकूट कूटों के कोठों से शोभित हो; दिव्य अट्टालिका एवं गोपुर वाले हों। इनमें रत्न की दीवारों से घिरी हुई वाटिकायें हों। महामूल्यवान् रत्न एवं सोने तथा मरकत मणियों की भूमि हो। सभी ऐश्वर्यों से युक्त शोभाशाली मुक्ताओं से उज्ज्वल वाटिकायें हों।।७-९।।

असहायं जनं मत्वा न नारी वशगा भवेत्।
सहायानात्मनस्तुल्यान् नरः प्रेमैकभाजनान्॥१०॥
वाहनानि विचित्राणि शय्याभोजनभाजनम्।
नानावर्णानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च॥११॥
उपार्जय सुरङ्ग किं वरस्त्रीं रन्तुमर्हसि।
वसुमान् पशुमान् श्रीमान् गुणवान् कामिनीप्रिय॥१२॥

असहायम् जनम् मत्वा नारी वशगा न भवेत्। आत्मनः तुल्यान् प्रेमैकभाजनान् सहायान् नरान् कुरु। विचित्राणि वाहनानि नानावर्णानि वस्त्राणि दिव्यानि आभरणानि शय्याभोजनभाजनम् च उपार्जय। वसुमान् पशुमान् श्रीमान् गुणवान् कामिनीप्रियः सुरङ्ग! किम् वरस्त्रीम् रन्तुम् अर्हसि।

मनुष्यों को असहाय जानकर स्त्री उनके वश में नहीं होती। अतः अपने समान एकमात्र प्रेमरस से भरे हुए सहायकों को उत्पन्न करो। विचित्र वाहन, अनेक वर्णों के सुन्दर वस्त्र, दिव्य आभरण, शय्या, भोजन एवं पात्रों का निर्माण करो। हे कामिनीप्रिय हे धनवान् वसुमान् पशुमान् गुणवान् सुरङ्ग! तभी उस सुन्दर स्त्री के साथ रमण कर सकते हो॥१०-१२॥

तत्रैव वसुमान् श्रेष्ठः श्रीमद्गुणवतोरपि।
दृष्टस्त्वं गुणवान् कृष्ण वंशीवाद्यविशारदः॥१३॥
रूपवान् श्यामदेहोऽसि दृष्टमात्रविमोहनः।
गुणे वाप्यथवा रूपे न चास्ति सदृशस्तव॥१४॥
गुणिनं रूपिणं दृष्ट्वा त्वामहं मोहिताऽभवम्।
किं तु मे परया शक्त्या कुरु वित्तादिसञ्चयम्॥१५॥

श्रीमद्गुणवतः अपि तत्र वसुमान् एव श्रेष्ठः। ततः कृष्ण त्वम् वंशीवाद्यविशारदः गुणवान् दृष्टः। रूपवान् श्यामदेहः दृष्टमात्रविमोहनः असि। गुणे वा रूपे अपि अथवा तव सदृशः न च अस्ति। गुणिनम् रूपिणम् दृष्ट्वा अहम् त्वाम् मोहिता अभवम्। किम् तु मे परया शक्त्या वित्तादिसंचयम् कुरु।

श्रीमद् अर्थात् सुन्दर तथा गुणों से युक्त की अपेक्षा वसुमान् मनुष्य श्रेष्ठ होता है। हे कृष्ण! आप वंशीवादन में पारंगत हैं; अतः आप गुणवान् हैं—यह देख लिया। आप श्यामशरीर से अति रूपवान भी हैं। दर्शनमात्र से ही सबको मोहित कर लेते हैं। गुण और रूप में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आपको गुणी और रूपवान देखकर मैं तुम पर मोहित हो गयी। अतः मेरी शक्ति से धन आदि का संचय कर लीजिए॥१३-१५॥

यदीच्छस्यनया रन्तुं त्रैलोक्याऽकृष्टरूपया।
यदा त्वं सकलैश्वर्ययुक्तः समसहायवान्।
तदैवेयं महादेवी तव वश्या भविष्यति॥१६॥

यदि त्रैलोक्याकृष्टरूपया अनया रन्तुम् इच्छसि (तर्हि) यदा त्वम् सकलैश्वर्ययुक्तः समसहायवान् भविष्यसि तदा एव इयम् महादेवी तव वश्या भविष्यति।

यदि तुम त्रैलोक्य को वश में करने वाले रूप वाली इस महादेवी के साथ रमण करना चाहते हो तो तुम सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त हो जाओ और अपने समान ही तुम्हारे सहायक होने चाहिए। तभी यह महादेवी तुम्हारे वश में होगी॥१६॥

श्रीकृष्ण उवाच—

यदुच्यते महेशानि करिष्यामि न संशयः।
भवत्या वाक्सुधासारैः सारैस्तृप्तोऽस्मि नान्यथा॥१७॥
इत्युक्त्वा भुवनेशानी मत्पुरो निश्चला स्थिता।
ततोऽहं प्रहसद्वक्त्रो बलराम जगत्पते॥१८॥

भवत्या वाक्सुधासारैः सारैः तृप्तः अस्मि न अन्यथा। महेशानि यद् उच्यते तद् करिष्यामि (अत्र) न संशयः। इति उक्त्वा भुवनेशानी मत् पुरः निश्चला स्थिता। जगत्पते बलराम! ततः अहम् प्रहसद्वक्त्रः।

श्रीकृष्ण ने कहा—आपके वचनामृत के सार से मैं तृप्त हो गया हूँ; यह अन्यथा नहीं है। हे महेशानि! आप जो कहती हैं, वह मैं करूँगा—इसमें सन्देह नहीं है। हे जगत् के स्वामी बलराम! यह कहकर वह भुवनों की स्वामिनी मेरे सामने निश्चल स्थित हो गयी तथा मैं मुस्कराने लगा॥१७-१८॥

सस्मार पूर्वजान् गोपान् श्रीदामप्रभृतीन् हृदा।
ततः प्रादुर्बभूवुस्ते षडङ्गा(?पटवङ्गा) दिव्यतेजसः॥१९॥
दक्षिणांशाद् ब्राह्मणा मे सञ्जाता ब्रह्मवादिनः।
वामांशाच्च प्रशंसाढ्याः गावः शतसहस्रशः॥२०॥

ततः (अहम्) हृदा श्रीदामप्रभृतीन् पूर्वजान् गोपान् सस्मार। ते पट्वङ्गा दिव्यतेजसः प्रादुर्बभूवुः। मे दक्षिणांशाद् ब्रह्मवादिनः ब्राह्मणाः सञ्जाताः। वामांशाद् च शतसहस्रशः प्रशंसाढ्याः गावः (सञ्जाताः)।

इसके बाद मैंने हृदय में पूर्व में उत्पन्न श्रीदाम आदि गोपों का स्मरण किया। वे सभी दिव्य तेजस्वी सुन्दर पुष्ट अङ्गों वाले स्मरणमात्र से उत्पन्न

हो गये। मेरे दक्षिण भाग से वेदपाठी ब्राह्मण प्रकट हुए और वाम भाग से सैकड़ों-हजारों प्रशंसा की पात्र गायें प्रकट हो गयीं॥१९-२०॥

शृणु साधो महाश्चर्यं गोलोको रचितस्तथा।
लीलया सर्वधर्माश्च मयैव परमेष्ठिना॥२१॥
ये ब्राह्मणाः समुद्भूता देहान्मम महात्मनः।
ते वै सामर्ग्यजुर्वेदान् पठित्वा मङ्गलाक्षरैः॥२२॥
वास्तुयागं ततः कृत्वा स्थाने स्थाने समुद्गताः।
गृहारम्भेऽनर्घ्यमर्घ्यं दत्त्वा वृन्दावनक्षितौ॥२३॥
छन्दोभिर्विविधैर्वेदपाठं विदधुरुत्तमाः।

साधो! महाश्चर्यं शृणु। मया परमेष्ठिना लीलया एव गोलोकः रचितः तथा सर्वधर्माः (रचिताः)। मम महात्मनः देहात् ये ब्राह्मणाः समुद्भूताः ते मंगलाक्षरैः साम-ऋग्-यजुर्वेदान् पठित्वा ततः स्थाने वास्तुयागम् कृत्वा वृन्दावनक्षितौ गृहारम्भे अनर्घ्यम् अर्घम् दत्वा समुद्गताः। ते उत्तमाः विविधैः छन्दोभिः वेदपाठम् विदधुः।

हे साधु! महान् आश्चर्य सुनाता हूँ, सुनो। परमेष्ठी मैंने लीला से गोलोक की रचना की तथा सभी धर्मों की रचना कर दी। मुझ महात्मा के शरीर से जो ब्राह्मण पैदा हुए, वे मंगल वाणी में साम, ऋग् एवं यजुर्वेद का पाठ करने लगे तथा स्थान-स्थान पर उन्होंने वास्तुयाग आरम्भ कर दिया, जिससे वृन्दावन की भूमि पर गृहनिर्माण करने के लिए अनर्घ्य धन देकर निर्माण कार्य आरम्भ किया। वे उत्तम ब्राह्मण विविध प्रकार के छन्दों से वेदपाठ करने लगे॥२१-२३॥

ये सर्वे मम देवस्य देहाज्जाता महौजसः॥२४॥
तेषां देहेभ्य उत्पन्ना गोपाः शतसहस्रशः।
ते वै सम्मुखमागत्य प्रोचुर्मां पुरुषोत्तमम्॥२५॥

मम देवस्य देहात् ये महौजसः जाताः तेषाम् देहेभ्यः शतसहस्रशः गोपाः उत्पन्नाः ते वै सम्मुखम् आगत्य मां पुरुषोत्तमम् प्रोचुः।

उनके शरीर से सैकड़ों हजार गोप उत्पन्न हो गये। मुझ देव के देह से जो महा ओजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हुए, वे मेरे सामने आकर मुझ पुरुषोत्तम से कहने लगे॥२४-२५॥

वयं किं किं करिष्यामस्तदाज्ञापय भो प्रभो।
ततस्तान् पुरुषान् दिव्यगृहादिरचनेष्वहम्॥२६॥

देवान् नियोजयामास सर्वकर्मविशारदान्।
ये गावो मम देहाद् वै जातास्ते सम्मुखस्थिताः॥२७॥
ऊचुः किं वा करिष्यामि(?म) आज्ञापय महामते।
ततोऽहं कृपयाविष्टस्तान् गाः प्रति जगाद ह॥२८॥

भो प्रभो! वयम् किम् किम् करिष्यामः तद् आज्ञापय। ततः अहम् तान् दिव्यान् सर्वकर्मविशारदान् पुरुषान् देवान् च गृहादिरचनेषु नियोजयामास। ये गावः मम देहात् जाताः ते संमुखस्थिताः ऊचुः—हे महामते! आज्ञापय किम् वा करिष्यामः ? ततः अहम् कृपयाविष्टः तान् गाः प्रति जगाद ह।

हे प्रभो! हम क्या सेवा करें। कृपया हमें आज्ञा दीजिए। तब मैंने उन दिव्य देवमनुष्यों को 'जो सर्व कार्य करने में पारंगत थे' दिव्य गृह आदि की रचना में लगा दिया। जो गायें मेरे शरीर से प्रकट हुई थीं, उन्होंने मेरे समक्ष आकर कहा—हे महामते! आज्ञा कीजिए कि हम क्या करें? तब दया से युक्त होकर मैंने उनसे कहा॥२६-२८॥

रसैर्नानाविधैर्द्रव्यैर्भोगैः पूरय मे पुरम्।
विश्वकर्माद्या एते वै रचयिष्यन्ति वाटिकाम्॥२९॥
तानाप्यायध्वमत्यन्तबलवन्तोऽतिहर्षिताः ।
यथा भवेयुर्मल्लोका गतशोकादिकल्मषाः॥३०॥
तथाऽऽचरध्वं भो गावो नित्यशुद्धा ममाज्ञया।
कल्पवृक्षाः पूर्वजाता ये ये तानब्रुवं ततः॥३१॥

एते विश्वकर्माद्याः वाटिकाम् रचयिष्यन्ति। त्वम् मे पुरम् नानाविधैः द्रव्यैः भोगैः रसैः पूरय तान् आप्यायध्वम्। भो नित्यशुद्धाः गावः! ममाज्ञया तथा आचरध्वम् यथा मत् लोकाः अत्यन्तबलवन्तः अतिहर्षिताः गतशोकादिकल्मषाः भवेयुः। ततः ये ये पूर्वजाताः कल्पवृक्षाः तान् अब्रुवम्।

ये विश्वकर्मा आदि वाटिकाओं का निर्माण करेंगे; अतः तुम मेरे नगर को अनेक प्रकार के द्रव्यों, भोगों और रसों से भर दो। उन-उन गृहों को सभी वस्तुओं से पूर्ण कर दो। हे नित्य शुद्ध गायों! मेरी आज्ञा से ऐसा कर दो, जिससे मेरे लोक अति बलवान, अति हर्षित तथा शोक और पाप से मुक्त हो जायँ। इसके बाद पूर्व में उत्पन्न कल्पवृक्ष आदि से मैंने कहा॥२९-३१॥

स्वर्णै रत्नैर्मरकतैर्मणिभिर्वज्रविद्रुमैः।
वैडूर्यैः पद्मरागैश्च मञ्जिष्ठाभिः समन्ततः॥३२॥
मौक्तिकै रजतैर्नित्यं पूरयध्वं वनं मम।
ततः स्त्रवत्सुरत्नानि कल्पावनिरुहेष्वथ॥३३॥

ममाज्ञयाऽचिरं राम सर्वेशितुरनामयः।
अगदं सादरं देवान् निजदेहसमुद्भवान्॥३४॥

समन्ततः स्वर्णैः रत्नैः मरकतैः मणिभिः वज्रविद्रुमैः वैडूर्यैः मञ्जिष्ठाभिः मौक्तिकैः रजतैः मम वनम् नित्यम् पूरयध्वम्। अथ कल्प-अवनिरुहेषु सर्वेशितुः मम आज्ञया अचिरम् रत्नानि स्रवत्सु राम! निजदेहसमुद्भवान् देवान् अनामयः (अहम्) सादरम् अगदम्।

चारों ओर से स्वर्ग, रत्न, मरकत, मणियों, वज्रों (हीरों), विद्रुमों, वैदूर्यों, पद्मरागों, मञ्जिष्ठों, मुक्ताओं और रजतों से मेरे वन को पूरा भर दो। इसके बाद कल्पादि वृक्षों द्वारा मेरी आज्ञा से निरन्तर रत्नों की वर्षा करने पर हे राम! निश्चित मैंने अपने देह से उत्पन्न होने वाले देवों से आदरपूर्वक कहा॥३२-३४॥

विश्वकर्माण एतानि रत्नानि विविधान्यहो।
भासयन्तो(?न्ति) दश दिशो विदधीत विचित्रताम्॥३५॥
पुरीमपूर्वां सिद्धेशाः सर्वसिद्धनमस्कृताम्।
रत्नछत्राण्यनेकानि चारूणि चामराणि च॥३६॥

अहो विश्वकर्मा नः एतानि विविधानि रत्नानि विदधीत दशदिशः (विदधीरन्) विचित्रताम् भासयन्तः सिद्धेशाः सर्वसिद्धनमस्कृताम् अपूर्वाम् पुरीम् अनेकानि रत्नछत्राणि चारुणि चामराणि च (विदधीरन्)।

अहा! विश्वकर्मा हमारे लिये इन विविध रत्नों को बनायें, विचित्र रूप से दशों दिशाओं को प्रकाशित करें। सिद्धेशगण सभी सिद्धों के द्वारा नमस्कार करने योग्य इस अपूर्व पुरी, रत्नों से बने अनेक छत्रों तथा सुन्दर चामरों को (बनायें)॥३५-३६॥

नानाविधा वेदिकाश्च गृहान् रत्नविनिर्मितान्।
रत्नभित्तीरनेकाश्च रथ्याश्चत्वरमेव च॥३७॥
अट्टालानि गोपुराणि विटङ्कानि सहस्रशः।
उद्यानानि च रम्याणि धेनूनां निलयान्यथ॥३८॥
वृषभाणां गृहाण्येव नानामणिकृतान्यहो।
वत्सवत्सतरीणां च सद्मानि विविधानि च॥३९॥

नानाविधाः वेदिकाः, रत्नविनिर्मितान् गृहान्, अनेकाः रत्नभित्तीः, रथ्याः, चत्वरम् एव च सहस्रशः अट्टालानि, गोपुराणि, विटंकानि, रम्याणि, उद्यानानि, अथ, धेनूनाम् निलयानि, वृषभाणाम् गृहाणि, अहो नानामणिकृतानि च विविधानि वत्सवत्सतरीणाम् सद्मानि (विदधीरन्)।

अनेकों प्रकार के चबूतरे, रत्नों से बने भवन, अनेक रत्नों की दीवाल, गली, चौराहे और हजारों अट्टालिकाएँ, गोपुर, विटंक, रम्य उद्यान, अनेक मणियों से बनी गायों को बाँधने की गोशालाएँ, वृषभशालाएँ, बछड़े-बछियों बाँधने की शालाएँ (बनायें)।।३७-३९।।

रत्नैर्निर्मितपात्राणि भाण्डानि विविधान्यहो।
रत्नकुम्भसहस्राणि भृङ्गारान् रत्ननिर्मितान्।।४०।।
नानारूपैर्विचित्राणि वाद्यभाण्डानि कोटिशः।
सोपानानि च रम्याणि नानारत्नमयान्यथ।।४१।।
ध्वजाश्चन्द्रातपव्यूहं पताकाश्च सहस्रशः।
अग्निशौचानि वासांसि सुवर्णरचितानि च।।४२।।

अहो रत्नैः निर्मितपात्राणि, विविधानि भाण्डानि, सहस्राणि रत्नकुम्भानि, रत्ननिर्मितान् भृङ्गारान्, कोटिशः नानारूपैः विचित्राणि वाद्यभाण्डानि, अथ नानारत्नमयानि रम्याणि सोपानानि, ध्वजाः, चन्द्रातपव्यूहम् सहस्रशः पताकाः च सुवर्णरचितानि अग्निशौचानि वासांसि (विदधीरन्)।

अहो अद्भुत रत्नों से निर्मित पात्रों को, विविध भाण्डों को, हजारों रत्नकलशों को, रत्नों से निर्मित झारियों को, करोड़ों नाना प्रकार के विचित्र वाद्यभाण्डों को तथा अनेक रत्नों से निर्मित रम्य सोपानों (सीढ़ियों) को, ध्वजा और चाँदनियों के समूहों को, हजारों पताकाओं को, सुवर्ण से बने अग्नि में शुद्ध किये गये अर्थात् अग्नि में न जलने वाले वस्त्रों को (बनायें)।।४०-४२।।

एवमादीनि सर्वाणि कुरुताद्य ममाज्ञया।
इत्थं ममाज्ञया तेषु कर्त्तुं कर्मोद्यतेषु (?च)।।४३।।
इतस्ततो विभ्रमत्सु प्रणयाविष्टकृत्स्वथ।
क्षणमीक्षणपाथोजे निमील्य स्थितवानहम्।।४४।।

ममाज्ञया एवम् आदीनि सर्वाणि अद्य कुरुत। एवम् ममाज्ञया इत्थम् कर्तुम् तेषु कर्मोद्यतेषु इतस्ततः विभ्रमत्सु प्रणयाविष्टकृत्सु अथ अहम् क्षणम् ईक्षणपाथोजे निमील्य स्थितवान्।

मेरी आज्ञा से इस सब वस्तुओं का निर्माण आज करो—इस तरह मेरी आज्ञा से उन सबके उन कार्यों को करने में लग जाने पर और इधर-उधर व्यस्तता से घूमने पर तथा प्रणयाविष्ट चित्त वाले होने पर क्षण भर के लिये नेत्रों को बंद करके मैं खड़ा हो गया।।४३-४४।।

ततो ममेच्छया काचिन्नगरी सा गरीयसी।
स्वान्ताद् बहिर्ययौ सान्द्रमानन्दकन्दकन्दली॥४५॥

ततः मम इच्छया काचित् आनन्दकन्दकन्दली गरीयसी सा नगरी सान्द्रम् स्वान्ताद् बहिः ययौ।

इसके बाद मेरी इच्छा से कोई आनन्दकन्द की कन्दली (केला) जैसी विशाल नगरी पास में ही मेरे भीतर से बाहर प्रकट हो गयी॥४५॥

गोलोकाख्या धृताऽभिख्या चित्रधातुविनिर्मिता।
सूर्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला॥४६॥
ततस्तान् भगवान् सोऽहं ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः।
निजदेहसमुद्भूतांस्तस्यां पुर्यां न्यवासयम्॥४७॥

(सा नगरी) गोलोक-आख्या धृत-अभिख्या चित्रधातुविनिर्मिता सूर्य-कोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला (आसीत्)। ततः सः अहम् भगवान् तान् ब्रह्मवादिनः निजदेहसमुद्भूतान् ब्राह्मणान् तस्याम् पुर्याम् न्यवासयम्।

गोलोक नाम की अति सुन्दर यह पुरी विचित्र धातुओं से निर्मित थी। इसमें करोड़ों सूर्यों का-सा प्रकाश विद्यमान था। यह करोड़ों चन्द्रमा की तरह शीतल थी। इसके बाद भगवान् मैंने अपने देह से प्रकट होने वाले उन ब्रह्मवादी ब्राह्मणों का उस पुरी में निवास करा दिया॥४६-४७॥

ततो धेनूः समानीय वत्सांश्च वृषभानथ।
ततो वत्सतरीश्चापि प्रतिगेहं महाभुज॥४८॥
स्थापयामास विश्वात्मा पुण्डरीकदलेक्षणः।
ततोऽहं भगवानादौ ब्राह्मणान् ब्रह्मवर्चसः॥४९॥
अर्चयामास गास्तद्वद् वृषान् दृष्टिमनोहरान्।

महाभुज! ततः पुण्डरीकदलेक्षणः विश्वात्मा (अहम्) वृषभान् धेनूः वत्सतरीः च अपि समानीय प्रतिगेहम् स्थापयामास। ततः आदौ अहम् भगवान् ब्रह्मवर्चसः ब्राह्मणान् अर्चयामास। तद्वत् गाः दृष्टिमनोहरान् वृषभान् (अपि अर्चयामास)।

हे महाभुज बलदेव! इसके बाद कमलदल के समान नेत्र वाले विश्वात्मा मैंने गायों के साथ बैलों को, बछड़ों और बछियाओं को लाकर उन्हें प्रत्येक घर में स्थापित कर दिया। इसके बाद सबसे पहले भगवान् मैंने ब्रह्मवर्चस्व वाले उन ब्राह्मणों का अर्चन किया। उसी तरह गायों और दृष्टिमनोहर वृषभों का भी अर्चन किया॥४८-४९॥

सन्तुष्टा ब्राह्मणाः प्रोचुः कृताञ्जलिपुटास्ततः॥५०॥
मोहिता मायया नित्यमाशीर्वाक्यपुरस्सरम्।
तत्तद् भवतु ते नाथ यद्यत् ते मनसेप्सितम्॥५१॥
नानृतं ममेदं राम (?राम नो वाचः) वचनाद् भवतां मम।

ततः मम मायया मोहिताः कृताञ्जलिपुटाः सन्तुष्टाः ब्राह्मणाः नित्यम् आशीर्वाक्यपुरस्सरम् प्रोचुः—नाथ! यत यत् ते मनसा ईप्सितम् तत् तत् ते भवतु। राम! भवताम् वचनाद् नः वाचः अनृतम् न (भूयासुः)।

इसके पश्चात् मेरी माया से मोहित सन्तुष्ट ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर नित्य आशीर्वाक्यों के बोलते हुए कहा कि हे नाथ! आपके मन में जो-जो इच्छा हो, वह-वह पूरी हो जाय। हे राम! आपकी वाणी से मेरे यह सब वचन असत्य न हों॥५०-५१॥

भवन्तु तरवः स्वच्छनित्यपुष्पफलोत्सवाः॥५२॥
नानारूपधरा नित्याः स्थिरच्छाया निरामयाः।
एकैकस्य पञ्चशाखाः पल्लवाद्याः सहस्त्रशः॥५३॥
शाखाश्चतस्रो येषां वै चतुर्दिक्षु समागताः।
शाखैका च तदूर्ध्वे वै दिव्यपुष्पफलैर्वृता॥५४॥

तरवः स्वच्छनित्यफलोत्सवाः नानारूपधराः नित्याः निरामयाः स्थिरच्छायाः भवन्तु। एकस्य पञ्चशाखाः सहस्त्रशः पल्लवाद्याः (भवन्तु) येषाम् चतुर्दिक्षु चतस्रः शाखाः समागताः। एका शाखा च तद्-ऊर्ध्वे दिव्यपुष्पफलैर्वृता (भवतु)।

सभी वृक्ष स्वच्छ नित्य फल-उत्सव वाले, अनेक आकृतियों वाले, शाश्वत, नीरोग तथा स्थिर छाया वाले हो जायँ। एक-एक वृक्ष पाँच-पाँच शाखाओं और हजारों पल्लवों (पत्तों) वाले हो जायँ। इन वृक्षों की चारों दिशाओं में चार शाखा तथा एक शाखा ऊर्ध्व दिशा में दिव्य फल और पुष्पों से भरी हुई हो जाय॥५२-५४॥

शाखानामपि सर्वासां गुणाः सन्तु पृथक् पृथक्।
पूर्वाः शाखाः समाश्रित्य खादिष्यन्ति फलानि ये॥५५॥
बाला अपि भविष्यन्ति तरुण्यस्तरुणा इह।
दक्षशाखाः समाश्रित्य खादिष्यन्ति च ये फलम्॥५६॥
कुमारास्ते भविष्यन्ति बाला वृद्धा अपि द्विजाः।
उत्तराश्च समाश्रित्य खादिष्यन्ति फलानि ये॥५७॥
तरुणास्ते भविष्यन्ति युष्माकं वचनाद् द्विजाः।

सर्वासाम् शाखानाम् गुणाः पृथक् पृथक् सन्तु। इह ये पूर्वाः शाखाः समाश्रित्य फलानि खादिष्यन्ति बालाः अपि तरुण्यः तरुणाः भविष्यन्ति। ये दक्षशाखाः समाश्रित्य फलम् खादिष्यन्ति ते वृद्धाः अपि कुमाराः बालाः भविष्यन्ति। ये द्विजाः उत्तराः च समाश्रित्य फलानि खादिष्यन्ति ते युष्माकम् वचनाद् तरुणाः भविष्यन्ति।

सभी वृक्षों की शाखाओं के गुण भी पृथक्-पृथक् हो जायँ। जो लोग पूर्व शाखा का आश्रय लेकर पूर्व शाखा के फलों का भक्षण करेंगे, वे बालक और बालिकायें इस गोलोक तथा तरुणी में तरुण हो जायँ। दक्षिण की शाखा के फलों का भक्षण करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वृद्ध भी कुमार और तरुण हो जायँ। उत्तर की शाखा के फलों को खाने वाले लोग आप ब्राह्मणों के वचनों से तरुण हो जायँ।।५५-५७।।

पश्चिमाभिमुखाः शाखा आश्रित्य तत्फलानि ये।।५८।।
खादिष्यन्ति भविष्यन्ति ते वृद्धा ज्ञानशालिनः।
ऊर्ध्वशाखाः समाश्रित्य तत्फलानि द्विजोत्तमाः।।५९।।
खादिष्यन्ति जना ये वै मत्स्वरूपास्त एव हि।
भविष्यन्ति महात्मानो नित्यं तुल्यवयोगुणाः।।६०।।

ये पश्चिमाभिमुखाः शाखाः आश्रित्य फलानि खादिष्यन्ति ते ज्ञानशालिनः वृद्धाः भविष्यन्ति। द्विजोत्तमा! ये जनाः ऊर्ध्वशाखाः समाश्रित्य तत्फलानि खादिष्यन्ति ते महात्मानः नित्यतुल्यवयोगुणाः मत्स्वरूपा एव हि भविष्यन्ति।

जो पश्चिम दिशा की शाखा के आश्रित फलों को खायेंगे, वे ज्ञानसम्पन्न वृद्ध हो जायँ। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! जो लोग ऊर्ध्व शाखा के आश्रित फलों का भक्षण करेंगे, वे महापुरुष नित्य तुल्य हुए मेरे समान मेरे ही आयु एवं गुणों को धारण करने वाले हो जायँ।।५८-६०।।

एवमस्त्विति ते प्रोचुर्वेदहस्ता द्विजातयः।
कुण्डानि मम तेजोभिर्भवन्तु विविधानि च।।६१।।
सरांसि निर्मलान्येव पीयूषसदृशैर्जलैः।
पूरितानि पद्मरागवैडूर्योपस्कृतानि च।।६२।।
येषां जलावगाहेन भवेद्रूपविपर्ययः।

ते वेदहस्ताः द्विजातयः प्रोचुः—एवम् अस्तु इति। मम तेजोभिः विविधानि कुण्डानि पद्मरागवैडूर्य-उपस्कृतानि, पीयूषसदृशैः जलैः पूरितानि, निर्मलानि एव सरांसि भवन्तु। येषाम् जलावगाहेन रूपविपर्ययः भवेत्।

वेदों को हाथ में धारण करने वाले उन ब्राह्मणों ने कहा—ऐसा ही हो।

मेरे तेज से विविध कुण्ड तथा पद्मराग और वैडूर्यमणि से जुड़े हुए तालाब अमृतसदृश जल वाले तथा निर्मल जल से भरे हुए हो जायँ। इनके जल में स्नान करने से रूप का परिवर्तन भी हो जाए॥६१-६२॥

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पानैश्च सर्वैर्द्रव्यैः प्रपूरिता॥६३॥
गृहा भवन्तु मे विप्राः नानाविभवसंयुता।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणान् सङ्गे गवामन्तिकमास्थितः॥६४॥
तानहं पूजयामास प्रधानपुरुषेश्वरः।
ततस्तुष्टा वृषा गावः प्रोचुः संहृष्टमानसाः॥६५॥

हे विप्राः मे गृहाः भक्ष्यैः भोज्यैः पानैः सर्वद्रव्यैः प्रपूरिताः नानाविभव-संयुक्ताः भवन्तु इति ब्राह्मणान् उक्त्वा गवाम् सङ्गे अन्तिकम् आस्थितः प्रधान-पुरुषेश्वरः अहम् तान् पूजयामास। ततः तुष्टाः संहृष्टमानसाः गावः वृषाः प्रोचुः।

हे ब्राह्मणों! मेरे घर भक्ष्य-भोज्य-पान आदि सभी द्रव्यों से भरे हुए अनेक प्रकार के वैभव से युक्त हो जायँ। ब्राह्मणों से इस प्रकार कहकर मैं गायों और वृषभों के पास गया और प्रधान पुरुषों का स्वामी मैंने उनकी पूजा की। तब गायों एवं बैलों ने सन्तुष्ट एवं प्रसन्नचित्त होकर कहा॥६३-६५॥

श्यामरूपः किमर्थं त्वमिह प्राप्तो महेश्वर।
वयं तत्त्वं (?तद्धि) चिकीर्षामः
कथ्यतां हि (?तां पुरु) पुरुषोत्तम॥६६॥
तान् प्रत्यध्रुव(?त्यब्रुव)मिदं विनयावनतस्थितः।
प्रसवध्वं प्रसूतीस्ता याभिर्मे व्याप्यते वनम्॥६७॥

हे महेश्वर! इह श्यामरूपः त्वम् किमर्थम् प्राप्तः? वयम् हि तत् हि चिकीर्षामः हे पुरुषोत्तम! कथ्यताम्। विनयावनतस्थितः (अहं) तान् प्रति इदम् अब्रुवम्—ताः प्रसूतीः प्रसवध्वम् याभिः मे वनम् व्याप्यते।

हे महेश्वर! श्यामरूप आप यहाँ क्यों आये हैं? (जिस प्रयोजन से आप यहाँ आये हैं) हम उसे करना चाहते हैं। हे पुरुषोत्तम! हमें आज्ञा दें। मैंने विनयावनत होकर उनसे कहा—हे प्रसूती गायों! आप उन सन्तानों को जन्म दें, जिनसे मेरा यह वन भर जाए॥६६-६७॥

प्रसवध्वं पृथून् गावो नानारूपान् महौजसः।
गजान् हयान् खरानुष्ट्रांश्चमरींश्च सहस्रशः॥६८॥
मृगान् सिंहान् रुरून् व्याघ्रान् भल्लूकान् महिषानपि।
शरभान् शस्त्रिणश्चैव शूकरांश्च गजादिकान्॥६९॥

नानारूपान् पक्षिणश्च सर्वभूतमनोहरान्।

हे महौजसः गावः ! नानारूपान् पृथून् गजान् हयान् खरान् उष्ट्रान् चमरीन् सहस्रशः मृगान् सिंहान् रुरून् व्याघ्रान् भल्लूकान् महिषान् शरभान् शस्त्रिणः च एव शूकरान् गजादिकान् सर्वभूतमनोहरान् नानारूपान् पक्षिणः च प्रसवध्वम्।

हे महातेजसम्पन्न गायों! आज मेरे वन में गायों के अतिरिक्त अनेक रूपों वाले गजों, घोड़ों, गधों, ऊटों, चमरी गायों, हजारों मृगों, सिंहों, चीतों, व्याघ्रों, भालुओं, भैंसों, शस्त्रयुक्त शरभों तथा शूकरों, गजों एवं समस्त प्राणियों के मन को हरने वाले तथा अनेक रूपों वाले पक्षियों को उत्पन्न कर दें॥६८-६९॥

एवमुक्ता मया गावो जगदुस्तास्तथास्त्विति॥७०॥
भूयः सम्भूय संसृजुस्त्वरया तान् यथोदितान्।
इत्थं विनिर्मितां दृष्ट्वा पुरीं च (?रीं परम्) परमसुन्दरीम्॥७१॥
ममैव प्रतिमूर्तिः सा ज्योति(?ती)रूपा विवेश माम्।
ततः प्रसन्नवदनो जगाद भुवनेश्वरीम्॥७२॥

एवम् मया उक्ता ताः गावः तथाऽस्तु इति जगदुः। त्वरया सम्भूय भूयः तान् यथोदितान् संसृजुः। इत्थम् विनिर्मिताम् परमसुन्दरीम् पुरीम् दृष्ट्वा ममैव प्रतिमूर्तिः ज्योतिःरूपा सा माम् विवेश। ततः प्रसन्नवदनः (अहम्) भुवनेश्वरीम् जगाद।

इस प्रकार मैंने गायों से कहा। उन गायों ने कहा—''ऐसा ही हो'' उन्होंने शीघ्रता से वैसे ही रूप बनाकर फिर से उन कहे हुए को उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार परम सुन्दर बनी हुई उस नगरी को देखकर मेरे ही शरीर से उत्पन्न होने वाली ज्योतिरूपा मेरी प्रतिमूर्ति वह मेरे में प्रवेश कर गयी। तब प्रसन्नमुख होकर मैंने भुवनेश्वरी से कहा॥७०-७२॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणु देवी(?वि) परं तत्त्वमात्मनः कथयामि ते।
अहं सर्वेश्वरो देवः प्रकृतिश्च पुमानहम्॥७३॥
आत्मारामोऽस्मि सुभगे धनैः किं मे प्रयोजनम्।
मत्तो गुणाः समुद्भूता निर्गुणोऽस्मि गुणेन किम्॥७४॥
सर्वगः सर्वरूपोऽस्मि रूपैरन्यैर्न मे फलम्।
यतस्त्वं प्राकृतैर्वाक्यैर्विमोहयसि मां शुभे॥७५॥

देवि! आत्मनः परम् तत्त्वम् ते कथयामि, शृणु। अहम् सर्वेश्वरः देवः

प्रकृतिः च पुमान् अहम् एव। सुभगे! अहम् आत्मारामः अस्मिः मे धनैः किम् प्रयोजनम्? गुणाः मत्तः समुद्भूताः। अहम् निर्गुणः अस्मि। किम् गुणेन। सर्वगः सर्वरूपः अस्मि अन्यैः रूपैः न मे फलम्। शुभे! यतः त्वम् प्राकृतैः वाक्यैः माम् विमोहयसि ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे देवि! मैं अपने परम तत्त्व को तुम्हें सुनाता हूँ—सुनो। मैं ही सर्वेश्वर देव हूँ; प्रकृति और पुरुष मैं ही हूँ। हे सुभगे! मैं आत्माराम हूँ, मुझे धन से क्या प्रयोजन? गुण मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, फिर भी मैं निर्गुण हूँ। मुझे गुणों से क्या प्रयोजन? मैं सर्वत्र और सब रूपों में हूँ। अन्य रूपों से मेरा क्या प्रयोजन? हे शुभे! तुम साधारण वाक्यों से मुझे विमोहित कर रही हो।।७३-७५।।

मायासि विकृतैर्ज्ञाता प्रकृतिस्त्वं भवानघे।
मत्तोऽन्यत्सकलं शक्त्या निजया मोहयिष्यसि।।७६।।

अनघे! त्वम् विकृतैः ज्ञाता माया असि। त्वम् प्रकृतिः भव। मत्तः अन्यत् सकलम् निजया शक्त्या मोहयिष्यसि।

हे निष्पापे! तुम विकृत लोगों के द्वारा माया जानी जाती हो। प्रकृति हो जाओ, अपनी शक्ति से मुझे छोड़कर अन्य सबको मोह में डालोगी।।७६।।

ललितेति च विख्याता भविष्यसि जनैः सुरैः।
अहं वै प्रकृतिः सूक्ष्मा परब्रह्मस्वरूपिणी।।७७।।
रसस्वरूपिणी देवी सैवाहं राधिका शुभे।
पश्य मां दिव्यया दृष्ट्या यादृशं यावदात्मकम्।।७८।।
आत्मानं च पुनः पश्य किंस्वरूपासि सुन्दरि।
इत्युक्त्वा भुवनेशानि(?नी) तत उन्मील्य दर्शने।।७९।।
ददर्श विश्वरूपं मां परमात्मानमद्भुतम्।

जनैः सुरैः ललिता इति विख्याता भविष्यसि। अहम् वै परब्रह्मस्वरूपिणी सूक्ष्मा प्रकृतिः। शुभे! सा रसस्वरूपिणी देवी राधिका एव अहम् अस्मि। माम् दिव्यया दृष्ट्या पश्य। यादृशम् यावदात्मकम् अस्मि आत्मानम् च पुनः पश्य सुन्दरि! किम् स्वरूपा असि? इति उक्त्वा भुवनेशानी ततः दर्शने उन्मील्य अद्भुतम् परमात्मानम् विश्वरूपम् माम् ददर्श।

हे देवि! मनुष्यों और देवों द्वारा तुम ललिता नाम से जानी जाओगी। परब्रह्म-स्वरूपिणी सूक्ष्मा प्रकृति मैं ही हूँ। हे शुभे! वह रसरूपिणी देवी राधिका भी मैं ही हूँ। मैं जैसा और जितना हूँ, उसे तुम दिव्य दृष्टि से देखो। हे

सुन्दरि! स्वयं को भी देखो कि तुम्हारा स्वरूप क्या है? इस प्रकार कहे जाने पर भुवनों की स्वामिनी ने नेत्रों को खोलकर मुझ विश्वात्मा अद्भुत परमात्मा को देखा॥७७-७९॥

ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रसुरासुरनरोरगैः ॥८०॥
स्थावरैर्जङ्गमैर्जीवैः पूरिताजाण्डकोटिभिः।
समाश्रिता लोमकूपैर्महता विष्णुना परम्॥८१॥
सहस्त्ररश्मिकोटीभिः प्रतिलोमप्रकाशितम्।
द्विजराजवाजिराजद्रोम(?ण)स्तोमविलान्तरम् ॥८२॥

ब्रह्मविष्णुमहेश-इन्द्रसुर-असुरनर-उरगैः स्थावरैः जंगमैः जीवैः पूरित अजाण्डकोटिभिः लोमकूपैः महता विष्णुना परम् समाश्रिता। सहस्त्ररश्मि-कोटीभिः प्रतिलोमप्रकाशितम् द्विजराजवाजिराजद्रोणास्तोमविलान्तरम्।

(मेरा शरीर) ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, देव, दानव, नर और उरगों (सर्पों) द्वारा तथा स्थावर-जंगम करोड़ों जीव-जन्तुओं से तथा ब्रह्माण्डों से पूरित था। लोमकूपों तथा महाविष्णु के द्वारा आश्रित था। करोड़ों सूर्य मेरे एक-एक रोमकूप को प्रकाशित करते हैं। मेरे रोमकूपों के विलों में द्विजराज, वाजिराज तथा पहाड़ी कौवों के समूह रहते हैं॥८०-८२॥

सप्तकोटिकोटीभिरन्तरीक्षायितं ध्रुवम्।
ग्रहेशैर्भासितदिशैरभितस्तूपशोभितम् ॥८३॥
पृथ्व्याऽद्भिस्तेजसा वायुनभोव्योमभिः शोभितम्।
गन्धस्नेहरूपस्पर्शशब्दैरपि समाश्रितम्॥८४॥

सप्तकोटिकोटीभिः अन्तरीक्षायितम्, ध्रुवम् ग्रहेशैः भासितदिशैः अभितः तु उपशोभितम्, पृथ्व्या अद्भिः तेजसा वायुनभोव्योमभिः शोभितम्, गन्ध-स्नेह-रूप-स्पर्श-शब्दैः अपि समाश्रितम् (सा ददर्श)।

(उसने देखा कि) सात करोड़ करोड़ विस्तार वाला यह अन्तरिक्ष, नक्षत्रों और उनके स्वामियों द्वारा प्रकाशित दिशाओं वाला सामने सुशोभित पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नभ और आकाश से शोभित, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द तन्मात्राओं का एक मात्र आशय विश्वरूप मैं हूँ॥८३-८४॥

किमन्यत्ते वदिष्यामि मयि सर्वं ददर्श सा।
ततः परमदुर्दर्शं समालोक्य समाकुला॥८५॥
निमीलितवती नेत्रे भुवनेशी विमोहिता।
भूयः स्वयं च नेत्राणि प्रोन्मीलयति निर्भरम्॥८६॥

जगज्जनमनोहारी(?रि) रूपदर्शनलालसा।
पुनः पुनरुदीक्षन्ती जगौ गद्‌गदया गिरा॥८७॥

(हे बलराम!) ते अन्यत् किम् वदिष्यामि। सा मयि सर्वम् ददर्श। ततः परमदुर्दर्शम् (माम्) समालोक्य समाकुला विमोहिता भुवनेशी नेत्रे निमीलितवती। भूयः निर्भरम् स्वयम् नेत्राणि प्रोन्मीलयति। जगद् जनमनोहारिरूपदर्शनलालसा पुनः पुनः उदीक्षन्ती गद्‌गदया गिरा जगौ।

हे बलराम! मैं तुम्हें और क्या बतलाऊँ? उस देवी ने मेरे अन्दर सब कुछ देखा। इसके बाद मेरे परम दुर्दर्श रूप को देखकर व्याकुल और विमोहित होकर भुवनेशी ने नेत्र बन्द कर लिये। पुनः निर्भर होकर नेत्रों को खोलकर मेरे जगज्जनमोहन रूप को देखने की इच्छा से पुनः पुनः नेत्र खोलकर देखती हुई उसने अत्यन्त गद्‌गद वाणी से कहा॥८५-८७॥

अहो रूपमहो रूपमहो रूपं मनोहरम्।
क्षणेनालोकयाञ्चक्रे प्रकाशेन दिशो दश॥८८॥
किं किं दृष्टमद्य किं किमालोकितमहो! अहो।
मुग्धाऽस्मि विस्मिता कृष्ण कस्ते जानाति जृम्भितम्॥८९॥

अहो रूपम् अहो रूपम् अहो मनोहरम् रूपम् क्षणेन दशदिशः प्रकाशेन आलोकयाञ्चक्रे। अहो अद्य किम् किम् दृष्टम् अहो किम् किम् आलोकितम्। कृष्ण! मुग्धा विस्मिता अस्मि। ते जृम्भितम् कः जानाति।

अहा! कैसा अद्‌भुत रूप है। अहा! कैसा रूप है। अहा! कैसा मनोहर रूप है। क्षणमात्र में ही दशों दिशाओं को प्रकाश से आलोकित कर दिया। अहा आज क्या-क्या देखा! आज वैसा कैसा अद्‌भुत देखा। हे कृष्ण! मैं मुग्ध और विस्मित हूँ, आपके जृम्भण (विस्तार) को कौन जानता है?॥८८-८९॥

सा मामैक्षत पुनरपि द्विभुजं वनमालिनम्।
सुचारुवदनं शान्तं वेणुवादनतत्परम्॥९०॥
अहं पुनर्जगत्स्वामी देव्या ऊर्ध्वकरद्वयम्।
आकृष्य निजहस्तोर्ध्वे स्थापयामास मायया॥९१॥

सा पुनः माम् द्विभुजम् वनमालिनम् सुचारुवदनम् शान्तम् वेणुवादनतत्परम् ऐक्षत। जगत्स्वामी अहम् पुनः देव्याः ऊर्ध्वकरद्वयम् मायया आकृष्य निजहस्त-ऊर्ध्वे स्थापयामास।

उस भुवनेश्वरी ने पुनः मुझे दो भुजाओं वाला, वनमाला से शोभित,

सुन्दर मुख वाला, शान्त तथा वेणुवादन में तत्पर देखा। जगत्स्वामी मैंने पुनः चार भुजाएँ धारण कर देवी के ऊँचे किए हुए दोनों हाथों को माया से खींचकर अपने ऊपर के दो हाथों में स्थापित कर लिया॥९०-९१॥

अधोहस्तद्वये वंशी(?शीं) गीयमान उवाच ताम्।
पश्य मां त्वं महादेवि भामिन्यात्मानमप्युत॥९२॥
इत्युक्ता संभ्रमाक्रान्तमानसा विस्मयान्विता।
हसन्ती भुवनेशानी मामैक्षदक्षिकोणतः॥९३॥

अधः हस्तद्वये वंशीं गीयमानः ताम् उवाच। महादेवि! भामिनि! त्वम् आत्मानम् माम् पश्य। इति उक्ता संभ्रमाक्रान्तमानसा विस्मयान्विता हसन्ती भुवनेशानी अक्षिकोणतः माम् ऐक्षत।

अपने नीचे के दो हाथों से वंशीवादन करते हुए मैंने उससे कहा— हे महादेवि! तुम विशाल आत्मा वाले मुझको पुनः देखो। मेरे ऐसा कहने पर सम्भ्रान्त मन वाली आश्चर्यचकित तथा हँसती हुई भुवनेश्वरी ने नेत्रों के कोणों से मुझे देखा॥९२-९३॥

गोविन्दमद्भुताकारमरविन्ददलेक्षणम्।
नीलजीमूतसङ्काशं पीतवाससमच्युतम्॥९४॥
अङ्कुशं दक्षिणोर्ध्वे च पाणौ पाशं च सव्यतः।
शब्दब्रह्ममयीं वंशीमधः पाण्यम्बुजद्वये॥९५॥
दधानं सगुणाधानं निदानं सकलस्य च।
चतुर्भुजं भ्राजमानं वैजयन्त्या च मालया॥९६॥

अद्भुताकारम् गोविन्दम् अरविन्ददलेक्षणम् नीलजीमूतसङ्काशम् पीतवाससम् अच्युतम् ऊर्ध्वे दक्षिणे पाणौ अंकुशम् सव्यतः च पाशम् अधःपाणि-अम्बुजद्वये शब्दब्रह्ममयीम् वंशीम् दधानम् सकलस्य निदानम् सगुणाधानम् वैजयन्त्या मालया भ्राजमानम् चतुर्भुजम् (माम् ऐक्षत)।

मेरे अद्भुत आकार वाले गोविन्दरूप को देखा कि मेरे नेत्र अरविन्द-दल की तरह विशाल हैं, मेरा रूप नील मेघ की तरह श्यामवर्ण है, पीताम्बर को धारण किया हुआ है। मैंने अपने ऊपर के दक्षिण हस्त में अंकुश तथा बाँयें हाथ में पाश धारण किया हुआ है। मेरे दोनों नीचे के हाथों में शब्दब्रह्ममय वंशी विद्यमान है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि कारण सगुणाधान अर्थात् प्रकृति को मैंने धारण कर रखा है। मेरी चार भुजाएँ हैं और मैं वैजयन्ती माला से सुशोभित हो रहा हूँ॥९४-९६॥

कण्ठलम्बितया चारुकदम्बकुसुमस्रजा।
मल्लारनाम्ना रागेण गायन्तमनुरागतः।।९७।।
समस्तलोकवन्द्याया राधिकाया गुणान् मुहुः।
ततः पुनर्निजाकारं वराभयकरं परम्।।९८।।

कण्ठलम्बितया चारुकदम्बकुसुमस्रजा (युक्तम्) अनुरागतः मल्लारनाम्ना रागेण समस्तलोकवन्द्यायाः राधिकायाः गुणान् मुहुः गायन्तम्, ततः पुनः परम् वराभयकरम् निजाकारम् (ऐक्षत)।

मेरे गले में सुन्दर कदम्ब के पुष्पों का हार लटका हुआ है। मैं अनुरागपूर्वक मल्हार नाम के राग से समस्त लोक के द्वारा वन्दनीय राधा जी के गुणों को बार-बार गा रहा हूँ तथा हाथों में वरद वाले आत्माराम रूप में मुझे देखा।।९७-९८।।

द्विभुजं कीदृशं जातं पश्यन्ती विस्मिताऽभवत्।
अयं हि द्विभुजः कस्मादजनीह चतुर्भुजः।।९९।।
अहं चतुर्भुजो दैवात् क्षणेन द्विभुजोऽभवम्।
किमत्र कारणं त्वस्ति न ज्ञातुं मयि शक्यते।।१००।।

अहम् द्विभुजम् कीदृशम् जातम् इति पश्यन्ती विस्मिता अभवत्। अयम् द्विभुजः कस्माद् इह चतुर्भुजः अजनि। अहम् चतुर्भुजः क्षणेन दैवात् द्विभुजः अभवम् अत्र किम् कारणम् इति ज्ञातुम् मयि न शक्यते।

मैं दो भुजा वाला कैसे हो गया? इस विषय में वह आश्चर्यचकित हो गयी। यह दो भुजा वाला चार भुजा वाला कैसे हो गया। चार भुजा वाली मैं क्षणभर में कैसे दो भुजा वाली हो गयी। इस परिवर्तन का कारण क्या है? यह मैं नहीं जान सकती।।९९-१००।।

किमनेन स्वयं वापि कृतो रूपविपर्ययः।
ममैवात्रेति सा देवी चिन्तयामास मोहिता।।१०१।।
पुनरुन्मील्य नयने दृष्ट्वा निजभुजद्वयम्।
मम बाहुद्वयोर्ध्वे च पाशाङ्कुशसमन्वितम्।।१०१।।
मनसा चिन्तयासास कम्पान्वितकलेवरा।
असौ विश्वेश्वरो देवो नान्योऽस्ति सदृशोऽधुना।।१०३।।

किम् अनेन स्वयम् रूपविपर्ययः कृतः वा अपि मम एव अत्र (विपर्यायः) इति मोहिता सा देवी चिन्तयामास। पुनः नयने उन्मील्य निजभुजद्वयम् पाशांकुश-समन्वितम् मम बाहुद्वयोर्ध्वे दृष्ट्वा कम्पान्वितकलेवरा मनसा चिन्तयामास—असौ विश्वेश्वरः देवः। अधुना अस्य सदृशः अन्यः न अस्ति।

क्या इन्होंने स्वयं अपने रूप को बदल लिया है अथवा मुझे ही भ्रम हो रहा है? इस प्रकार मोह में पड़ी उस देवी ने विचार किया। उसने पुनः नेत्र खोलकर देखा तो उसे पाश और अंकुश धारण करने वाली अपनी दो भुजायें ही दिखाई दीं। वे ऊपर वाली दोनों भुजाओं पर स्थित थीं। यह देखकर कम्पितकलेवरा वह मन में सोचने लगी—यह विश्वेश्वर देव हैं; इनके बराबर इस समय कोई अन्य नहीं है।।१०१-१०३।।

अयमेव जगत्स्वामी प्रकृतीनामधीश्वरः।
अयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा ह्ययं सर्वेश्वरेश्वरः।।१०४।।
इमं वेदा न जानन्ति देवा अपि कदाचन।
अनेनैव मया सार्धं जगत्सृष्टं चराचरम्।।१०५।।
अस्मै बलिं सदा देवा यच्छन्ति मम मायया।
अस्मात्परं नास्ति किञ्चित्तस्माद् ब्रह्म परो(?रं) ह्यसौ।।१०६।।

अयम् एव प्रकृतीनाम् अधीश्वरः जगत्-स्वामी। अयम् हि सूक्ष्मा प्रकृतिः। अयम् हि सर्वेश्वरेश्वरः। इमम् देवाः कदाचन वेदाः अपि न जानन्ति। अनेन एव मया सार्द्धम् चराचरम् जगत्सृष्टम्। मम मायया देवाः सदा अस्मै बलिम् प्रयच्छन्ति। अस्मात् परम् किञ्चित् नास्ति तस्माद् असौ हि परम् ब्रह्म।

ये ही जगत् के स्वामी हैं। ये ही प्रकृतियों के स्वामी हैं। ये ही सूक्ष्मा प्रकृति हैं। ये ही सर्वेश्वरेश्वर हैं। इनको देव एवं वेद भी नहीं जानते। ये मेरे साथ मिलकर चराचर जगत् की सृष्टि किये हैं। मेरी माया से मोहित देवगण सदा इनके लिए बलि प्रदान करते हैं। इनके अलावा कुछ भी नहीं है; अतः ये ही परमब्रह्मस्वरूप हैं।।१०४-१०६।।

सदाशिवमहाविष्णुविष्णुब्रह्मशिवादयः ।
अस्यांशांशा भविष्यन्ति चास्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।।१०७।।
प्रकृतेः पुरुष(?षत्वं)त्वं च प्राकृत्यं पुरुषस्य च।
कर्तुं कारयितुं शक्तः स्वयंप्रकृतिरीश्वरः।।१०८।।
किं वायं प्रकृतिः साक्षात् किं वायं परमः पुमान्।
निश्चयं नाधिगच्छामि नित्यरूपे सनातने।।१०९।।

सदाशिवः महाविष्णुः ब्रह्मविष्णुशिवादयः सर्वे अस्य अंशांशाः भविष्यन्ति सर्वम्। अस्मिन् प्रतिष्ठितम् च त्वम् एव प्रकृतेः पुरुषत्वम् पुरुषस्य प्राकृत्यम् स्वयम् प्रकृतिः ईश्वरः कर्त्तुम् कारयितुम् शक्तः। किम् वा अयम् प्रकृतिः किम् वा अयम् परमः पुमान् नित्यरूपे सनातने निश्चयम् न अधिगच्छामि।

सदाशिव, महाविष्णु ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवगण इनके अंश के अंश हैं। वे सभी इनके अन्दर प्रतिष्ठित रहते हैं। आप ही प्रकृति के पुरुष और पुरुष की प्रकृति हैं। स्वयं प्रकृति-पुरुष रूप ईश्वर हैं। ये साक्षात् प्रकृति अथवा पुरुष हैं? नित्य रूप सनातन के विषय में मैं भली प्रकार नहीं जानती॥१०७-१०९॥

चतुर्भुजां मां द्विभुजां करोति स्वयं विधाता द्विभुजश्चतुर्भुजः।
सहस्त्रबाहोरपि देहकर्ता भर्ता सतां मे भगवान् प्रसीदतु॥११०॥
इति सञ्चिन्त्य सा देवी समस्तभुवनेश्वरी।
पपात दण्डवद् भूमौ मम पादाम्बुजान्तिके॥१११॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे दिव्यवृन्दावनोपाख्याने गोलोकनिर्माण-
भुवनेश्वरीमोहनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

(अयम्) स्वयम् विधाता द्विभुजः चतुर्भुजः। सहस्त्रबाहोः अपि देहकर्त्ता (अस्ति) चतुर्भुजाम् माम् द्विभुजाम् करोति। सताम् भर्ता भगवान् मे प्रसीदतु इति संचिन्त्य सा समस्तभुवनेश्वरी देवी मम पादाम्बुजान्तिके भूमौ दण्डवत् पपात।

यह स्वयं श्रीकृष्ण विधाता दो भुजा, चार भुजा वालें हैं तथा सहस्त्र भुजा धारण करने वाले हैं, उन्होंने चार भुजाओं वाली मुझको दो भुजाओं वाली में बदल दिया। सहस्त्रबाहु की भी देहरचना करने वाले भगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ—यह सोचते हुए समस्त भुवनों की ईश्वरी वह मेरे चरणकमलों के समीप भूमि पर दंडवत् गिर गयी॥११०-१११॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में दिव्य वृन्दावन व्याख्यान-
गोलोकनिर्माण-भुवनेश्वरीमोहननामक पन्द्रहवें अध्याय
की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

षोडशोऽध्यायः

श्रीकृष्णाभेदशक्ति-श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीप्रकाशरहस्यम्

बलराम उवाच—

ततः किमकरोद् देवी भवता किमनुष्ठितम्।
तन्मे कथय धर्मज्ञ श्रोतुं कौतूहलं मम॥१॥

ततः देवी किम् अकरोत्? भवता किम् अनुष्ठितम्? धर्मज्ञ! तत् मे कथय? श्रोतुम् मम कौतूहलम्।

बलराम ने कहा—इसके बाद देवी ने क्या किया? आपने क्या किया? हे धर्मज्ञ! यह मुझे बतलाइये। यह सुनने के लिए मुझे कौतूहल (तीव्र इच्छा) हो रहा है॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

मां दृष्ट्वा परमेशानं सकलाश्चर्यरूपिणम्।
मूर्च्छिता दण्डवद् भूमौ पतित्वा च पुनः पुनः॥२॥
कम्पमानाङ्गलतिका ननाम भुवनेश्वरी।
उदीक्षन्ती सहासं मां प्रेमाम्बुच्छन्नलोचना॥३॥

सकलाश्चर्यरूपिणम् परमेशानम् माम् दृष्ट्वा पुनः पुनः मूर्च्छिता भूमौ दण्डवत् पतित्वा कम्पमानाङ्गलतिका भुवनेश्वरी प्रेमाम्बुच्छन्नलोचना सहासम् माम् उदीक्षन्ती ननाम।

श्रीकृष्ण ने कहा—सकल आश्चर्यरूपी परम ईशान को देखकर बार-बार मूर्च्छित होती हुई, पृथ्वी पर दण्ड के तरह मेरे चरणों में गिर कर काँपती हुई देहलतिका वाली भुवनेश्वरी प्रेम के आँसुओं से पूर्ण नेत्रों वाली होकर हँसी के साथ मुझको देखती हुई प्रणाम करने लगी॥२-३॥

नताऽस्ति(?स्मि) मे(?ते) देव देव प्रसीद पुरुषोत्तम।
ततः सोऽहं कृपासिन्धुर्मोहनस्यापि मोहनः॥४॥
गृहीत्वा मुरलीं वामे वंशीं पाणौ च दक्षिणे।
प्रकृतिं स्वयमात्मानं चिन्तयामास विश्वकृत्॥५॥
तस्या विमोहनायैव तत्क्षणं स्त्रीत्वमागतः।
बाणोऽभवच्छुभा वंशी मुरली चाभवद्धनुः॥६॥

ते नता अस्मि! पुरुषोत्तम! देव! देव! प्रसीद। ततः मोहनस्यापि मोहनः सः कृपासिन्धुः विश्वकृत् अहम् वामे पाणौ मुरलीम् दक्षिणे च पाणौ वंशीम् गृहीत्वा स्वयम् आत्मानम् प्रकृतिम् चिन्तयामास। तस्याः विमोहनाय एव तत्क्षणम् स्त्रीत्वम् आगतः। शुभा वंशी बाणः अभवत् मुरली च धनुः अभवत्।

हे देव! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। हे पुरुषोत्तम! हे देव! प्रसन्न हो जाओ। तब मोहन को भी मोहित करने वाला कृपासिन्धु मैंने अपने बाँयें हाथ में मुरली को और दाँयें में वंशी को ग्रहण कर लिया। विश्व का निर्माण करने वाला मैं स्वयं अपनी प्रकृति का ध्यान करने लगा। उसी समय उस भुवनेश्वरी को विमोहित करने के लिए मैंने स्त्रीरूप धारण कर लिया। शुभ वंशी बाण बन गयी और मुरली धनुषरूप में परिवर्तित हो गयी।।४-६।।

ऊर्ध्वहस्तद्वये पाशमङ्कुशं करयोरधः।
बिभ्रतं मामपश्यत्सा देवदेवं शुचिस्मितम्।।७।।
इन्दीवरेक्षणयुगं संवीतं पीतवाससा।
स्त्रीवेषधारिणं शुद्धमनन्तमजमव्ययम्।।८।।

(बाणम् धनुः च) ऊर्ध्वहस्तद्वये, अधः करयोः पाशम् अंकुशम् बिभ्रतम् देवदेवम् शुचिस्मितम् अजम् अनन्तम् अव्ययम् इन्दीवरेक्षणयुगम् पीतवाससा संवीतम् स्त्रीवेषधारिणम् माम् सा अपश्यत्।

ऊपर के दो हाथों में धनुष एवं बाण तथा नीचे के हाथों में पाश और अंकुश धारण किये हुये, देवाधिदेव, शुचि स्मितयुक्त, अज, अनन्त, अव्यय, कमलदल के समान नेत्रों वाले, पीताम्बर पहने हुए, स्त्री वेषधारी मुझको उसने देखा।।७-८।।

यथाहं भगवान् कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
स्वयं प्रकृतितां यातस्तन्मे निगदतः शृणु।।९।।
अथोहमद्भुतो दिव्यः सर्वभूतमनोहरः।
त्रिभङ्गस्थानतो राम ममैव परमात्मनः।।१०।।
उदतिष्ठद् महांस्तेजोराशिरर्कसमद्युतिः।
तेनैव व्याप्तं सकलं जगत् स्थावरजङ्गमम्।।११।।

यथा सच्चिदानन्दविग्रहः अहम् भगवान् कृष्णः स्वयम् ताम् प्रकृतिम् यातः तत् निगदतः मे शृणु। राम! अथ अहम् अद्भुतः दिव्यः सर्वभूतमनोहरः परमात्मनः मम त्रिभङ्गस्थानतः एव अर्कसमद्युतिः महान् तेजोराशिः उदतिष्ठत। तेन एव स्थावरजङ्गमम् सकलम् जगत् व्याप्तम्।

जिस प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप मैं भगवान् कृष्ण स्वयं प्रकृतिता को प्राप्त हो गया, वह मैं कहता हूँ। सुनो। हे राम! मैं अद्भुत दिव्य सर्वभूत मनोहर था। मुझ परमात्मा के त्रिभङ्ग स्थान से सूर्य के समान महा तेजराशि प्रकट हुई। उस तेजराशि से स्थावर-जंगम सम्पूर्ण जगत् आपूरित हो गया।।९-११।।

तेजोभिस्तैरहं नारी सर्वलोकैकमोहिनी।
त्रैलोक्यविजया नित्या नित्यानन्दस्वरूपिणी।।१२।।
त्रिभङ्गपुरतो यस्मान्ममैव परमात्मनः।
जातेयं सुन्दरी साक्षाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।।१३।।

तैः तेजोभिः सर्वलोकैकमोहिनी नित्या त्रैलोक्यविजया नित्यानन्दस्वरूपिणी नारी इयम् सुन्दरी साक्षात् श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ममैव परमात्मनः त्रिभङ्गपुरतः जाता।

मेरे उस तेज से सभी लोकों को एक मात्र मोहित करने वाली नित्य, त्रैलोक्यविजया, नित्य आनन्दस्वरूपिणी यह सुन्दरी नारी साक्षात् श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी मुझ परमात्मा के त्रिभङ्गपुर से उत्पन्न हुई।।१२-१३।।

भ्रूमध्यान्मम देवस्थ(?स्य) ऐंकारः समजायत।
क्लींकारो हृदयाच्चैव सौःकारो योनिमध्यतः।।१४।।
स्थानत्रयसमुद्भूतमेतद्बीजत्रयं महत्।
पुरत्रयं यतस्तस्मात् त्रिपुरेति निरुच्यते।।१५।।

मम देवस्य भ्रूमध्यात् ऐंकारः, हृदयात् च क्लींकारः, योनिमध्यतः सौःकारः समजायत। एतत् महत् बीजत्रयम् यतः स्थानत्रयसमुद्भूतम् तस्मात् (एतत्) पुरत्रयम् त्रिपुर इति निरुच्यते।

मुझ देव के भ्रूमध्य से ऐंकार, हृदय से क्लींकार तथा योनि के मध्य से सौःकार उत्पन्न हुए। ये दिव्य तीनों बीज तीन स्थानों से उत्पन्न होने के कारण पुरत्रय अथवा त्रिपुर कहलाते हैं।।१४-१५।।

आदौ वर्णमयी नित्या विद्यायोनिः सरस्वती।
मध्ये सर्वजगज्जेता कामः सर्वहृदि स्थितः।।१६।।
सर्वशक्तिमयी शक्तिरेकीभूय स्थिता यतः।
त्रिपुरा त्रिजगन्माता सर्वभूतनमस्कृता।।१७।।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्रयाणां या पुरातनी।
त्रिपुरा प्रथिता तेन सर्वसिद्धैर्नमस्कृता।।१८।।

आदौ नित्या विद्यायोनिः वर्णमयी सरस्वती, मध्ये सर्वहृदि स्थितः सर्वजगत् जेता कामः, सर्वशक्तिमयी शक्तिः यतः एकीभूय स्थिता त्रिपुरा सर्वभूतनमस्कृता त्रिजगन्माता या ब्रह्मविष्णुमहेशानाम् त्रयाणाम् पुरातनी तेन सर्वसिद्धैः नमस्कृता त्रिपुरा प्रथिता।

सबसे पहले नित्या, विद्या की जननी वर्णमयी सरस्वती (ऐं) हैं। मध्य में सबके हृदय में स्थित सर्वजगत् को जीतने वाला कामदेव (क्लीं) है। अन्त्या शक्ति सर्वशक्तिमयी शक्ति (सौः) हैं—ये तीनों जब एक होकर स्थित हुईं तो सभी प्राणियों के लिए प्रणमनीय जगन्माता त्रिपुरा=त्रिपुरसुन्दरी हो गयीं। यह ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश इन तीनों से पुरातनी हैं। इसलिए सभी सिद्धों द्वारा वन्दिता यह शक्ति त्रिपुरा के रूप में प्रसिद्ध हुईं।।१६-१८।।

अहं सर्वेश्वरो राधा सर्वशक्तिनिषेविता।
भुवनेश्वरी महामाया त्रितयं पूर्वजं यतः।।१९।।
तेनैव प्रथिता लोके श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
बालार्ककोटिकिरणा सुकुञ्चितशिरोरुहा।।२०।।
पूर्णेन्दुकोटिसङ्काशविकासिमुखपङ्कजा ।
मणिमाणिक्यरचितस्फुरन्मकरकुण्डला ।।२१।।
जितकामधनुः सुभ्रू रक्तपद्मदलेक्षणा।
जपाकुसुमसङ्काशा सिन्दूरमण्डिताननाा।।२२।।
सुचारुनयनप्रान्तकटाक्षेषुप्रवर्षिणी ।
सुदती सुन्दरग्रीवा कुञ्चिताधरपल्लवा।।२३।।

अहम् सर्वेश्वरः, सर्वशक्तिनिषेविता राधा महामाया भुवनेश्वरी यतः त्रितयम् पूर्वजम् तैनेव लोके श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी इति प्रथिता। (सा) बालार्ककोटिकिरणसुकुञ्चितशिरोरुहा पूर्णेन्दुकोटिसंकाशविकासिमुखपंकजा मणिमाणिक्यरचितस्फुरत् मकरकुण्डला, रक्तपद्मदलेक्षणा, जितकामधनुः, सुभ्रूः, जपाकुसुमसंकाशा सिन्दूरमण्डितानना, सुदती सुन्दरग्रीवा, सुचारुनयनप्रान्तकटाक्ष-इषुप्रवर्षिणी कुञ्चिताधरपल्लवा (आसीत्)।

सर्वेश्वर मैं हूँ। सभी शक्तियों से युक्त राधा तथा महामाया भुवनेश्वरी ये तीनों पहले ही उत्पन्न हुए। अतः लोक में श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी आभा करोड़ों बाल सूर्यों की किरणों के समान है। इनके बाल घुंघराले हैं। मुखपंकज करोड़ों चन्द्रमाओं की तरह है। मकरकुण्डल मणि-माणिक्यों की प्रभा से चमक रहे हैं। इनकी आँखें रक्त कमलदल के समान हैं। इनकी सुन्दर भ्रूरेखा ने कामदेव के धनुष को भी अपनी वक्रता

से जीत लिया है। यह जपाकुसुम की आभा वाली है। सिन्दूर इनके मुख की शोभा को बढ़ा रहा है। इनके दाँत सुन्दर हैं; ग्रीवा सुन्दर है। ये अपने सुन्दर नेत्रप्रान्त से निरन्तर कटाक्ष-बाणों की वर्षा करती रहती हैं। साथ ही इनके अधरपल्लव कुञ्चित हैं।।१९-२३।।

तिलपुष्पसमाकारसुनासापुटसुन्दरी।
अनेकमणिमाणिक्यविलसत्कण्ठभूषणा ।।२४।।
मुक्ताहारलतोपेतपीनस्तनयुगोज्ज्वला।
आजानुलम्बितवनमालयाऽतिविराजिता ।।२५।।
कौस्तुभोद्भासितोरस्का दिव्यचन्दनचर्चिता।
हस्तैश्चतुर्भिर्ललितैः पाशाङ्कुशधनुःशरान्।।२६।।
बिभ्रती वेशलीलाभिर्मोहयन्ती जगत्त्रयम्।
त्रिवलीवलयाकारमध्यदेशसुशोभिता ।।२७।।

तिलपुष्पसमाकारसुनासापुटसुन्दरी, अनेकमणिमाणिक्यविलसत् कण्ठ-भूषणा, पीनस्तनयुगोज्ज्वला, मुक्ताहारलतोपेत-आजानुलम्बितवनमालया अति-विराजिता, कौस्तुभोद्भासित-उरस्का दिव्यचन्दनचर्चिता, चतुर्भिः ललितैः हस्तैः पाश-अंकुश-धनुःशरान् बिभ्रती, वेशलीलाभिः जगत् त्रयम् मोहयन्ती, त्रिवली-वलयाकारमध्यदेशसुशोभिता।

वह त्रिपुरसुन्दरी तिलपुष्प की तरह सुन्दर नासापुटों से युक्त है। इसके कण्ठ-आभूषण अनेक मणि-माणिक्यों से दीपित हैं। इसके वक्षःस्थल उठे हुए पीन स्तन मुक्ताहारों से सजे हुए हैं; घुटनों तक लम्बी वनमाला सुशोभित हो रही हैं। इनका उरःस्थल कौस्तुभमणि से उद्भासित है। इनके शरीर पर दिव्य चन्दन उपलिप्त है। इनके चारों ललित हाथों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण शोभित हैं। ये अपनी वेष लीला से तीनों जगत् को मोहित कर रही हैं। इनका मध्यदेश त्रिवली से शोभित है।।२४-२७।।

लावण्यसरिदावर्तचारुनाभिसरोरुहा।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्ताभरणभूषिता ।।२८।।
सुवर्णरत्नरचितचरणाम्भोजनूपुरा।
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजराजच्चरणपल्लवा ।।२९।।
सम्मुखस्था ममैवाभून्मोहयन्तीव तद्वनम्।
तनुप्रभाभिरत्यन्तरक्ताभिररुणीकृतम् ।।३०।।

लावण्यसरिदावर्तचारुनाभिसरोरुहा, रक्तवस्त्रपरीधाना, रक्ताभरण-भूषिता, सुवर्णरत्नरचितचरणाम्भोजनूपुरा, वज्रध्वज-अंकुशाम्भोजराजत् चरण-

पल्लवा, रक्ताभिः तनुप्रभाभिः अत्यन्तम् अरुणीकृतम् तद् वनम् मोहयन्तीव मम सम्मुखस्था अभूत्।

इस त्रिपुरसुन्दरी का सुन्दर नाभि-कमल लावण्य की नदी की भंवर से युक्त है। इन्होंने रक्तवर्ण के परिधान पहन रखे हैं। ये रक्तवर्ण के आभूषणों से शोभित हैं। इनके चरण-कमलों के नूपुर स्वर्णरत्नों से निर्मित हैं। वज्र ध्वज अंकुश कमल-चिह्न इनके चरण-तलों में अंकित हैं। इनके शरीर से रक्त आभा निकल रही है, जिससे मेरा वृन्दावन अत्यन्त रक्तवर्ण हो गया है। इस तरह मोहित करती हुई वह मेरे सम्मुख आकर स्थित हो गयी॥२८-३०॥

अपि मे सा तनुमिमां नीलपाथोजसन्निभाम्।
समन्ताद् विदधे सम्यगरुणिम्नारुणारुणाम्॥३१॥
एतद् विलोक्य सपदि मुमोह भुवनेश्वरी।
किमिदं किमिदं दिव्यं किमिदं किमिदं परम्॥३२॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीकृष्णाभेदशक्ति-श्रीमत्त्रिपुर-
सुन्दरीप्रकाशरहस्यं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥

नीलपाथोजसन्निभाम् इमाम् मे तनुम् अपि सा समन्ताद् सम्यग् अरुणिम्ना अरुणारुणाम् विदधे। एतत् विलोक्य भुवनेश्वरी सपदि मुमोह इदम् परम् दिव्यम् किम् इदम् किम् इदम् किम् इदम् किम्।

नीलमेघ के समान कान्ति वाले मेरे इस शरीर को भी उसने सभी ओर से भली प्रकार अपनी लालिमा से लालिमायुक्त कर दिया है। इसे देखकर वह भुवनेश्वरी शीघ्र ही मोहित हो गयी और कहने लगी—अरे! यह क्या? अरे! यह क्या दिव्य है। अरे यह क्या परम है॥३१-३२॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में श्रीकृष्णाभेदशक्ति-श्रीमत्त्रिपुर-सुन्दरीप्रकाशरहस्य नामक सोलहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

सप्तदशोऽध्यायः

दिव्यवृन्दावनोपाख्याने राधाकृष्ण-रहस्येऽनङ्गकुसुमाद्यष्टनायिकाप्रचारणम्

विष्णुप्रियोवाच—

किमन्यद् बलरामेण पृष्टः(?ष्टं) प्रभुपदद्वये।
स एव वा किमुवाच दयामृतरसार्णव॥१॥

प्रभुपदद्वये बलरामेण किम् अन्यत् पृष्टम् स दयामृतरसार्णवः किम् वा उवाच एव।

विष्णुप्रिया ने कहा—प्रभु के चरणों में बलराम जी ने और क्या पूछा? तथा दयामृत रससागर श्रीकृष्ण ने क्या उत्तर दिया?॥१॥

ब्राह्मण उवाच—

एवं श्रुत्वा रो(?रौ)हिणेयः कथां श्रुतिरसायनाम्।
अतृप्तिमुपयातोऽसौ पुनः पप्रच्छ तं हरिम्॥२॥

रौहिणेयः एवम् श्रुतिरसायनाम् कथाम् श्रुत्वा अतृप्तिम् उपयातः। असौ पुनः तम् हरिम् पप्रच्छ।

ब्राह्मण ने कहा—रौहिणेय श्रीबलराम कानों के लिए रसायनरूपी इस कथा को इस प्रकार सुनकर अतृप्त ही रहे और उन्होंने उन हरि श्रीकृष्ण से पूछा॥२॥

श्रीबलराम उवाच—

आविरास स(?य)दा देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
भुवनेशी मोहिता तच्छ्रुतं श्याममनोहर।
ततः किमभवत्पश्चात् तन्मे नाथ निगद्यताम्॥३॥

श्याममनोहर! देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी यदा आविरास भुवनेशी मोहिता तत् श्रुतम्। नाथ! ततः पश्चात् किम् अभवत् तत् मे निगद्यताम्।

श्रीबलराम ने कहा—श्याम मनोहर देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का प्राकट्य एवं भुवनेशी का मोह मैंने आपसे सुना। इसके बाद हे नाथ! क्या हुआ, वह मुझे बतलाओ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ततोऽहमपि तां दृष्ट्वा राधाविरहकातरः।
मनसाऽचिन्तयमिदं सर्वं सर्वजनेश्वर॥४॥
एकाकिनी कथमियं तामानेतुं क्षमा भवेत्।
दुःसाध्यां सर्वदा राधामाधास्यन्तीं विमोहनम्॥५॥

ततः राधाविरहकातरः सर्वजनेश्वरः अहम् अपि ताम् दृष्ट्वा इदम् सर्वं मनसा अचिन्तयम्—सर्वदा विमोहनम् आधास्यन्तीम् साध्याम् राधाम् आनेतुम् इयम् एकाकिनी कथम् क्षमा भवेत्।

श्रीकृष्ण ने कहा—तदन्तर राधा के विरह से व्याकुल सर्वजनों के स्वामी मैंने उसको देखकर मन में विचार किया कि जगत् को सर्वदा मोहित करने में निपुण कठिनता से प्राप्त होने वाली उस राधा को लाने में यह (भुवनेश्वरी) अकेली कैसे समर्थ होगी॥४-५॥

इत्थं विचिन्त्यमानस्य सेङ्गितज्ञानमीशितुः।
एकानेकस्वरूपाऽभूत् सर्वयोगेश्वरेश्वरी॥६॥
तस्या अङ्गात् समुत्पन्ना नानाकारा महाबलाः।
चतुषष्टिकोटिमिता योगिन्यस्ताश्चतुर्भुजाः॥७॥
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्तांशुकावृताः।
आच्छाद्य मां जगन्नाथं गोविन्दं निजतेजसा॥८॥
विचरन्ति वनं सर्वं राधान्वेषणविह्वलाः।

इत्थम् विचिन्त्यमानस्य इङ्गितज्ञानम् ईशितुः सर्वयोगेश्वरेश्वरी एका अनेकरूपा अभूत्। तस्याः अङ्गात् चतुषष्टिकोटिमिताः नानाकाराः महाबलाः समुत्पन्नाः। ताः रक्तांशुकावृताः पाशाङ्कुशधनुर्बाणधराः चतुर्भुजाः योगिन्यः जगन्नाथम् माम् गोविन्दम् निजतेजसा आच्छाद्य राधान्वेषणविह्वलाः सर्वं वनम् विचरन्ति।

इस प्रकार इशारे से ही समझने वाले मुझ ईश्वर के मन में विचार करने पर वह सर्वयोगियों के ईश्वरों की ईश्वरी एक से अनेक रूप वाली हो गयी। उसके शरीर से चौंसठ करोड़ महाबलशाली, नाना रूपों वाली, लाल वस्त्रों से आवृत, चार भुजाओं में पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करने वाली योगिनियाँ प्रकट हुईं। उन्होंने जगत् के स्वामी मुझ गोविन्द को अपने तेज से ढँक लिया और वे राधा जी को खोजने में व्याकुल होकर उस वन में विचरने लगीं॥६-८॥

ततः सा त्रिजगद्धात्री श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी॥९॥
प्राह प्रहसितमुखी किं करिष्यामि किङ्करी।

ततः सा त्रिजगत् धात्री श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी हसितमुखी प्राह—किङ्करी अहम् किम् करिष्यामि।

इसके बाद तीनों लोकों की धात्री वह श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी हँसती हुई बोली कि मैं किङ्करी क्या करूँ?॥९॥

अथाहं तामुवाचेदं प्रणयाविष्टमानसः॥१०॥
ईश्वरीं सर्वशक्तीनां राधां मे वशमानय।
ममेदं वाक्यमाकर्ण्य सर्वाः स्वीयाङ्गसम्भवाः॥११॥
आहूय योगिनीर्नित्या श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
प्रणयाविष्टहृदया दिक्षु दिक्षु न्ययोजयत्।
प्रत्येक(?कं) दिशि प्रत्येकां प्रेषयामास योगिनीम्॥१२॥

अथ प्रणयाविष्टमानसः अहम् ताम् इदम् उवाच—सर्वशक्तीनाम् ईश्वरीम् राधाम् मे वशम् आनय। मम इदम् वाक्यम् आकर्ण्य नित्या श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी सर्वाः स्वीयाङ्गसम्भवाः योगिनीः आहूय प्रणयाविष्टहृदया दिक्षु दिक्षु न्ययोजयत्, प्रत्येकदिशि प्रत्येकाम् योगिनीम् प्रेषयामास।

इसके बाद प्रेम से आविष्ट हृदय वाले मैंने उससे यह कहा कि सभी शक्तियों की स्वामिनी श्रीराधा को मेरे वश में कर दो। मेरे इस वाक्य को सुनकर उस नित्या त्रिपुरसुन्दरी ने अपने शरीर से उत्पन्न सभी योगिनियों को बुलाकर प्रेमानन्द से आपूरित हृदय होकर उन्हें प्रत्येक दिशा में नियोजित कर दिया अर्थात् प्रत्येक दिशा में प्रत्येक योगिनी को भेज दिया॥१०-१२॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

अनङ्गकुसुमे प्राचीं दिशं त्वं याहि सत्वरम्।
अन्वेषमाणा गोविन्दमहिषीं चारुहासिनीम्॥१३॥
कृष्णाभिन्ना च सा देवी राधिका कृष्णवल्लभा।
सान्त्वयित्वा च तां देवीं प्रेम्णा मधुरया गिरा॥१४॥
सम्पूज्य विविधैर्भावैरानीयास्मै निवेदय।

हे अनङ्गकुसुमे! त्वम् सत्वरम् गोविन्दमहिषीम् चारुहासिनीम् अन्वेषमाणा प्राचीम् दिशम् याहि। सा देवी राधिका कृष्णाभिन्ना कृष्णवल्लभा च। ताम् देवीम् प्रेम्णा मधुरया गिरा च सान्त्वयित्वा विविधैः भावैः सम्पूज्य आनीय अस्मै निवेदय।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे अनङ्गकुसुमे! तुम शीघ्रता से सुन्दर हास को प्रकट करने वाली गोविन्द की पटरानी को खोजती हुई पूर्व दिशा में जाओ। वह देवी राधिका कृष्ण की प्रिया तथा कृष्ण से अभिन्न हैं। उनको प्रेमपूर्वक मधुर वाणी से सान्त्वना देकर तथा विविध भावों से अच्छी तरह पूजा करके ले जाओ और इन्हें दे दो॥१३-१४॥

यस्या मे दृष्टिमात्रेण मोहितं सकलं जगत्॥१५॥
यस्या महत्त्वं किं वक्तुं शक्यते शृणु सुन्दरि।
त्वरितं गच्छ सुभगे नात्र कार्या विचारणा॥१६॥

हे सुन्दरि! शृणु—यस्याः दृष्टिमात्रेण सकलम् जगत् मोहितम् तस्याः महत्त्वम् वक्तुम् किम् मे शक्यते? सुभगे त्वरितम् गच्छ। अत्र विचारणा न कार्या।

हे सुन्दरि! सुनो, जिसके दृष्टिपातमात्र से सारा जगत् मोहित हो जाता है, उसकी महिमा-वर्णन करने की क्या मेरी शक्ति है? हे सुभगे! शीघ्र जाओ। इसमें विचार मत करो॥१५-१६॥

अनङ्गमेखले गच्छ दक्षिणां दिशमुत्तमे।
निवेदय श्रीकृष्णाय राधिकां सकलाधिकाम्॥१७॥
अनङ्गमदने त्वं च पश्चिमां गच्छ मा चिरम्।
उदीचीं च दिशं गत्वा कार्यार्थं मदनातुरे॥१८॥
मदनातुरां च तां कृत्वा कृष्णायास्मै निवेदय।

हे उत्तमे! अनङ्गमेखले! दक्षिणाम् दिशम् गच्छ। सकलाधिकाम् राधिकाम् श्रीकृष्णाय निवेदय। अनङ्गमदने! त्वम् पश्चिमाम् दिशम् गच्छ चिरम् मा (कुरु)। उदीचीम् च दिशम् मदनातुरे कार्यार्थं गत्वा ताम् च मदनातुराम् कृत्वा अस्मै कृष्णाय निवेदय।

हे उत्तमे! हे अनङ्गमेखले! तुम दक्षिण दिशा में जाओ। सबसे अधिक सुन्दर उस राधिका को श्रीकृष्ण के लिए ले आओ। हे अनङ्गमदने! तुम भी बिना देर के पश्चिम दिशा में जाओ और उत्तर दिशा में जाकर कामपीड़ित श्रीकृष्ण के कार्य के लिए उस राधा को कामपीड़ित करके इन कृष्ण के लिए निवेदित कर दो॥१७-१८॥

अनङ्गरेखे चाग्नेयीं विदिशं गच्छ सत्वरम्॥१९॥
नैर्ऋतीं विदिशं गच्छ जवेनानङ्गवेगि(?नि)।
अनङ्गवेगात् सा देवी यथा कृष्णं समाश्रयेत्॥२०॥

अनङ्गरेखे! (त्वम्) सत्वरम् च आग्नेयीम् विदिशम् गच्छ। अनङ्गवेगिनि! जवेन नैर्ऋतीम् विदिशम् गच्छ यथा अनङ्गवेगात् सा देवी कृष्णम् समाश्रयेत्।

हे अनङ्गरेखा! शीघ्र आग्नेयी दिशा में जाओ। अनङ्गवेगिनि! शीघ्रता से नैर्ऋत्य दिशा को जाओ। जिससे वह देवी कामवेग के कारण श्रीकृष्ण को प्राप्त हो जाय, वह करो॥१९-२०॥

कामाङ्कुशे गच्छ वायोर्विदिशं रभसा द्रुतम्।
कामाङ्कुशेन तस्यास्त्वमाकर्षय मनोद्विपम्॥२१॥
अनङ्गमालिनि त्वं मे साहाय्यं स्वामिनः कुरु।
ऐशानीं विदिशं याहि राधिकां शीघ्रमानय॥२२॥
अतस्ताः शक्तयः सर्वा देवीवाक्यं तथास्त्विति।
अनुमन्यमानाः सपदि विपिनं त्वरया गताः॥२३॥
अन्वेषमाणा नियतं न स्म पश्यन्ति राधिकाम्।

कामाङ्कुशे! रभसा वायोः विदिशं द्रुतम् गच्छ। कामाङ्कुशेन तस्याः मनोद्विपम् त्वम् आकर्षय। अनङ्गमालिनि! त्वम् मे स्वामिनः साहाय्यम् कुरु, ऐशानीम् विदिशम् याहि; राधिकाम् शीघ्रम् आनय। अतः ताः सर्वाः शक्तयः तथा अस्तु इति देवीवाक्यम् अनुमन्यमानाः सपदि त्वरया विपिनम् गताः नियतम् अन्वेषमाणाः राधिकाम् न पश्यन्ति स्म।

हे कामाङ्कुशे! तेजी से वायुदिशा में शीघ्र जाओ। अपने कामाङ्कुश से उस देवी के मनरूपी हाथी को खींच लाओ। हे अनङ्गमालिनि! तुम मेरे स्वामी की सहायता करो और ऐशानी दिशा में जाओ तथा राधिका को शीघ्र हो जाओ। तब वे सभी शक्तियाँ 'ऐसा ही हो' यह कहकर देवी के वाक्यों का अनुसरण करती हुई शीघ्रता से विपिन में गयीं। ध्यान से खोजने पर भी उन्होंने राधिका को नहीं देखा॥२१-२३॥

ततोऽरुणारुणसदृशः क्रोधं चक्रुरनुत्तमाः॥२४।
अद्यैव तस्या वश्यार्थमवश्यमुद्यता वयम्।
विधास्यामो विधानं तद् राधाऽसाधारणाश्रयेत्॥२५॥
संभूय सर्वास्ताश्चक्रुरुपायं तद्विमोहने।
लोकेऽस्मिन्निखिले यस्मादुपायो विक्रमाद् वरः॥२६॥

ततः अरुण-अरुणसदृशः अनुत्तमाः क्रोधम् चक्रुः। वयम् अद्यैव तस्याः वश्यार्थम् अवश्यम् उद्यताः असाधारणा राधा आश्रयेत् तद् विधानम् विधास्यामः। ताः सर्वाः सम्भूय तद्विमोहने उपायम् चक्रुः। निखिले लोके अस्मिन् यस्माद् विक्रमाद् उपायो वरः।

इसके बाद अरुण की तरह लाल सर्वोत्तम उन सबों ने क्रोध किया कि

हम आज ही उसको वश में करने के लिए उद्यत होकर ऐसा करेंगी, जिससे असाधारण राधा कृष्ण का आश्रय ग्रहण कर ले। तब सबने एकत्रित होकर वह उपाय किया, जो इस लोक में सभी विक्रमों से श्रेष्ठ था।।२४-२६।।

शरासनं पुष्पमयं माद्यद् भृङ्गगुणं परम्।
आकृष्योन्मादकृत्पञ्चशरवर्षमवासृजन् ।।२७।।
ततस्तासां बाणवर्षादम्बुवर्षा दिवानिशम्।
सद्यो वृन्दावनं सर्वं पञ्चबाणमयं बभौ।।२८।।
वृन्दावनतरूणां च पुष्पे पुष्पे दले दले।
अनङ्गकुसुमा देवी प्राविशद्विश्वमोहिनी।।२९।।

(ताः) पुष्पमयम् शरासनम् माद्यत् भृङ्गगुणम् परम् आकृष्य उन्मादकृत् पञ्चशरवर्षम् अवासृजन्। ततः तासाम् बाणवर्षाद् दिवानिशम् अम्बुवर्षा सद्यः सर्वम् वृन्दावनम् पञ्चबाणमयम् बभौ। विश्वमोहिनी अनङ्गकुसुमा देवी वृन्दावनतरूणाम् पुष्पे पुष्पे दले दले प्राविशत्।

उन्होंने पुष्पों का धनुष और बाण बनाकर मस्त करने वाले भृङ्गों की डोरी (प्रत्यञ्चा) बनाकर धनुष खींचकर उन्माद उत्पन्न करने वाले पञ्च बाणों की वर्षा करना शुरू कर दिया। तब उनकी बाणवर्षा से रात-दिन जल की वर्षा होने लगी, जिससे सारा वृन्दावन पञ्चबाणमय हो गया। विश्व-मोहिनी अनङ्गकुसुमा देवी वृन्दावन के वृक्षों के प्रत्येक पत्र और पुष्प में प्रवेश कर गयी।।२७-२९।।

इत्येवं चिन्तयन्ती सा परमाह्लादमानसा।
यदा कुसुमसौरभ्यं तस्या देहे प्रवर्षते।।३०।।
तदैव सा महादेवी वश्यावश्यं भविष्यति।
प्रविष्टायां पुष्पचयैस्तस्यां भृङ्गाश्च कोकिलाः।।३१।।
वृन्दावनचराः सर्वे मयूराद्याश्च पक्षिणः।
हरिण्यो हरिणाश्चैव बभूवुः काममोहिताः।।३२।।

सा परमाह्लादमानसा इति एवम् चिन्तयन्ती यदा तस्याः देहे कुसुमसौरभ्यम् प्रवर्षते तदा एव सा महादेवी अवश्यम् वश्या भविष्यति। पुष्पचयैः तस्याम् प्रविष्टायाम् भृङ्गाः कोकिलाः वृन्दावनचराः मयूराद्याः सर्वे पक्षिणः हरिणाः हरिण्यः च काममोहिताः एव बभुवुः।

वह अनङ्गकुसुमा आह्लादित मन से यह सोच रही थी कि जब उस राधा के शरीर पर यह पुष्पगन्धधारा के रूप में पहुँचेगी तभी वह महादेवी उन श्रीकृष्ण के वश में हो जायेगी। वृक्षों के पुष्प एवं पत्रों में उसके प्रवेश

कर जाने पर भ्रमर कोकिल वृन्दावन में रहने वाले सभी मयूर आदि पक्षी हरिण और हरिणियाँ काम से मोहित ही हो गये॥३०-३२॥

ततोनङ्गमेखला सा तस्या वस्त्रे विवेश वै।
चिन्तयन्ती यदा वस्त्रं परिधास्यति राधिका॥३३॥
तदैव वशगा देवी कृष्णस्यैव भविष्यति।
अनङ्गमदना देवी व्यसृजन्मदनान् द्रुतम्॥३४॥
शतकोटिपरिमितान् तैस्तैः सम्मोहितं वनम्।

ततः सा अनङ्गमेखला तस्याः वस्त्रे विवेश। चिन्तयन्ती यदा राधा वस्त्रम् परिधास्यति तदैव देवी कृष्णस्य वशगा भविष्यति एव। देवी अनङ्गमदना द्रुतम् शतकोटिपरिमितान् मदनान् व्यसृजत्। तैः वनम् सम्मोहितम्।

इसके बाद वह अनंगमेखला राधिका जी के वस्त्रों में प्रवेश कर गयी और सोचने लगी कि राधाजी जब इन वस्त्रों को धारण करेंगी तभी वे कृष्ण के वश में हो जायेंगी। देवी अनङ्गमदना ने शीघ्रता से सौ करोड़ की संख्या में मदनों अर्थात् कामदेवों का निर्माण किया और उन्होंने वन को मोहक बना दिया॥३३-३४॥

मदनातुरा च या देवी वनमध्ये विशेषतः॥३५॥
पञ्चबाणेन सहिता चिक्रीड रसविह्वला।
अनङ्गरेखा या देवी बालाऽप्यतिमनोरमा॥३६॥
पलायमाना मदनं दृष्ट्वाऽधावत् पदे पदे।
ततः कियद्दूरगतस्तां जग्राह भयातुराम्॥३७॥

या मदनातुरा देवी विशेषतः वनमध्ये रसविह्वला पंचबाणेन सहिता चिक्रीड। या बाला अपि मनोरमा देवी अनङ्गरेखा मदनम् दृष्ट्वा पलायमाना पदे पदे अधावत्। ततः कियद् दूरगतः ताम् भयातुराम् जग्राह।

वह मदनातुरा देवी वन के मध्य में विशेष रूप से रसविह्वल होकर कामदेव के साथ क्रीड़ा करने लगी। बाला होती हुई भी मनोरमा अनङ्गरेखा मदन को देखकर भागने लगी। उसके पीछे दौड़कर थोड़ी दूरी पर कामदेव ने उस भयातुर अनङ्गरेखा को पकड़ लिया॥३५-३७॥

रुदन्तीं कम्पमानाङ्गलतिकामतिकातराम्।
कामः करे गृहीत्वा तां (? करे गृहीत्वा कामेन) चुम्बिता क्रोडसङ्गता॥३८॥
नवसङ्गमसंत्रस्ता ना नेत्युक्ता(? क्त्वा) पुनः पुनः।
रुदन्ती सुदती भीता शीतार्ता च व्यकम्पत॥३९॥

कम्पमानाङ्गलतिकाम् अतिकातराम् तां रुदन्तीम् कामेन करे गृहीत्वा क्रोड-सङ्गता चुम्बिता। नवसंगमसंत्रस्ता पुनः पुनः (ना-ना) इति उक्त्वा रुदन्ती सुदती भीता शीतार्ता च व्यकम्पत।

कम्पमान शरीर वाली, अत्यन्त कातर उस रोती हुई अनङ्गरेखा को कामदेव ने हाथ से पकड़कर गोद में लेकर उसका चुम्बन किया। नवसंगम से भयभीत सुन्दर दन्तपंक्ति वाली वह बार-बार (ना-ना) कहती हुई डरी हुई शीत से आर्त की भाँति काँपने लगी।३८-३९।।

अनङ्गवेगिनी देवी वृन्दावनमहावने।
वेगेन कामदेवं तं समालिङ्गति नृत्यति।।४०।।
आत्मनो योनिविवरे लिङ्गं कामस्य कामुकी।
वेशयन्ती वेशदीप्ता विवशा भृशविह्वला।।४१।।
विजहार हारशोभिपीनोत्तुङ्गपयोधरा।

देवी अनङ्गवेगिनी वृन्दावनमहावने वेगेन तम् कामदेवम् समालिङ्गति नृत्यति च। वेशदीप्ता विवशा कामुकी कामस्य लिङ्गम् आत्मनः योनिविवरे वेशयन्ती भृशविह्वला हारशोभिपीनोत्तुङ्गपयोधरा विजहार।

देवी अनङ्गवेगिनी ने उस महावृन्दावन में वेग से उस कामदेव का आलिङ्गन किया और नाचने लगी। वेश से दीपित वह विवश कामुकी काम के लिङ्ग को अपनी योनि के छिद्र में प्रवेश कराती हुई विह्वल हो गयी। उसके विशाल पयोधर हारों से शोभित हो रहे थे।।४०-४१।।

ततः कामाङ्कुशा देवी देवीमाकर्षितुं गता।।४२।।
कामाङ्कुशं दर्शयन्ती रिरंसामदविह्वला।
कामबीजं जपन्ती च चिन्तयन्तीति सुस्मिता।।४३।।

ततः देवी कामाङ्कुशा देवीम् आकर्षितुम् गता। रिरंसामदविह्वला सुस्मिता कामांकुशम् दर्शयन्तीम् कामबीजम् जपन्ती चिन्तयन्ती इति।

इसके बाद देवी राधा का आकर्षण करने के लिए देवी कामांकुशा रमणमद से विह्वल हो गयी। सुस्मिता वह काम के अंकुश को दिखाती हुई कामबीज (=क्लीं/क) का जप करती हुई सोचने लगी।।४२-४३।।

यदाङ्कुशं दर्शयामि तदा सा भविता वशे।
ततोप्यङ्कुशमुद्रां च दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः।।४४।।
कामदेवस्य वामांसे न्यस्तहस्ताग्रतः स्थिता।
कामदेवसहस्रेण विलसत्कण्ठमालिका।।४५।।

भगमालालिङ्गमालासम्बद्धोरःस्थलोज्ज्वला ।
समुन्नतस्तनद्वन्द्वा चारुभूषणभूषिता॥४६॥

यदा अंकुशम् दर्शयामि तदा सा वशे भविता। ततः मुहुर्मुहुः अंकुशमुद्राम् दर्शयित्वा कामदेवस्य वामांसे न्यस्तहस्ताग्रतः स्थिता कामदेवसहस्रेण विलसन्-कण्ठमालिका। मालासम्बद्ध-उरःस्थलोज्ज्वला समुन्नतस्तनद्वन्द्वा चारुभूषिता।

जब मैं अंकुश दिखाऊँगी तभी वह वश में होगी। इसके बाद बार-बार अंकुश मुद्रा को दिखाती हुई वह कामदेव के वाम कन्धे पर हाथ रखकर आगे खड़ी थी। हजारों कामदेव से उज्ज्वल उसके उरःस्थल भगमाला (= सूर्य के एक रूप की आकृति वाली माला) तथा लिङ्गमाला (परिचयात्मक चिह्नों की माला) से संयुक्त थे। दोनों स्तन अत्यन्त उन्नत थे। वह सुन्दर आभूषणों से भूषित थी॥४४-४६॥

राधाया गतराधाया मोहनार्थमुपस्थिता।
नानाभावैर्विभावैश्च विलासैरपि सर्वदा॥४७॥
एवं दिनादि निन्युस्ता बहूनि बहुलालसाः।
नाऽशक्नुवन् महादेव्या देव्य आकर्षणे यदा॥४८॥

गतराधायाः राधायाः मोहनार्थम् उपस्थिता सा नानाभावैः विभावैः विलासैः अपि सर्वदा बहुलालसाः ताः एवम् बहूनि दिनानि निन्युः। यदा देव्यः महादेव्याः आकर्षणे न अशक्नुवन्।

वश में न आयी हुई राधा का सम्मोहन करने लिए उपस्थित अनेकों भावों, विभावों और विलासों से भी प्रयत्न करने पर जब वे बहुत दिन बिता कर भी महादेवी को आकर्षित करने में सफल नहीं हुई तो—॥४७-४८॥

शक्तिहीनाः शक्तयस्तु गोविन्दं प्रति कातराः।
विचेरुर्विपिनं सर्वं नापश्यन् प्रेयसीं विभोः॥४९॥
अप्राप्य तां महादेवीं निरस्तास्तत्र कर्मणि।
वाग्विहीना वनं त्यक्त्वा लज्जयाधोमुखा ययुः॥५०॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे दिव्यवृन्दावनोपाख्याने राधाकृष्णरहस्ये-ऽनङ्गकुसुमाद्यष्टनायिकाप्रचारणनामा सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

शक्तिहीनाः शक्तयः गोविन्दम् प्रति कातराः सर्वम् विपिनम् विचेरुः। विभोः प्रेयसीम् न अपश्यन्। ताम् महादेवीम् अप्राप्य तत्र कर्मणि निरस्ताः वाग्विहीनाः लज्जया अधोमुखाः वनम् त्यक्त्वा ययुः।

व्याकुल शक्तिहीन वे शक्तियाँ गोविन्द के प्रति दुःखी हो गयीं। वे सम्पूर्ण वन में विचरण कर भी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी राधा को नहीं देख पायीं। इस प्रकार वे सभी महादेवी को बिना प्राप्त किये, खोज के कार्य से विरत एवं वाणीरहित होकर लज्जा के कारण अधोमुखी होकर वन को त्याग कर चली गयीं।।४९-५०।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र के दिव्यवृन्दावनोपाख्यान में राधाकृष्ण-रहस्य में नङ्गकुसुमादि अष्टनायिकाप्रचारण नामक सत्रहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

❋

अष्टादशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये षोडशाकर्षणशक्तिप्रचारः

बलराम उवाच—

अनङ्गकुसुमाद्यासु शक्तिष्वष्टसु केशव।
निरस्तासु समस्तासु किमभूत् तन्निगद्यताम्॥१॥

केशव! अनङ्गकुसुमाद्यासु अष्टसु शक्तिषु समस्तासु निरस्तासु किम् अभूत् तत् निगद्यताम्।

बलराम ने कहा—हे केशव! अनङ्गकुसुमा आदि सभी आठ शक्तियों के विफल हो जाने पर क्या हुआ? वह बताओ।१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ततः पुनर्महादेवी गणशः कामरूपिणी।
आहूयाकर्षिणीर्न्नित्याः प्रेषयामास सत्वरम्॥२॥

ततः पुनः महादेवी कामरूपिणी नित्याः गणशः आकर्षिणीन् आहूय सत्वरम् प्रेषयामास।

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके बाद पुनः नित्या कामरूपिणी महादेवी ने आकर्षण करने वाली सभी देवियों को बुलाकर शीघ्र भेजा॥२॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

कामाकर्षरूपणे त्वं कामेनाकर्षयेश्वरीम्।
तस्या बुद्धिं समाकृष्य कृष्णदेहे निवेशय॥३॥
कृष्णबुद्धिर्भवेद् यस्माद् बुद्ध्याकर्षणरूपिणी।
अहङ्काराकर्षिणी त्वमहङ्कारमनारतम्॥४॥
आकर्षय महाभागे यथा सा कृष्णसंश्रिता।

कामाकर्षणरूपे त्वम् ईश्वरीम् कामेन आकर्षय। तस्याः बुद्धिम् समाकृष्य कृष्णदेहे निवेशय। बुद्ध्याकर्षणरूपिणी यस्माद् कृष्णबुद्धिः भवेत्। अहंकारा-कर्षिणी त्वम् अनारतम् अहंकारम् आकर्षय। महाभागे यथा सा कृष्णसंश्रिता (भवेत्)।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे देवि! तुम कामाकर्षणरूपा हो; अतः तुम उस ईश्वरी राधा की बुद्धि का आकर्षण करके उसे कृष्णदेह में लगा दो। तुम बुद्धि का आकर्षण करने में भी समर्थ हो; अतः उसकी बुद्धि को

कृष्णमय कर दो। तुम अहंकार का भी आकर्षण करने वाली हो; अतः उसके सम्पूर्ण अहंकार का आकर्षण करो, जिससे वह कृष्ण में आश्रित हो जाए॥३-४॥

शब्दाकर्षणरूपे तत्कर्णं प्रविश सत्वरम्॥५॥
कृष्णशब्दं विनाशब्दं यथा नान्यं शृणोति सा।
स्पर्शाकर्षणरूपे त्वं त्वचि तस्याः स्थिरा भव॥६॥
कृष्णस्पर्शं विना नान्यं यथा स्प्रष्टुं क्षमा भवेत्।

हे शब्दाकर्षणरूपे! त्वम् तत्कर्णं सत्वरम् प्रविश यथा सा कृष्णशब्दम् विना अन्यम् शब्दम् न शृणोति। स्पर्शाकर्षणरूपे! त्वम् तस्याः त्वचि स्थिरा भव यथा (सा) विना कृष्णस्पर्शम् अन्यं स्प्रष्टुम् क्षमा न भवेत्।

हे शब्दाकर्षणरूपा! तुम उसके कान में शीघ्र प्रवेश कर जाओ, जिससे वह कृष्ण शब्द के अतिरिक्त किसी शब्द को न सुने। हे स्पर्शाकर्षणरूपा! तुम उसकी त्वचा में प्रवेश कर जाओ, जिससे वह कृष्ण के अतिरिक्त किसी का स्पर्श करने में सक्षम न हो॥५-६॥

रूपाकर्षणरूपे त्वं तस्या अक्ष्णोः प्रविश्यताम्॥७॥
आकर्षय महादेवीरूपाणि कमलानने।
श्यामरूपं विना नान्यद् यथा सा द्रष्टुमिच्छति॥८॥
रसाकर्षणरूपे त्वं रसरूपासि सर्वदा।
रसस्वरूपिणी सापि ताम्यतां मा विलम्ब्यताम्॥९॥

रूपाकर्षणरूपे! त्वम् तस्याः अक्ष्णोः प्रविश्यताम्। कमलानने! महादेवी-रूपाणि आकर्षय यथा सा श्यामरूपम् विना अन्यत् द्रष्टुम् न इच्छति। रसा-कर्षणरूपे! त्वम् सर्वदा रसरूपा असि। सा अपि रसस्वरूपिणी ताम्यताम् मा विलम्ब्यताम्।

हे रूप का आकर्षण करने वाली कमलानने! तुम उसकी आँखों में प्रवेश कर जाओ। महादेवी के रूपों का आकर्षण करो, जिससे वह श्यामरूप के बिना किसी अन्य रूप को देखने की इच्छा न करे। रसाकर्षणरूपा तुम सदा रसरूपा हो। वह देवी भी रसरूपा है; अतः उसके अन्दर आकांक्षा उत्पन्न करो। देर मत करो॥७-९॥

तस्या आकर्षणे त्वं हि शक्तासि सर्ववन्दिता।
आकर्षय तथा कृष्णरसमेव यथाश्रयेत्॥१०॥

सर्ववन्दिता त्वम् तस्याः आकर्षणे हि शक्ता असि। ताम् तथा आकर्षय यथा सा कृष्णरसमेव आश्रयेत्।

तुम सभी देवों के द्वारा पूजित एवं सर्ववन्दिता हो। उन महादेवी श्रीराधिका का आकर्षण करने में तुम ही समर्थ हो; अतः उनका इस प्रकार आकर्षण करो, जिससे वह स्वतः श्रीकृष्ण-रस का ही आश्रय ग्रहण करे॥१०॥

गन्धाकर्षणरूपे त्वं सर्वगन्धवहे शुभे।
नासिकायां राधिकायाः प्रविशाशु वरानने॥११॥
तथा कुरु महेशानि स्वशक्त्या शक्तिसंभृते।
गोविन्ददेहसौरभ्यं विना यत् सा न जीवति॥१२॥

वरानने! सर्वगन्धवहे! शुभे! गन्धाकर्षणरूपे! त्वम् आशु राधिकायाः नासिकायाम् प्रविश। शक्तिसंभूते महेशानि! स्वशक्त्या तथा कुरु यत् सा गोविन्ददेहसौरभ्यम् विना न जीवति।

हे वरानने! तुम सर्वगन्धवहा हो। गन्ध का आकर्षण करने वाली हो। शीघ्र उस राधिका की नासिका में प्रवेश कर जाओ। हे शक्तिसम्पन्ने! तुम अपनी शक्ति से ऐसा करो, जिससे वह गोविन्द की देहगन्ध के अतिरिक्त जीवित रहने में असमर्थ हो जाए॥११-१२॥

चित्ताकर्षणरूपे त्वं मम शक्तिः सुदुर्लभा।
सर्वचित्ते निवासस्ते सर्वभूतवशङ्करि॥१३॥
तदैव राधिका देवी कृष्णवश्या भविष्यति।
तथा कुरुष्व कल्याणि सर्वसन्धानकारिणी(?णि)॥१४॥
यथा कृष्णादृतेऽन्यत्र चित्तं नैव क्षणं चरेत्।

चित्ताकर्षणरूपे! त्वम् मम सुदुर्लभा शक्तिः (असि) सर्वभूतवंशकरि! ते सर्वचित्ते निवासः। कल्याणि! सर्वसन्धानकारिणी (त्वम्) तथा कुरुष्व यथा कृष्णात् ऋते अन्यत्र क्षणम् चित्तम् नैव चरेत्। तदा एव राधिका देवी कृष्णवश्या भविष्यति।

हे चित्त का आकर्षण करने वाली! तुम सुदुर्लभ शक्ति हो। तुम सभी जीवों को वश में करने वाली हो। प्रत्येक प्राणी के चित्त में तुम्हारा निवास है। हे कल्याणि! तुम सब के चित्त का सन्धान करने वाली वैसा ही करो, जिससे कृष्ण के अतिरिक्त वह देवी एक क्षण के लिए भी अपने चित्त में किसी अन्य का चिन्तन न करे; तभी देवी राधिका कृष्णवश्या हो सकेगी॥१३-१४॥

धैर्याकर्षणरूपे त्वं धीराणां धैर्यहारिणी॥१५॥

तदैव गतधैर्या सा कृष्णवश्या भविष्यति।
तथाऽऽचरचराणां च स्थावराणां च पालिनि॥१६॥
धैर्यमालम्ब्य धीरा सा यथा कृष्णरतिर्भवेत्।

हे धैर्याकर्षणरूपे! त्वम् धीराणाम् धैर्यहारिणी असि। चराणाम् स्थावराणाम् च पालिनि! तथा आचर यथा सा धीरा धैर्यम् आलम्ब्य कृष्णरतिः भवेत् तदा एव गतधैर्या सा कृष्णवश्या भविष्यति।

हे धैर्याकर्षणरूपे! तुम धीर पुरुषों के धैर्य का हरण करने वाली हो। हे जड़ और चेतन सभी जीवों का पालन करने वाली! तुम वैसा आचरण करो, जिससे वह धीरा राधा धैर्य का आलम्बन लेकर कृष्णप्रेम में मग्न हो जाए, तभी वह धैर्यहीन होकर कृष्ण के वश में होगी॥१५-१६॥

स्मृत्याकर्षणरूपे त्वं भूतानां हृदये स्थिता॥१७॥
स्थित्वा चित्ते महादेव्याः कृष्णस्मृतिकरी भव।
तथा विधेहि सविधे तस्या एव वरानने॥१८॥
श्रीकृष्णादन्यत्स्मरणे तृष्णा नापि च जायते।

स्मृत्याकर्षणरूपे! त्वम् भूतानाम् हृदये स्थिता। महादेव्याः चित्ते स्थित्वा कृष्णस्मृतिकरी भव। वरानने! तस्याः एव सविधे तथा विधेहि यथा श्रीकृष्णाद् अन्यत् स्मरणे च तृष्णा अपि न जायते।

हे स्मृति का आकर्षण करने वाली शक्ति! तुम सभी प्राणियों के हृदय में वास करती हो। महादेवी राधा के चित्त में स्थित होकर उन्हें कृष्ण की याद में मग्न कर दो। हे वरानने! उस देवी के पास कुछ ऐसा करो, जिससे उसके अन्दर कृष्ण के अतिरिक्त किसी का स्मरण करने की तृष्णा न उत्पन्न हो॥१७-१८॥

नामाकर्षणरूपे! त्वं गच्छ देवीं ममाज्ञया॥१९॥
कामबीजेन पुटितं नाम तस्या वरानने।
कृष्णा कामार्दिता तेन तदाकर्षय सत्वरम्॥२०॥

नामाकर्षणरूपे! त्वम् मम आज्ञया देवीम् गच्छ। वरानने! तस्याः नाम कामबीजेन पुटितम् (कुरु)। तेन कृष्णकामार्दिता तदा सत्वरम् आकर्षय।

हे नाम का आकर्षण करने वाली! तुम मेरी आज्ञा से देवी के पास जाओ। हे वरानने! कामबीज (= क क्लीं) से उसके नाम को सम्पुटित इस तरह करो कि वह कृष्ण के लिए कामार्त हो जाय॥१९-२०॥

तथैव तन्यतां धीरे यथा श्रुतियुगेन सा।
प्रतिक्षणं कृष्णनाम शृणोति नान्यदीहते॥२१॥

धीरे! तथा एव तन्यताम् यथा सा श्रुतियुगेन प्रतिक्षणम् कृष्णनाम शृणोति न अन्यद् ईहते।

हे नामाकर्षणरूपे! तुम वैसा ही करो, जिससे वह राधा कानों से प्रतिक्षण कृष्ण नाम को ही सुने; किसी अन्य की इच्छा न करे॥२१॥

बीजाकर्षणरूपे त्वं तस्या जीवं समाहर।
बीजभूता हि सा देवी सर्वजीवस्वरूपिणी॥२२॥
सर्वात्मरञ्जनी नित्या सर्वभूतेषु संस्थिता।
राधा सा परमा शक्तिः सूक्ष्मस्थूलातिसुन्दरी॥२३॥

बीजाकर्षणरूपे! त्वम् तस्याः जीवम् समाहर। सा देवी बीजभूता सर्वजीवस्वरूपिणी सर्वात्मरञ्जनी नित्या सर्वभूतेषु संस्थिता सा हि राधा सूक्ष्मस्थूलातिसुन्दरी परमा शक्तिः।

हे बीजाकर्षणरूपे! तुम उस राधा के जीव को अपने आधीन कर लो, जो देवी बीजरूप हैं। सभी जीवों को अपने अन्दर धारण करती हैं। वह सब को आनन्द देती है। वह नित्या है। सभी भूतों में उसका निवास है। वह सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों में अति सुन्दरी वह राधा परमा शक्ति है॥२२-२३॥

आत्ममायाऽतिसन्धानादात्माकर्षणरूपिणी।
आत्मन्याकर्षिते सुष्ठु तस्या आकर्षणं भवेत्॥२४॥
आकर्षय महाभागे प्राणशक्त्या ममाज्ञया।
अमृतानाममूर्तीनां मुक्तानाममलात्मनाम्॥२५॥
आकर्षणकरी त्वं किं नो राधाकर्षणे क्षमा।
अमृताकर्षिणी त्वं तामानीयास्मै निवेदय॥२६॥

(हे बीजाकर्षणरूपे!) त्वम् आत्माकर्षणरूपिणी (असि)। आत्ममाया-अतिसन्धानात् सुष्ठु आत्मनि आकर्षिते तस्याः आकर्षणम् भवेत्। महाभागे! मम आज्ञया प्राणशक्त्या (ताम्) आकर्षय। अमृतानाम् अमूर्तीनाम् मुक्तानाम् अमलात्मनाम् आकर्षणकरी त्वम् राधाकर्षणे किम् न क्षमा? अमृताकर्षणकरी त्वम् ताम् आनीय अस्मै निवेदय।

हे बीजाकर्षणरूपे! तुम आत्माकर्षणरूपिणी हो, अपनी माया के अतिसन्धान से आभा का आकर्षण होने पर उसका आकर्षण होगा। हे महाभागे! मेरी आज्ञा से प्राणशक्ति के द्वारा उसका आकर्षण कर लो। अमृत, अमूर्त, मुक्त तथा पवित्र आत्माओं का आकर्षण करने वाली तुम क्या राधा के आकर्षण में समर्थ नहीं हो? अमृताकर्षणी तुम उसका आकर्षण कर कृष्ण के लिये निवेदन कर दो॥२४-२६॥

सर्वेषामेव भूतानां बाह्याभ्यन्तरसंस्थिता।
आकर्षयसि सर्वत्र शरीराणि पुनः पुनः॥२७॥
वपुराकर्षिणी(?णि) त्वं मे वचने देहि मानसम्।
अत्र स्थित्वा राधिकाया वपुराकृष्य यत्नतः।
स्वामिने मम कृष्णाय सतृष्णाय निवेदय॥२८॥

सर्वेषाम् एव भूतानाम् बाह्य-आभ्यन्तर-संस्थिता सर्वत्र शरीराणि पुनः-पुनः आकर्षयसि। वपुराकर्षिणि! त्वम् मे वचने मानसम् देहि। अत्र स्थित्वा यत्नतः राधिकायाः वपुः आकृष्य मम स्वामिने सतृष्णाय कृष्णाय निवेदय।

सभी प्राणियों के बाहर और भीतर निवास करने वाली तुम सर्वत्र शरीरों को पुनः-पुनः आकर्षित करती हो। हे वपुराकर्षिणी! तुम मेरी बात को मन से सुनो। यहाँ रहकर ही यत्नपूर्वक राधिका के शरीर का आकर्षण करके मेरे स्वामी, जो राधा के लिए सतृष्ण हैं, उन श्रीकृष्ण के लिए समर्पित कर दो॥२७-२८॥

इत्याज्ञास्त्रजमाकलय्य शिरसा देव्या निषेव्याः सुरैः
सर्वास्ताः परशक्तयो धृतहृदः श्रीराधिकाकर्षणे।
तूर्णं पूर्णसुधांशुचारुवदनाः सर्वार्थसिद्धिप्रदाः
उद्यद्भानुसहस्त्रकोटितुलितद्योता बहिर्निर्ययुः॥२९॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये षोडशाकर्षण-
शक्तिप्रचारो नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

सुरैः निषेव्याः देव्याः आज्ञास्त्रजम् शिरसा आकलय्य ताः सर्वाः परशक्तयः श्रीराधिकाकर्षणे धृतहृदः पूर्णसुधांशुचारुवदनाः सर्वार्थसिद्धिप्रदाः उद्यद्भानु-सहस्त्रकोटितुलितद्योताः बहिः निर्ययुः।

देवों के द्वारा पूजित देवी की आज्ञारूपी माला को शिर पर धारण करके वे सभी पूर्णिमा की चन्द्रमा की तरह सुन्दर मुख वाली, सभी इष्टसिद्धियों को देने में समर्थ, निकलते हुए करोड़ों सूर्यों के समान तेज वाली परा शक्तियाँ श्रीराधा का आकर्षण करने का लक्ष्य हृदय में बनाकर बाहर निकल पड़ीं॥२९॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधाकृष्णरहस्य में षोडशाकर्षण-शक्तिप्रचार नामक अट्ठारहवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

एकोनविंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये सर्वसंक्षोभिण्यादिप्रचारणम्

बलराम उवाच—

ततः किमभवत् तत्र तन्मे कथय सुव्रत।
यदि स्यात् करुणासिन्धो करुणा पुरुषोत्तम॥१॥

ततः तत्र किम् अभवत्, करुणासिन्धो! पुरुषोत्तम! सुव्रत! यदि करुणा स्यात् तत् मे कथय।

बलराम ने कहा—हे सुव्रत! इसके बाद वहाँ क्या हुआ? हे करुणा के सिन्धु! पुरुषोत्तम! यदि आपकी मेरे ऊपर दया है तो वह मुझे बतलाइये॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

आज्ञप्ता युगपत् सर्वाः कामपि प्राणवल्लभाम्।
अन्वेषमाणा विपिने विचेरुरतिविह्वलाः॥२॥
यथोक्तं त्रिपुरेश्वर्या कर्म चक्रुः समुत्सुकाः।
दिनानि गमयामासुस्तस्मिन् वृन्दावने वने॥३॥

आज्ञप्ताः सर्वाः रतिविह्वलाः युगपत् काम् अपि प्राणवल्लभाम् अन्वेषमाणाः विपिने विचेरुः। त्रिपुरेश्वर्या यथा उक्तम् कर्म चक्रुः। समुत्सुकाः तस्मिन् वृन्दावने वने दिनानि गमयामासुः।

श्रीकृष्ण ने कहा—आज्ञा पाई हुई वे सब अत्यन्त विह्वल होकर एक साथ किसी अर्थात् अद्भुत प्राणवल्लभा को खोजती हुई उस वन में विचरण करने लगीं। त्रिपुरेश्वरी ने जैसा कहा था, उस कार्य को करने के लिए उत्सुक वृन्दावन नामक उस वन में दिन बिताने लगीं॥२-३॥

बभ्रमुर्भ्रमकर्माणः सदा विभ्रमसंयुताः।
नाशकन् वशमानेतुं राधां त्रैलोक्यमोहनीम्॥४॥
नापश्यंश्चक्षुषा तस्या रूपमप्यद्भुतं परम्।
(?अ)दृष्ट्वा राधिकां सर्वा निरुत्साहा निरर्थकाः॥५॥
निरस्ता विमुखा याता विमनस्का धृतव्यथाः।
निरस्तासु ततस्तासु शक्तिष्वाकर्षणीष्वथ॥६॥
पुनरन्या महाशक्तीः ससर्ज त्रिपुरेश्वरी।

सदा विभ्रमसंयुताः भ्रमकर्माणः बभ्रमुः। त्रैलोक्यमोहनी राधाम् वशम् आनेतुम् न अशक्नन्। तस्याः अद्भुतम् परम् रूपम् अपि चक्षुषा न अपश्यन्। राधिकाम् अदृष्ट्वा सर्वाः निरर्थकाः निरुत्साहाः विमनस्काः निरस्ताः धृतव्यथाः विमुखाः याताः। ततः तासु आकर्षणीषु शक्तिषु निरस्तासु त्रिपुरेश्वरी पुनः अन्याः महाशक्तीः ससर्ज।

सर्वदा विभ्रम से संयुक्त वे सब परिभ्रमण कर्म में संलग्न हुईं, किन्तु त्रैलोक्यमोहिनी राधा को वश में करने में समर्थ नहीं हुईं। उसके परम अद्भुत रूप को भी नेत्रों से नहीं देख सकीं। राधा को देखने में असमर्थ वे सभी निरर्थक, निरुत्साह, खिन्न मन वाली, असफल व्यथा में पड़ी हुई कर्म से विरत हो गयीं। उन आकर्षिणी शक्तियों के विफल हो जाने पर त्रिपुरेश्वरी ने पुनः दूसरी महाशक्तियों को उत्पन्न किया।।४-६।।

सर्वसंक्षोभिणी शक्तिर्देव्या मूर्ध्नः समुद्गता।।७।।
सर्वविद्राविणी शक्तिर्भ्रुवोर्मध्याद् वरानना।
सर्वाकर्षणशक्तिश्च सर्वाह्लादनकारिणी।।८।।
कर्णाभ्यां त्रिपुरेश्वर्या अजनिष्टा(?ऽजनिषातां) विमोहने।
मुखात् प्रादुर्बभूवाशु सर्वस्तम्भनकारिणी।।९।।

सर्वसंक्षोभिणी शक्तिः देव्याः मूर्ध्नः समुद्गता। भ्रुवोर्मध्यात् वरानना सर्वविद्राविणी शक्तिः विमोहने सर्वाकर्षणशक्तिः सर्वाह्लादकारिणी च त्रिपुरेश्वर्याः कर्णाभ्याम् अजनिषाताम्। आशु सर्वस्तम्भनकारिणी मुखात् प्रादुर्बभूव।

सबका संक्षोभ करने वाली संक्षोभणी नामक शक्ति त्रिपुरेश्वरी के शिर से प्रकट हो गयी। सबको विद्रावित करने वाली विद्राविणी वरानना शक्ति भौंहों के मध्य से प्रकट हुई। सबको मुग्ध करने वाली सर्वाकर्षिणी नामक शक्ति और सर्वाह्लादिनी नामक शक्ति त्रिपुरा के दोनों कानों से प्रकट हुई। सर्वस्तम्भनी नामक शक्ति शीघ्रता से परमेश्वरी के मुख से उत्पन्न हो गयी।।७-९।।

सर्वजम्भणशक्तिश्च नेत्राभ्यां सुमनोहरे(?रा)।
हृदयान्निर्गता शक्तिः सर्वतोवशकारिणी।।१०।।
सर्वरञ्जनशक्तिश्च सर्वोन्मादस्वरूपिणी।
बाहुभ्यां परमेश्वर्या उभे जाते जगन्मये।।११।।

सुमनोहरा सर्वजृम्भणशक्तिः नेत्राभ्याम्, सर्वतोवशकारिणी शक्तिः हृदयात् निर्गता। सर्वरञ्जनशक्तिः सर्वोन्मादस्वरूपिणी उभे जगन्मये परमेश्वर्याः बाहुभ्याम् जाते।

सभी का जृम्भण (आनन्द) करने वाली सुमनोहर सर्वजृम्भणी शक्ति देवी के नेत्रों से प्रकट हुई। सबको वश में करने वाली सर्वतोवशकारिणी शक्ति हृदय से प्रकट हो गयी। सबका रंजन करने वाली सर्वरञ्जनशक्ति तथा सबको उन्मादित करने वाली सर्वोन्मादरूपिणी शक्ति ये दोनों शक्तियाँ परमेश्वरी की भुजाओं से उत्पन्न हो गयीं।।१०-११।।

सर्वार्थसाधनी शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी।
स्तनद्वयान्महादेव्याः समुद्भूते वरानने।।१२।।
सर्वमन्त्रमयी शक्तिर्योनिमध्यात् समुद्गता।
रक्तपादतलाज्जाता सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी।।१३।।

हे वरानने! सर्वार्थसाधनी शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी शक्तिः च महादेव्याः स्तनद्वयात् समुद्भूते। सर्वमन्त्रमयी शक्तिः योनिमध्यात् समुद्गताः। सर्वद्वन्द्व-क्षयङ्करी शक्तिः रक्तपादतलात् जाता।

हे सुन्दर मुख वाली! सभी अर्थों का साधन करने वाली सर्वार्थ-साधिनी शक्ति और सम्पूर्ण सम्पत्ति को पूर्ण करने वाली सर्वसम्पत्तिपूरणी शक्ति महादेवी के दोनों स्तनों से प्रकट हो गयी। सभी मन्त्रों से युक्त शक्ति देवी की योनिमध्य से प्रकट हुई। सभी प्रकार के द्वन्द्वों को समाप्त करने वाली सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी शक्ति महादेवी के लाल चरणतलों से उत्पन्न हुई।।१२-१३।।

तस्या देव्याः समुत्पन्नाः सर्वाश्चारुचतुर्भुजाः।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्ताम्बुजेक्षणाः।।१४।।
संवीतपीतवसनाः सर्वालङ्कारभूषिताः।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वा देव्या अग्रे स्थिताः शुभाः।।१५।।
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामहे वयम्।
अस्माभिः शक्यते कर्त्तुं यत्तदाज्ञप्तुमर्हसि।।१६।।

तस्याः देव्याः समुत्पन्नाः सर्वाः चारुचतुर्भुजाः पाशाङ्कुशधनुर्बाणधराः रक्ताम्बुजेक्षणाः संवीतपीतवसनाः सर्वालङ्कारभूषिताः सर्वाः प्राञ्जलयः शुभाः देव्याः अग्रे स्थिताः ऊचुः। महादेवि! आज्ञापय, वयम् किम् करिष्यामहे। यत् अस्माभिः कर्त्तुम् शक्यते तद् आज्ञापयितुम् अर्हसि।

उस देवी से उत्पन्न सभी शक्तियाँ सुन्दर और चार भुजाओं वाली थीं। वे हाथों में पाश, अंकुश, धनुष एवं बाण धारण की हुयी थीं। उनके नेत्र लाल कमल के से थे। वे पीताम्बर पहनी हुई एवं सभी अलंकारों से सजी

हुई थीं। सभी ने हाथ जोड़कर देवी के आगे खड़ी होकर कहा—हे महादेवी! आज्ञा दीजिए, हम क्या करें। जो भी काम हमारे द्वारा करने योग्य हो, उसकी हमें आज्ञा दे सकती हो।। १४-१६।।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तासां प्रसन्ना त्रिपुरेश्वरी।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद मदिरेक्षणा।।१७।।

तासाम् एतत् वचः श्रुत्वा प्रसन्ना मदिरेक्षणा त्रिपुरेश्वरी मेघगम्भीरया वाचा जगाद।

उनके इन वचनों को सुनकर प्रसन्न मन वाली मदिरेक्षणा त्रिपुरसुन्दरी ने मेघगम्भीर वाणी में कहा।।१७।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

संसिद्धा या परा देवी सर्वसिद्धैर्नमस्कृता।
त्रैलोक्यविजया राधा परब्रह्मस्वरूपिणी।।१८।।
तामानीय रसमयीं प्रीत्या कृष्णाय वेधसे।
समर्पय तदेवेश्यो मत्सुखं यदि वेच्छथ।।१९।।

हे ईश्यः! या परा देवी संसिद्धा सर्वसिद्धैः नमस्कृता परब्रह्मस्वरूपिणी त्रैलोक्यविजया राधा, यदि मत् सुखम् वा इच्छथ रसमयीम् ताम् प्रीत्या आनीय वेधसे कृष्णाय समर्पय।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे ईश्वरियों! जो परा देवी राधा है वह सिद्ध, समस्त देवों से नमस्कृत, त्रैलोक्यविजया और परब्रह्मस्वरूपिणी है। यदि तुम मेरा सुख चाहती हो तो रसमयी उसको प्रेम से लाकर सबके स्वामी कृष्ण के लिए समर्पित कर दो।।१८-१९।।

ततस्ताः शक्तयः सर्वा ययुर्वृन्दावनान्तरम्।
चक्रुराकर्षणार्थं च प्रयोगं प्राणशक्तितः।।२०।।
काश्चित्सम्मोहनं मन्त्रं काश्चिदाकर्षणं तथा।
काश्चित्संक्षोभणं मन्त्रं द्रावणं मारणं पुनः।।२१।।
काश्चिच्चक्रुः स्तम्भनञ्च काश्चिदुच्चाटनं तथा।
एवं हि नानोपायैस्ताः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।।२२।।
अशक्ता मोहने तस्या राधाया बलराम भोः।
अवाङ्मुखास्त्रपावत्यो देव्यो देवीं प्रतुष्टुवुः।।२३।।

ततः ताः सर्वाः शक्तयः वृन्दावनान्तरम् ययुः। प्राणशक्तितः आकर्षणार्थम् प्रयोगम् चक्रुः। काश्चित् सम्मोहनम् मन्त्रम्, काश्चिद् आकर्षणम्, काश्चिद्

संक्षोभणम् द्रावणम् मारणम् मन्त्रम्, पुनः काश्चित् स्तम्भनम्, काश्चित् उच्चाटनम् चक्रुः। एवम् नाना-उपायैः ताः सुदुष्करम् कर्म कृत्वा तस्याः राधायाः मोहने अशक्ताः भो बलराम! त्रपावत्यः अवाङ्मुखाः देव्यः देवीम् प्रतुष्टुवुः।

इसके बाद वे सभी शक्तियाँ वृन्दावन के भीतर चली गयीं और अपनी प्राणशक्ति से राधा का आकर्षण करने के लिए प्रयोग करने लगीं। किसी ने सम्मोहन मन्त्र का, किसी ने आकर्षण मन्त्र का, किसी ने संक्षोभण, द्रावण और मारण मन्त्र का, किसी ने स्तम्भन एवं उच्चाटन मन्त्र का प्रयोग किया। इस प्रकार अनेक उपाय करने पर भी वे उस राधा का अत्यन्त दुष्कर कर्मरूप सम्मोहन करने में सफल नहीं हुई तब हे बलराम! लज्जावनतमुखी वे शक्तियाँ देवी की प्रार्थना करने लगीं।।२०-२३।।

नमो देवि राधे हरौ प्राप्तराधे कटाक्षस्य मोक्षं कुरु क्लेशमोक्षम्।
मुनेर्मोहनेनापि रूपेण नित्यं त्वमेव त्वमर्या जगन्नायकेन।।२४।।
प्रसीद देवि सर्वेशे राधिके सकलाधिके।
दर्शनं नः प्रपन्नानां देहि मातर्नमोऽस्तु ते।।२५।।

देवि राधे! नमः। हरौ प्राप्तराधे! क्लेशमोक्षम् कटाक्षस्य मोक्षम् कुरु। त्वम् एव जगत् नायके मोहनेन रूपेण मुनेः नित्यम् अर्या। सर्वेशे, सकलाधिके ! देवि! राधिके! प्रसीद। प्रपन्नानाम् नः दर्शनम् देहि। मातः! ते नमः अस्तु।

हे देवि राधा! आपको प्रणाम है। आप हरि को प्राप्त हो जायँ। हे राधे! अपने कटाक्ष का पात करके कृष्ण के क्लेश का मोक्ष करो। तुम ही जगत् के नायक के द्वारा प्राप्य हो। नित्य अपने रूप से मुनियों का सम्मोहन करने में आप समर्थ हैं। हे सबकी स्वामिनी! सर्वोत्कृष्ट देवि राधे! प्रसन्न हो जाओ और शरण में आयी हुई हमको दर्शन दो। हे माता! आपको हमारा प्रणाम है।।२४-२५।।

प्रसीद देवि राधिके समस्तकार्यसाधिके।
प्रदीप्ततेजसाधिके विद्वेष्टृलोकबाधिके।।२६।।
एवं स्तुता महादेवी ममैव महिषी शुभा।
वृन्दावनलतानां च पुष्पे पुष्पे दले दले।।२७।।
फले फले निजां मूर्तिं दर्शयामास ताः प्रति।
सा सर्वव्यापिनी देवी सर्वभूतमयी परा।
समाह्वयति वाग्भिस्ता मधुराभिरितस्ततः।।२८।।

समस्तकार्यसाधिके! देवि राधिके! प्रदीप्ततेजसा अधिके विद्वेष्टृलोक-बाधिके! प्रसीद। मम एव शुभा महिषी महादेवी एवम् स्तुता वृन्दावनलतानाम् च

पुष्पे-पुष्पे दले-दले फले-फले प्रति ताः निजाम् मूर्तिम् दर्शयामास। सर्वव्यापिनी सर्वभूतमयी सा परा देवी मधुराभिः वाग्भिः इतस्ततः ताः समाह्वयति।

सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करने वाली, प्रदीप्त तेज के कारण अधिक तेजोमयी, विद्वेष करने वाले जीवों को नष्ट करने वाली देवि राधे! आप प्रसन्न हो जायँ। मेरी ही शुभ प्रधान रानी महादेवी राधा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वृन्दावन की लताओं के प्रत्येक पुष्प, पत्र और फलों में अपना स्वरूप प्रकट कर उन शक्तियों से अतिमधुर वाणी में कहने लगी।।२६-२८।।

श्रीराधा उवाच—

पश्यन्तु मां महादेव्यो दिदृक्षा महती यदि।
युष्माकं विक्लवं दृष्ट्वा मन्मनः प्रणयान्वितम्।।२९।।

हे महादेव्यः! यदि महती दिदृक्षा (अस्ति तर्हि) माम् पश्यन्तु। युष्माकम् विक्लवम् दृष्ट्वा मन्मनः प्रणयान्वितम् (जातम्)।

श्रीराधा ने कहा—हे महादेवियों! यदि मेरे दर्शन की महती इच्छा है तो मुझे देखो। तुम्हारी व्याकुलता को देखकर मेरा मन प्रेम से भर गया है।।२९।।

ततस्तस्या विलोक्यैव रूपं सर्वमनोहरम्।
विमुग्धचेतसः सर्वा व्यामुह्यन् प्रेमकातराः।।३०।।
पुनः पश्यन्ति विष्वक् तां मया सह विहारिणीम्।
वृन्दावनलतास्वेव वृन्दावनतरुष्वपि।।३१।।

ततः तस्याः सर्वमनोहरम् रूपम् विलोक्य एव सर्वाः विमुग्धचेतसः प्रेमकातराः व्यामुह्यन्। पुनः ताम् मया सह विहारिणीम् वृन्दावनलतासु वृन्दावनतरुषु अपि विष्वक् पश्यन्ति।

इसके बाद उस राधा के सर्वमनोहर रूप को देखकर ही सब विमुग्ध चित्त वाली वे प्रेम से कातर होकर मोहित हो गयीं। उन्होंने पुनः वृन्दावन की लताओं, वृक्षों पर राधा जी को मेरे साथ विहार करती हुई चारों ओर देखा।।३०-३१।।

पुष्पे राधां फले राधां दले राधामुपर्यधः।
जले राधां स्थले राधां सर्वां राधाविवर्जिताम्।।३२।।
आधाय हृदये राधां राधां तत्यजुरूर्जिताम्।
तद्रूपदृष्टिमात्रेण शक्तयो मुग्धदृष्टयः।।३३।।

पुष्पे राधाम् फले राधाम् दले राधाम् उपरि अधः जले राधाम् स्थले राधाम् सर्वाम् राधाऽविवर्जिताम् हृदये राधाम् आधाय ऊर्जिताम् राधाम् तत्यजुः तद्-रूपदृष्टिमात्रेण मुग्धदृष्टयः अभवन्।

उन्होंने पुष्प, फल, दल में ऊपर और नीचे, जल में, स्थल में सर्वमें राधाजी को देखा। राधा से अलग कुछ भी नहीं था। वे राधा जी को अपने हृदय में धारण कर राधा को छोड़कर अपने ही भीतर उन्हें देखने लगीं। शक्तियाँ उस रूप को देखने-मात्र से ही मुग्ध दृष्टि वाली हो गयीं।।३२-३३।।

तन्मायामोहिताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका इव।
आसन्नासन्नमनसस्तस्मिन् वृन्दावनान्तरे।।३४।।
विस्मृतात्मक्रियात्मानः किञ्चिन्नोचुः स्थिताः स्थिताः।
पुनरुन्मील्य नयने सहायचकितेक्षणाः।।३५।।
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं जगदुर्मधुराक्षरैः।
स्मितेन द्योतयन्त्यस्तद्विपिनं राधिकावशाः।।३६।।

तस्मिन् वृन्दावनान्तरे तन्मायामोहिताः सर्वाः चित्तपुतलिकाः इव आसन्न-मनसः आसन्। विस्मृतात्मक्रियात्मानः स्थिताः किञ्चित् न ऊचुः। सहायचकि-तेक्षणाः पुनः नयने उन्मील्य तद् महदाश्चर्यम् दृष्ट्वा राधिकावशाः स्मितेन तद् वनम् द्योतयन्त्यः मधुराक्षरैः जगदुः।

उस वृन्दावन के भीतर उनकी माया से मोहित वे सभी चित्रपुत्तलिका के समान राधिका के आधीन मन वाली हो गयीं। वे अपनी क्रिया को भूल गयीं। वे खड़ी की खड़ी रह गयीं। कुछ भी नहीं बोलीं। असहाय एवं चकित नेत्रों वाली उन्होंने अपने नेत्रों को पुनः खोला और उस महान् आश्चर्य को देखकर राधा के वश होकर अपनी स्मित से उस वन को प्रकाशित करती हुई मधुर वाणी से बोलीं।।३४-३६।।

पश्यन्तु महदाश्चर्यं क्षोभणं क्षोभिणीगणे।
द्रावणं द्राविणीनां च स्तम्भनं स्तम्भिनीगणे।।३७।।
किमाश्चर्यं किमाश्चर्यं वयं परमशक्तयः।
आकर्षिण्यः क्षणादेव स्वयमाकर्षिता इह।।३८।।

क्षोभिणीगणे क्षोभणम् द्राविणीनाम् स्तम्भिनीगणे स्तम्भनम् महद् आश्चर्यम् पश्यन्तु किम् आश्चर्यम् किम् आश्चर्यम्। इह वयम् परमशक्तयः आकर्षिण्यः क्षणाद् एव स्वयम् आकर्षिताः।

क्षोभण करने वाली शक्तियों का क्षोभण, द्राविणी शक्तियों का द्रावण, स्तम्भन करने वाली शक्तियों का स्तम्भनरूप यह महा आश्चर्य है। कैसा आश्चर्य है। कैसा आश्चर्य है। हम आकर्षण करने वाली परम शक्तियाँ यहाँ क्षणभर में स्वयं आकर्षित हो गयीं॥३७-३८॥

शृणुत शृणुत लोका पश्यतास्मांश्चिराय
प्रतिपदमनुयामो राधिकां साधिकाराम्।
वयमिह विहरामः शुल्कदास्यस्तदीयाः
क्षणमपि कलयामो नान्यमन्यां कदापि॥३९॥

हे! लोकाः, शृणुत शृणुत। अस्मान् चिराय पश्यत। साधिकाराम् राधिकाम् प्रतिपदम् अनुयामः। तदीयाः शुल्कदास्यः वयम् इह विहरामः। क्षणम् अपि कदापि अन्याम् अन्यम् वा न कलयामः।

अरे लोगों, सुनो! सुनो! हमें देर तक देखो। हम साधिकारा राधिका के पीछे-पीछे जा रही हैं। अब हम उनकी शुल्कदासी अर्थात् क्रीतदासी हैं। हम यहाँ वृन्दावन में ही नित्य विहार करेंगी। एक क्षण के लिए भी हम किसी अन्य स्त्री या पुरुष का स्मरण नहीं करेंगी॥३९॥

इत्येवं विदधुस्तत्र नानाचेष्टाविमोहिताः।
किं पुनः कथयिष्यामि राधिकां सकलाधिकाम्॥४०॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये सर्वसंक्षोभिण्यादि-
प्रचारणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

इति एवम् तत्र विमोहिताः नानाचेष्टाः विदधुः। किम् पुनः सकलाधिकाम् राधिकाम् कथयिष्यामि।

इस तरह कहती हुई वे शक्तियाँ मोहित होकर अनेक चेष्टाएँ करने लगीं। फिर हम सकलाधिका राधा के विषय में क्या कहें॥४०॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधाकृष्णरहस्य में सर्वसंक्षोभि-ण्यादिप्रचारण नामक उन्नीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

विंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये सर्वसंक्षोभिण्यादि-शक्तिसर्वज्ञादिदेवीमोहनम्

बलराम उवाच—

ततः किमभवत्तासु मोहितासु च राधया।
तन्मे कथय देवेश तृप्तिर्मे नास्ति शृण्वतः॥१॥

देवेश! ततः राधया तासु मोहितासु किम् अभवत्? तत् मे कथय। शृण्वतः मे तृप्तिः न अस्ति।

बलराम ने कहा—हे देवेश! इसके बाद राधा द्वारा इनको मोहित कर देने पर क्या हुआ। वह मुझे सुनाइये। सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

एव तां(?ता) मोहिता ज्ञात्वा देवी त्रिपुरसुन्दरी।
चिरेणापि न वायाताः स्वकार्यशिथिलादराः॥२॥
असृजत् पुनरन्यास्तु शक्तीरद्भुतरूपिणीः।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां जननीः ब्रह्मरूपिणीः॥३॥

एवम् ताः मोहिताः ज्ञात्वा स्वकार्यशिथिलादराः चिरेणापि वा न आयाताः। पुनः अन्याः अद्भुतरूपिणीः ब्रह्मविष्णुशिवादीनाम् जननीः ब्रह्मरूपिणीः शक्तीः असृजत्।

श्रीकृष्ण ने कहा—देवी त्रिपुरसुन्दरी ने उन्हें अपने कार्य में शिथिल और मोहित समझ लिया, क्योंकि वे बहुत काल तक लौट कर नहीं आयीं। अतः देवी ने पुनः अद्भुत रूप वाली, ब्रह्मा विष्णु शिव आदि की जननी, ब्रह्मरूपिणी शक्तियों को प्रकट किया॥२-३॥

सर्वसिद्धिप्रदा देवी देव्या दक्षिणतः करात्।
सर्वसम्पत्प्रदा देवी वामतोऽजनि सुव्रता॥४॥
सर्वप्रियङ्करी देवी हृदयात् समजायत।
तस्या हास्यात् प्रकाश्याऽभूत् सर्वमङ्गलकारिणी॥५॥
सर्वकामप्रदा देवी मनसोऽपि व्यजायत।

तद्वामनयनप्रान्तात् सर्वदुःखविमोहिनी॥६॥
तस्या वाचः समुत्पन्ना सर्वविघ्नविनाशिनी।

देव्याः दक्षिणतः करात् सर्वसिद्धिप्रदा देवी, वामतः (करात्) सुव्रता सम्पत्प्रदा देवी अजनि। सर्वप्रिङ्करी देवी हृदयात् समजायत। तस्याः हास्यात् सर्वमंगलकारिणी प्रकाश्या अभूत्। सर्वकामप्रदा देवी अपि मनसः व्यजायत। सर्वदुःखविमोहिनी तद्वामनयनप्रान्तात् समजायत। तस्याः वाचः सर्वविघ्न-विनाशिनी समुत्पन्ना।

देवी के दाँयें हाथ से सर्वसिद्धिदायिनी देवी और बाँयें हाथ से सब सम्पत्तियों को उत्पन्न करने वाली सर्वसम्पत्प्रदा देवी प्रकट हो गयी। उसके हृदय से सबका प्रिय करने वाली सर्वप्रियंकरी शक्ति और उनके हास से सर्वमंगलकारिणी शक्ति उत्पन्न हो गयी। उसके मन से भी सर्वकामप्रदा देवी उत्पन्न हुई। उसके बाँयें नेत्र प्रान्त से सर्वदुःखविमोहिनी तथा उसकी बाँयीं ओर सर्वविघ्नविनाशिनी शक्ति प्रकट हो गयी॥४-६॥

सर्वमृत्युप्रशमनी मणिबन्धाद् विनिर्गता॥७॥
सर्वाङ्गसुन्दरी देव्या योनिमध्याद् व्यजायत।
नाभ्याः प्रादुरभूद्देव्याः सर्वसौभाग्यदायिनी॥८॥
एता देव्यो विनिर्गत्या(?त्य) देव्या देहात् तडित्प्रभाः।
पुरतस्त्रिपुरेश्वर्याः प्रोचुः प्राञ्जलयः स्थिताः॥९॥

मणिबन्धात् सर्वमृत्युप्रशमनी विनिर्गता। देव्याः योनिमध्यात् सर्वाङ्गसुन्दरी व्यजायत। देव्याः नाभ्याः सर्वसौभाग्यदायिनी प्रादुरभूत्। तडित्प्रभाः एताः देव्यः देव्याः देहात् विनिर्गत्य त्रिपुरेश्वर्याः पुरतः प्राञ्जलयः स्थिताः प्रोचुः।

देवी के मणिबन्ध स्थान से सर्वमृत्युप्रशमनी, सबकी मृत्यु हरण करने वाली शक्ति प्रकट हुई तथा उसके योनिमध्य से सर्वाङ्गसुन्दरी शक्ति निकली। देवी के नाभिस्थान से सर्वसौभाग्यप्रदायिनी शक्ति उत्पन्न हो गयी। विद्युत् के समान तेज वाली ये सभी देवियाँ देवी से प्रकट होकर त्रिपुरेश्वरी के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं और बोलीं॥७-९॥

किं करिष्याम किं कार्यं क्व यास्याम वरानने।
निदेशय महेशानि न कुरुष्व विलम्बनम्॥१०॥

हे वरानने! किम् किम् कार्यम् करिष्याम क्व यास्याम। महेशानि! निदेशय; विलम्बनम् न कुरुष्व।

हे वरानने! हम क्या-क्या कार्य करें? कहाँ जायें? हे महेशानि! आज्ञा दीजिए। देर न कीजिए॥१०॥

ततः(?त) आह महेशानी महागद्गदया गिरा।
प्रहसद्वदनाम्भोजमण्डला चलकुण्डला॥११॥

ततः प्रहसद्वदनाम्भोजमण्डला चलकुण्डला महेशानी महागद्गदया गिरा आह।

इसके बाद स्मित से खिले हुए मुखकमल-मण्डल वाली, हिलते हुए कुण्डलों वाली, त्रिपुरेश्वरी ने अत्यन्त गद्गद वाणी से कहा॥११॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

अहं प्रीतास्मि युष्मभ्यं वरं दास्यामि साम्प्रतम्।
कल्याण्यः कुरुताह्लादं मा भयं मा भयं हि वः॥१२॥
अचिरादेव सारूप्यं यूयं लभत (?प्राप्नुत) मे द्रुतम्।
इत्युक्तवत्यां श्रीमत्यां तत्क्षणादजनिष्ट ताः॥१३॥
चतुर्भुजा रक्तवर्णा रक्तपद्मदलेक्षणाः।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्तांशुकावृताः।
ततः सारूप्यमापन्ना वीक्ष्योवाच महेश्वरी॥१४॥

अहम् प्रीता अस्मि। साम्प्रतम् युष्मभ्यम् वरम् दास्यामि। कल्याण्यः आह्लादं कुरुत। वः भयम् मा भयम् मा हि। अचिराद् एव यूयम् द्रुतम् सारूप्यम् प्राप्नुत। इति उक्तवत्याम् श्रीमत्याम् तत् क्षणाद् एव आरक्तपद्मदलेक्षणाः चतुर्भुजाः रक्तवर्णाः रक्तांशुकावृताः पाशाङ्कुशधनुर्बाणधराः अजनिष्ट। ताः ततः सारूप्यमापन्नाः वीक्ष्य माहेश्वरी उवाच।

मैं प्रसन्न हूँ। अभी मैं तुम्हें वरदान दूँगी। हे कल्याणियों! आनन्दयुक्त हो जाओ। तुम डरो मत; डरो मत। शीघ्र ही तुम सब मेरे रूप को प्राप्त कर लोगी। श्रीमती देवी के ऐसा कहते ही लाल कमलों के समान नेत्रों वाली चार भुजाओं वाली, पाश अंकुश धनुष और बाण धारण की हुई, लाल वस्त्र से वेष्टित रक्तवर्ण वाली वे समस्त देवियाँ देवी की सारूप्यता को प्राप्त हो गयीं। इसके बाद उन्हें सारूप्य को प्राप्त देखकर महेश्वरी ने कहा॥१२-१४॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

गच्छत स्वाज्ञया मह्यं राधिकान्वेषणं परम्।
कुरुध्वं शक्तयः सर्वाः सर्वशक्त्युपबृंहिताः॥१५॥
आज्ञप्तास्ता महादेव्यो वृन्दावनसमीपगाः।
अपश्यन् मोहिता अन्यास्तद्रूपाकृष्टदृष्टयः॥१६॥

सर्वशक्त्युपबृंहिताः सर्वाः शक्तयः स्वाज्ञया गच्छत। मह्यम् परम् राधिकान्वेषणम् कुरुध्वम्। आज्ञप्ताः ताः महादेव्यः वृन्दावनसमीपगाः अन्याः तद्रूपाः आकृष्ट-दृष्टयः मोहिताः अपश्यन्।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—सभी शक्तियों से सम्पन्न आप सभी देवियाँ मेरी आज्ञा से जायँ। मेरे लिए राधिका की खोज करें। महादेवी से आज्ञा प्राप्त वे सभी शक्तियाँ वृन्दावन के समीप गयीं। वहाँ उन्होंने देवी के समान रूप वाली अन्य शक्ति को देखा। उसके रूप से आकृष्ट नेत्रों वाली होकर वे मोहित हो गयीं।।१५-१६।।

वदन्त्यन्योऽन्यमुद्भ्रान्तचेतसा भीतिभीरवः।
अहो रूपमिदं देव्यास्त्रैलोक्यातिशयं परम्।।१७।।
मुग्धवत्यो वयं सख्यो न जानीमोऽन्यदद्भुतम्।
किं करिष्यति सा देवी न यास्यामस्तदन्तिकम्।।१८।।
स्थास्यामोऽत्रैव राधायाः समीपे परिचारिकाः।
एवमुक्त्वा तु तास्तत्र तस्थुः स्थाणुवरा यथा।।१९।।

भीतिभीरवः उद्भ्रान्तचेतसा अन्योन्यम् वदन्ति—अहो देव्याः त्रैलोक्यातिशयम् इदम् परम् रूपम्। सख्यः वयम् मुग्धवत्यः अन्यत् अद्भुतम् न जानीमः। सा देवी किम् करिष्यति। तद् अन्तिकम् न यास्यामः। अत्रैव समीपे परिचारिकाः (भूत्वा) स्थास्यामः। एवम् उक्त्वा तत्र ताः स्थाणुवराः यथा तस्थुः।

भयभीत और डरे हुए आश्चर्ययुक्त चित्त से वे एक-दूसरे से कहने लगीं। अहा! इस देवी का यह अद्भुत रूप तीनों लोकों में सबसे बढ़कर है। हे सखियों! हम मोहित हो गयी हैं। हम किसी अन्य अद्भुत को नहीं जानती। वह त्रिपुरा देवी हमारा क्या कर लेगी। हम उसके पास नहीं जायेंगी। हम राधा जी के पास उनकी परिचारिका बनकर यहीं ठहर जाती हैं। यह कहकर वे सभी वहाँ स्थाणुवत् (ठूँठे वृक्ष की तरह) ठहर गयीं।।१७-१९।।

तासां विडम्बनां श्रुत्वा दृष्ट्वा चैव विडम्बनाम्।
ततोऽपरा महाशक्तीरुत्पाद्य त्रिपुरेश्वरी।।२०।।
राधिकान्वेषणं कर्त्तुं प्रेषयामास लीलया।
सर्वज्ञाद्या महाशक्तीः शक्तानामपि सेविता।।२१।।

तासाम् विडम्बनाम् श्रुत्वा विडम्बनाम् च दृष्ट्वा त्रिपुरेश्वरी ततः अपराः महाशक्तीः शक्तानाम् अपि सेविताः सर्वज्ञाद्याः महाशक्तीः लीलया उत्पाद्य राधिका-अन्वेषणम् कर्तुम् प्रेषयामास।

उनकी विडम्बना को सुनकर और विडम्बना को देखकर त्रिपुरेश्वरी ने पुनः शक्तिमानों द्वारा सेवित, सर्वज्ञा आदि दूसरी महाशक्तियों को लीला से उत्पन्न करके श्रीराधिका जी की खोज करने के लिए भेजा॥२०-२१॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

सर्वज्ञे त्वं हि जानासि त्रैलोक्यं सचराचरम्।
ज्ञात्वा तामात्मगुरवे कृष्णायाऽद्य निवेदय॥२२॥
सर्वशक्तिः स्वशक्त्या त्वं गृहीत्वा गच्छतामिह।
देहि त्वं राधिकैश्वर्यमस्मै सर्वेश्वराय च॥२३॥

हे सर्वज्ञे! त्व हि सचराचरम् त्रैलोक्यम् जानासि। ताम् ज्ञात्वा आत्मगुरवे कृष्णाय अद्य निवेदय। स्वशक्त्या सर्वशक्तिः त्वम् गृहीत्वा इह गच्छताम्। त्वम् अस्मै सर्वेश्वराय राधिकैश्वर्यम् देहि।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे सर्वज्ञे! तुम चराचर त्रैलोक्य को जानती हो, अतः उस राधा को खोजकर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के लिए प्रदान कर दो। सर्वशक्तिमती तुम अपनी सभी शक्तियों को लेकर यहाँ से जाओ और उस राधिकारूपी ऐश्वर्य को लाकर इन सर्वेश्वर के लिए निवेदित कर दो॥२२-२३॥

सर्वेषां सुखसन्धात्री सर्वैश्वर्यफलप्रदे।
सर्वज्ञानमयी त्वं च भद्रे बोधय राधिकाम्॥२४॥
समस्तसुखदे कृष्णे न मानं कर्त्तुमर्हसि।
त्वं मोहिनी मोहनः स रत्नं रत्नेन युज्यताम्॥२५॥

हे सर्वैश्वर्यफलप्रदे! (त्वम्) सर्वेषाम् सुखसन्धात्री सर्वज्ञानमयी (असि)। भद्रे! त्वम् राधिकाम् बोधय समस्तसुखदे कृष्णे मानम् कर्तुम् न अर्हसि। सः मोहनः (अस्ति) त्वम् च मोहिनी (असि। अतः) रत्नम् रत्नेन युज्यताम्।

हे सब ईश्वरों को भी फल प्रदान करने वाली (तुम) सबको सुख प्रदान करने वाली हो। तुम सम्पूर्ण ज्ञान को धारण करने वाली हो। हे भद्रे! तुम राधिका को समझाओ। तुम सबको सुख देने वाली हो, कृष्ण के प्रति मान मत करो। श्रीकृष्ण मोहन हैं और तुम मोहिनी हो। अतः रत्न को रत्न के साथ जुड़ना चाहिए॥२४-२५॥

निःशङ्कां कुरुतां राधां सर्वव्याधिविनाशिनि।
सर्वाधारस्वरूपे त्वं सह वृन्दावनेन वै॥२६॥
तामानय वरारोहां राधिकां मन्दगामिनीम्।
सर्वपापहरे देवि सर्वपापं समाहर॥२७॥

(हे) सर्वव्याधिविनाशिनि! सर्वाधारस्वरूपे! त्वम् वृन्दावनेन सह राधाम् निःशंकाम् कुरुताम्। मन्दगामिनीम् वरारोहाम् ताम् राधिकाम् आनय। सर्वपापहरे! देवि! सर्वपापम् समाहर।

हे सभी व्याधियों का नाश करने वाली तथा सबके जीवन की आधाररूपा देवि! आप वृन्दावन के साथ राधा की सभी शंकाओं का हरण कर दें और मन्दगामिनी सुन्दरी उस राधिका को ले आयें। हे सभी पापों को हरण करने वाली देवि! कृपया सभी पापों का हरण कर दें।।२६-२७।।

सर्वानन्दमयी त्वं वै तस्या आनन्दमदिरम्।
प्रविश्य सहसा देवीं वशमानय सत्वरम्।।२८।।
कृष्णोऽतिविरहाक्रान्तो राधाबाधाप्रपीडितः।
तस्यैव जीवनं रक्ष सर्वरक्षास्वरूपिणि।।२९।।
सर्वेषां वाञ्छिताभीष्टं ददासि नियतं शुभम्।
कृष्णाय राधिकां देहि सर्वेप्सितफलप्रदे।।३०।।

त्वम् सर्वानन्दमयी (असि)। तस्याः आनन्दमन्दिरम् वै सहसा प्रविश्य सत्वरम् देवीम् वशम् आनय। हे सर्वरक्षास्वरूपिणि! कृष्णः राधाबाधाप्रपीडितः अतिविरहाक्रान्तः (अस्ति)। तस्य एव जीवनम् रक्ष। नियतम् शुभम् वाञ्छिताभीष्टम् सर्वेषाम् ददासि। सर्व-ईप्सितफलप्रदे! कृष्णाय राधिकाम् देहि।

हे देवि! आप सर्वानन्दमयी हैं—उस राधा के आनन्द मन्दिर (=योनि) में सहसा प्रवेश करके शीघ्र ही उस देवी को वश कर लें। हे सबकी रक्षा-स्वरूपिणी! श्रीकृष्ण विरह से अत्यन्त आक्रान्त हैं। वह राधा की बाधा से अत्यधिक पीड़ित हैं। उनके जीवन की रक्षा करो। तुम सबको निश्चित ही उनकी इच्छा के अनुसार अभीष्ट फल प्रदान करती हो। (इसलिये) सबकी इच्छा पूर्ण करने वाली हे देवि! कृष्ण के लिए राधा को दे दो।।२८-३०।।

न किञ्चिद् विद्यते तस्य दुर्लभं राधिकाधिकम्।
श्रुत्वा वाक्यमिदं देव्यो निर्जग्मुस्ता वनं द्रुतम्।।३१।।
निर्गत्य रभसा चक्रुस्तत्कर्माद्भुततेजसः।
तत्रैव विपिने देव्यो देव्या मोहनकाम्यया।।३२।।
चेष्टाश्चक्रुर्बहुविधा बभ्रमुर्भ्रमकातराः।
अशक्ता मोहने तस्या दृष्ट्वा तद्रुचिराननम्।।३३।।
स्वयं विमुग्धहृदयास्तस्थुः क्लिन्नधियः शुभाः।

तस्य राधिकाधिकम् किञ्चित् दुर्लभम् न विद्यते। देव्याः इदम् वाक्यम्

श्रुत्वा ताः द्रुतम् वनम् निर्जग्मुः। अद्भुततेजसः निर्गत्य तत् कर्म रभसा चक्रुः। देव्यः तत्र एव विपिने देव्याः मोहनकाम्यया बहुविधाः चेष्टाः चक्रुः, भ्रमकातराः बभ्रमुः। तस्याः मोहने अशक्ताः तद् रुचिराननम् दृष्ट्वा शुभाः क्लिन्नधियः स्वयम् विमुग्धहृदयाः तस्थुः।

श्रीकृष्ण को राधिका के अतिरिक्त कुछ भी दुर्लभ नहीं है। देवी के इन वाक्यों को सुनकर वे शीघ्र ही वन में निकल गयीं। वन में निकलकर अद्भुत तेजयुक्त उन देवियों ने उस कार्य को तेजी से किया। देवियाँ उस वन में राधा को मोहित करने की कामना से विविध चेष्टाएँ करने लगीं। भ्रम से व्याकुल होकर इधर-उधर घूमती रहीं, किन्तु उस देवी का सम्मोहन करने में असमर्थ रहीं। अन्त में राधा के सुन्दर मुख को देखकर व्याकुलमति वाली वे स्वयं मोहित होकर वहीं ठहर गयीं।।३१-३३।।

पश्यन्ति स्म च तद्रूपं पुरुषाकारमद्भुतम्।।३४।।
कोटिकन्दर्पदर्पघ्नं श्यामलं कमलेक्षणम्।
सुचारुदशनं श्रीमत्पूर्णेन्दुसदृशाननम्।।३५।।
सुभ्रुवं सुनसं भ्राजत्सुकुञ्चितशिरोरुहम्।
त्रिभङ्गं ललितं चारु वेणुनादविनोदिनम्।।३६।।
पीताम्बरधरं चारु वनमालासुशोभितम्।
रत्ननूपुरसंशोभि चरणाम्भोरुहद्वयम्।।३७।।
गोपालैरपि गोपीभिर्वेष्टितं परमाद्भुतम्।

कोटिकन्दर्पदर्पघ्नम् कमलेक्षणम् श्यामलम् सुचारुदशनम् श्रीमत्पूर्णेन्दु-सदृशाननम् सुनसम् सुभ्रुवम् भ्राजत्सुकुञ्चितशिरोरुहम् त्रिभङ्गम् ललित-चारु-वेणुनादविनोदिनम् पीताम्बरधरम् चारुवनमालासुशोभितम् रत्ननूपुरसंशोभि-चरणाम्भोरुहद्वयम् गोपालैः गोपीभिः वेष्टितम् परमाद्भुतम् अद्भुतम् पुरुषा-कारम् तद्रूपम् पश्यन्ति स्म।

करोड़ों कामदेवों के दर्प को नष्ट करने वाला, कमल के समान नेत्र वाला, श्यामल दन्तपंक्ति वाला, पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुख वाला, सुन्दर नासिका वाला, सुन्दर भ्रूलता वाला, घुंघराले वालों से शोभित, त्रिभङ्गि-ललित, सुन्दर वेणु के नाद के साथ क्रीड़ा करता हुआ पीताम्बरधारी सुन्दर वनमाला से विभूषित, दोनों चरणकमलों में रत्नों के नूपुरों से ललाम, गोपालों एवं गोपियों से घिरा हुआ, परम अद्भुत पुरुषाकार रूप में उस रूप को शक्तियों ने देखा।।३५-३७।।

एवं विमोहिताः सर्वा निरस्तास्ताः कुमारिकाः।।३८।।

विभ्रान्तमनसस्तत्र ददृशुस्त्रिपुरेश्वरीम्।
भैरवैर्भैरवीभिश्च मिलितां योगिनीगणैः॥३९॥

एवम् सर्वाः कुमारिकाः विमोहिताः निरस्ताः च विभ्रान्तमनसः तत्र ताः भैरवैः भैरवीभिः च योगिनीगणैः मिलिताम् त्रिपुरेश्वरीम् ददृशुः।

इस प्रकार का रूप देखकर वे सभी कुमारियाँ विमोहित हो गयीं और अपने कर्म से विरत हो गयीं। भ्रान्त मन वाली कुमारियों ने वहाँ भैरवों और भैरवियों तथा योगिनियों के गणों से युक्त त्रिपुरेश्वरी को देखा॥३८-३९॥

सापि ता आह अद्यापि यूयमत्र स्थिताः कथम्।
राधिकान्वेषणं त्यक्त्वा किमर्थं मत्पुरः स्थिताः॥४०॥
श्रुत्वैतन्मोहितात्मानस्तस्मात् स्थानाद्विनिर्गताः।
ममैव सन्निधिं प्राप्तास्त्रिपुरानिकटं गताः॥४१॥

सा अपि ताः आह—अद्यापि यूयम् अत्र कथम् स्थिताः? राधिका-अन्वेषणम् त्यक्त्वा मत्पुरः किमर्थम् स्थिताः? एतत् श्रुत्वा मोहितात्मानः तस्मात् विनिर्गताः त्रिपुरानिकटम् गताः मम एवम् सन्निधिम् प्राप्ताः।

त्रिपुरा ने उनसे कहा—अभी भी तुम यहाँ क्यों खड़ी हो? राधिका की खोज को छोड़कर मेरे सामने क्यों स्थित हो? इन वचनों को सुनकर वे मोहित आत्मा वाली कुमारियाँ उस स्थान से निकलकर त्रिपुरा के निकट न जाकर मेरी सन्निधि में आ गयीं॥४०-४१॥

ददृशुस्तत्र ताः कृष्णं मां राधातुलिताकृतिम्।
तामेव देवीं त्रिपुरां राधाप्रियसखीमिव॥४२॥
तास्ततो निकटे स्थित्वा राधारूपधरं च माम्।
प्राहुः प्रेमरसोन्मिश्रं मधुरालापमुत्तमम्॥४३॥

तत्र ताः राधातुलिताकृतिम् माम् कृष्णम् ददृशुः। ताम् त्रिपुराम् देवीम् राधाप्रियसखीम् इव ददृशुः। ततः ताः निकटे स्थित्वा राधारूपधरम् माम् प्रेमरसोन्मिश्रम् उत्तमम् मधुरालापम् प्राहुः।

वहाँ उन्होंने राधा के समान आकृति वाले मुझको तथा राधा की प्रिय सखी के रूप में त्रिपुरा को देखा। तब वे सब निकट आकर राधा का रूप धारण करने वाले मुझसे अति प्रेमरस में डूबे हुए उत्तम मधुर आलापों में बोलीं॥४२-४३॥

हे राधे सुभगे कृष्णमनोहारिणि हारिणि।
इतो गच्छ समीपे त्वं कृष्णस्य परमात्मनः॥४४॥

राधां सखि ज्ञापयस्व कृष्णं वृन्दावनेश्वरम्।
तं विहायापि तिष्ठन्त्याः किं सुखं देवि कथ्यताम्।।४५।।

हे सुभगे राधे! कृष्णमनोहारिणि! हारिणि! इतः त्वम् कृष्णस्य परमात्मनः समीपे गच्छ। सखि! वृन्दावनेश्वरम् कृष्णम् राधाम् ज्ञापयस्व। देवि! तम् विहाय तिष्ठन्त्याः किम् सुखम्? कथ्यताम्।

हे सुभगे राधे! कृष्ण के मन को चुराने वाली! चोर! यहाँ से तुम परमात्मा कृष्ण के पास चली जाओ। सखि! वृन्दावन के स्वामी कृष्ण को राधा के विषय में बतलाओ। हे देवी! श्रीकृष्ण को छोड़कर यहाँ अकेले रहने में तुम्हें क्या सुख प्राप्त हो रहा है—यह बताओ।।४४-४५।।

इत्थं प्रजल्पितं तासां श्रुत्वालोच्य च ता मुहुः।
परिक्लिन्नधियः सर्वा जहासाहं शनैः शनैः।
तथैव त्रिपुरेशानी प्रहसन्ती जगाद माम्।।४६।।

इत्थम् तासाम् प्रजल्पितम् श्रुत्वा ताः मुहुः सर्वाः परिक्लिन्नधियः आलोच्य अहम् शनैः शनैः जहास तथा एव त्रिपुरेशानी प्रहसन्ती माम् जगाद।

इस तरह उनकी वाणी को सुनकर और व्याकुल बुद्धिवाली उनको बार-बार देखकर मैं धीरे-धीरे हँसने लगा और महात्रिपुरसुन्दरी भी हँसती हुई बोली।।४६।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

किमाभिरुक्तं नौ नाथ स्त्रीत्वपुंस्त्वविपर्ययम्।
तथा हि मोहिता एता उन्मत्ता इति मे मतिः।।४७।।

आभिः किम् उक्तम्? नाथ! नौ स्त्रीपुंस्त्वविपर्ययम्। एताः तथा उन्मत्ताः मोहिताः हि इति मे मतिः।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे नाथ! इन्होंने क्या कहा? हमारे स्त्रीत्व और पुंस्त्व को विपर्यय भाव में देखकर ये सब उन्मत्त और मोहित हो गयी हैं—ऐसा मेरा विश्वास है।।४७।।

आज्ञापय महादेव गोपान् स्वाङ्गसमुद्भवान्।
बद्ध्वैतास्तत्र रक्षन्तु श्रीदामसुबलादयः।।४८।।
ततोऽहं प्रसहद्वक्त्रो लीलया सर्वमोहनः।
गोपानाज्ञापयामास बन्धयैता भ्रमाकुलाः।।४९।।

महादेव! स्वाङ्गसमुद्भवान् गोपान् आज्ञापय। श्रीदामासुबलादयः तत्र एताः बद्ध्वा रक्षन्तु। ततः प्रहसद्वक्त्रः लीलया सर्वमोहनः अहम् गोपान् आज्ञापयामास—एताः भ्रमाकुलाः बन्धय।

हे महादेव! अपने अङ्ग से उत्पन्न होने वाले गोपों को आज्ञा दें। श्रीदामा सुबल आदि वहाँ इन भ्रमाकुला शक्तियों (कुमारियों) को बांधकर रखें। तब सहजभाव से सबको मोहित करने वाला हँसते हुए मुख वाला मैंने गोपों को आज्ञा दी कि इन सभ्रमशीला कुमारियों को बाँध दो।।४८-४९।।

ततो मद्वचनात् सर्वे गोपालास्ताः कुमारिकाः।
बद्ध्वा श्रीमन्दिरे देवीः स्थापयामासुरुन्मदाः।।५०।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये सर्वसंक्षोभिण्यादिशक्ति-
सर्वज्ञादिदेवीमोहनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

ततः मद्वचनात् सर्वे गोपालाः उन्मदाः ताः कुमारिकाः देवीः बद्ध्वा श्रीमन्दिरे स्थापयामासुः।

तब मेरी आज्ञा से सभी गोपालों ने उन्मत्त उन कुमारी देवियों को बाँधकर श्रीमन्दिर में स्थापित कर दिया।।५०।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधाकृष्णरहस्य में सर्वसंक्षोभि-ण्यादिशक्ति सर्वज्ञादिदेवी मोहन नामक बीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

एकविंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये वशिन्यादिवाग्देवी-कामेश्वर्यादिमोहने राधायानिजतत्त्वप्रकाशनम्

श्रीबलराम उवाच—

बद्धासु तासु मुग्धासु कथ्यतां किमभूत् ततः।
कौतूहलमिदं श्रुत्वा हृदये मम वर्द्धते॥१॥

इदम् श्रुत्वा मम हृदये कौतूहलम् वर्द्धते। तासु मुग्धासु (जातासु) ततः किम् अभूत्? कथ्यताम्।

बलराम ने कहा—यह सुनकर मेरे हृदय में कौतूहल बढ़ रहा है कि तुम मुग्ध हो जाने के बाद क्या हुआ? कहिए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

सर्वसंक्षोभिणीशक्तिसर्वज्ञाद्यासु तास्वथ।
विमुग्धासु निबद्धासु यदभूत् तन्निशामय॥२॥

सर्वसंक्षोभिणीशक्तिसर्वज्ञाद्यासु तासु विमुग्धासु निबद्धासु यद् अभूत् तत् निशामय।

श्रीकृष्ण ने कहा—सर्वसंक्षोभिणी आदि उन सर्वज्ञा शक्तियों के विमुग्ध होकर बँध जाने पर जो हुआ, उसे सुनो॥२॥

ततोऽन्याः शक्तयस्तस्याः कण्ठमूलाद्विनिर्गताः।
प्रथमा वशिनी चैव विमला मोदिनी परा॥३॥
कामेश्वरी कौलिनी च अरुणा जयिनी तथा।
सर्वेश्वरी च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदा इमाः॥४॥
ताः पुरस्तान्महादेव्या बद्धाञ्जलिपुटा मुहुः।
निरीक्ष्यन्त्यो मुखाम्भोजमथोचुर्धीरया गिरा॥५॥

ततः तस्याः कण्ठमूलात् अन्याः शक्तयः विनिर्गताः। प्रथमा वशिनी परा मोदिनी, विमला, कामेश्वरी, कौलिनी तथा अरुणा जयिनी सर्वेषाम् भुक्तिमुक्तिप्रदाः इमाः महादेव्याः पुरस्तात् मुखाम्भोजम् निरीक्ष्यन्त्यः ताः बद्धाञ्जलिपुटाः अथ धीरया गिरा मुहुः ऊचुः।

इसके बाद उस भुवनेश्वरी के कण्ठमूल से अन्य शक्तियाँ प्रकट हो गयीं। उनमें पहली वशिनी, दूसरी विमला, मोदिनी, कामेश्वरी, कौलिनी जयिनी और सर्वेश्वरी अरुणा थीं। ये शक्तियाँ सबको भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने में समर्थ थीं। उन सबने महादेवी के सामने उनके मुख-कमल को देखती हुई हाथ जोड़कर गम्भीर वाणी में इस प्रकार कहा॥३-५॥

वशिन्यादिका ऊचु—

किं करिष्याम हे देवि समाज्ञापय साम्प्रतम्।
किङ्कर्यस्तव नान्यस्या वयं देवि प्रसीद नः॥६॥

हे देवि! साम्प्रतम् समाज्ञापय किम् करिष्यामः। वयम् तव किङ्कर्यः अन्यस्याः न। देवि नः प्रसीदः।

वशिनी आदि ने कहा—हे देवि! हमें आज्ञा दीजिए, हम क्या करें? हम आपकी किंकरी हैं, किसी अन्य की नहीं। हे देवि! हम पर प्रसन्न हो जाइये॥६॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

वशिन्याद्याः शृणुध्वं मे वचनं सर्वमोहनाः।
याः प्रेषिता मया पूर्वं किञ्चित् कर्त्तुं तु नाशकन्॥७॥
ताभ्यो गुणाधिका यूयमत एवं ममाग्रहः।
इदानीं प्रेषयिष्यामि भवतीः प्रियवादिनीः॥८॥

हे सर्वमोहनाः वशिन्याद्याः! मे वचनम् शृणुध्वम् याः मया पूर्वम् प्रेषिताः ताः किञ्चित् कर्तुम् नाशकन्। यूयम् ताभ्यः गुणाधिकाः, अतः एव ममाग्रहः, इदानीम् प्रियवादिनीः भवतीः प्रेषयिष्यामि।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे वशिनी आदि देवियों! आप सर्वमोहना हैं। मेरी बात सुनें—मैंने जिन शक्तियों को पहले भेजा था, वे कुछ भी नहीं कर सकीं। तुम सब उनसे अधिक शक्तिशालिनी हो; अतः इस समय मैं प्रियवादिनी आप सबको भेजूँगी॥७-८॥

कृष्णः सतृष्णः सततं राधायामधिकं चिरम्।
तामन्वेषयाताद्यैव चतुराः सर्वतोगमाः॥९॥
प्रयात विपिनं घोरं यत्नं कुरुत सत्तमाः।
यत्ने कृते न सिद्धिश्चेन्न वो दोषो न चागुणाः(?चागुणः)॥१०॥

कृष्णः सततम् राधिकायाम् चिरम् अधिकम् सतृष्णः। चतुराः सर्वतोगमाः अद्यैव ताम् अन्वेषयत। हे सत्तमाः! घोरम् विपिनम् प्रयात। यत्नम् कुरुत। चेद् यत्ने कृते वा न सिद्धिः (तर्हि) न दोष न अगुणः।

कृष्ण निरन्तर राधिका में बहुत काल से अधिक आसक्त हो रहे हैं। आप सभी चतुर हैं तथा आपकी सर्वत्र गति है। अतः आज ही उस राधा की खोज कीजिए। हे उत्तम गुणों वाली शक्तियों! घोर वन में जाओ और यत्न करो। यत्न करने पर भी यदि सिद्धि प्राप्त न हो तो उसमें तुम्हारा न कोई दोष होगा और न गुणहीनता होगी॥९-१०॥

ततस्ताः शक्तयः सर्वा गत्वा वृन्दावनान्तरम्।
तुष्टुवुर्मधुराभिश्च वाग्भिस्तामीश्वरेश्वरीम्॥११॥

ततः सर्वाः शक्तयः वृन्दावनान्तरम् गत्वा ताम् ईश्वरेश्वरीम् मधुराभिः वाग्भिः तुष्टुवुः।

इसके बाद वे सभी शक्तियाँ वृन्दावन के भीतर जाकर ईश्वरों की स्वामिनी की उस मधुर-मधुर वाणी से स्तुति करने लगीं॥११॥

वशिन्याद्या ऊचु—
जय जय राधे कृतनतराधे जगदभिवन्द्ये सुरवरवन्द्ये।
धृतबहुरूपे स्मरमखरूपे सरसिजवक्त्रे सुमदिरनेत्रे॥१२॥
जय धृतहारे त्रिभुवनसारे विगतविकारे मधुरविचारे।
विकलितसाम्येऽखिलजनकाम्ये रसमयि सौम्ये प्रतिहतवान्ये (?मे)॥

जय जय राधे! कृतनतराधे जगद् अभिवन्द्ये धृतबहुरूपे स्मरमखरूपे सरसिजवक्त्रे सुमदिरनेत्रे! धृतहारे त्रिभुवनसारे विगतविकारे मधुरविचारे विकलित-साम्ये अखिलजनकाम्ये रसमयि सौम्ये प्रतिहतवामे! जय।

वशिनी आदि देवियों ने कहा—हे राधे! आप सबके लिए नमनीय, वन्दनीय तथा देवों द्वारा सदा वन्दनीय हैं। आप अनेक रूप धारण करती हैं। कामदेव के यज्ञ के समान आपका रूप है। आपका मुख कमल के समान है। आपके मदिर नेत्र सुन्दर हैं। हार को धारण करने वाली आपकी जय हो, जय हो। आप त्रैलोक्य की सार हैं। आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं है। आपके विचार मधुर हैं। सबके प्रति समान भाव वाली आप सभी जनों की प्रिय हैं, आप रसरूप हैं, सौम्य हैं तथा शत्रुओं का नाश करने वाली हैं। आपकी जय हो॥१२-१३॥

जय जय कान्ते जगति सुशान्ते सुखमयि दान्ते करहिलतान्ते।
सहृदयमान्ये गुणगणधान्ये युवजनगण्ये धृतलावण्ये।
कुशलवदान्ये कृतरसवन्ये वृन्दारण्येश्वरि सुरकन्ये॥१४॥

कान्ते, जगति सुशान्ते सुखमयदान्ते करहिलतान्ते सहृदयमान्ये। गुणगण-

धान्ये युवजनगण्ये धृतलावण्ये कुशलवदान्ये कृतरसवन्ये वृन्दारण्येश्वरि सुरकन्ये जय जय।

हे कान्ता। आप जगत् में सुशान्ति प्रदान करती हैं तथा सुखमयी एवं दमनयुक्त हैं। आप करक्रीड़ा अर्थात् करालिङ्गन के लिय उद्विग्न रहती हैं। सहृदयजन सदा आपका सम्मान करते हैं। आप गुण की धनी हैं। आप युवतियों में अग्रणी हैं। आप लावण्य को धारण करने वाली हैं। आप चतुर दानी हैं। आप वृन्दावन की ईश्वरी रसमयी देवकन्या हैं। आपकी जय हो, जय हो॥१४॥

सकलसकलसीमन्तिनीसीमन्तप्रान्तसमुद्योतमानमणिदिनमणिद्युतिदीपितचरणसरसीरुहविलुठतसुरासुरनरोरगदानवगन्धर्वाप्सरोयक्षरक्षोलक्षकोटिकोटिहाटकस्फुटमुकुटकोटिपरिसङ्घट्टनकोलाहलकलकलीविकलीकृतकुण्डप्रचण्डब्रह्माण्डव्यूहचमत्कारचकितलोकशोकसङ्घातघातनदक्षे॥१५॥

जय जय सकलसकलसीमन्तिनीसीमन्तप्रान्तसमुद्योतमानमणिदिनमणिद्युतिदीपितचरणसरसीरुहविलुठतसुरासुरनरोरगदानवगन्धर्वाप्सरोयक्षरक्षोलक्षकोटिकोटिहाटकस्फुटमुकुटकोटिपरिसङ्घट्टनकोलाहलकलकलीविकलीकृतकुण्डप्रचण्डब्रह्माण्डव्यूहचमत्कारचकितलोकशोकसङ्घातनदक्षे। जय जय।

आप कलाओं से युक्त समस्त सीमन्तिनियों के सकल सीमन्त—शिरप्रान्त में उन्नत मान मणि से अलंकृत, सूर्य की किरणों से खिले हुए आपके चरणकमलों में करोड़ों-करोड़ों सुर, असुर, नर, उरग, दानव, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, राक्षसों के करोड़ों स्वर्णनिर्मित दिव्य मुकुटों के परसङ्घट्टन से उत्पन्न कोलाहल की कलकल ध्वनि से कुण्ड और प्रचण्ड ब्रह्माण्ड के समूह व्याकुल हो जाते हैं। चकित लोकसमूह के शोक को नष्ट करने में आप दक्ष हैं। आपकी जय हो, जय हो॥१५॥

जय जय शम्बरवारणकलाकलापसमलङ्कृतवरकलेवरकान्तिविनिन्दितविद्योतमानबहुमानविद्युतिद्युतिसन्ततिसन्ततसन्तप्तकाञ्चनसञ्चितविमलविशालकमलमालाप्राघुणकीकृतसमुन्मदमत्तमतङ्गराजजृम्भमानकुम्भसमारम्भोत्तुङ्गपीनपयोधरधराधरतटनिकटप्रकटितमुक्तामुक्तहारजह्नुदुहितृसख्ये॥१६॥

शम्बरवारणकलाकलाप-समलङ्कृत-वरकलेवर-कान्ति-विनिन्दित-विद्योतमान-बहुमानविद्युतिद्युतिसन्ततिसन्ततसन्तप्तकाञ्चनसंचित-विमलविशाल-कमलमालाप्राघुणकीकृत-समुन्मदमत्त-मतङ्गराज-जृम्भमान-कुम्भसम-आरम्भो-

तुङ्ग-पीनपयोधरधराधरतट-निकट-प्रकटित-मुक्तामुक्तहार-जह्नुदुहितृसखे जय जय।

हे राधिके! आपके श्रीविग्रह की कान्ति शम्बरवारण (भगवान् शिव) के कला-कलाप के अलंकृत करने वाले चन्द्र की कान्ति को भी विनिन्दित करती है। चमकती हुई चमचमाती विद्युत् की निरन्तर धारा को तथा निरन्तर सन्तप्त काञ्चन की कान्ति को भी आपके श्रीविग्रह की कान्ति लज्जित कर देती है। आपके श्रीविग्रह पर विराजित कमलमाला की गन्ध उन्मत्त समुद्र-गजराजों के कुम्भ की गन्ध को भी तिरस्कृत करती है। आपके उत्तुङ्ग पीन पयोधररूपी पर्वतों के तट पर प्रकट हुई मुक्ताओं की माला जह्नुतनया गंगा की सखी-सी प्रतीत होती है। आपकी जय हो, जय हो॥१६॥

जय जय चिकुर निकुरम्बसम्बलमालनवमालिका मालिकाधिरोहमाणरोलम्बगणझङ्कारसञ्ज्ञारितपूर्णशशधर निरुद्धप्रबुद्धसैंहिकेय संशोभाप्रभावे॥१७॥

चिकुर निकुरम्बसम्बलमालनवमालिका मालिकाधिरोहमाणरोलम्बगणझङ्कार-सञ्ज्ञारितपूर्णशशधर निरुद्धप्रबुद्धसैंहिकेय संशोभाप्रभावे जय जय॥१७॥

केशों के समूह में लगी हुई जूही की माला में चिपके हुये भ्रमरों के झङ्कार से ध्वनित मानों पूर्ण चन्द्रमा को राहु से ग्रसित शोभा के प्रभाव वाली राधे आपकी जय हो।

जय जय जननि जननिकरवरप्रदानकरणसमयसमयिता लीलान्दोलविलोलप्रकटकटाक्षमोक्षानुसन्धानविधानदक्षस्मेरसुधासारासारस्नापितकातरनरसतृष्णस्मारितस्मरविभवे॥१८॥

जननि! जननिकरवरप्रदानकरणसमयसमयिता लीला आन्दोलविलोल-प्रकट-कटाक्ष-मोक्षानुसन्धान-विधान-दक्ष-स्मेरसुधासारा-सार-स्नापित-कातर-नर-सतृष्ण-स्मारितस्मरविभवे जय जय।

हे माँ राधे! आप भक्तसमूह को वर प्रदान करते समय स्मित छवि के साथ प्रतिक्षण उन्हें वरप्रदान करने के लिए तत्पर रहती हैं। आप लीलापूर्वक अपने चंचल प्रकट कटाक्षों को गिराने में नित्य चतुर हैं। आप दुःख से व्याकुल मनुष्यों को अपनी मधुर मुस्कान की सुधाधारा की वर्षा से स्नान कराकर उनकी तृष्णाओं का स्मरण कराकर उन्हें खुश करने में कुशल हैं। आपकी जय हो, जय हो॥१८॥

जय जय नभोमण्डनायमानप्रचण्डचण्डकिरणकिरणावधीरणधीरसीमन्तसिन्दूरपूरणपाटलच्छटापटलपरिपाटीपाटितसूचीसूच्यमानसंसारसागर-

प्रचुरसन्तप्तसविदूरीकारकारितपदार्थसञ्चारविजनचातुरीकचराचरलोक-समस्ते॥१९॥

नभोमण्डलमण्डनायमानप्रचण्डचण्डकिरणकिरणअवधीरणधीर-सीमन्त-सिन्दूरपूरणपाटलच्छटापटलपरिपाटीपाटितसूचीसूच्यमानसंसारसागर-प्रचुरसन्तप्त-सविदूरीकारकारितपदार्थ-सञ्चार-विजनचातुरीक-चराचर-लोक-समस्त, जय! जय।

हे राधे! आपके श्रीविग्रह की कान्ति नभोमण्डल को मंडित करने वाले प्रचण्ड सूर्य की किरणों की कान्ति को भी लज्जित करती है। आपकी माँग में भरा हुआ सिन्दूर लाल कमलों की परिपाटी छटा को भी तिरस्कृत करता है। आप संसारसागर में अत्यधिक सन्तप्त जनों के सन्ताप को दूर करने की परिपाटी में निपुण हैं। आप चराचर जगत् को आनन्द प्रदान करने में पूर्ण समर्थ हैं। आपकी जय हो, जय हो॥१९॥

जय जय प्रणतिसन्ततिसन्तताभुज्यमानभुजाग्रावलम्बारम्भसंवलमानप्रकट-जटापटलीसमालीढमूर्धाभिरुद्धेर्द्धिरनिबद्धकरपुटाञ्जलिभिः सुचतुरचतुरानन-चतुराननीप्रणीयमानवेदनिर्वेदवचनरचनोपायनेन यमिभिरपिशमितषड्मित्रचरि-त्रैश्चिरकमिते नमितेऽनमितेऽस्तु नमस्ते॥२०॥

जय जय प्रणतिसन्तति-सन्तत-आभुज्यमानभुजाग्र-अवलम्बारम्भ-संवल-मान-प्रकटजटापटली-समालीढमूर्धाभिः उद्धेर्द्धिरनिबद्धकरपुटाञ्जलिभिः सुचतुर-चतुरानन-चतुराननी-प्रणीयमान-वेद-निर्वेद-वचन-रचनोपायनेन यमिभिः अपि शमित-षड्मित्र-चरित्रैः चिरकमिते नमिते अनमिते ते नमः अस्तु।

हे माँ राधिके! आपकी जय हो, जय हो। आपके श्रीचरणों में अति चतुर ब्रह्मा मूर्धा तक जटापटली का आश्रय लेने वाले मुकुटों तक उठाकर अपने द्वारा रचित वेद के वचनों द्वारा आत्मग्लानि (तुच्छता) का उपहार निवेदन करते हैं; उन देवों के वचनों को स्नेह से दूर करने वाली आपको बार-बार प्रणाम है। छः शत्रुओं के दिव्य चरित्र वालों के द्वारा बहुवाञ्छित असीम यम का पालन करने वालों के द्वारा भी आपके श्रीचरणों में मेरा प्रणाम निवेदन है॥२०॥

जय जय दामिनी(?नि) मायिनी(?नि) मातः
परमपि वरमिह यामो नातः।
कलय दृगन्तं सकलकलाढ्ये
जीवतु कृष्णो विगलितजाड्ये॥२१॥

दामिनि! मायिनि! मातः! जय जय। अतः परम् वरम् अपि इह न यापः। सकलकलाढ्ये दृगन्तम् कलय। विगलितजाड्ये! कृष्णः जीवतु।

हे विद्युत् के समान कान्ति वाली मायाविनि! माँ राधिके! आपकी जय हो, जय हो। यहाँ उत्कृष्ट वर यही है कि हम यहाँ से नहीं जायेंगी। हे सभी कलाओं में पारंगत राधिके! अपने कटाक्ष दृगन्तों का थोड़ा-सा स्पर्श करा दें। हे जड़ता को नष्ट करने वाली! कृष्ण को चेतना प्राप्त हो जाए।।२१।।

जय जय जय जय रसमयि राधे
प्रणतजनानां प्रतिहतबाधे।
यदि कुरुषे करुणामरुणाक्षि
कलयति जीवं जीवनसाक्षि(?क्षी)।।२२।।

रसमयि राधे! जय जय जय जय। प्रणतजनानाम् प्रतिहतबाधे! यदि अरुणाक्षि करुणाम् कुरुषे जीवनसाक्षी जीवम् कलयति।

हे रसमयी राधे! आपकी जय हो। प्रणतजनों की बाधाओं का नाश करने वाली आपकी जय हो। यदि आप अपने रक्तिम नेत्रों में थोड़ी सी करुणा करें तो जीवनसाक्षी श्रीकृष्ण का प्राण बच सकता है अर्थात् वे प्राण धारण कर सकते हैं।।२२।।

या कन्दर्पकलाकलापकुशला लोकत्रयी मोहिनी
यां निन्या(?त्या)ममरा वराय नितरां सम्प्रार्थयन्ते चिरम्।
मुह्यन्ति स्म मुनीश्वरा अपि यया यस्यै नमस्कुर्वते
यस्या साधुहृदो विदन्ति चरितं यस्या न वेदा कदा।।२३।।

या कन्दर्पकलाकलापकुशला लोकत्रयी मोहिनी (अस्ति)। अमराः वराय नितराम् याम् नित्याम् चिरम् सम्प्रार्थयन्ते। मुनीश्वराः अपि यया मुह्यन्ति स्म। (मुनीश्वराः) यस्यै नमस्कुर्वते यस्याः चरितम् साधुहृदः (विदन्ति)। वेदाः कदा (अपि) न विन्दन्ति।

जो कामकला के कलाप में कुशल है; तीनों लोकों को मोहित करने वाली है; देवगण वर मांगने के लिए जिसको प्रणाम कर निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं। बड़े-बड़े मुनीश्वर भी जिससे मोहित हो जाते तथा जिसे नमस्कार करते हैं। जिसके आचरण को अर्थात् क्रियाकलाप को साधु हृदयजन जानते हुये भी किसी तरह नहीं जान पाते, उसकी जय हो।।२३।।

यस्यां भक्तिधृतो मनोऽपि न मनाक् कुर्वन्ति नाकेषु नः
मोक्षे शक्रपदे पदे हिमतनोः कौबेरके सौरके।

ब्राह्मे वर्त्मनि सार्वभौममु(?सु)खजे वाष्टासु सिद्धिष्वसौ
शश्वद् विश्वजनीनकर्मणि पुनः राधा प्रसन्नाऽस्तु सा॥२४॥

यस्याम् भक्तिधृतः नः नाकेषु मोक्षे शक्रपदे हिमतनोः पदे कौबेरके सौरके ब्राह्मे वर्त्मनि सार्वभौमसुखजे वा अष्टासु सिद्धिषु मनाक् अपि मनः न कुर्वन्ति असौ विश्वजनीनकर्मणि राधा पुनः प्रसन्ना अस्तु।

जिस राधा में भक्ति करने वाले हमारे स्वर्ग, अपवर्ग, इन्द्रपद, शिवपद, कुबेरपद, सूर्यपद, ब्रह्मपद, सार्वभौम सुख, अष्टसिद्धियों के विषय में थोड़ा भी मन नहीं लगाते, वह विश्वजनीन कर्मप्रधान राधा पुनः प्रसन्न हो जाय॥२४॥

एवं स्तुता महादेवी ता आहानन्दस्वरूपिणी।
अपाङ्गरङ्गभङ्ग्या (तु) रिङ्गयन्त्यन्यवर्जितम्॥२५॥

एवम् स्तुता आनन्दस्वरूपिणी महादेवी अपाङ्गरङ्गभङ्ग्या तु रिङ्गयन्ती अन्यवर्जितम् ताः आह।

इस प्रकार स्तुति किए जाने पर आनन्दस्वरूपिणी महादेवी राधा ने अन्यों को छोड़कर नेत्रों की कोर की भंगिमा से सङ्केत करती हुई उन प्रार्थना करने वाली शक्तियों से कहा॥२५॥

श्रीराधा उवाच—

शृणुध्वं शक्तयः सर्वास्तथ्यं पथ्यं हितं वचः।
न मत्तोऽप्यधिका काचित् प्रकृतिः पुरुषोऽपि कः॥२६॥
अहमेव परं ब्रह्म पुरुषः श्यामविग्रहः।
अहं सा परमा शक्तिः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी॥२७॥

हे सर्वाः शक्तयः! तथ्यम् पथ्यम् हितम् वचः शृणुध्वम्। मत्तः अधिका न काचित् प्रकृतिः पुरुषः अपि न (अस्ति)। अहम् एव श्यामविग्रहः परम् ब्रह्म। (या) परमा शक्तिः श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी सा अहम्।

श्रीराधा ने कहा—हे सभी शक्तियों! सत्य, पथ्य तथा हितकर वचन सुनो। मुझसे बड़ा कोई प्रकृति और पुरुष नहीं है। मैं ही परब्रह्म श्यामशरीर वाला पुरुष हूँ। जो परमशक्ति श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी है, वह मैं ही हूँ॥२६-२७॥

अहं तत् परमं ब्रह्म सूक्ष्मं ज्योतिर्निरञ्जनम्।
अहमानन्दरूपाऽस्मि कृष्णोऽसौ रसविग्रहः॥२८॥
प्रेमस्वरूपा सा देवी महात्रिपुरसुन्दरी।
विना प्रेम रसो नास्ति न चानन्दो रसं विना॥२९॥

अहम् परमम् सूक्ष्मम् ज्योतिः निरञ्जनम् तद् ब्रह्म। अहम् आनन्दस्वरूपा अस्मि। असौ कृष्णः रसविग्रहः। सा देवी महात्रिपुरसुन्दरी प्रेमस्वरूपा अस्ति। विना प्रेम रसः नास्ति रसम् विना च आनन्दः न।

परम सूक्ष्म ज्योतिःस्वरूप निरञ्जन ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं आनन्दरूप हूँ। वह कृष्ण रसरूप हैं और वह देवी महात्रिपुरसुन्दरी प्रेमरूपा है। प्रेम के बिना रस नहीं और रस के बिना आनन्द नहीं।।२८-२९।।

प्रेमानन्दो रसश्चैव एक एव न संशयः।
तस्माद् यन्त्रविधानेन नौषधैर्मणिभिर्न माम्।।३०।।
अपि कृष्णो वशयितुं न शक्तः किमुतापरे।
शक्तिहीनस्य नानन्दो न प्रेमरस एव वा।।३१।।

प्रेमानन्दः रसः च एकः एव, (अत्र) न संशयः। तस्मात् कृष्णः अपि मणिभिः औषधैः यन्त्रविधानेन वा माम् वशयितुम् न शक्तः उत अपरे किम्। शक्तिहीनस्य न आनन्दः न प्रेमरसः एव वा।

प्रेमानन्द और रस एक ही है, इसमें सन्देह नहीं। इसलिये श्रीकृष्ण भी मणि औषधि अथवा यन्त्रविधान के प्रयोग से मुझे वश में नहीं कर सकते, फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या। शक्ति से हीन व्यक्ति को न तो आनन्द मिलता है और न प्रेमरस।।३०-३१।

अहं तु परमा शक्तिः श्रीकृष्णहृदयस्थिता।
सख्यो नाहं पराधीना स्वतन्त्रा सर्वदाऽस्म्यहम्।।३२।।
श्रीकृष्णाकर्षिणीशक्तिर्न मां कर्षितुमर्हथ(?ति)।
सदा प्रधानरूपेण परंब्रह्माहमव्ययम्।।३३।।

अहम् तु श्रीकृष्णहृदयस्थिता परमा शक्तिः। सख्यः अहम् पराधीना न। अहम् सर्वदा स्वतन्त्रा अस्मि। श्रीकृष्णाकर्षिणी शक्तिः माम् कर्षितुम् न अर्हथ। अहम् प्रधानरूपेण सदा अव्ययम् परम् ब्रह्म।

मैं श्रीकृष्ण के हृदय में रहने वाली उनकी परमा शक्ति हूँ। हे सखियों! मैं पराधीन नहीं हूँ। सर्वदा स्वतन्त्र ही हूँ। श्रीकृष्ण का आकर्षण करने वाली शक्ति (तुम सब) भी मेरा आकर्षण नहीं कर सकती। मैं प्रधान रूप से नित्य परंब्रह्म हूँ।।३२-३३।।

वृन्दावनेऽस्मिन् तिष्ठामि नित्यानन्दस्वरूपिणी।
कृष्णोऽपि शक्तिरहितः कर्त्तुं शक्तो न किञ्चन।।३४।।

तस्यापि शक्तिरूपाहं राधिका सर्वतोऽधिका।
यदि मत्तोऽधिकः कृष्णो भवतीभिर्हि मन्यते॥३५॥
तदा किं मां वशीकर्तुमेष एव महान् श्रमः।
यावत् प्रेमरसैः शुद्धः स हि कृष्णो भविष्यति॥३६॥

नित्यानन्दस्वरूपिणी (अहम्) अस्मिन् वृन्दावने तिष्ठामि। शक्तिरहितः कृष्णः अपि किञ्चन कर्तुम् न शक्तः। तस्य अपि शक्तिरूपा अहम् एव राधिका सर्वतः अधिका। यदि भवतीभिः कृष्णः मत्तः अधिकः मन्यते तदा माम् वशीकर्तुम् एषः महान् श्रमः किम् एवम् यावत् स हि कृष्णः प्रेमरसैः शुद्धः भविष्यति—।

मैं नित्य आनन्दस्वरूपिणी इस वृन्दावन में नित्य निवास करती हूँ। अपनी शक्ति से रहित वह कृष्ण भी कुछ करने में समर्थ नहीं है; क्योंकि मैं ही उसकी शक्तिरूपा हूँ। मैं सबसे अधिका राधिका हूँ। यदि आप कृष्ण को मुझसे अधिक मानती हैं तो मुझे वश में करने का यह महान प्रयत्न क्यों कर रही हैं? जब तक वह कृष्ण प्रेमरस से शुद्ध नहीं होते—॥३४-३६॥

तावन्ममानन्दयोग्यो न चोपायशतैरपि।
कृष्णदूत्यः किमर्थं मां कदर्थयत दुर्धियः॥३७॥

तावत् उपायशतैः अपि मम आनन्दयोग्यः न। दुर्धियः कृष्णदूत्यः किमर्थम् माम् कदर्थयत।

तब तक सैकड़ों उपायों से वह मेरे आनन्द के योग्य नहीं हैं। मूर्खमति कृष्णदूतियों! क्यों मुझे कष्ट पहुँचा रही हो॥३७॥

पुनर्गच्छत तत्रैव यत्र ते प्रकृतिः परा।
श्रुत्वैतद्वचनं तस्या निरस्तास्ताः किशोरिकाः॥३८॥
त्रिपुराद्यां समासाद्य सर्वमुक्तं न्यवेदयन्।
निवेदितं समाकर्ण्य तासां योगेश्वरेश्वरी॥३९॥
असृजत् पुनरन्याश्च सर्वाधारस्वरूपिणीः।
नितम्बदेशात् सुन्दर्यो निर्गताः स्म मनोहराः॥४०॥

पुनः तत्र एव गच्छत यत्र ते परा प्रकृतिः (अस्ति)। तस्याः वचनम् श्रुत्वा ताः किशोरिकाः निरस्ताः त्रिपुराद्याम् समासाद्य उक्तम् सर्वम् न्यवेदयन्। सर्वाधारस्वरूपिणी योगेश्वरेश्वरी तासाम् निवेदितम्। समाकर्ण्य पुनः अन्याः च असृजत्। मनोहराः सुन्दर्यः नितम्बदेशात् निर्गताः स्म।

फिर से अपनी पराशक्ति के पास जाओ। उस राधा के वचनों को

सुनकर वे किशोरियाँ निष्फल हो गयीं और आद्या त्रिपुरसुन्दरी के पास जाकर उन्होंने राधा के सारे कथन को सुना दिया। किशोरियों के निवेदन को सुनकर सर्वाधाररूपिणी योगेश्वरेश्वरी त्रिपुरा ने फिर से शक्तियों को उत्पन्न किया। उसके नितम्ब स्थान से मनोहर सुन्दरियाँ प्रकट हो गयीं।।३८-४०।।

कामेश्वरी कामरूपा तथा वज्रेश्वरी परा।
भगमालिनी महादेवी संमुखीना वराननाः।
तस्याः सारूप्यमापन्नाः प्रोचुर्वाचातिघोरया।।४१।।

तस्याः सारूप्यमापन्नाः कामेश्वरी कामरूपा परा वज्रेश्वरी महादेवी भगमालिनी वराननाः सम्मुखीनाः अतिघोरया वाचा प्रोचुः।

उत्पन्न सभी देवियाँ त्रिपुरा के समान रूप वाली थीं। उनमें कामेश्वरी, कामरूपा, वज्रेश्वरी, पराशक्ति महादेवी भगमालिनी तथा वरानना थी। वे देवी के सम्मुख खड़ी होकर घोर वाणी में कहने लगीं।।४१।।

कामेश्वर्यादय ऊचुः—

किं करिष्याम कल्याणि कल्याणं नो विधीयताम्।
निवेशं कुरु किङ्कर्यो वयं स्वामिनि सुन्दरि।।४२।।

कल्याणि! किम् करिष्यामः? नः कल्याणम् विधीयताम्। स्वामिनि! सुन्दरि! वयम् तव किंकर्यः निदेशम् कुरु।

कामेश्वरी आदि ने कहा—हे कल्याणि! हम क्या करें? हमें आज्ञा देकर हमारा कल्याण कीजिए। हे स्वामिनि! सुन्दरि! हम तुम्हारी दासियाँ हैं। हमें आज्ञा दीजिए।।४२।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

चपलं चपला यूयं गच्छत स्वच्छमानसाः।
राधिकामतिसंशुद्धामानीयास्मै निवेदय।।४३।।
इत्येवं प्रेषितास्तास्तु पुनरूचुर्गुरुस्वराः।
उत्पन्नाः शक्तयः सर्वाः पुरो देव्याः समुद्भटाः।।४४।।

स्वच्छमानसाः यूयम् चपलाः चपलम् गच्छत। अतिसंशुद्धाम् राधिकाम् आनीय अस्मै निवेदय। समुद्भटाः उत्पन्नाः सर्वाः शक्तयः इति एवं प्रेषिताः ताः तु गुरुस्वराः देव्याः पुरः पुनः ऊचुः।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—आप सब पवित्र मन वाली तथा चपला की तरह चंचल हैं। शीघ्र जाइये और अति पवित्र राधिका को लाकर

श्रीकृष्ण को निवेदित कर दो। पूर्वकाल में देवी से उत्पन्न अति बलशाली दीजिए, सभी शक्तियों ने इस प्रकार जाने के लिए कहने पर अति अहंकारपूर्ण वाणी में पुनः देवी के सामने कहा।।४३-४४।।

कामेश्वर्यादयः ऊचुः—

प्रेम्णा तां वशयिष्यामः क्व यास्यत्यद्य राधिका।
अस्माभिर्यत्र शक्यं स्यात्तन्न शक्यं हि भूतले।।४५।।
आनयिष्यामोऽद्य राधामिति सत्यं सुनिश्चितम्।
पथि विघ्नाः पलायन्तां दीयन्तां पदरेणवः।।४६।।

अद्य राधिका क्व यास्यति? ताम् प्रेम्णा वशयिष्यामः। यत् अस्माभिः शक्यम् न स्यात् तत् भूतले न हि शक्यम्। अद्य राधाम् आनयिष्यामः इति सत्यम् सुनिश्चितम्। पदरेणवः दीयन्ताम्। पथिविघ्नाः पलायन्ताम्।

कामेश्वरी आदि ने कहा—आज राधिका कहाँ जायेंगी। (हम) उसे प्रेम से वश में करेंगी। जो कार्य हमारे लिए अशक्य होगा, वह पृथ्वी पर किसी के लिए भी शक्य नहीं हो सकता। आज हम राधिका को ले आयेंगी, यह सत्य और सुनिश्चित है। कृपा कर हमें अपने चरणों की धूल प्रदान करें, जिससे मार्ग की सभी बाधाएँ दूर हो जायँ।।४५-४६।।

इति श्रीत्रिपुरेश्वर्याश्चरणाम्भोरुहान्तिके।
विभ्राम्य मूर्धभ्रमरान्निर्ययुः फुल्लमानसाः।।४७।।
ततोऽध्वनि सलीलास्ता विजह्रुः कामचेष्टितम्।
मोहिता राधया देव्या जानन्ति स्म न किञ्चन।।४८।।

इति श्रीत्रिपुरेश्वर्याः चरणाम्भोरुहान्तिके मूर्धभ्रमरान् विभ्राम्य फुल्लमानसाः (ताः) निर्ययुः। ततः अध्वनि ताः सलीलाः कामचेष्टितम् विजह्रुः। राधया देव्या मोहिता न किञ्चन जानन्ति स्म।

यह कहकर वे श्रीमत्त्रिपुरेश्वरी के चरणकमलों के निकट अपने मूर्धा अर्थात् शरीररूपी भ्रमरों को झुका कर प्रसन्न मन से निकल गयीं। इसके बाद मार्ग में वे लीलापूर्वक कामचेष्टाएँ करती रहीं। पुनः राधा देवी के द्वारा मोहित हो गयीं और कुछ भी न जान सकीं।।४७-४८।।

शनैः शनैः चलन्तीसु तासु कौतुकभाषणैः।
लम्पटासु कामकेलौ चलद्रक्तपटास्वथ।।४९।।
आन्दोलितभुजद्वन्द्वहेलितोद्धूतमूर्धसु।
सर्वान्तर्यामिनी देवी विमुखी राधिकाऽभवत्।।५०।।

इत्थं विचिन्तयन्ती च कामिनी कामनीतितः।
एता माया प्रेमयोगान्मां वशीकृत्य सादरम्॥५१॥
कृष्णप्रिया भविष्यन्ति लप्स्यन्ते मानमाननाम्।
अहं नाहङ्कारिजने प्रीतास्मि गतदूषणा॥५२॥

अथ कौतुकभाषणैः तासु चलत् रक्तपटासु लम्पटासु शनैः शनैः चलन्तीसु आन्दोलितभुजद्वन्द्वहेलितोद्धूतममूर्धसु सर्वान्तर्यामिनी देवी राधिका विमुखी अभवत्। कामिनी कामनीतितः इत्थम् विचिन्तयन्ती एताः मायाः माम् प्रेमयोगात् सादरम् वशीकृत्य कृष्णप्रियाः भविष्यन्ति मानमाननाम् लप्स्यन्ते। गतदूषणा अहम् अहङ्कारिजने प्रीता न अस्मि।

इसके बाद कौतुक भाषण करती हुई चञ्चल रक्ताम्बरों वाली वे उन लम्पट (कामेश्वरी आदि) को मन्द-मन्द गमन करती हुई, दोनों बाहुओं को आन्दोलित करने से मूर्धाओं के बार-बार हिलाती हुई देखकर सर्वान्तर्यामिनी देवी राधिका उनसे विमुख हो गयी और कामनीति के अनुसार विचार करने लगी कि ये मायावी शक्तियाँ मुझे प्रेमयोग से आदरपूर्वक वश में करके श्रीकृष्ण को समर्पित कर कृष्ण की प्रिया बन जायेगी और कृष्ण के द्वारा मान दूर करने का सम्मान प्राप्त करेंगी। दूषणों से रहित मैं अहंकारी जनों से प्रसन्न नहीं होती॥४९-५२॥

अहङ्कारात्परं पापं तापकृन्नास्ति कोऽपि यत्।
अहङ्कारान्धकारस्य भावैरन्धीकृतेक्षणाः॥५३॥
आत्मानमपि नेक्षन्ते किं जनान् तु परान् पुनः।
अहङ्कारावृतानां च जनानां सुकृतं नहि॥५४॥

अहङ्कारात् परम् पापम् न अस्ति। कः अपि तापकृत् न अस्ति। यत् अहंकारान्धकारस्य भावैः अन्धीकृतेक्षणाः (जनाः) आत्मानम् अपि नेक्षन्ते किं पुनः परान् जनान् तु। अहंकारावृतानाम् जनानाम् सुकृतम् नहि।

अहंकार से बड़ा कोई पाप नहीं है, उससे बढ़कर कोई तापकृत भी नहीं है। अहंकार के अन्धकार से अन्धे व्यक्ति अपना स्वरूप भी नहीं देख पाते। फिर अन्य लोगों की तो बात ही क्या? अहंकार से घिरे हुए लोगों का कोई सुकृत नहीं होता॥५३-५४॥

मातापित्रोर्वधे येषां चेतो नो गणयेद् व्यथाम्।
अहङ्कारोऽपि येषां स्यात् तेषां गुणशतेन किम्॥५५॥
धूलिधूसरदेहस्य शुद्धिः स्नानैर्गजस्य च।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधौ तासां पश्यन्तीनां प्रियव्रता॥५६॥

येषाम् चेतः मातापित्रोः वधे व्यथाम् न गणयेत्। येषाम् अहंकारः स्यात् तेषाम् गुणशतेन अपि किम्। धूलिधूसरदेहस्य गजस्य स्नानैः शुद्धिः इति उक्त्वा प्रियव्रता तासाम् पश्यन्तीनाम् अन्तर्दधौ।

जिनके चित्त में माता-पिता का वध करने पर भी व्यथा नहीं होती। जिन्हें अहंकार होता है, उनके अन्दर हजारों गुणों के होने से भी क्या लाभ? धूल से लथपथ देह वाले हाथी की शुद्धि सर्वथा स्नान से ही होती है। यह कहकर वह प्रियव्रता राधा उनके देखते-देखते अन्तर्हित हो गयीं।।५५-५६।।

ततस्ताः विस्मयाविष्टाः सर्वा मम भयातुराः।
विचेरुर्विपिनं सर्वं राधान्वेषणकातराः।।५७।।
आराधन्ते च नियतं राधे राधे क्व गच्छसि।
क्वासि राधे क्वासि राधे दृष्टिं नो देहि साम्प्रतम्।।५८।।

ततः ताः सर्वाः मम भयातुराः विस्मयाविष्टाः राधान्वेषणकातराः सर्वम् विपिनम् विचेरुः। आराधन्ते राधे राधे क्व गच्छसि? राधे क्व असि? राधे क्व असि? साम्प्रतम् नो दृष्टिम् देहि।

इसके बाद वे सभी मेरे भय से भयभीत आश्चर्यचकित होकर राधा के अन्वेषण में व्याकुल सारे वृन्दावन में विचरने लगीं। वे नियत रूप से राधा को पुकार कर प्रार्थना कर रही थीं कि हे राधे! हे राधे! आप कहाँ चली गयीं। हे राधे! आप कहाँ हैं? हे राधे! आप कहाँ हैं? कृपा कर इस समय हमें दर्शन दीजिए।।५७-५८।।

ततोऽलब्ध्वा वरारोहा निरस्ता विमुखागताः।
देव्यै निकटमासाद्य सर्वमेतन्न्यवेदयन्।।५९।।

ततः वरारोहाः निरस्ताः (राधिकाम्) अलब्ध्वा विमुखागताः देव्यै निकटम् आसाद्य एतत् सर्वम् न्यवेदयन्।

इसके बाद वरारोह वाली वे सभी शक्तियाँ राधा को न पाकर असफल होकर वापस चली गयीं और देवी के निकट जाकर यह सब बतलायीं।।५९।।

कामेश्वर्यादय ऊचु—

आश्चर्यरूपं तद्दृष्टं श्रुतं तन्मुखनिर्गतम्।
आश्चर्यवचनं साधु मुनीनामपि मोहनम्।।६०।।

मातर्मातः क्षमस्वाद्य नास्ति नो दोषलेशकः।
किञ्चित् कर्तुं न शक्ताः स्मो यद्युक्तं तद्विधीयताम्॥६१॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये वशिन्यादिवाग्देवीकामेश्वर्यादि-मोहने राधानिजतत्त्वप्रकाशनं नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

तद् आश्चर्यरूपम् दृष्टम्। तत् मुखनिर्गतम् श्रुतम् मुनीनाम् अपि मोहनम् साधु आश्चर्यवचनम्। मातः! मातः! अद्य क्षमस्व। नः दोषलेशकः न अस्ति। किञ्चित् कर्तुम् न शक्ताः स्मः। यद् युक्तम् तद् विधीयताम्।

कामेश्वरी आदि ने कहा—(हमने) वह आश्चर्यकारक रूप देखा; उनके मुख से निकली हुई वाणी भी सुनी; वह आश्चर्यकारक वाणी तो मुनिजनों को भी मोहित करने वाली थी। हे माता! हे माता! आज क्षमा कर दीजिए। हमारा लेशमात्र भी दोष नहीं है। हम कुछ भी करने में समर्थ नहीं हुईं; अब जो उचित हो वह कीजिये॥६०-६१॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र के राधाकृष्णरहस्य में वशिन्यादिवाग्देवी कामेश्वर्यादिमोहन के विषय में राधानिजतत्त्वप्रकाशन नामक एक्कीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

द्वाविंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये कामेश्वर्यादिभङ्ग-सर्वसंक्षोभिण्यादिसम्मोहनम्

श्रीबलराम उवाच—

अप्येतासु निरस्तासु विलोक्य किं चकार तत्।
कथ्यतां परमेशान श्रोतुं कौतूहलं मम॥१॥

परमेशान! एतासु अपि निरस्तासु विलोक्य (त्रिपुरेश्वरी) किम् चकार? तत् श्रोतुम् मम कौतूहलम् (अस्ति) कथ्यताम्।

बलराम ने कहा—उनकी भी विफलता को देखकर त्रिपुरेश्वरी ने क्या किया? हे महेशान! सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है, कृपा कर सुनाइए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

निरस्तास्वथ सर्वासु शक्तिष्वेतासु सर्वतः।
षोडशाभरणस्थानात् जनिता अपरास्तथा॥२॥
दूत्यस्ताः कामरूपिण्यो राधान्वेषणसंयताः।
कामेश्वरी नित्यक्लिन्ना भेरुण्डा भगमालिनी॥३॥

अथ एतासु सर्वासु शक्तिषु निरस्तासु सर्वतः षोडशाभरणस्थानात् तथा अपराः जनिताः। ताः कामरूपिण्यः दूत्यः राधान्वेषणसंयताः। कामेश्वरी नित्य-क्लिन्ना भेरुण्डा भगमालिनी—।

श्रीकृष्ण ने कहा—इन सभी शक्तियों के विफल हो जाने पर भुवनेश्वरी ने अपने आभूषण धारण करने के समस्त सोलह स्थानों से अन्य शक्तियों को उत्पन्न किया। ये कामरूप धारण करने वाली सभी दूतियाँ राधा जी की खोज में संयत थीं। उनमें कामेश्वरी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, भगमालिनी—॥२-३॥

महाविद्येश्वरी दूती त्वरिता वह्निवासिनी।
कुलसुन्दरी च विजया तथा ज्वालांशुमालिनी॥४॥
श्रीसर्वमङ्गला देवी विचित्रा बहुरूपिणी।
आनन्दरूपिणी चैव आशिरोमणितः शुभाः॥५॥

महाविद्येश्वरी त्वरिता दूती वह्निवासिनी कुलसुन्दरी विजया ज्वालांशु-

मालिनी विचित्रा बहुरूपिणी श्रीसर्वमङ्गला देवी आनन्दरूपिणी शुभाः आशिरोमणितः।

महाविद्या, ईश्वरी, त्वरिता, दूती, वह्निवासिनी, कुलसुन्दरी, विजया, ज्वालांशुमालिनी, सर्वमङ्गला, श्री विचित्रा देवी, बहुरूपिणी और आनन्दरूपिणी थी। ये समस्त शुभ देवियाँ (त्रिपुरसुन्दरी की) शिरोमणि से लेकर,॥४-५॥

आपादकटकस्थानं विनिर्गत्य पुरः स्थिताः।
आज्ञप्तासु महादेव्या सर्वभूतमनोहराः॥६॥
मोहनाय राधिकायाः प्रतिजग्मुः समन्ततः।
प्रीतिसुस्निग्धवाग्बाणाः स्वनामसदृशक्रियाः॥७॥
स्वनामसदृशाकारा उपतस्थुर्हरिप्रियाम्।
विलोक्य राधां ता देव्य ऊचुः प्राञ्जलयोऽग्रतः॥८॥

आपादकटकस्थानम् विनिर्गत्य पुरः स्थिताः। महादेव्या आज्ञप्तासु सर्वभूत-मनोहराः राधिकायाः मोहनाय समन्ततः प्रतिजग्मुः। प्रीतिसुस्निग्धवाग्बाणाः स्वनामसदृशक्रियाः स्वनामसदृशाकाराः हरिप्रियाम् उपतस्थुः। राधाम् विलोक्य ताः देव्यः अग्रतः प्राञ्जलयः ऊचुः।

महादेवी के द्वारा आज्ञा प्राप्त, सभी प्राणियों में मनोहर वे शक्तियाँ राधा को सम्मोहित करने के लिए चारों ओर से गयीं। पैर के कटक तक के सभी स्थानों से निकल कर महादेवी के सामने खड़ी हो गयीं। प्रेम से स्निग्ध वाग्बाणों वाली, अपने नामों के सदृश क्रिया वाली वे हरिप्रिया राधा के पास खड़ी हो गयीं। वे देवियाँ राधा को देखकर उनके सामने हाथ जोड़कर कहने लगीं॥६-८॥

कामेश्वर्यादिका ऊचुः—

देवि किं ते व्यवसितं न जानीमो वयं शुभे।
योग्यकार्ये विरक्ताऽसि किमकार्ये कृताग्रहा॥९॥

शुभे देवि! ते किम् व्यवसितम् (इति) वयम् न जानीमः। योग्यकार्ये विरक्ता असि, अकार्ये कृताग्रहा किम्।

कामेश्वरी आदि देवियों ने कहा—हे शुभे! हे देवि! तुमने क्या सोचा है, यह हम नहीं जानती; परन्तु आपका योग्य कार्य से विरक्त होना और अकार्य में आग्रह किसलिये हो रहा है?॥९॥

योग्या त्वं देवि कृष्णस्य कृष्णो योग्यस्तवैव हि।
महामरकतेनैव समागच्छतु काञ्चनम्॥१०॥

त्वमेव योग्या तस्यैव स योग्यस्तव कामिनी (?नि)।
योग्याया योग्यसम्बन्धो जायते शुभकारणम्॥११॥

हे देवि! त्वम् कृष्णस्य योग्या; कृष्णः तव एव योग्यः। हि काञ्चनम् महामरकतेन एव समागच्छतु। त्वम् तस्य एव योग्या। कामिनि! सः तव योग्यः। योग्यायाः योग्यसम्बन्धः शुभकारणम् जायते।

हे देवि! तुम श्रीकृष्ण के योग्य हो तथा श्रीकृष्ण तुम्हारे ही योग्य हैं। स्वर्ण का महामरकत मणि के साथ संयोग होना उचित है। श्रीकृष्ण के योग्य एकमात्र तुम ही हो। हे कामिनी! वह श्रीकृष्ण भी तुम्हारे ही योग्य हैं। योग्य का योग्य के साथ सम्बन्ध शुभकारक होता है॥१०-११॥

त्वदर्थं प्रेषिता देव्या श्रीकृष्णप्रार्थ्यमानया।
अत्यन्तं कौतुकाविष्टा देवि त्वन्निकटस्थिताः॥१२॥
तथा त्वन्मनसः साध्वि त्वामानेतुं समागताः।
वयं राधे रसमयी(?यि) गम्यतां निजकाम्यया॥१३॥

श्रीकृष्णप्रार्थ्यमानया देव्या त्वद् अर्थम् प्रेषिताः। देवि त्वत् निकटस्थिताः अत्यन्तम् कौतुकाविष्टाः। तथा साध्वि! त्वन्मनसः वयम् त्वाम् आनेतुम् समागताः। हे रसमयि राधे! निजकाम्यया गम्यताम्।

श्रीकृष्ण की प्रार्थना पर देवी ने तुम्हारे लिए हमें भेजा है। हे देवि! हम तुम्हारे पास आकर अत्यन्त आश्चर्य से आविष्ट हो रही हैं। हे साध्वि! हम तुमको लेने के लिए आयी हैं। आप अपनी इच्छा से चलिए॥१२-१३॥

श्रीकृष्णे यत् तव प्रीतिः कोटिकन्दर्पमोहने।
तस्मादस्माद् वनाद् गच्छ स्वेच्छा कृष्णस्य सन्निधिम्॥१४॥
श्रुत्वैतद्वचनं राधाऽसाधारणरसाऽवशा।
उवाच मधुरां वाणीं समानीय स्मितामृतम्॥१५॥

यत् कोटिकन्दर्पमोहने श्रीकृष्णे तव प्रीतिः तस्मात् अस्माद् वनात् कृष्णस्य सन्निधिम् स्वेच्छा गच्छ। असाधारणरसा अवशा राधा एतत् वचनम् श्रुत्वा स्मितामृतम् समानीय मधुराम् वाणीम् उवाच।

क्योंकि करोड़ों कन्दर्प को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण में तुम्हारी सहज प्रीति है, इसलिए इस वन से कृष्ण के पास स्वेच्छा से चलिये। तब असाधारण रसरूप वाली परम स्वतन्त्रा श्रीराधा ने इन वचनों को सुनकर मुख पर स्मितामृत बिखेर कर मधुर वाणी में कहा॥१४-१५॥

श्रीराधिका उवाच—

कस्याधीनास्मि सुभगा भविष्यामि समीपगा।
स्वेच्छयात्र तमिच्छामि यदि योग्यो भवेन्मम॥१६॥
यदि योग्यो भवेत् कान्तः कान्तः सर्वगुणान्वितः।
तथापि न स्वयं नार्या गम्यते भुवने पुमान्॥१७॥
न मेऽर्थस्तत्र गमने शक्तिरस्ति नयन्तु माम्।
भृत्योऽप्यथवा देवी कृष्णो वा कृष्णबान्धवाः॥१८॥

सुभगाः! कस्य अधीना अस्मि? कस्य समीपगा भविष्यामि? यदि मम योग्यः भवेत् अत्र तम् स्वेच्छया इच्छामि। यदि सर्वगुणान्वितः कान्तः कान्तः योग्यः भवेत् तथापि भुवने नार्या स्वयम् न गम्यते। तत्र गमने मे अर्थः न। भवत्यः अथवा देवी, कृष्णः कृष्णबान्धवाः वा शक्तिः अस्ति माम् नयन्तु।

हे सुभगा! मैं किसके आधीन हूँ? अथवा किसके समीप जाऊँगी? यदि वे मेरे योग्य हैं तो मैं उन्हें स्वेच्छा से ही चाहती हूँ। यदि कान्त सर्वगुणसम्पन्न एवं अति सुन्दर हों तो भी लोक में स्त्री कभी स्वयं पुरुष के पास नहीं जाती। वहाँ जाने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यदि तुम्हारे में, देवी में या कृष्ण में अथवा कृष्ण-बाँधवों में शक्ति हो तो मुझे ले जाएँ॥१६-१८॥

इत्थं सगर्ववचनं श्रुत्वा रोषपरिप्लुताः।
देव्यै निवेदयामासु रतिमानमदोद्धताः॥१९॥

रतिमानमदोद्धताः इत्थम् सगर्वचनम् श्रुत्वा रोषपरिप्लुताः देव्यै निवेदयामासुः।

प्रेम के मान में मदोन्मत उन शक्तियों ने इस प्रकार गर्वयुक्त वचन सुनकर क्रोधपूर्ण होकर देवी से सब निवेदन कर दिया॥१९॥

कामेश्वर्यादय ऊचुः—

देवि राधा वरारोहाऽखर्वगर्वाऽतिमानिनी।
तिरस्करोति गोविन्दमपि त्वां च वयं च काः॥२०॥
न शक्तये तु तत् सोढुमवमानवचस्त्वयि।
भवत्या यदि शक्तिः स्यात् तदा तामानय द्रुतम्॥२१॥

देवि! अखर्वगर्वा अतिमानिनी वरारोहा राधा गोविन्दम् त्वाम् अपि तिरस्करोति, वयम् च काः। तत् त्वयि अवमानवचः सोढुम् न शक्तये। यदि भवत्याः शक्तिः स्यात् तदा द्रुतम् ताम् आनय।

कामेश्वरी आदि ने कहा—हे देवि! अत्यन्त विशाल गर्व वाली वरारोहा

राधिका अति मानिनी हैं। वे गोविन्द का और आपका भी अपमान कर रहीं हैं तो हम क्या हैं। तुम्हारे प्रति राधा के अपमानपूर्ण वचनों को हम नहीं सह सकतीं। अतः यदि आप में शक्ति हो तो शीघ्र ही उसे ले जाइये॥२०-२१॥

सत्यमुक्तं महेशानि कार्यः परिकरो दृढः।
वयं न शक्ता जगतां जननी त्रिपुरेश्वरी॥२२॥
एवमालोच्य यद्युक्तं भगवत्या विधीयताम्।
ततः श्रीबलरामासौ त्रिपुरा सा पुरातनी॥२३॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामकरोत् क्रोधमुद्भटम्।

महेशानि! सत्यम् उक्तम् (यत्) कार्यः परिकरः दृढ़ः। जगताम् जननी त्रिपुरेश्वरी वयम् न शक्ताः। एवम् आलोच्य यद् युक्तम् भगवत्या विधीयताम्। ततः श्रीबलराम! असौ पुरातनी सा त्रिपुरा ब्रह्मविष्णुशिवादीनाम् उद्भटम् क्रोधम् अकरोत्।

हे महेशानि! आपने ठीक ही कहा कि यह कार्य अत्यन्त कठिन है। हे जगत् की जननी त्रिपुरेश्वरी! हम असमर्थ हैं, यह सोचकर जो आपको उचित लगे वह कीजिये। इसके बाद हे बलराम! वह पुरातनी त्रिपुरा देवी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि पर भयंकर क्रुद्ध हुई॥२२-२३॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता रोषताम्रमुखाम्बुजा॥२४॥
अरुणारुणिमोद्दामलोचनी शोकमोचनी।
देहादुत्पादयामास योगिनीडाकिनीगणान्॥२५॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता रोषताम्रमुखाम्बुजा (जाता) शोकमोचनी अरुणा अरुणिम-उद्दामलोचनी देहात् योगिनीडाकिनीगणान् उत्पादयामास।

इसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध जगन्माता का मुखकमल क्रोध से ताम्रवर्ण का हो गया। शोकमोचनी तथा अत्यन्त लाल नेत्रों वाली उन्होंने अपने शरीर से योगिनियों और डाकिनियों के समूह को उत्पन्न कर दिया॥२४-२५॥

राधादेव्याः सर्वसेव्याः समाकर्षणकर्मणे।
आधारादुद्गतास्तस्या डा(?रा)किनी देहनाशिनी॥२६॥
योनिरन्ध्राद् डाकिनी च लाकिनी नाभिदेशतः।
काकिनी हृदयाज्जाता शाकिनी कण्ठदेशतः॥२७॥

सर्वसेव्याः राधादेव्याः समाकर्षणकर्मणे तस्याः आधारात् देहनाशिनी राकिनी उद्गता। योनिरन्ध्रात् डाकिनी च नाभिदेशतः लाकिनी हृदयात् काकिनी तथा कण्ठदेशतः शाकिनी (उद्गता)।

सबके लिए सेवनीय राधा देवी के समाकर्षण के लिए उसके मूलाधार से देह को नष्ट करने वाली राकिनी निकली। योनिरन्ध्र से डाकिनी नाभि स्थान से लाकिनी, हृदय से काकिनी तथा कण्ठ देश से शाकिनी प्रकट हुई।।२६-२७।।

भ्रुवोर्मध्यान्महेशान्या हाकिनी हंसरूपिणी।
विकृतास्या दुराधर्षा रक्तमांसशवप्रिया।।२८।।
नाशाय राधिकायास्ता जग्मुर्वृन्दावनं वनम्।

महेशान्याः भ्रुवोः मध्यात् हंसरूपिणी हाकिनी विकृतास्या दुराधर्षा रक्तमांसशवप्रिया (जाता)। ताः राधिकायाः नाशाय वृन्दावनम् वनम् जग्मुः।

भुवनेश्वरी के भ्रूमध्य से हंसरूपिणी हाकिनी प्रकट हुई, जिसका मुख भयानक था। वह दुर्धर्षा थी तथा रक्त, मांस एवं शव उसे प्रिय था। वे सभी राधिका का नाश करने के लिए वृन्दावन नामक वन में चली गयीं।।२८।।

काचिद् वृन्दां वनचरीं राधिकासहचारिणीम्।।२९।।
जग्राह पाणिना काचिद् जघान प्रमदोत्तमाम्।
दंष्ट्राकरालवदना भक्षयामास चापराम्।।३०।।
कोमलाङ्ग्या भीषणाङ्गी शिरश्चिच्छेद पाणिना।
धृत्वा पादद्वये काञ्चिद् भ्रामयामास भूतले।।३१।।

काचित् राधिकासहचारिणीम् वनचरीम् वृन्दाम् पाणिना जग्राह। काचित् प्रमदोत्तमाम् जघान च अपराम् दंष्ट्राकरालवदना भक्षयामास। भीषणाङ्गी पाणिना कोमलाङ्ग्याः शिरः चिच्छेद। काचित् पादद्वये धृत्वा भूतले भ्रामयामास।

राधिका की सहचारिणी वनचरी वृन्दा को किसी ने हाथ से पकड़ लिया। किसी ने प्रमदोत्तमा को पीटा। कठोर और भयानक दातों वाली किसी ने दूसरी सहचरी को खा लिया। भीषण शरीर वाली डाकिनियों ने कोमलाङ्गी का शिर हाथ से ही काट दिया। किसी ने किसी के दोनों पैर पकड़ कर पृथ्वी पर घुमा दिया।।२९-३१।।

शिलायां पातयामास काचिद् भीमघनस्वना।
एतद् दृष्ट्वा महादेवी राधाऽसाधारणक्रिया।।३२।।
जहासाधरबिम्बान्तर्लसत्कुसुमदाडिमा ।
ततः स्वदृष्टिसुधया जीवयामास ताः क्षणात्।।३३।।

काचिद् भीमघनस्वना शिलायाम् पातयामास। असाधारणक्रिया महादेवी

राधा एतत् दृष्ट्वा अधरबिम्बान्तः लसत्कुसुमदाडिमा जहास। ततः स्वदृष्टिसुधया क्षणात् ताः जीवयामास।

भयानक शब्द वाली किसी ने किसी सहचरी को शिला पर पटक दिया। तब असाधारण क्रिया करने में समर्थ महादेवी राधा यह देखकर बिम्बाधरों के भीतर अनार के कुसुमों की तरह जड़े हुए दाँतों को खोलते हुए जोर से हँसी। इसके बाद अपनी अमृतमयी दृष्टि के अमृत से एक क्षण में ही उन्हें जीवित कर दिया।।३२-३३।।

राधा भगवती देवी देवीनामवने स्थिता।
उत्तस्थुर्जीवितास्तत्र गतस्वप्ना इव क्षणात्।।३४।।
ता आहानाहसा देवी किमिदं किमिदं क्षणात्।
युष्मादृशा दृशा दृष्टमद्यैव विपिने मया।।३५।।

भगवती राधा देवी देवीनामवने स्थिता। तत्र क्षणात् गतस्वप्नाः इव जीविताः उत्तस्थुः। देवी क्षणात् किम् इदम् किम् इदम् आह। युष्मादृशाम् दृशा मया अद्य एव विपिने दृष्टम्।

भगवती राधा देवी वृन्दा नाम के वन में स्थित है। वहाँ क्षणभर में ही स्वप्न से जगे हुए व्यक्ति की तरह वे जीवित हो गयीं और उठ खड़ी हुईं। उन्होंने शान्तिपूर्ण देवी से आश्चर्य से कहा—यह क्या है? यह क्या है? आपके समान ही मैंने इस वन में आज ही सुन्दर नेत्रों वाली देवी देखी है।।३४-३५।।

इत्येवमासीत् सा धारा(?राधा) रोषानलसमाकुला।
प्रोत्फुल्लरोमस्तोमा च ताम्रताम्रास्यमण्डला।।३६।।
ततः क्रुद्धा जगन्माता राधा त्रिभुवनेश्वरी।
देहादुत्पादयामास सा शक्तीर्विवृताननाः।।३७।।

इति एवम् सा राधा रोषानलसमाकुला प्रोत्फुल्लरोमस्तोमा ताम्रताम्रास्य-मण्डला आसीत्। ततः जगन्माता त्रिभुवनेश्वरी सा राधा क्रुद्धा (सती) देहात् विवृताननाः शक्तीः उत्पादयामास।

इस तरह वह राधा रोष की अग्नि से व्याकुल हो गयी। उसकी रोमराजि क्रोध से उत्फुल्ल हो गयी और उसका मुखमण्डल ताँबें की तरह लाल हो गया। तब जगन्माता त्रिभुवन की स्वामिनी राधा ने क्रुद्ध होकर अपने शरीर से विवृत अर्थात् खुले मुखों वाली अनेक शक्तियों को उत्पन्न किया।।३६-३७।।

महोग्रा भीमनिनदा भीमा मरकतप्रभाः।
ताः क्षणाद् उद्गता देव्यो जवालोहितलोचनाः॥३८॥
या साः घोरस्वरेणैव कोटिब्रह्माण्डखण्डनम्।
डाकिनीभिर्योगिनीभिर्युयुधुर्युधि दुर्मदाः॥३९॥

महोग्राः भीमनिनदाः भीमाः मरकतप्रभाः ताः देव्यः जवालोहितलोचनाः क्षणात् उद्गताः। (यासाम्) घोरस्वरेण एव कोटिब्रह्माण्डखण्डनम् दुर्मदाः डाकिनीभिः योगिनीभिः युधि युयुधुः।

महान् उग्र भयंकर शब्द करने वाली, मरकत की कान्ति वाली, भयङ्कर, जवाकुशुंभ की भाँति लाल लाल नेत्रों वाली वे देवियाँ एक क्षण में उत्पन्न हो गयीं। जिनके भयङ्कर शब्द से करोड़ों ब्रह्माण्ड खण्ड-खण्ड हो गये। उन्मत्त उन शक्तियों ने उन डाकिनी योगिनियों के साथ युद्ध किया॥३८-३९॥

हस्तपादप्रहारैश्च शूलपट्टिशमुद्गरैः।
परिघैस्तोमरैः खड्गैर्बाणैः कोटिसहस्रशः॥४०॥
शक्तिभिस्तरुसङ्घातैः शिलाजालस्य वृष्टिभिः।
ऋष्टिभिर्मुष्टिघातैश्च दण्डादण्डि रदारदि॥४१॥

कोटिसहस्रशः हस्तपादप्रहारैः शूलपट्टिशमुद्गरैः परिघैः तोमरैः खड्गैः बाणैः शक्तिभिः तरुसंघातैः शिलाजालस्य वृष्टिभिः ऋष्टिभिः मुष्टिघातैः च दण्डादण्डि रदारदि (युयुधुः)।

हजारों करोड़ों वे शक्तियाँ हाथ-पैर के प्रहार से; शूल, पट्टिश और मुद्गरों के प्रयोग से; परिघ, तोमर, खड्ग, बाण शक्तियों के प्रयोग से; वृक्षसमूहों और शिलासमूहों से; डण्डा चलाकर और दाँतों से काटकर युद्ध करने लगीं॥४०-४१॥

ऐन्द्रैरस्त्रैस्तथाऽऽग्नेयैर्याम्यैर्नैर्ऋतकैस्तथा।
वारुणैर्वायवै राम कौबेरैः शाम्भवैरपि॥४२॥
हलाहलैः कालकूटैरारकूटस्य कूटकैः।
लोष्ठैश्च लोहलगुडैः पार्जन्यैर्गदया तथा॥४३॥
मुसलेन हलेनापि चक्रचक्रेण पाशकैः।
बाहुयुद्धैः पार्श्वयुद्धैः केशाकेशि नखानखि॥४४॥

राम! ऐन्द्रैः अस्त्रैः आग्नेयैः याम्यैः नैर्ऋतकैः तथा वारुणैः वायवैः कौबेरैः शाम्भवैः अपि हलाहलैः कालकूटैः आरकूटस्य कूटकैः लोष्ठैः च लोहलगुडैः

पार्जन्यैः गदया तथा मुसलेन हलेन अपि चक्रचक्रेण पाशकैः बाहुयुद्धैः पार्श्व-युद्धैः केशाकेशि नखानखि (युयुधुः)।

इन्द्र के अस्त्रों से, आग्नेय अस्त्रों से, याम्य अस्त्रों से, नैर्ऋत अस्त्रों से, वारुण एवं वायव्य अस्त्रों से भयानक युद्ध हुआ। कुबेर एवं शिव के अस्त्रों, हलाहल-कालकूट तथा आरकूट विष से, लोहदण्ड, पार्जन्य, गदा, मुसल और हल से भी युद्ध हुआ। चक्र का चक्र से, पाश का पाश से तथा बाहु-युद्ध, पार्श्व-युद्ध, बालों को खींचकर नाखूनों से घाव करते हुए युद्ध होने लगा।।४२-४४।।

अभूद् युद्धं सुतुमलं सर्वेषां लोमहर्षणम्।
अकालप्रलयं लोकाः शोकाकुलितमानसाः।।४५।।
मेनिरे धरणी देवी चकम्पे सर्वतो भयात्।
ततस्ताभिः प्रकृतिभिर्डाकिन्याद्याः पराजिताः।।४६।।
पलायनपराः सर्वास्त्रिपुराशरणं ययुः।

सर्वेषाम् लोमहर्षणम् सुतुमुलम् युद्धम् अभूत्। शोकाकुलमानसाः लोकाः अकालप्रलयम् मेनिरे। सर्वतः भयात् धरणी देवी चकम्पे। ततः ताभिः प्रकृतिभिः डाकिन्याद्याः पराजिताः पलायनपराः सर्वाः त्रिपुराशरणम् ययुः।

सभी के रोम खड़े कर देने वाला भयंकर युद्ध हुआ। शोक से आकुल मन वाले लोग इसे अकाल प्रलय मानने लगे। सब ओर से भयभीत पृथ्वी देवी काँपने लगी। तब उन प्रकृति शक्तियों द्वारा पराजित डाकिनी आदि भागकर त्रिपुरादेवी की शरण में गयीं।।४५-४६।।

ततो विरक्तास्ताः सर्वा याश्च पूर्वं समागताः।।४७।।
शक्तीनां क्रन्दनं दृष्ट्वा समुद्विग्नहृदाकुलाः।
क्रोधादारक्तनयनाश्चञ्चला गन्तुमुद्यताः।।४८।।
ता आलक्ष्य महादेवी राधा त्रैलोक्यसुन्दरी।
मोहयामास रूपेण वल्गुवाक्येन सुन्दरी।।४९।।

याः पूर्वं समागताः ताः सर्वाः विरक्ताः। शक्तीनाम् क्रन्दनम् दृष्ट्वा समुद्विग्नहृदाकुलाः क्रोधात् आरक्तनयनाः चञ्चलाः गन्तुम् उद्यताः। महादेवी त्रैलोक्यसुन्दरी राधासुन्दरी ताः आलक्ष्य वल्गुवाक्येन रूपेण मोहयामास।

जो पहले आयी थीं, वे सब राधामोहनरूप कार्य में विफल हो गयीं और कार्य से विरत हो गयीं। शक्तियों के क्रन्दन को देखकर उद्विग्न हृदय वाली, क्रोध से लाल नेत्रों को करके चलने के लिए तत्पर हो गयीं। महादेवी

त्रैलोक्यसुन्दरी राधा सुन्दरी ने उसे देखकर अपने रूप और मधुर वाक्यों से उन्हें मोहित कर लिया।।४७-४९।।

ततः क्षणान्तरे तस्या गोप्यो लक्षसहस्रशः।
वामाङ्गतः समुत्पन्नाः कोटिकन्दर्पमोहनाः।।५०।।
त्रैलोक्यमोहनेनैव रूपेणात्यद्भुतेन च।
स्तम्भयन्त्यश्च ताः शक्तीः त्रिपुरादेहसम्भवाः।।५१।।

ततः क्षणान्तरे तस्याः वामाङ्गतः लक्षसहस्रशः कोटिकन्दर्पमोहनाः गोप्यः समुत्पन्नाः त्रैलोक्यमोहनेन एव अति अद्भुतेन रूपेण च त्रिपुरादेहसम्भवाः ताः शक्तीः स्तम्भयन्त्यः च।

इसके बाद एक क्षण में ही श्रीराधा के वाम अंग से हजारों लाखों गोपियाँ प्रकट हो गयीं। ये सभी करोड़ों कामदेवों को भी मोहित करने में सक्षम थीं। इन्होंने त्रैलोक्यमोहन अपने अति अद्भुत रूप से त्रिपुरा के देह से उत्पन्न शक्तियों को रोक दिया।।५०-५१।।

ह्रींकारपुटितं कृत्वा यस्या नाम जजाप सा।
सा तस्या वशमापन्ना चरणं शरणं गता।।५२।।
एकैका गोपी तासां वै सर्वासामपि मोहिनी।
ततस्तस्या महादेव्या दक्षिणाङ्गान्मनोहरात्।।५३।।
आविर्भूताः कोटिकोटिकन्दर्पदर्पसंयुताः।
चारुप्रसन्नवदना उन्मत्ता दिव्यरूपिणः।।५४।।

सा ह्रींकारपुटितम् यस्याः नाम जजाप सा तस्याः वशम् आपन्ना शरणम् गता। तासाम् एका-एका गोपी वै सर्वासाम् अपि मोहिनी ततः तस्याः महादेव्याः मनोहरात् दक्षिणाङ्गात् कोटिकोटिकन्दर्पदर्पसंयुताः चारुप्रसन्नवदनाः उन्मत्ताः दिव्यरूपिणः आविर्भूताः।

उसने ह्रींकार से सम्पुटित जिसका भी नाम जपा, वही उसके वश में हो गयी और चरणों की शरण में आ गयी। राधिका से उत्पन्न एक-एक गोपी सबका मोहन करने में समर्थ थी। इसके बाद उस महादेवी राधा के दक्षिण भाग से करोड़ों-करोड़ों कन्दर्पों के रूपाहंकार से युक्त सुन्दर और प्रसन्न मुख वाले एवं उन्मत्त दिव्य रूप वाले पुरुष प्रकट हो गये।।५२-५४।।

दिव्यपुष्पधनुर्बाणधरा मरकतप्रभाः।
दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यालङ्करणोज्ज्वलाः।।५५।।
मोहयन्तो वनं सर्वं विचेरुः कामरूपिणः।

तान् दृष्ट्वा त्रिपुरादेहसम्भवाः प्रमदोत्तमाः॥५६॥
मुमुहु(हू) रूपलावण्यस्मितसम्भाषणैर्गुणैः।

मरकतप्रभाः दिव्यपुष्पधनुर्बाणधराः दिव्यमाल्याम्बरधराः दिव्य-अलंकरणोज्ज्वलाः कामरूपिणः सर्वम् वनम् मोहयन्तः विचेरुः। त्रिपुरादेह-सम्भवाः प्रमदोत्तमाः रूपलावण्यस्मितसम्भाषणैः गुणैः मुमुहुः।

मरकत मणि जैसी कान्ति वाले पुरुष हाथों में दिव्य पुष्पों के धनुष-बाण लिए हुए थे। उन्होंने दिव्य मालायें और दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। वे दिव्य अलंकारों से उज्ज्वल हो रहे थे। उन कामरूपी पुरुषों ने सारे वन को मोहित करते हुए विचरण किया। त्रिपुरा के देह से उत्पन्न उत्तम प्रमदाएँ उनके रूप-लावण्य, स्मित सम्भाषण आदि गुणों से मोहित हो गयीं॥५५-५६॥

ततो राधा महादेवी दूतीभूय जगन्मयी॥५७॥
तासां सामीप्यमागत्य विस्मयोत्फुल्ललोचनाः।
वाग्भिस्ता मोहयामास कामरूपमहोदयाः॥५८॥

ततः जगन्मयी महादेवी राधा दूतीभूय तासाम् सामीप्यम् आगत्य वाग्भिः कामरूपमहोदयाः विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ताः मोहयामास।

इसके बाद जगन्मयी महादेवी राधा दूती बनकर उनके पास आकर उन कामरूप को धारण करने वाली तथा विस्मय से उत्फुल्ल नेत्रों वाली देवियों को वाणी से मोहित कर लिया॥५७-५८॥

श्रीराधिका उवाच—

हे देव्यः किं वृथा चारु यौवनं कुरूथ प्रियाः।
लतानां किं प्रसूनैस्तैर्यदि नो भृङ्गसङ्गमः॥५९॥
मनःप्रीतिकरं सुष्ठु यौवतानां च यौवनम्।
विना पुरुषसङ्गत्या लोके केवलभर्त्सनम्॥६०॥
यौवनं दुर्लभं स्त्रीणां दुर्लभः सत्समागमः।
तच्छृणुध्वं मम वचो हृदयं कुरुत स्थिरम्॥६१॥

हे प्रियाः देव्यः! किम् चारु यौवनम् वृथा कुरूथ। लतानाम् तैः प्रसूनैः किम् यदि केवल भृङ्गसङ्गमः न। यौवतानाम् मनःप्रीतिकरम् सुष्ठु यौवनम् पुरुषसङ्गत्या विना लोके केवलभर्त्सनम्। स्त्रीणाम् यौवनम् दुर्लभम्। सत्समागमः अपि दुर्लभः। तत हृदयम् स्थिरम् कुरुत; मम वचो शृणुध्वम्।

श्रीराधिका ने कहा—हे प्रिय देवियों! अपने सुन्दर यौवन को क्यों

व्यर्थ कर रही हो। लताओं के फूलों से क्या लाभ? यदि उनका भ्रमरों से सङ्गम नहीं होता। लोक में युवतियों का मन मोहित करने वाला अद्भुत यौवन पुरुष-संगति के बिना केवल निन्दा का ही पात्र होता है। स्त्रियों का यौवन दुर्लभ है। इसी तरह सत्पुरुषों का समागम भी दुर्लभ है। इसलिए अपने हृदयों को स्थिर करो और मेरी बात को ध्यान से सुनो।।५९-६१।।

पश्यतैतान् सुपुरुषान् नानारूपगुणान्वितान्।
कामिन्यः कामरूपिण्यः कामयध्वं यथासुखम्।।६२।।
यूयमेभिर्विहरत यदि वः सुखमिच्छथ।

कामरूपिण्यः कामिन्यः नानारूपगुणान्वितान् एतान् सुपुरुषान् पश्यत यथा सुखम् कामयध्वम्। यदि वः सुखम् इच्छथ यूयम् एभिः विहरत।

अनेक रूप और गुणों वाले इन सुन्दर पुरुषों को देखो। हे कामरूपिणी कामिनियों! अपने सुख के अनुसार इन्हें स्वीकार कर लो। यदि आप सुख चाहती हो तो तुम सब इनके साथ विहार करो।।६२।।

कामिनीनां वृथा प्राणास्तारुण्यं रूपसञ्चयः।।६३।।
यदि पुंसङ्गमो नास्ति सत्यं सत्यं न संशयः।
एवमुक्त्वा महादेवी कामार्ता लज्जयान्विताः।।६४।।
अधोमुखीर्हसद्वक्त्रा आनन्दोत्फुल्ललोचनाः।
पुरुषैर्योजयामास निजदेहसमुद्भवैः।।६५।।

कामिनीनाम् प्राणाः तारुण्यम् रूपसञ्चयः वृथा एव यदि पुंसङ्गमः नास्ति। एवम् उक्त्वा महादेवी कामार्ताः लज्जयान्विताः आनन्दोत्फुल्ललोचनाः अधोमुखीः हसद्वक्त्राः निजदेहसमुद्भवैः पुरुषैः योजयामास।

कामिनियों के प्राण, यौवन तथा रूपसंचय यदि पुरुष-संगम को प्राप्त नहीं करते तो वे वृथा हैं, यह सत्य है, सत्य है। इसमें सन्देह नहीं। यह कहकर महादेवी राधा ने कामार्त हुईं लज्जा से युक्त होकर नीचे की ओर मुख करके हँसने वाली तथा आनन्द से उत्फुल्ल नेत्रों वाली उन शक्तियों को अपने देह से उत्पन्न होने वाले पुरुषों के साथ संयुक्त कर दिया।।६३-६५।।

ततस्तस्याः समुद्भूताः देहाद् गन्धर्वकिन्नराः।
विहारानन्दसानन्दा विमुग्धहृदया मुहुः।।६६।।
वृन्दावनचराः सर्वे नृत्यगीतपरायणाः।
तत्र दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।।६७।।

ततः तस्याः देहाद् समुद्भूताः गन्धर्वकिन्नराः विहारानन्दसानन्दाः विमुग्ध-

हृदयाः (जाताः)। सर्वे वृन्दावनचराः मुहुः नृत्यगीतपरायणाः (बभूवुः)। तत्र दुन्दुभयः नेदुः पुष्पवृष्टयः निपेतुः।

इसके बाद उसकी देह से उत्पन्न गन्धर्व और किन्नर विहार के आनन्द से आनन्दित हो गये। उनके हृदय विमुग्ध थे। वृन्दावन में विचरण करने वाले सभी जन निरन्तर नृत्य-गीतपरायण हो रहे थे। वहीं दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी।।६६-६७।।

ततस्तैः पुरुषैर्नित्यं रममाणा मुहुर्मुहुः।
वृन्दावनचराः सर्वे(?सर्वा) नृत्यगीतपरायणाः।।६८।।
राधिकावशमापन्नास्तस्थुर्वृन्दावने चिरम्।

ततः सर्वाः वृन्दावनचराः नृत्यगीतपरायणाः (सत्यः) तैः पुरुषैः नित्यम् मुहुः मुहुः रममाणाः राधिकावशम् आपन्नाः वृन्दावने चिरम् तस्थुः।

इसके बाद वृन्दावन में विचरण करने वाली वे सभी देवियाँ नृत्य-गीतपरायण होकर उन पुरुषों के साथ नित्य पुनः पुनः रमण करती हुई राधिका के वश में होकर बहुत समय तक वृन्दावन में ठहर गयीं।।६८।।

एवं तासु प्रकृतिषु चिरं वश्यासु सर्वतः।।६९।।
विस्मितात्मान आसंस्ते ये वृन्दावनवासिनः।
अहो किं वा वर्णयामो राधादेव्या विमोहनम्।
स्तम्भनं परनारीणां परैः संयोजनं जनैः।।७०।।

एवम् सर्वतः तासु प्रकृतिषु वश्यासु ये वृन्दावनवासिनः ते चिरम् विस्मितात्मानः आसन्। अहो राधादेव्याः विमोहनम् स्तम्भनम् परनारीणाम् परैः जनैः संयोजनम् वा किम् वर्णयामः।

इस तरह सब ओर से उन सभी शक्तियों के वश में हो जाने पर जो वृन्दावन में निवास करने वाले थे, वे अपने-आपको भूल गये। वे कहने लगे—अहो! राधा देवी का विमोहन एवं स्तम्भन का हम कहाँ तक वर्णन करें? वे परनारियों को परपुरुषों के साथ जोड़ने में भी समर्थ हैं।।६९-७०।।

विश्वेषां जननी विमोहजननी संस्तम्भिनी सर्वदा
लीलालोलकटाक्षमोक्षकुटिला सर्वैः सुपर्वोत्तमैः।
संसेव्या कनकावदातविदिता वृन्दावनस्वामिनी
धीरा जङ्गमदेवता रतिगुरो(?रु) राधा समाराध्यताम्।।७१।।

सर्वदा विश्वेषाम् जननी विमोहजननी संस्तम्भनी कनकावदातविदिता लीलालोलकटाक्षमोक्षकुटिला वृन्दावनस्वामिनी रतिगुरुः जङ्गमदेवता धीरा सर्वैः सुपर्वोत्तमैः संसेव्या राधा समाराध्यताम्।

सम्पूर्ण विश्व की जननी, विमोहन और स्तम्भन करने में निपुण, स्वर्ण की तरह अवदात के लीला से लोल कटाक्षों के सम्पादन करने में चतुर, वृन्दावन की स्वामिनी, रति की गुरु, जङ्गम देवता धीरा राधा हमेशा सबके द्वारा उत्तम देवताओं द्वारा संसेव्या और समाराध्या हैं। उनकी ही आराधना करनी चाहिए।।७१।।

इत्येवं निगदन्तस्ते मुमुहुश्च मुहुर्मुहुः।
वृन्दावनजनाः सर्वे दारुयन्त्रा इव स्थिताः।।७२।।

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये कामेश्वर्यादिभङ्ग-
सर्वसंक्षोभिण्यादिसम्मोहनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।

इति एवम् निगदन्तः ते सर्वे वृन्दावनजनाः मुहुः मुहुः मुमुहुः दारुयन्त्राः इव स्थिताः।

इस तरह कहते हुए वे सभी वृन्दावन के लोग बार-बार मोहित हो गये तथा दारुयन्त्र (लकड़ी की पुत्तलिका) की तरह स्थित हो गये।।७२।।

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र के राधाकृष्णरहस्य में कामेश्वर्यादिभङ्ग-सर्वसंक्षोभिण्यादिसम्मोह नामक बाईसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

त्रयोविंशोऽध्यायः

राधादेवीप्रोन्मादनम्

श्रीबलराम उवाच—

एतास्वेवं निरस्तासु वश्यमानासु कासु च।
किं कृतं त्रिपुरेश्वर्या तन्मे नाथ निगद्यताम्॥१॥

एतासु निरस्तासु कासु वश्यमानासु त्रिपुरेश्वर्या किम् कृतम्? नाथ! तत् मे निगद्यताम्।

बलराम ने कहा—इसके विफल और कुछ के वश में हो जाने पर त्रिपुरा ने क्या किया? हे नाथ! वह मुझे बताइए॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच—

ततो भगवती देवी विललापातिदुःखिता।
उवाच च महेशानी लज्जयाऽधोमुखाम्बुजा॥२॥

ततः भगवती देवी अतिदुःखिता विललाप। महेशानी लज्जया अधोमुखाम्बुजा (सती) उवाच।

श्रीकृष्ण ने कहा—इसके बाद भगवती देवी त्रिपुरा अति दुःखी होकर रोने लगी। महेशानी लज्जा से मुखकमल को नीचे करके बोलीं॥२॥

श्रीमत्त्रिपुरोवाच—

न कृतं कृष्णसाहाय्यं न कृता राधिका वशे।
स्वयं किं तत्र यास्यामि यत्र राधा सनातनी॥३॥
ममैव शक्तयः सर्वा न किञ्चित्करणे क्षमाः।
ममैव गमनं तत्र सहसा न युनक्ति च॥४॥

कृष्णसाहाय्यम् न कृतम्। राधिका वशे न कृता। किम् स्वयम् तत्र यास्यामि यत्र राधा सनातनी (वर्त्तते)। मम एव सर्वाः शक्तयः किञ्चित् करणे न क्षमाः। तत्र च सहसा मम एवम् गमनम् न युनक्ति।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—मैंने कृष्ण की सहायता नहीं की और राधा को वश में भी नहीं कर सकी। क्या मुझे स्वयं वहाँ जाना चाहिए, जहाँ सनातनी श्री राधा स्थित हैं? मेरी सभी शक्तियाँ कुछ भी करने में समर्थ नहीं हुई; फिर सहसा मेरा वहाँ जाना उचित नहीं है॥३-४॥

हठात्कारेण चलनं प्रभूणां नहि नीतितः।
अत्र स्थित्वैव कर्तव्यं(?व्यः) तद्यत्नं(?त्नः) कर्मणे मया॥५॥
यथा सा विह्वलमतिः समागच्छति राधिका।
तथैवाद्य विधेयं मे बद्धः परिकरो दृढः॥६॥

हठात्कारेण प्रभूणाम् चलनम् नीतितः नहि (युक्तम्)। अत्र स्थित्वा एव मया तत् कर्मणे यत्नः कर्तव्यः। मे परिकरः दृढः बद्धः तथा एव अद्य विधेयम् यथा सा विह्वलमतिः राधिका समागच्छति।

स्वामीजनों को हठपूर्वक चल पड़ना नीति के विपरीत है। अतः यहाँ ठहर कर ही मुझे काम को पूरा करने के लिए यत्न करना चाहिए। मैंने अपनी कमर दृढ़ता के साथ बाँध ली है। आज मैं वही यत्न करूँगी, जिससे वह राधिका विह्वलमति होकर आ जाय॥५-६॥

ततो भगवतीत्युक्त्वा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
मन्त्ररूपा स्वयं भूत्वा जजापाकर्षणं मनुम्॥७॥
मुद्राभी रचिताभिश्च सर्वभूतवशङ्करी।
राधामाकर्षितुं यत्नं स्वयं चक्रे महेश्वरी॥८॥
वसन्तसुन्दरीनाम मन्त्रमाकर्षणं परम्।
सर्वसंक्षोभिणीं मुद्रां विरचय्य करद्वये॥९॥

ततः इति उक्त्वा भगवती श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी स्वयम् मन्त्ररूपा भूत्वा आकर्षणमनुम् जजाप। सर्वभूतवशङ्करी महेश्वरी स्वयम् रचिताभिः मुद्राभिः राधाम् आकर्षितुम् यत्नम् चक्रे। वसन्तसुन्दरीनाम परम् आकर्षणम् मन्त्रम् सर्वसंक्षोभिणीम् मुद्राम् करद्वये विरचय्य—।

इसके बाद ऐसा कहकर भगवती श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी ने स्वयं मन्त्ररूपा होकर आकर्षण मनु (मन्त्र) का जप किया। सर्वभूत को वश में करने वाली महेश्वरी ने स्वयं मुद्राएँ बनाकर राधा को आकर्षित करने का यत्न किया। उन्होंने वसन्तसुन्दरी नामक दिव्य आकर्षण मन्त्र का जप किया एवं अपने दोनों हाथों से सबको संक्षोभित करने वाली मुद्रा बना ली॥७-९॥

जजाप परमं जापं येनाकृष्टं जगत्त्रयम्।
काममिन्द्रं तुरीयं च नादबिन्दुविभूषितम्॥१०॥

परमम् जापम् जजाप येन जगत् त्रयम् आकृष्टम्। कामम् इन्द्रम् तुरीयम् च नादबिन्दुविभूषितम्।

त्रिपुरा ने उस दिव्य मन्त्र का जप किया, जिससे तीनों लोक आकृष्ट

हो गये। काम= क, इन्द्र = ल, तुरीय अर्थात् चतुर्थ स्वर = ई को नाद-बिन्दु से युक्त किया। इस प्रकार 'क्लीं' बीज मन्त्र बनता है।।१०।।

भुवनेशीबीजयुक्तं द्वादशस्वरबिन्दुकम्।
ततः परं नीलसुभगे हिलि हिलि ततः परम्।।११।।
विच्चे स्वाहापदयुता विधेय(?या) सर्वमोहिनी।
वसन्तसुन्दरीनाम्नी सर्वसंक्षोभकारिणी।।१२।।

भुवनेशीबीजयुक्तम् द्वादशस्वरबिन्दुकम् ततः परम् नीलसुभगे ततः परम् हिलि हिलि विच्चे स्वाहा पदयुता सर्वसंक्षोभकारिणी सर्वमोहिनी वसन्तसुन्दरी नाम्नी विधेया।

सर्वप्रथम भुवनेशी का बीज (=ह्रीं) लगाकर तत्पश्चात् द्वादश स्वर (=ऐ) को बिन्दु से जोड़कर इसके बाद 'नीलसुभगे' तत्पश्चात् 'हिलि हिलि' पद लगाकर अन्त में 'विच्चे स्वाहा' जोड़कर सबको संक्षोभित करने वाली सबको मोहित करने वाली वसन्तसुन्दरी नाम की विद्या बनानी चाहिए। (इस प्रकार सम्पूर्ण मन्त्र हुआ—'क्लीं ह्रीं ऐं नीलसुभगे हिलि हिलि विच्चे स्वाहा')।।११-१२।।

ततो मुद्रां समुद्रां सा रचयामास सुव्रता।
क्षोभिण्यां रचितायां च क्षोभिता साऽभवत् क्षणात्।।१३।।
विना मां च वनं सर्वं शून्यं जातं तया बल।
ततो विद्राविणी मुद्रा रचिता त्रिपुराम्बया।।१४।।
तथैव सा महादेवी द्राविता चाऽभवत्क्षणात्।
प्राद्रवच्च ततः स्थानान्मम दर्शनलालसा।।१५।।

ततः सा सुव्रता समुद्राम् मुद्राम् रचयामास। क्षोभिण्याम् रचितायाम् सा क्षणात् क्षोभिता अभवत्। बल! माम् विना सर्वम् वनम् शून्यम् जातम् च। ततः त्रिपुराम्बया विद्राविणी मुद्रा रचिता। तथा एव सा महादेवी क्षणात् द्राविता अभवत्। ततः स्थानात् च मम दर्शनलालसा प्राद्रवत्।

तब उस सुव्रता त्रिपुरा ने समुद्रा मुद्रा की रचना की। क्षोभिणी मुद्रा की रचना करते ही वह राधा एक क्षण में क्षोभित हो गयी। हे बलराम! मेरे बिना उसके लिए सारा वृन्दावन शून्य हो गया। इसके बाद त्रिपुराम्बा ने विद्राविणी मुद्रा की रचना की। मुद्रा की रचना करते ही वह महादेवी राधा क्षण भर में दौड़ने लगी। मेरा दर्शन करने के लिए वह अपने स्थान से भागने लगी।।१३-१५।।

मामेव मनसा नित्यं चिन्तयन्ती विरोदिति।
पुनश्चाकर्षिणीं मुद्रां विरचय्य महेश्वरी॥१६॥
जजाप परमां विद्यां दिगम्बरीमनुत्तमाम्।
मनसा चिन्तयन् यश्च जपेद्विद्यामिमां शुभाम्॥१७॥
यदर्थं वा जपति सा त्यक्त्वा वासांसि दूरतः।
हठाद् दिगम्बरीभूय धावत्युन्मत्तवद् वधूः॥१८॥
तां विद्यां कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिय।
यां जप्त्वा परया देव्या राधिकाप्युन्मदा कृता॥१९॥

नित्यम् मनसा माम् एव चिन्तयन्ती विरोदिति। पुनः च महेश्वरी आकर्षिणीम् मुद्राम् विरचय्य अनुत्तमाम् परमाम् दिगम्बरीम् विद्याम् जजाप। यः इमाम् शुभाम्, विद्याम् मनसा चिन्तयन् जपेद्, यदर्थम् जपति सा वधूः दूरतः वासांसि त्यक्त्वा हठात् दिगम्बरीभूय उन्मत्तवद् धावति। प्रिय! ताम् विद्याम् कथयिष्यामि; एकमनाः शृणुष्व। याम् जप्त्वा परया देव्या राधिका अपि उन्मदा कृता।

वह नित्य मन में मेरा स्मरण करती हुई रोती रहती। पुनः उस महा ईश्वरी ने आकर्षिणी मुद्रा की रचना कर सर्वोत्तम परमा दिगम्बरी विद्या का जप किया। जो मनुष्य मन में जिस स्त्री का चिन्तन करते हुए इस दिव्य विद्या का जप करता है, वह स्त्री दूर से ही वस्त्रों का त्याग कर हठपूर्वक दिगम्बरी होकर पागल की तरह भागकर आती है। प्रिय बलराम! उस विद्या को तुम्हें बताऊँगा, ध्यान से सुनो॥१६-१९॥

आदौ चिन्तामणिबीजं मध्ये च भुवनेश्वरी।
अन्ते वाग्वादिनीबीजं त्रिभिर्बीजैरुपस्कृताम्॥२०॥
अमुकीं दिगम्बरीं कृत्वा समानय हरिप्रियाम्।
वह्निजायावधिर्विद्या सर्वमोहनकारिणी॥२१॥
अस्याः स्मरणमात्रेण आकृष्टा राधिकाऽभवत्।

आदौ चिन्तामणिबीजम्, मध्ये च भुवनेश्वरी, अन्ते वाग्वादिनीबीजम्। त्रिभिः बीजैः उपस्कृताम् अमुकीम् हरिप्रियाम् दिगम्बरीम् कृत्वा समानय वह्निजायावधि सर्वमोहनकारिणी विद्या। अस्याः स्मरणमात्रेण राधिका आकृष्टा अभवत्।

आदि में चिन्तामणि बीज (= र् क्ष् म् र् य् आं) को और भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) को तथा अन्त में वाग्वादिनी बीज (ऐं) को जोड़कर 'अमुक को दिगम्बरी करके ले आओ' कहकर वह्निजाया = स्वाहा को लोले। तब यह

विद्या सबको मोहित करने वाली बन जाती है। इसके प्रयोग से राधिका भी आकृष्ट हो गयी। (सम्पूर्ण मन्त्र का स्वरूप होगा—र् क्ष् म् र् य् आं ह्रीं ऐं अमुकीं...... दिगम्बरीं कृत्वा समानय स्वाहा)।।२०-२१।।

लज्जयाऽधोमुखी देवी कामरोगेण पीडिता।।२२।।
किं करोमि क्व तिष्ठामि क्व यामि शरणं च कम्।
इति चिन्ताकुला राधा पुनरायाति याति च।।२३।।
दोलेव चञ्चला देवी ममान्वेषणकातरा।

देवी लज्जया अधोमुखी कामरोगेण पीडिता (सती) किम् करोमि? क्व तिष्ठामि ? क्व कम् शरणम् यामि इति चिन्ताकुला राधा पुनः आयाति याति च। दोलेव देवी चंचला माम् अन्वेषणकातरा (अभूत्)।

देवी राधा लज्जा से अधोमुखी होकर कामरोग से पीड़ित हो गयी और सोचने लगी कि क्या करूँ? कहाँ बैठूँ? कहाँ किसकी शरण में जाऊँ? इस प्रकार चिन्ताकुल होकर राधा पुनः कभी इधर आती, कभी उधर जाती। झूले की तरह झूलती हुई वह चंचला देवी मुझे ढूँढने के लिए व्याकुल हो गयीं।।२२-२३।।

ततः सा त्रिपुरा सिद्धा सर्वसिद्धैर्नमस्कृता।।२४।।
वश्यामुद्रामनु महामनुमेकं जजाप च।
ततः सा राधिका शीघ्रं विह्वला समजायत।
गमनाय मतिं चक्रे यत्राहं रसवारिधिः।।२५।।

ततः सर्वसिद्धैः नमस्कृता सा सिद्धा त्रिपुरा वश्यामुद्राम् अनु एकम् महामनुम् जजाप। ततः सा राधिका शीघ्रम् विह्वला समजायत रसवारिधिः अहम् (यत्र तत्र) गमनाय मतिं आसम् चक्रे।

इसके बाद सब सिद्धों के द्वारा प्रमाण की हुई वह सिद्धा त्रिपुरा वश्या मुद्रा बनाकर एक महामन्त्र का जाप करने लगी, जिससे वह राधा शीघ्र ही विह्वल हो गयी और रससागर मैं जहाँ स्थित था, वहाँ जाने की मति बना ली।।२४-२५।।

ब्राह्मण उवाच—

इत्येवं श्रुत्वा रामोऽसौ रामणीयकमन्दिरम्(?मन्त्रकम्)।
मौनी श्रीभावनम्रास्यो विललास जहास च।।२६।।
ततः श्रीकृष्णदेवोऽपि लज्जया कथने जडः।
अभवन् मौनीशीलोऽसौ सुशीलो लीलया परम्।
परेङ्गितज्ञः सर्वेषामन्तर्यामी स्वयं प्रभुः।।२७।।

असौ रामः इति एवम् रामणीयकमन्त्रकम् श्रुत्वा मौनी श्रीभावनम्र-आस्यः विललास जहास च। ततः श्रीकृष्णदेवः अपि लज्जया कथने जडः अभवत्। यद्यपि असौ स्वयम् प्रभुः परेङ्गितज्ञः (तथापि) सुशीलः लीलया परम् मौनशीलः सर्वान्तर्यामी।

ब्राह्मण ने कहा—इस परम रमणीय वार्ता को सुनकर वे राम मौन होकर श्रीभाव से युक्त होकर नीचे की ओर मुख करके आनन्दित हुए और हँसने लगे। इसके बाद श्रीकृष्ण देव भी लज्जित होकर आगे कहने में जड़ हो गये। यद्यपि वे स्वयं प्रभु दूसरे के इंगित को भी समझने वाले हैं तथापि वे सुशील लीला से अद्भुत मौनशील सर्वान्तर्यामी हैं।।२६-२७।।

ब्राह्मणी उवाच—

भवद्भिः कथितं कान्त कान्तस्य काण्डमद्भुतम्।
बलरामेण चरितं रामेण बलिना श्रुतम्।।२८।।
ततः परं किमभवद् भवता तत्तु कथ्यताम्।
शृण्वन्त्या मम नो तृप्तिः परं कौतूहलं पुनः।।२९।।

कान्त! भवद्भिः कान्तस्य अद्भुतम् काण्डम् कथितम्। बलिना रामेण बलरामेण चरितम् श्रुतम्। ततः परम् किम् अभवत् तत् तु भवता कथ्यताम्। मम शृण्वन्त्या पुनः परम् कौतूहलम् न तृप्तिः।

ब्राह्मणी ने कहा—हे कान्त! आपने कमनीय श्रीकृष्ण के अद्भुत कथानक को सुनाया। बलशाली रमणीय बलराम ने यह चरित सुना। इसके बाद क्या हुआ, वह आप बतलायें। सुनते हुए भी मुझमें कौतूहल हो रहा है, तृप्ति नहीं हो रही है।।२८-२९।।

नारद उवाच—

ततः पृष्टश्चाटुकारैर्ब्राह्मण्या ब्राह्मणोत्तमः।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो विहारचरितं हरेः।।३०।।

ततः ब्राह्मण्या चाटुकारैः पृष्टः वदताम् श्रेष्ठः ब्राह्मणोत्तमः हरेः विहार-चरितम् अवदत्।

नारद ने कहा—इसके बाद ब्राह्मणी द्वारा मधुर वचनों से पूछे जाने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ उत्तम ब्राह्मण ने हरि का विहारचरित सुनाया।।३०।।

ब्राह्मण उवाच—

कथयिष्यामि ते कान्ते कान्तकृष्णेन यत्कृतम्।
श्रीराधया वा विदितं वृन्दावनचरीमुखात्।।३१।।

एतत् सुगुह्यं चरितं गोपनीयं परं भवेत्।
तथापि कथ्यते कान्ते यत्कान्तप्रेममन्दिरम्(?मन्त्रकम्)॥३२॥
इदं हि गोप्यं यत्नेन कस्मैचन न कथ्यताम्।
हितं यदीष्यते देवि स्वयोनिरिव सर्वदा॥३३॥

कान्ते! वृन्दावनचरीमुखात् श्रीराधया विदितम् कान्तकृष्णेन यत् कृतम् तत् ते कथयिष्यामि। एतत् सुगुह्यम् चरितम् परम् गोपनीयम् भवेत् तथापि कान्ते यत् कान्तप्रेममन्त्रकम् कथ्यते। इदम् हि यत्नेन गोप्यम्। कस्मैचन न कथ्यताम्। देवि यदि हितम् इष्यते सर्वदा स्वयोनिम् इव (गूहनीयम्)।

ब्राह्मण ने कहा—हे कान्ते! वृन्दावन में विचरण करने वाली श्रीराधिका से यह कृष्णचरित मुझे ज्ञात हुआ है। उसे तुझे सुनाता हूँ। यह चरित अति गोपनीय है। अतः छिपाकर रखना। यद्यपि यह प्रकट करने योग्य नहीं है; फिर भी श्रीकृष्णप्रेमरहस्य को तुझे बतलाता हूँ। इसे यत्न से छिपाना, किसी से मत कहना। यदि अपना हित चाहती है तो अपनी योनि की तरह इसे छिपाना॥३१-३३॥

ततो मदद्विरदगतिं चलत्पदां नितम्बिनीं सुविपुलकेलिलालसाम्।
रसेश्वरीं सकलकलाकलापिनीमुवाच कापि किल हरेः पदुद्भवा॥३४॥
राधां वृन्दावनेशानीं गच्छतीं स्वच्छया धिया।
पथि वृन्दाऽब्रवीत् कृष्णचरणाम्भोजनिःसृता॥३५॥

ततः हरेः पद-उद्भवा कापि मदद्विरदगतिम् चलत्पदाम् नितम्बिनीम् सुविपुल-केलिलालसाम् सकलकलापिनीम् रसेश्वरीम् उवाच। कृष्णचरणाम्भोजनिःसृता वृन्दा स्वच्छया धिया गच्छन्तीम् वृन्दावनेशानीम् राधाम् पथि अब्रवीत्।

इसके बाद श्रीकृष्ण के पद से उत्पन्न किसी देवी ने मत्त हाथी की गति के समान चलने वाली, विशाल नितम्ब वाली, सुविपुल क्रीडालालसा वाली, सभी कला को जन्म देने वाली रसेश्वरी राधा से कहा। कृष्ण के चरणों से प्रकट होने वाली वृन्दा ने शुद्ध बुद्धि से जाती हुई वृन्दावन की स्वामिनी राधा से मार्ग में यह कहा॥३४-३५॥

वृन्दा उवाच—

क्व यासि त्वं वरारोहे काऽसि कस्यासि भामिनी।
न त्वया सदृशी रूपवती कापि विलोक्यते॥३६॥
अहो रूपमहो रूपमहो रूपमहो वयः।
अहो लावण्यबन्धाहो तनुकाञ्चनमञ्जरी॥३७॥

नयनेन्दीवरमिदमहो खञ्जनगञ्जनम्।
अहो वदनशोभेयं राकेन्दुसहचारिणी॥३८॥

हे वरारोहे! का असि? कस्य भामिनी असि? त्वम् क्व यासि? त्वया सदृशी कापि रूपवती न विलोक्यते। अहो रूपम्। अहो रूपम्। अहो रूपम्। अहो वयः। अहो लावण्यबन्धः। अहो तनुकाञ्चनमञ्जरी। अहो! इदम् खञ्जनगञ्जनम् नयन-इन्दीवरम्, अहो! इयम् राकेन्दुसहचारिणी वदनशोभा।

वृन्दा ने कहा—हे वरारोहे! तुम कौन हो? तुम किसकी भामिनी हो? तुम कहाँ जा रही हो? तुम्हारे जैसा रूप किसी का नहीं दिखता। अहो यह रूप, अहो यह रूप, अहो यह रूप! अहो यह यौवन, अहो यह लावण्य का अनुबन्ध, अहो यह पतली सोने की मञ्जरी। अरे! खञ्जन के गर्व का नाश करने वाले नेत्रकमल, अरे! ये पूर्णिमा के चन्द्रमा की सहचारिणी इस वदन शोभा का क्या कहना॥३६-३८॥

अहो मध्योऽतिलीनोऽयं सदसत्संशयाशयः।
अवधीरयति सिंहस्य कङ्कालमपि हेलया॥३९॥
अहो बिम्बविडम्बोऽयमधरोऽरुणोऽरुणः।
आश्चर्यं गमनं तस्या मदद्विरदमन्थरम्॥४०॥
मुनेर्मनो मोहयति किमुतान्यस्य कामिनः।
कुलाबलापि विजने विपिनेऽपि च नेह(?ज)से॥४१॥

अहो अयम् मध्यः अतिलीनः सदसत् संशयाशयः, हेलया सिंहस्य कंकालम् अपि अवधीरयति। तस्याः मदद्विरदमन्थरम् गमनम् मुनेर्मनो मोहयति किमुत अन्यस्य कामिनः; कुल-अबला अपि विजने विपिने च न ईजसे।

अहो इसकी यह कमर कितनी दुबली है। यह तो सिंह के कंकाल को भी तिरस्कृत कर रही है। यह संशय भी उत्पन्न कर रही है कि यह है भी या नहीं। अरे अरुण से भी अरुण अर्थात् लाल उसका अधरोष्ठ विम्बफल को भी तिरस्कृत करने वाला है। आश्चर्य है कि इसका गमन उन्मत्त हाथी की तरह मन्थर है, जो मुनियों के मन को भी मोहित करता है; फिर किसी कामी का क्या कहें; कुलीन अबला होती हुई भी निर्जन वन में भी घृणा (लज्जा) नहीं करती हो॥३९-४१॥

लज्जितं मज्जितं सर्वं कुलीनानां कुलं परम्।
अहो दुरत्ययः कालो यददृष्टं प्रदर्शयेत्॥४२॥
यदश्रुतं श्रावयति कथमेकाकिनी वने।
शृणु कल्याणि सुभगे तथ्यं पथ्यं वचो मम॥४३॥

किमर्थमुन्मनीभूत्वा भ्रमसि त्वं वने वने।
एकस्मिन्नेव सङ्गम्य उपसान्त्वय मानसम्।।४४।।

कुलीनानाम् सर्वम् परम् कुलम् लज्जितम् मज्जितम्। अहो कालः दुरत्ययः यद् अदृष्टम् प्रदर्शयेत्। सुभगे! कथम् एकाकिनी वने यद् अश्रुतम् श्रावयति। कल्याणि! मम तथ्यम् पथ्यम् वचः शृणु। त्वम् उन्मनीभूत्वा वने वने किम् अर्थम् भ्रमसि? एकस्मिन् एव सङ्गम्य मानसम् उपसान्त्वय।

यह सभी कुलीन बालाओं के परम कुल को भी लज्जित और विनष्ट करने वाली है। अहो काल कितना निष्करुण है, जो अदृष्ट को भी प्रदर्शित कर देता है और अश्रुत को सुनाता है। हे सुभगे! वन में अकेली क्यों विचार कर रही हो। हे कल्याणि ! मेरी तथ्य और पथ्यपरक वाणी को सुनो। तुम उन्मनी (व्याकुल) होकर वन-वन में क्यों भ्रमण कर रही हो? किसी एक की ही जीवनसङ्गिनी बनकर मन को शान्त करो।।४२-४४।।

त्रैलोक्यमोहनं रूपं यादृशं त्वयि विद्यते।
तादृशै रूपलावण्यैः कोऽपि मानववेशभाक्।।४५।।
विपिनेऽस्ति कृष्णनामा श्यामसुन्दरविग्रहः।
स एव तव योग्योऽस्ति योग्या तस्यासि निश्चितम्।।४६।।

यादृशम् त्रैलोक्यमोहनम् रूपम् त्वयि विद्यते तादृशैः रूपलावण्यैः मानववेशभाक् कोऽपि श्यामसुन्दरविग्रहः कृष्णनामा विपिने अस्ति। स एव तव योग्यः अस्ति, निश्चितम् (त्वम्) तस्य योग्या असि।

जैसा त्रैलोक्यमोहन रूप तुम्हारा है, वैसे ही रूप-लावण्य से युक्त मानवशरीरधारी श्यामसुन्दर शरीर वाला कृष्ण नामक व्यक्ति वृन्दावन में वर्तमान है। वही तुम्हारे योग्य है और निश्चित ही तुम भी उन्हीं के योग्य हो।।४५-४६।।

विहरस्व तेन समं जन्मैव सफलीकुरु।
युवतीनां यौवनैः किं न चेत् सौभाग्यकागमः।।४७।।
लतानां मधुभिः किं स्यान्न चेन्मिलति षट्पदः।
स नु त्वयि क्रीडितायामनुरागं विधास्यति।।४८।।
राधाविरहदूनोऽसौ स्त्रीकामः पुरुषो यतः।
त्वय्येव दृष्टमात्रायां व्याकुलः स भविष्यति।।४९।।

तेन समम् विहरस्व। जन्म एव सफलीकुरु। युवतीनाम् यौवनैः किम् चेत् सौभाग्यकामगः न। चेत् षट्पदः न मिलति लतानाम् मधुभिः किम् स्यात्?

क्रीडितायाम् त्वयि स अनुरागम् विधास्यति यतः असौ पुरुषः राधाविरहदूनः स्त्रीकामः सः त्वयि एव दृष्टमात्रायाम् व्याकुलः भविष्यति।

उसके साथ विहार करो और अपने जन्म को सफल करो। युवतियों के यौवन से क्या लाभ, यदि उनके पास सौभाग्य उत्तम पुरुष का आगम न हो। लताओं के मधु से क्या लाभ, यदि भ्रमरों का साथ न हो। तुम्हारे क्रीडा करने पर वह तुम्हारे प्रति अनुराग करेंगे; क्योंकि वह पुरुष राधा के विरह से दुःखी हैं। क्योंकि पुरुष-स्त्री का संग चाहता है। तुम्हारे दर्शनमात्र से ही वह व्याकुल हो जायेंगे।।४७-४९।।

गम्यतां साधुचरिते सत्यं सत्यं न संशयः।
राधाविरहजं तापं त्वत्सङ्गामृतवारिणा।।५०।।
शमयिष्यति यस्मात् स तस्मात् प्रेष्ठा भविष्यसि।
ईश्वरः परमः कृष्णो वनस्यास्य शुचिस्मिते।।५१।।
स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वयं हर्ता च रक्षिता।
इन्द्रनीलमणिश्यामः कोटीन्दुललिताननः।।५२।।

साधुचरिते! सत्यम् न संशयः गम्यताम् राधाविरहजम् तापम् त्वत् संगामृत-वारिणा यस्मात् स शमयिष्यति तस्मात् (त्वम्) प्रेष्ठा भविष्यसि। शुचिस्मिते! कृष्णः अस्य वनस्य परमः ईश्वरः इन्द्रनीलमणिश्यामः कोटीन्दुललिताननः स्वयम् कर्त्ता स्वयम् भर्ता स्वयं हर्ता च रक्षिता।

हे उत्तम चरित्र वाली! यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। तुम जाओ और उनका राधाविरह से उत्पन्न ताप तुम्हारे संगम के अमृत जल से शान्त हो जायेगा। तुमसे उनके ताप की शान्ति होगी, तुम उनके लिए अति प्रिय हो जाओगी। हे पवित्र स्मित वाली! श्रीकृष्ण इस वन के परम ईश्वर हैं। इन्द्रनीलमणि के समान श्याम शरीर वाले तथा मुख वाले करोड़ों चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर वे स्वयं इस वन के कर्त्ता, हर्त्ता और रक्षक हैं।।५०-५२।।

साक्षात् कन्दर्पदर्पघ्नो रूपेण हिमशीतलः।
सर्वलीलाविलासादिसदनं मदनातुरः।।५३।।
यस्य दर्शनमात्रेण कामिनी गतचेतना।
यस्य वंशीनिनादेन मोहितं सकलं वनम्।।५४।।
कुटिलालकालिरामालिरमणीयास्यवारिभूः।
जितकामधनुश्चारुभ्रूयुगारुणलोचनः।।५५।।

सः हिमशीतलः, रूपेण साक्षात् कन्दर्पदर्पघ्नः, सर्वलीलाविलासादि-सदनम्, मदनातुरः (अस्ति)। यस्य दर्शनमात्रेण कामिनी गतचेतना (भवेत्)। यस्य वंशीनिनादेन सकलम् वनम् मोहितम् (जायेत)। सः कुटिलालका-अलिरामालि-रमणीय-आस्यवारिभूः। चारु भ्रूजितकामधनुःयुगः अरुणलोचनः (चास्ति)।

वे हिम की तरह शीतल हैं। उनका रूप साक्षात् कन्दर्प के दर्प का दमन करने वाला है। वे सभी लीलाविलासों के सदन हैं। वे काम से आतुर हैं। उनके दर्शनमात्र से ही कामनियों की चेतना नष्ट हो जाती है। उनकी वंशी की धुन सुनकर सम्पूर्ण वन मोहित हो जाता है। उनके घुंघराले बाल भ्रमरपंक्ति से प्रतीत होते हैं। उससे उनका मुख कमल की तरह रमणीय है। उनकी दोनों भ्रूलतायें कामदेव के धनुष को भी जीत लेती हैं। उनके दोनों नेत्र अरुण अर्थात् लाल हैं।।५३-५५।।

सिंहग्रीवो महोरस्को महाबाहुर्महाबलः।
महोत्साहो महावीर्या राजेन्द्रसमविक्रमः।।५६।।
पीतवासाः सुन्दराङ्गो वलिमत्पल्वलोदरः।

(सः) सिंहग्रीवः महोरस्कः महाबाहुः महाबलः महोत्साहः महावीर्यः राजेन्द्रसमविक्रमः, पीतवासाः सुन्दराङ्गः वलिमत्पल्वलोदरः (अस्ति)।

महाबली, महान् उत्साह वाले वे महान कीर्तिमान्, राजाओं जैसा पराक्रम वाले, पीला वस्त्र धारण किये हुए, सुन्दर अंगों वाले, त्रिवली उदरयुक्त पल्वल वाले हैं।।५६।।

सर्ववेदार्चितपदः सर्वदेवशिखामणिः।।५७।।
सर्वसहो महोदारो गाम्भीर्येणोदधिर्महान्।
एतादृशगुणोपेतः कृष्णः प्रियतरस्तव।
अद्यैव गच्छ निकटं तस्य त्वं यदि रोचते।।५८।।

सर्ववेदार्चितपदः, सर्वदेवशिखामणिः, सर्वसहः, महोदारः, गम्भीर्येण महान् उदधिः, एतादृशगुणोपेतः कृष्णः तव प्रियतरः। यदि रोचते त्वम् तस्य निकटम् अद्य एव गच्छ।

उनके चरण सभी वेदों द्वारा अर्चित हैं। वे सभी देवों के शिखामणि हैं। वे अति सहनशील, उदार तथा गम्भीरता में सिन्धु के समान हैं। ऐसे गुणों से युक्त श्रीकृष्ण ही तुम्हारे प्रियतर हैं। यदि अच्छा लगे तो तुम आज ही उनके पास जाओ।।५७-५८।।

ब्राह्मण उवाच—

एतस्मिन्नेव समये त्रिपुरा सिद्धयोगिनी।
उन्मदां कलयामास मुद्रामुन्मादकारिणीम्॥५९॥
तत्क्षणादेव सा बाला लुलिताङ्ग्यपतद् भुवि।
उन्माद्यन्ती परं राधा रक्ष कृष्णेति वादिनी॥६०॥
लतागुल्मादिकं सर्वं पप्रच्छ मधुरस्वरैः।
प्रणयाविष्टहृदया हृदयानङ्गसङ्गता॥६१॥

एतस्मिन् एव समये सिद्धयोगिनी त्रिपुरा उन्मदाम् उन्मादकारिणीम् मुद्राम् कलयामास। तत्क्षणाद् एव सा बाला लुलिताङ्गी (सती) भुवि अपतत्। परम् उन्माद्यन्ती राधा 'हे कृष्ण! रक्ष' इति वादिनी प्रणयाविष्टहृदया हृदयानङ्गसङ्गता मधुरस्वरैः सर्वम् लतागुल्मादिकम् पप्रच्छ।

ब्राह्मण ने कहा—इसी समय सिद्धयोगिनी त्रिपुरा ने उन्माद करने वाली उन्मदा मुद्रा बनाकर जप किया। उसी क्षण वह बाला राधा लुञ्जपुञ्ज होकर पृथ्वी पर गिर गयी। उन्माद करती हुई राधा ने पुकारा—'हे कृष्ण! बचाओ, बचाओ।' यह कहती हुई प्रेम में आविष्ट हृदय वाली राधा हृदय में अनंग-पीड़ित होकर मधुर शब्दों में सभी लता-गुल्मों से पूछने लगी॥५९-६१॥

श्रीराधा उवाच—

भोः श्रीकदम्बनवचूतपलाशबिल्व-
लोलच्छदासनवियुग्मदलप्रियालाः ।
न्यग्रोधजम्बुपनसार्कतमालशालाः
श्रीकृष्णदेवपदवीं कथयन्तु मह्यम्॥६२॥

भोः श्रीकदम्ब-नवचूत-पलाश-बिल्व-लोलच्छदासन-वियुग्मदलप्रियालाः न्यग्रोध-जम्बु-पनस-अर्क-तमालशालाः श्रीकृष्णदेवपदवीम् मह्यम् कथयन्तु।

श्रीराधा ने कहा—हे कदम्ब! हे नव आम्र! हे पलाश! हे बिल्व! हे लोलच्छद आसन! हे वियुग्मदल! हे प्रियाल! हे न्यग्रोध! हे जम्बु! हे पनस! हे अर्क! हे तमालशाल! आप मुझे श्रीकृष्ण का पता बता दें॥६२॥

भो वासन्ति लताधिपे तुलसिके हे जाति हे यूथिके
हे वल्लीमयि नन्दिके सकलिके हे मालिके रङ्गिणि।
शश्वद्रङ्गलवङ्ग भो विदिशतोद्देशं रमण्याः सदा।
राधायाः सपदि प्रचञ्चलहृदः कृष्णाऽभिसारे मम॥६३॥

भो लताधिपे! वासन्ति! तुलसिके! हे जाति! हे यूथिके! हे वल्लीमयि

सकलिके नन्दिके! हे रङ्गिणिमालिके! भो शश्वद् रङ्गलवङ्ग! प्रचञ्चलहृदः सदा रमण्याः मम राधायाः कृष्णाभिसारे उद्देशम् विदिशत।

हे लताओं की रानी वासन्ती! हे तुलसी! हे चम्पा! हे चमेली! हे वल्लीमयी मालिकायुक्त नन्दिके! हे रङ्गिणी मालिके! हे शश्वत् रङ्ग लवङ्ग! सदा चञ्चल हृदय वाली रमणी मुझ राधा को कृष्ण के अभिसार के लिये स्थान बताओ।।६३।।

हे कृष्णसारशशवर्य्य मृगाधिराज
हे द्वीपिनो द्विपवरा गवयाश्चमूरो।
श्रीकृष्णतुष्टमनसो मम राधिकाया
वर्त्मोपदेशमधुना कुरुतानुरागात्।।६४।।
हेमन्त कोकिल मधुव्रतसारिकाद्याः
सारङ्गरङ्गशुककेलिचकोरहंसाः ।
हे कालकण्ठकमयूरगरुत्मदाद्याः
शंसन्तु मे सपदि तां पदवीं तदीयाम्।।६५।।

हे कृष्णसार! हे शशवर्य्य! हे मृगाधिराज! हे द्वीपिः! हे द्विपवराः! हे गवयाः! हे चमूरो! अधुना श्रीकृष्णतुष्टमनसः मम राधिकाया अनुरागात् वर्त्मोपदेशम् कुरुत। हे हेमन्त! हे कोकिल! हे मधुव्रत! हे सारिकाद्याः! हे सारङ्ग-रङ्गशुककेलि! चकोरहंसाः! हे कालकण्ठक! हे मयूर! हे गुरुत्वदाद्याः! सपदि मे तदीयाम् ताम् पदवीम् शंसन्तु।

हे कृष्णसार! हे खरगोश! हे सिंहराज! हे गैंडों! हे गजराज! हे वनगायों! हे चमूरुओं! इस समय श्रीकृष्ण के लिए प्रणत मन वाली मुझ राधिका को प्रेम से कृष्ण के मार्ग का उपदेश करो। हे हेमन्त! हे कोकिल! हे भ्रमर! हे सारिकाओं! हे मृगों! हे रङ्गशुकों! हे केलि! हे चकोर! हे हंस! हे कालकण्ठक (नीलकण्ठ)! हे मयूर! हे गरुड़ आदि! शीघ्रता से मुझे उनके स्थान का मार्ग बता दो।।६४-६५।।

वृन्दे वृन्दावनचरे वृन्दारकमनोरमे।
कृष्णवृन्दप्रिये वन्द्ये वन्दे त्वां वरवन्दिते।।६६।।
उपायः कथ्यतां भद्रे यातु मे मदनज्वरः।
किं करिष्यामि यास्यामि क्व मरिष्यामि किं प्रिये।।६७।।

हे वृन्दारकमनोरमे! हे वृन्दावनचरे! हे कृष्णवृन्दप्रिये! हे वरवन्दिते! वन्द्ये वृन्दे! त्वाम् वन्दे। भद्रे उपायः कथ्यताम् येन मे मदनज्वरः यातु। प्रिये! किम् करिष्यामि? किम् मरिष्यामि? क्व यास्यामि?

हे वृन्दारकमनोरमे! वृन्दावनचारिणि! कृष्णवृन्दप्रिये! वरवन्दिते! वन्दनीया वृन्दा! मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ। हे भद्रे! वह उपाय बताओ, जिससे मेरा कामज्वर चला जाय। हे प्रिये! मैं क्या करूँ? क्या मर जाऊँ? कहाँ जाऊँ?।।६६-६७।।

ब्राह्मण उवाच—

ततः सा सान्त्वया वाचा सान्त्वयामास राधिकाम्।
कन्दर्पदर्पवशगां विलुण्ठन्तीं महीतले।।६८।।

ततः सा कन्दर्पदर्पवशगाम् महीतले विलुण्ठन्तीम् राधिकाम् सान्त्वया वाचा सान्त्वयामास।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद वृन्दा ने कन्दर्प के दर्प के आधीन हुई तथा पृथ्वी पर लोटती हुई राधिका को सान्त्वना की वाणी से इस प्रकार धैर्य बँधाया।।६८।।

वृन्दा उवाच—

भद्रे त्वं हि वृषस्यन्ती ज्ञातं मे तन्न संशयः।
भविष्यति तव प्रीतिर्देवि नोत्कण्ठिता भव।।६९।।
एकं निगूढबीजं ते कथयिष्यामि सुव्रते।
नीतिशास्त्रविदां कामतन्त्रे च यत्तु सम्मतम्।।७०।।

भद्रे! त्वम् हि वृषस्यन्ती मे ज्ञातम् तत् संशयः न। देवि! तव प्रीतिः भविष्यति, उत्कण्ठिता न भव। सुव्रते! ते एकम् निगूढबीजम् कथयिष्यामि यत् च नीतिशास्त्रविदाम् कामतन्त्रे तु सम्मतम्।

वृन्दा ने कहा—हे भद्रे! तुम कामयोग की इच्छुक हो, यह मैंने जान लिया। इसमें सन्देह नहीं। हे देवि! तुम्हारा उनसे अवश्य प्रेम होगा। उत्कण्ठित मत हो। हे सुव्रते! मैं तुम्हें नीतिशास्त्र और कामशास्त्र से सम्मत एक निगूढ बीज बतला रही हूँ।।६९-७०।।

स्वयं या विह्वला याति कामिनी पुरुषार्थिनी।
सद्गुणैरन्वितां तां च नावजानाति कः पुमान्।।७१।।
अत्रैव तिष्ठ भो तस्मान्नातस्त्वं गन्तुमर्हसि।
एकाकिनी क्षणादेव शान्तिस्तव भविष्यति।।७२।।

या पुरुषार्थिनी कामिनी स्वयं विह्वला (भूत्वा) याति सद्गुणैः अन्विताम् ताम् कः पुमान् च न अवजानाति। अतः भो! अत्र एव तिष्ठ। त्वम् गन्तुम् न अर्हसि। क्षणात् एव तव एकाकिनी शान्तिः भविष्यति।

जो पुरुष का साथ चाहने वाली कामिनी स्वयं विह्वल होकर पुरुष के पास जाती है, सद्गुणयुक्त होने पर भी पुरुष उसे अधिक सम्मान नहीं देता। अतः हे देवि! यहीं ठहर जाओ। तुम्हारा जाना उचित नहीं है। क्षणभर में तुम्हें एकाकिनी अर्थात् शान्ति मिलेगी।।७१-७२।।

सहसा नैव कुर्वीरन् कार्यं कार्यार्थकोविदाः।
यदि कुर्वन्ति ते सत्यं कोविदा अप्यकोविदाः।।७३।।
विमृश्य कार्यकर्त्ता यः पूर्णः पण्डिताधिकः।
अविमृश्य कार्यकर्ताऽपण्डितः पण्डितो यदि।।७४।।

कार्यार्थकोविदाः सहसा कार्यम् न एव कुर्वीरन्। यदि ते सत्यम् कुर्वन्ति कोविदाः अपि अकोविदाः भवति। यः विमृश्य कार्यकर्ता पूर्णः पंडिताधिकः यदि पण्डितः अविमृश्य कार्यकर्त्ता (भवति सः) अपण्डितः (कथ्यते)।

कार्य के अर्थ को समझने वाले विद्वान् कभी सहसा कार्य नहीं करते। यदि वे सचमुच पूर्ण पण्डित हैं और बड़े विद्वान् है। विद्वान् होकर भी बिना विचार किए हुए काम करने वाला अपण्डित अर्थात् मूर्ख होता है।।७३-७४।।

तदा कथं भगवती भवती मोहकातरा।
शश्वत् त्रिभुवनोद्योतयशः पीयूषविद्युतिः।।७५।।

तदा त्रिभुवनोद्योतयशः पीयूषविद्युतिः भगवती भवती कथम् शश्वत् मोहकातरा (अस्ति)?

फिर त्रिभुवन में यशःपताका फैलाने वाली, पीयूष की चमक के सदृश भगवती आप क्यों निरन्तर मोह से व्याकुल हो रही हैं?।।७५।।

ब्राह्मण उवाच—

इत्थं सुसान्त्विता देवी वृन्दया वल्गुवाक्यया।
क्षणं स्वस्थमनाः शान्ता पारिजाततलेऽवसत्।।७६।।
एतस्मिन्नेव समये श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
महाङ्कुशां नाम मुद्रां रचयामास सोत्सुका।।७७।।
अङ्कुशेन महाहस्ती यथैवाकृष्यते क्षणात्।
तथैव भामिनीचेतो नित्यमाकृष्यतेऽनया।।७८।।

इत्थम् वृन्दया वल्गुवाक्यया देवी सुसान्त्विता स्वस्थमनाः शान्ता क्षणम् पारिजाततले अवसत्। एतस्मिन् एव समये श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी सोत्सुका महाङ्कुशाम् नाम मुद्राम् रचयामास। यथा महाहस्ती अंकुशेन एव क्षणात् आकृष्यते तथा एव अनया भामिनीचेतः नित्यम् आकृष्यते।

ब्राह्मण ने कहा—इस प्रकार वृन्दा ने वल्गु अर्थात् मधुर वाक्यों से देवी को सान्त्वना दी। वह स्वस्थ और शान्त होकर क्षण भर के लिए पारिजात के नीचे ठहर गयी। इसी समय श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी ने उत्सुक होकर महाङ्कुशा नाम की मुद्रा की रचना की। जैसे उन्मत्त हाथी एक क्षण में अंकुश से वश में हो जाता है, उसी तरह इस मुद्रा के द्वारा स्त्री के चित्त को भी आकृष्ट कर लिया जाता है।।७६-७८।।

रचितायां च मुद्रायां जल्पिते च महामनौ।
पुनराकर्षिता देवी राधा कृष्णमनोरमा।।७९।।
चिरं निमील्य नयने लीलयाऽतिष्ठदुद्धुरा।
ततः पुनर्महेशानी रचयामास मुद्रिकाम्।।८०।।

मुद्रायाम् रचितायाम् महामनौ च जल्पिते कृष्णमनोरमा देवी राधा पुनः आकर्षिता लीलया उद्धुरा चिरम् नयने निमील्य अतिष्ठत्। ततः महेशानी पुनः मुद्रिकाम् रचयामास।

अंकुशा मुद्रा बनाते तथा महामन्त्र का जप करते ही कृष्णमनोरमा देवी राधा पुनः आकर्षित हो गयी। लीला से व्याकुल बहुत समय तक नेत्र बन्द करके बैठी रही। इसके बाद महेशानी ने पुनः त्रिखण्डा नामक मुद्रा की रचना की।।७९-८०।।

त्रिखण्डाख्यां ततो देवी निर्लज्जा चाऽभवत् क्षणात्।
लज्जाभयं कुलभयं सर्वधर्मभयं तथा।।८१।।
खण्डयत्यचिरात् स्त्रीणां तत्त्रिखण्डेति कीर्त्यते।
रचितायां च मुद्रायां वृन्दया विनिवारिता।
अशक्तागमने राधा चञ्चला चाभवत् क्षणात्।।८२।।

इति श्री कृष्णयामले महातन्त्रे राधादेवीप्रोन्मादनम्
नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

त्रिखण्डाख्याम्, ततः देवी क्षणात् निर्लज्जा अभवत्। स्त्रीणाम् लज्जाभयम् कुलभयम् तथा सर्वधर्मभयम् अचिरात् खण्डयति तत् त्रिखण्डा इति कीर्त्यते। मुद्रायाम् रचितायाम् वृन्दया विनिवारिता गमने अशक्ता राधा क्षणात् चञ्चला अभवत्।

त्रिखण्डा नाम की मुद्रा बनाते ही देवी क्षण भर में निर्लज्ज हो गयी। स्त्रियों को लज्जा का भय, कुल का भय तथा सर्वधर्म का भय रहता है,

किन्तु इस मुद्रा से वह तीनों भयों का त्याग कर निर्लज्ज हो जाती है। इसलिए यह मुद्रा त्रिखण्डा कही जाती है। मुद्रा बनाते ही वृन्दा ने उसे रोक दिया। चलने में अशक्त राधा मुद्रा के प्रभाव से क्षण भर में चञ्चल हो गयी॥८१-८२॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधादेवी प्रोन्मादन नामक तेईसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीमद्राधादेव्या अष्टादशशतीनामस्तोत्रम्

ब्राह्मण उवाच—

ततः सा त्वरया वृन्दा दासी कृष्णस्य योगिनी।
सम्मुखस्था महादेव्या गृहीत्वा करपङ्कजम्।
अपृच्छद् मधुरालापा तन्नाम चरितानि च॥१॥

ततः कृष्णदासी योगिनी मधुरालापा सा वृन्दा त्वरया महादेव्या सम्मुखस्था करपङ्कजम् गृहीत्वा तत् नाम चरितानि च अपृच्छत्।

ब्राह्मण ने कहा—उसके बाद कृष्ण की दासी वृन्दा योगिनी सामने खड़ी होकर महादेवी के कर-कमल को पकड़कर मीठी वाणी बोलती हुई उसके नाम और चरित्रों को पूछने लगी॥१॥

वृन्दा उवाच—

किं ते नाम महादेवि तन्मे कथय सुव्रते।
मया त्वं कृत्ययाविष्टा लक्ष्यसे मन्दगामिनी॥२॥
श्रुतमस्ति मया किञ्चित्तदाकर्णय सुव्रते।
परब्रह्मस्वरूपस्य कृष्णस्याऽद्भुतरूपिणः॥३॥

महादेवि! ते किम् नाम? सुव्रते! तत् मे कथय। मन्दगामिनि त्वम् मया कृत्याविष्टा (इव) लक्ष्यसे। मया परब्रह्मस्वरूपस्य अद्भुतरूपिणः श्रीकृष्णस्य (विषये) किञ्चित् श्रुतम्। सुव्रते! तद् आकर्णय।

हे देवि! तुम्हारा क्या नाम है? हे सुव्रते! वह मुझे बतलाओ। धीरे-धीरे चलने वाली तुम मुझे कृत्या से आविष्ट-सी लग रही हो। परब्रह्मस्वरूप एवं अद्भुत वाले कृष्ण के बारे में मैंने कुछ सुना है। हे सुव्रते! उसे सुनो॥२-३॥

देहाद्विनिर्गता पूर्वं राधिका सकलाधिका।
तां दृष्ट्वा रूपिणीं देवीं स्वयं कृष्णो मुमोह सः॥४॥
ततस्तुष्टाव विकलो राधा राधेति जल्पकः।
तामेव नीलराजीवलोचनीं शोकमोचनीम्॥५॥
ततः सा च महादेवी भुवनेश्याऽवरोधिता।
कृष्णदेहोद्भवाऽप्यद्य रतिभीताऽद्रवत् क्षणात्॥६॥

पूर्वं श्रीकृष्णस्य देहात् सकलाधिका राधिका विनिर्गता। ताम् रूपिणीम् देवीम् दृष्ट्वा सः कृष्णः स्वयम् मुमोह। ततः राधा राधा इति जल्पकः ताम् नीलराजीवलोचनीम् शोकमोचनीम् तुष्टाव। ततः सा महादेवी भुवनेश्या अवरोधिता। अद्य कृष्णदेहोद्भवा अतिभीता क्षणात् अद्रवत्।

पूर्व में श्रीकृष्ण के शरीर से सबसे अधिक सुन्दर राधिका प्रकट हुई। उस अपूर्वरूपिणी देवी को देखकर वे श्रीकृष्ण स्वयम् मोहित हो गये। इसके बाद व्याकुल होकर मुख से राधा-राधा पुकारते हुए नीलकमल से नेत्रों वाली एवं शोक का नाश करने वाली उस देवी को प्रसन्न करने लगे; किन्तु वह महादेवी राधा भुवनेशी के द्वारा रोक दी गयी। वह राधा आज कृष्णदेह से उत्पन्न होकर भी रति से भीत होकर क्षणभर में भाग गयी।।४-६।।

हस्ताप्राप्तां च तां देवीं न स जग्राह केशवः।
प्रेमभङ्गभयात् साऽपि ततश्चान्तर्दधे क्षणात्।।७।।
अन्तर्हितायां राधायां तत्कामासक्तचेतनः।
चिन्तयामास विश्वात्मा कथं मद्वशगा भवेत्।।८।।

सः केशवः हस्तप्राप्ताम् च ताम् देवीम् न जग्राह। ततः सा अपि प्रेमभङ्ग-भयात् क्षणात् च अन्तर्दधे। अन्तर्हितायाम् राधायाम् तत् कामासक्तचेतनः विश्वात्मा चिन्तयामास—सा मद् वशगा कथम् भवेत्।

वे श्रीकृष्ण अपने से हाथ भर दूर होने पर भी उस देवी को नहीं पकड़ सके। तब वह देवी भी प्रेमरस के भङ्ग होने के भय से वहाँ एक क्षण में अदृश्य हो गयी। राधा के अदृश्य हो जाने पर उसकी कामना में आसक्त चित्त वाले विश्वात्मा श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि वह किस तरह मेरे वश में हो सकती है।।७-८।।

अपूर्वरूपसम्पन्ना नवयौवनगर्विणी।
तत्र चिन्तयतस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः।।९।।
देहादाविर्बभूवाऽसौ परब्रह्मस्वरूपिणी।
समस्तलोकजननी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।।१०।।
यया कृष्णे न भेदोऽस्ति परमानन्दरूपिणी।
बहुरूपा च सा देवी ततो जाताः सहस्त्रशः।।११।।

तत्र परमात्मनः तस्य कृष्णस्य चिन्तयतः देहात् अपूर्वरूपसम्पन्ना नव-यौवनगर्विणी समस्तलोकजननी परब्रह्मस्वरूपिणी असौ श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी आविर्बभूव। सा ततः परमानन्दरूपिणी देवी बहुरूपा सहस्त्रशः जाता यया कृष्णे भेदो न अस्ति।

वहाँ विचार करते हुए परमात्मा उस श्रीकृष्ण के शरीर से अपूर्व रूपसम्पन्न, नव-यौवन के गर्व से गर्वित, समस्त लोकों को जन्म देने वाली परब्रह्म-स्वरूपिणी श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी प्रकट हो गयी। इसके बाद वह परमानन्दरूपिणी देवी बहुरूप होने से उसने अपने हजारों रूप बना लिए। उसमें और श्रीकृष्ण में कोई भेद नहीं है।।९-११।।

अनङ्गकुसुमाद्याश्च नित्यलीला महाबलाः।
नानारूपधराः सर्वा नानाशक्तिसमन्विताः।।१२।।

नानारूपधराः सर्वाः अनङ्गकुसुमाद्याः नानाशक्तिसमन्विताः नित्यलीलाः महाबलाः (आसन्)।

श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी से उत्पन्न वे सब अनङ्गकुसुमा आदिअनेक रूप धारण करने में समर्थ थीं। उनमें अनेक प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ छिपी हुई थीं। वे नित्य लीलामयी अत्यन्त बलशालिनी, अनेक रूप धारण करने वाली एवं अनेक शक्तियों से युक्त थीं।।१२।।

अन्वेषणाय राधायाः प्रेषिता विश्वरूपया।
राधया चापि ताः सर्वा निर्जिता निजमायया।।१३।।
तच्छ्रुत्वा त्रिपुरा देवी योगिनी त्रिपुरातनी।
चकार कर्म तद्दिव्यं मन्त्रमुद्रासमन्वितम्।।१४।।
संक्षोभणं द्रावणं च वश्याकर्षणमादनम्।
त्रिखण्डाद्या मुद्रिकाश्च वश्यकर्मकुतूहलाः।।१५।।
याभिर्विरचिताभिश्च का स्त्री न स्याद् वशंगता।

विश्वरूपया राधायाः अन्वेषणाय सर्वाः प्रेषिता ताः निजमायया राधया अपि निर्जिता च। तत् श्रुत्वा त्रिपुरातनी योगिनी त्रिपुरा देवी मन्त्रमुद्रासमन्वितम् तत् दिव्यम् कर्म चकार। संक्षोभणम् द्रावणम् वश्याकर्षणमादनम् च वश्यकर्मकुतूहलाः त्रिखण्डाद्याः मुद्रिकाः च (कृतवती) याभिः विरचिताभिः का स्त्री वशंगता न स्यात्।

विश्वरूपा त्रिपुरा ने उन्हें राधा जी की खोज के लिए भेज दिया; किन्तु राधा जी ने अपनी माया से उन सबको जीत लिया—यह सुनकर त्रिपुरातनी योगिनी त्रिपुरा देवी ने मन्त्रमुद्रा से युक्त संक्षोभण द्रावण वशीकरण आकर्षण मादन कर्म तथा वश्यकर्म में कौतूहल उत्पन्न करने वाली त्रिखण्डा आदि मुद्राओं का निर्माण किया, जिन मुद्राओं के बनाने पर संसार में ऐसी कौन स्त्री है, जो वश में न हो सके।।१३-१५।।

मायया मोहिता याश्च उन्माद्यन्तो मनस्विनि॥१६॥
न जाने कीदृशी तासां गतिर्भवति शोभने।
त्रिपुरा त्रिजगद्धात्री साक्षाद् या भगवत्तनुः॥१७॥
तया विरचिता माया न कस्या वा हरेन्मनः।
न जाने कासि देवी(?वि) त्वं किं ते नाम प्रकाश्यताम्॥१८॥
नवलावण्यवन्याभिः समाप्लावितविग्रहाः(?हा)।
न क्वापि कापि मे दृष्टा सृष्टाविह विहारिणी॥१९॥

मनस्विनि! याः मायया मोहिताः, उन्माद्यन्त्यः, शोभने! न जाने तासाम् कीदृशी गतिः भवति। जगद्धात्री त्रिपुरा या साक्षात् भगवत् तनुः, तया विरचिता माया कस्या वा मनः न हरेत्। देवि न जाने त्वम् का असि? ते किम् नाम? प्रकाश्यताम्। नवलावण्यवन्याभिः समाप्लावितविग्रहाः विहारिणी इह सृष्टौ क्वापि कापि मे न दृष्टा।

हे मनस्विनि! जो माया से मोहित होकर उन्मत्त हो चुकी थी, शोभने! उनकी कैसी दशा है, यह मैं नहीं जानती। जगत् की माता त्रिपुरा, जो कि भगवान् का ही विग्रह है, के द्वारा निर्मित माया किसका मन नहीं हर सकती? हे देवि! मैं नहीं जानती कि आप कौन हैं? आपका नाम क्या है? सो मुझे बताओ। नव लावण्य की राशि से आप्लावित शरीर वाली विहारिणी! मैंने इस सृष्टि में कहीं भी कोई भी नहीं देखी॥१६-१९॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्युक्ता सा महादेवी कृष्णदेवस्य वल्लभा।
वाणीं सुमधुरां कान्तामकरोदतिथिं मुखे॥२०॥

इति उक्ता कृष्णदेवस्य वल्लभा महादेवी कान्ताम् सुमधुराम् वाणीम् मुखे अतिथिम् अकरोत्।

इस तरह कही गयी उस कृष्णवल्लभा महादेवी राधा ने अपनी सुन्दर वाणी को मुख में अतिथि बनाया (अर्थात् मधुर वाणी में कहा)॥२०॥

श्रीराधिका उवाच—

न जानामि कुतो जाता कस्मादत्र समागता।
किं मे नाम न जानामि स्वभावचपलाऽस्म्यहम्॥२१॥
एकं स्मरामि पुरुषं श्यामलं पुरुषाकृतिम्।
तत्कटाक्षबाणभिन्नहृदया हृदयाम्बुजे॥२२॥
रिरंसुरपि तं दूरे भयात् प्रथमसङ्गमे।
दैवादहं गता दूरे नीपमूलादिति स्मरे॥२३॥

अहम् न जानामि कुतः जाता। अत्र कस्माद् समागता। अहम् स्वभावचपला अस्मि। मे किम् नाम (इति) न जानामि। एकम् श्यामलम् पुरुषाकृतिम् पुरुषम् स्मरामि हृदयाम्बुजे तत् कटाक्षबाणभिन्नहृदया तम् रिरंसुः अपि प्रथमसंगमे भयात् दूरे गता दैवात् अहम् नीपमूलात् दूरे (आसम् इति) स्मरे।

मैं नहीं जानती कि मैं कहाँ से उत्पन्न हुई। यहाँ कैसे आ गयी। मैं स्वभाव से ही चपल हूँ। मैं नहीं जानती कि मेरा नाम क्या है। मैं एक श्यामल आकृति वाले पुरुष को ही याद कर पा रही हूँ। उसने अपने कटाक्ष-बाणों से मेरे हृदयकमल को विक्षत कर दिया है। उसके साथ रमण की इच्छा होते हुए भी प्रथम संगम के भय से मैं उससे दूर हो गयी। भाग्य से मैंने अपने-आपको कदम्ब के वृक्ष से दूर पाया। बस, इतना ही स्मरण है।।२१-२३।।

ब्राह्मण उवाच—

ततो वृन्दा भगवती भूयः प्रोवाच कामिनी।
तामेव राधिकां देवीं प्रणयाविष्टमानसा।।२४।।

ततः प्रणयाविष्टमानसा देवी भगवती वृन्दा ताम् एव देवीम् राधिकाम् भूयः प्रोवाच।

इसके बाद प्रेम से आविष्ट मन वाली देवी भगवती वृन्दा ने उन देवी राधिका से पुनः कहा।।२४।।

वृन्दा उवाच—

कथयस्व महेशानि नाम किं ते सुखावहे।
रूपं दृष्ट्वा मोहितायै मह्यं शुश्रूषवे परम्।।२५।।
रूपमीदृग् नाम कीदृक् सुधासहचरं भवेत्।

महेशानि! सुखावहे! ते किम् नाम? रूपम् दृष्ट्वा मोहितायै परम् शुश्रूषवे मह्यम् कथयस्व। ईदृग् नाम कीदृक् सदा सहचरम् भवेत्।

हे महेशानि! हे सुखदायिनि! तुम्हारा रूप देखकर मोहित, अतएव परम सुश्रूषु मुझको बताओ कि तुम्हारा नाम क्या है। जिसका रूप ऐसा है, उसका नाम भी अमृत-सहचर होगा।।२५।।

इति व्याकुलिताया मे सत्यमान्दोलितं मनः।।२६।।
करुणा करुणापूर्णमरुणायतलोचने।
यद्यस्ति कुरु चेतस्त्वं मम शोकविमोचने।।२७।।

इति व्याकुलितायाः मे मनः सत्यम् आन्दोलितम्। हे अरुणायतलोचने! हे शोकविमोचने! यदि मम करुणा अस्ति (तर्हि) त्वम् चेतः करुणापूर्णम् कुरु।

इस तरह व्याकुल मेरे मन में सत्य ही आन्दोलन (हलचल) होने लगा। हे शोक का नाश करने वाली! लाल कमल के समान विशाल नेत्रों वाली! यदि आप मेरे प्रति करुणापूर्ण हैं तो मेरे ऊपर भी करुणा कीजिए।।२६-२७।।

श्रीराधिका उवाच—

श्रृणु ते कथयिष्यामि वृन्दे वृन्दारवन्दिते।
अष्टादशशतीं नाम्नां वेदागमसुगोपिताम्।।२८।।
पवित्रां परमां पुण्यां पापसंहारकारिणीम्।
श्रीकृष्णविरहाक्रान्तमनसो यदि नो सुखम्।।२९।।

हे वृन्दारवन्दिते वृन्दे! श्रृणु। ते वेदागमसुगोपिताम् पवित्राम् परमाम् पुण्याम् पापसंहारकारिणीम् नाम्नाम् अष्टादशशतीम् कथयिष्यामि। यदि श्रीकृष्णविरहाक्रान्तहृदयः सुखम् न।

हे देवों द्वारा पूजित वृन्दा! सुनो। मैं तुम्हें वेदों तथा आगमों में सुगोपित, पवित्र पुण्यदायिनी, पापसमूहों का नाश करने वाली, परम श्रेष्ठ अट्ठारह सौ नामों की अपनी नामावली सुनाती हूँ। यद्यपि श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल मुझे सुख नहीं है।।२८-२९।।

तथापि तव सौभाग्यान्मुखे वाणीं युनज्म्यहम्।
यत्ते प्रवर्त्तयिष्यामि प्रवर्त्त्यं न कदाचन।
केभ्योऽपि प्राणतुल्येभ्यो भक्तेभ्योऽपि विशेषतः।।३०।।

तथापि तव सौभाग्यात् अहम् वाणीम् मुखे युनज्मि। यत् ते प्रवर्त्तयिष्यामि तत् कदाचन केभ्योऽपि भक्तेभ्योऽपि विशेषतः न प्रवर्त्त्यम्।

फिर भी तुम्हारे सौभाग्य से मैं वाणी को मुख में जोड़ रही हूँ। मैं तुम्हें जो सुना रही हूँ, उसे कभी भी किसी को भी, चाहे प्राणतुल्य भक्त ही क्यों न हो, नहीं सुनाना चाहिए।।३०।।

(ॐ अस्याष्टादशशती नामस्तोत्रस्य नारद ऋषिरनुष्टुप् छन्दः श्रीकृष्णाभिन्ना राधा रसमयी शक्तिर्देवता पुरुषस्य पुरुषार्थचतुष्टयसाधने श्रीराधानाम्नामष्टादशशतीपाठे विनियोगः)

ॐ राधा परमा शक्तिः श्रीकृष्णप्राणवल्लभा।
नित्या रसमयी शुद्धा प्रबुद्धा बुद्धरूपिणी।।३१।।
कमला कमलास्या च कमलासनवन्दिता।
कमलासना कामिनी कान्ता कान्तमनोहरा।।३२।।

कान्तिमत्यनुरागाढ्या कामकेलिविलासिनी।
वृन्दारण्येश्वरी वृन्दा वृन्दारकमनोरमा॥३३॥
विश्वेषां जननी विश्वा विश्वपालनकारिणी।
विश्वाधारा विश्वरूपा विश्वसृष्टिविकासिनी॥३४॥
विश्वेश्वरी विश्वमाया विश्वसंहारचारिणी।
अमृता मोक्षदा मोक्षा मोक्षलक्ष्मीः सुलक्षणा॥३५॥
नित्यं विलासरसिका नित्यं कौतुकलम्पटा।
गोपी राज्ञी शशिमुखी खञ्जनाक्षी च खञ्जना॥३६॥
क्रीडानिकुञ्जनिलया कदम्बतरुवासिनी।
अभक्तोत्सारणकरी सदा प्रणतवत्सला॥३७॥
जगन्मोहा मोहरूपा गजेन्द्रमृदुगामिनी।
नितम्बिनी कामदेवजयजङ्गमदेवता॥३८॥
शिवदा विपदुद्धारकारिणी विजयप्रदा।
विजया भामिनी देवी श्रीमती रतिलालसा॥३९॥
मदोन्मत्ता मादिनी च दीप्ता त्रैलोक्यसुन्दरी।
वृषभानुसुता दुर्गा दुर्गोत्तारणकारिणी॥४०॥
श्रीवृन्दावनचन्द्राक्षि चकोरवरचन्द्रिका।
लावण्यवश्या स्नाताङ्गी पूर्णामृतरसोदया॥४१॥
अनन्तानन्तचरिताऽनन्तविक्रमचातुरी।
अरूपा अधिकाकारा अमिता अहिता हिता॥४२॥
अलीकहीना अध्यास्या अरिष्टगणभञ्जनी।
अरिक्ता अधृताशक्ता अत्युज्ज्वलसमुज्ज्वला॥४३॥
अत्यद्भुता अविकृतिरविचारविवर्जिता।
अवचोगोचराऽव्यक्तिरमनोवर्त्मगामिनी॥४४॥
अनुच्छ्वसन्मानसा च अतिकान्तिकलापिनी।
अजन्मा कर्मसुकृता अमला अतिसुन्दरी॥४५॥
अभिरामाऽभिचलिताप्यभिसारविहारिणी।
अतीवरतिसञ्चारिमानसा चातिकामुकी॥४६॥
अनङ्गरङ्गचतुरा चाङ्गसङ्गतचन्दना।
अपाङ्गभङ्गसञ्चारा अतिथिप्रियसेविनी॥४७॥
अमराराधिताङ्घ्र्यब्जा अलिका कलिकाकुला।
अचिन्त्यरूपचरिता अधिकानन्दशालिनी॥४८॥

अमन्दरससम्पन्ना अकला चाकुला तथा।
अकाला चाकृतिरताऽप्यचलाचलसन्निभा॥४९॥
अमन्दा अरुणाक्षी च अरुणारुणिमाधरा।
अपराधभञ्जिनी च अखला चाबला तथा॥५०॥
अगलन्ती छलाढ्या च अम्बुदागमहर्षिता।
अम्बरावीतसर्वाङ्गी अम्बुराशिनिवासिनी॥५१॥
अतलाघातिनी चापि अनिलानलरूपिणी।
अफलाढ्याप्यभीता च अमूलाप्ययमादरा॥५२॥
अरविन्देक्षणाऽलास्याऽप्यबोधा चाहृदर्पिता।
अक्षमालाधरा चाक्षकुन्तकाप्यक्षणेक्षणा॥५३॥
अकामाऽकालमिलिता अकान्ताऽगामिनी तथा।
अचारिकाऽजालगता अतानाऽतान्तरूपिणी॥५४॥
अदान्ताऽधारिणी चैव अलास्याऽपालिता तथा।
अवारिताप्यभाव्या च अमाल्याऽमार्दवाऽपरा॥५५॥
आकल्पाकलिताऽकल्या चाक्वणन्मणिनूपुरा।
आकम्राकमिता कम्रा चाकुञ्चितशिरोरुहा॥५६॥
आखेलमानाऽखेला च आखेटकविहारिणी।
आलस्येन विहीना च आलयालास्यकारिणी॥५७॥
आगमोक्ताऽप्यगणिता आगमे गोपिता गता।
आघृणाचञ्चलाऽभ्यर्च्या आज्ज्वलज्ज्वलनोज्ज्वला॥५८॥
आतन्वती अरतिकथामादरोदारभाविता।
आनतानतिसुप्रीता चापन्नैरापदि स्मृता॥५९॥
आफलितावृताऽवीता आभासयन्त्यभया तथा।
आमूलरससंस्निग्धहृदयाऽमयवर्जिता ॥६०॥
आयतारतिशीला च आलीढाहसितानता।
आलस्येन विहीना च आलयालास्यकारिणी।
आबुद्धाप्याश्रिताऽखिन्नाहाररूपा च जीविनाम्॥६१॥
आक्षोदाक्षीणमध्या च आक्षालनकरी तथा।
इन्दीवरवरामोदा इन्दुकोटिसुशीतला॥६२॥
इच्छामयीष्टा शिष्टानामिन्दीवरवनप्रिया।
इनसेवनसन्तुष्टा इकास्येभामदागमा॥६३॥

ईश्वरी ईशवशगा चेक्षणाह्लादकारिणी।
ईहमाना ईतिहीना ईडिता सर्वदैवतैः॥६४॥
उमा उचितकर्त्री च उक्तिप्रत्युक्तिकारिणी।
उन्मदाऽप्युषितोल्लासा चोच्चैस्तेजोभिरुज्ज्वला॥६५॥
उग्रा चोग्रप्रभा उल्काप्युग्रवाहनसेविता।
उच्चस्वराऽप्युदीर्णा च उन्नीतो(?ता)न्वयशालिनी॥६६॥
उच्चार्यमाणचरिता चोद्धतोद्धारकारिणी।
उपपन्नाऽप्युन्मनाश्च उपपातकपातिनी॥६७॥
उदाराऽप्युन्नसोपायाऽप्यूरीकृतजगत्त्रया।
उल्ललन्ती तथोल्लोलाऽप्युच्छ्रितोच्छ्रायकारिणी॥६८॥
उच्छ्वासाऽप्युच्छ्वसद्वक्त्रा उच्छ्वासनविवर्जिता।
उषा उषःकालगता उषसि प्रतिचिन्तिता॥६९॥
उत्साहवर्धनकरी उत्सहन्ती परां व्यथाम्।
उत्सेधोत्सेककलिता उत्सारितविदूषणा॥७०॥
उर्ध्वोर्ध्वगमनी(?ना) ऋक्षा ऋक्षवृन्दनिषेविता।
ऋक्षव्यूहाभयङ्का(?क)री ऋभुक्षा ऋक्षरूपिणी॥७१॥
एकाकिनी त्वेधमाना एणाक्षी एकसेविता।
ऐङ्काररूपिणी ऐक्यशालिनी ऐच्छिकी तथा॥७२॥
ऐश्वर्येण विनार्च्या च ऐन्द्रिया चैन्द्रदायिनी।
ओकःस्वरूपिणी ओघा ओघतारणकारिणी॥७३॥
ओजस्विनी औचिती च औदरिक्यौर्द्धि(?र्ध्वि)की तथा।
कालिका कालिकाकीला कीलालाकुलनिग्रहा॥७४॥
कुलीना कुलधर्माढ्या कुचकुट्टलकुट्टिता।
कृताकृतमयी कृत्या हीनाकृतिनिषेविता॥७५॥
केलिलोला केलिरूपा कौलिकी कौलरूपिणी।
कौलाचारपरा कौलैः सेविता कौलधर्मिभिः॥७६॥
काञ्चनाङ्गी कण्टकिनी कण्टकेन विवर्जिता।
कुत्साविहीना कन्दर्पदर्पसंहारकारिणी॥७७॥
कलिन्दकन्या कूलस्था कालिन्दी कलनिःस्वना।
काकी कङ्कतिका कङ्करूपिणी चैव किङ्करी॥७८॥

काचा काचमयी चैव कच्छपी कज्जलोज्ज्वला।
कटकर्त्री कटिपटी कटन्दीनिरता कटा॥७९॥
कठोरा कठिनव्यक्ता कठिना कठिनस्तनी।
कडाराकाण्डसम्पूर्णकण्डूः कण्डूतिकारिणी॥८०॥
कुण्डा कुण्डलिनी कुण्डरूपिणी कुण्डसंस्थिता।
कुण्डिना कुण्डिनस्था च कण्डोलस्थितिकारिणी॥८१॥
कातरा क्वथिता क्वाथा कनकाचलवासिनी।
काननी काननमयी काननेन स्तुता कदा॥८२॥
काधारा कृपणा कूपा कूपशोषणकारिणी।
कफप्रहारिणी चैव कैवल्यमोक्षदायिनी॥८३॥
कामाकुला कूलहीना कर्मकार्मणकारिणी।
कामदीप्ता कामरूपा कलाढ्या काशिकामयी॥८४॥
काशीश्वरप्रकाशा च कौशिकी कोशरूपिणी।
कशा कशाताडिनी च केशिनी केशिसूदनी॥८५॥
काष्ठा काष्ठिनी कुष्ठनाशिनी कुशजनकरी।
कुशेशया कृशाङ्गी च कीशकेश्वरसेविता॥८६॥
कुशला कुशलाढ्या च कुशला कलिका तथा।
काषायवसना काष्ठा काष्ठिनी कुष्ठनाशिनी॥८७॥
कूर्मजलकरी कंसध्वंसिनी कसृतिक्षमा।
काहरकारिणी कक्षा कक्षाकोटिविहारिणी॥८८॥
कक्षरूपा कक्षमयी कौक्षेयककरी तथा।
कुक्षिसंस्थापिता चैव कुक्षतिः कुक्षमाकरी॥८९॥
चक्रपाणिश्च चकिता चक्राढ्या चक्रवर्तिनी।
चामीकराकारगौरी चमूरुरमणीक्षणा॥९०॥
चञ्चला चिञ्चिनाथेष्टा चञ्चदङ्गी च चिञ्चिका।
चटका चटकप्रीता चण्डिका चण्डविक्रमा॥९१॥
चित्तेशा चातकी चन्द्रा चन्द्रिका चन्द्ररूपिणी।
चीनाचारपरा चैव चीनदेशभवा तथा॥९२॥
चपला चम्पकामोदा चम्पकाङ्गी तथैव च।
चयरूपा चयाकारा चारुरूपा चराचरा॥९३॥
चरित्रचारिणीचर्व्यमानासुरनराधिपा ।

चतुश्चीरधरा चीरा चिरचारणचारिता॥९४॥
चलाचलप्रिया चैव चलद्विन्दिमनोहरा।
चाषरूपा चूष्यरसा चषकास्यतपायिनी॥९५॥
चक्षुर्लक्षणयुक्ता च चरमाऽचरमाऽचला।
टीका टङ्कारिणी चैव टलण्टलकरी तथा॥९६॥
तिद्रा चैव तथा तङ्का तङ्किनी तङ्कवर्जिता।
तिग्मा तकारसन्तुष्टा तिग्मवह्निप्रिया तथा॥९७॥
तङ्कनी तङ्कमहिमा तच्छीस्ताच्छील्यशालिनी।
तृच्छहीना तेजिता च तञ्जिता तञ्जयात्मिका॥९८॥
तटिनी तटरूपा च तडित्ताडनकारिणी।
तडागनिलया ताड्या तडित्वत्प्रीतिदायिनी॥९९॥
ताण्डवा ताण्डवप्रीता तण्डा ताण्डवितानना।
तूणीरा तूणकुशला तुण्डिनी तुण्डभूषणा॥१००॥
तता ततिकरी तानप्रिया तित्तिरिनिःस्वना।
तोत्रा तोत्रकरा चैव तत्सत्तत्सन्निवेशिता॥१०१॥
ततिनी तडिनी चैव तथास्त्वितिवरप्रदा।
तथागतागताभिज्ञा तथ्यवाणी तथैव च॥१०२॥
तथ्यातथ्यव्रता चैव तिथिस्तिथिपतिप्रिया।
तदाराध्यतनुस्तन्वी तनुरूपा तनीयसी॥१०३॥
तनिनी तानरसिका तपस्या तपसारता।
तपस्विनी तानरसिका तापिनी तापसप्रिया॥१०४॥
तृप्ता तेमनसुप्रीता तेमना ताम्यतीतमा।
तापिनी तारिणी तारा त्रिनेत्रा त्रिशरीरिणी॥१०५॥
त्रयी त्राणकरी त्रेता त्रेतायुगसमुत्थिता।
तरिस्तरणिसन्तुष्टा तरुणी तरुरूपिणी॥१०६॥
तरुणानन्दिनी तीररसिका तीरसंस्थिता।
तला तल्लयमापन्ना तानोत्सवपरायणा॥१०७॥
तालाङ्करसिका तालप्रिया तिलकिनी तिला।
तिलोत्तमा तुलाहीना तुलिता तृणकारिणी॥१०८॥
तुषिनी तृषहीना च तुष्टिस्तुष्टमनास्तथा।
तृष्णा तृष्णावर्जिता च तोषिणी तोषकारिणी॥१०९॥

तक्षिणी तक्षरूपा च तक्षकादिनिषेविता।
तीक्ष्णा तीक्ष्णप्रभा पाका पाकसम्पादिनी तथा॥११०॥
पिकस्वरा पक्षिरता पक्षिराजनिषेविता।
पक्षव्रतपरा चैव पक्षिणी पक्षरूपिणी॥१११॥
पूग(प?गा) पूगरता पङ्का पङ्काकुलसुदुर्लभा।
पचिनी पाचिनी पृच्छा पृच्छाकुशलकारिणी॥११२॥
पूज्या पूजनशक्ता च पञ्चाननिषेविता।
पञ्चवक्त्रा पञ्चबाणमोहिनी पञ्चसेविता॥११३॥
पञ्चत्वहा पञ्चपापनाशिनी च तथैव च।
पञ्चमस्वरसन्तुष्टा पञ्चास्यक्षीणमध्यमा॥११४॥
पाञ्चालिका पाञ्चजन्यनिनदा पिञ्जशालिनी।
पाञ्जरा पञ्जरस्था च पुञ्जिनी पुञ्जरूपिणी॥११५॥
पटीसिन्दूरतिलका पटशाटीसमावृता।
पाटला पुटिनी चैव पेटीपोटा तथैव च॥११६॥
पठनासक्तहृदया पाठिनी पीडितासुरा।
पणकर्त्री पाणिपद्मशोभिता पण्डिता तथा॥११७॥
पाण्डित्यदायिनी चैव पिण्डदा पिण्डतोषिता।
पतितोद्धारकर्त्री च पातिताऽमित्रसंहतिः॥११८॥
पितृभक्तिरता चैव पुत्रिणी पुत्रदायिनी।
पूतना पूतनाशत्रुः पृतना पृतनावती॥११९॥
पोतधानाधानकर्त्री पोतनिस्तारकारिणी।
पथिपूज्या पथिप्रज्ञा पथिकोच्छ्वासकारिणी॥१२०॥
पाथोरुहनिवासा च पृथिवी पृथिवीश्वरी।
पदा पादपतद्भक्ता पिदधाना पिधायिनी॥१२१॥
पानीयजसमुच्चेताः पीतस्तनकटिद्वया।
पुनः पुना रसावेशा पौनःपुन्यविधायिनी॥१२२॥
पन्थाः पान्थस्वरूपा च पान्थदुःखविनाशिनी।
पापनाशी पुष्परता पवनोत्सुकमानसा॥१२३॥
पावकोज्ज्वलतेजाश्च पिब पिबेतिवादिनी।
पीवरा पामराप्राप्या पम्पापदविलासिनी॥१२४॥
पयस्विनी पयोजाढ्या पायसप्रीतमानसा।

प्रियालकुसुमासक्ता परोन्मूलनकारिणी॥१२५॥
पारप्रदा पुराणार्च्या पूर्वोत्था पूर्वसेविता।
पौर्वापर्यकरी चैव पलायनविवर्जिता॥१२६॥
पालनी पुलकाङ्गी च पाशहस्ता तथैव च।
पृश्निगर्भावतारा च पिण्डाघोरसुदुर्धरा॥१२७॥
पुष्टदेहा पुष्टरूपा पोष्यपोषणकारिणी।
पौषमासनिदाघा च पाक्षिकी पक्षिनिःस्वना॥१२८॥
पक्षद्वयविधात्री च पक्षान्तार्हणतोषिता।
खकृता खगतिश्चैव खगतिर्लघुपायिनी॥१२९॥
खगे खगी खगरुती खगनागस्वरूपिणी।
खञ्जा खञ्जप्रिया चैव खञ्जनाक्षी च खञ्जनी॥१३०॥
खट्वारता च खड्वाङ्गधारिणी खेटकप्रिया।
खण्डा खाण्डवदाहा च खण्डिता सुरयूथपा॥१३१॥
खादन्ती खाद्यमाना च खण्डहीना च खेदनी।
खनित्री खननासक्ता खनिरूपा खनीलिभा॥१३२॥
खिन्ना खरतरा चैव खरांशुमालिनी तथा।
खलखली (खा)रकरी खलनीकुरुकाश्रया॥१३३॥
खलीना खिलहीना च खिलाखिलनिषेविता।
गौर्गोभिःकमिता चैव गोखुरार्चनसंरता॥१३४॥
गगना गगनाधारा गोगता गोगणार्चिता।
गोग्रहा गोग्रह्लादकारिणी च तथैव च॥१३५॥
गोधनाह्लादसन्तुष्टा गोघटा घटिता तथा।
गङ्गा च गाङ्गता चैव गञ्जनी गञ्जनोज्झिता॥१३६॥
गुञ्जन्मधुव्रतरुता गुञ्जामालाविभूषणा।
गणेश्वरी गणरता गणेश्वरनिषेविता॥१३७॥
गुणिता गुणपूर्णा च गौणा गुणविवर्जिता।
गण्डा गण्डवती चैव गण्डकुण्डलमण्डिता॥१३८॥
गण्डकी चैव गाण्डीवधारिणी गेन्दुकप्रिया।
गता गतिमती चैव गीता गीताप्रचारिता॥१३९॥
गोतनुर्गोतता गाथा गाथागानपरायणा।
गदिता गदसंहन्त्री गोदानव्रतचारिणी॥१४०॥

गोधा गोधाङ्गुलित्रा च गोधान्यधनवर्द्धिनी।
गानासक्तमनाः गन्त्री गन्धा गन्धवहा तथा॥१४१॥
गोपी गोपालसक्ता च गोपालबालपालिता।
गोपगोपार्चिता चैव गोपतिप्रणयान्विता॥१४२॥
गोफला गोफलकरी गोवर्धनधरी तथा।
गोबला गोबलीवर्दनर्दनोत्सवमानसा॥१४३॥
गोपालकलिताभूषा गोविन्दप्रेमलालसा।
गोवाहनमनोज्ञा च गोवृता गोवनस्थिता॥१४४॥
गोभारभरणासक्ता गोभूता गोऽमृतप्रिया।
गमिता गमने मन्दा गामिनी गोमती तथा॥१४५॥
गम्भीरी चैव गम्भीरा गयासुरनिषूदनी।
गया गयावासिनी च गायत्री चैव गायनी॥१४६॥
गेया गोयानरसिका गरला गरलाकुला।
गानोन्मत्तमणिश्रीका गिरन्ती च गिरामयी॥१४७॥
गीर्यमाणा गोरसाढ्या गोरसक्रयकारिणी।
गौरी गोश्वसितामोदा गृष्टिरूपा तथैव च॥१४८॥
गोसारणकरी चैव गोसुलक्षणलक्षिता।
गोसर्जनकरी चैव गहना गहनप्रिया॥१४९॥
गाहा गुहनिषेव्या च गुह्या च गृहदेवता।
गेहिनी गोक्षमाधीरा घूका घूकारुतोत्सवा॥१५०॥
घाटिता घटिता चैव घाटावत्यपि घाटिका।
घोटकाकारकलिता घण्टा घण्टाविमोदिनी॥१५१॥
घण्टाकर्णनिषेव्या च घाणामौद्रिकराजिता।
घृणावती घातकरी घृतामोदविधायिनी॥१५२॥
घनानन्दा घनमयी घनाघननिषेविता।
घनागमकृतरतिर्घर्मागमसुशीतला ॥१५३॥
घर्षणा घृष्टरूपा च घृष्टिर्घासाभिलाषिणी।
छेकाछेकखेलमाना छगली छागवाहिनी॥१५४॥
छागवाहनसेव्या च छटात्रैलोक्यमोहिनी।
छत्राछत्रमयी छत्रछादिता छात्ररूपिणी॥१५५॥
छदाकर्णा छादिनी च छेदिनी छेदवर्जिता।

छदरूपा छन्नरूपा छन्ननाम्नी तथैव च॥१५६॥
छिन्नमस्ता छन्नमूर्तिश्छन्नप्रच्छन्नकारिणी।
छन्दा छन्दमयी चैव छन्दोगा छन्दसां प्रभुः॥१५७॥
छायामयी छायिनी च छायाकर्त्री छलप्रिया।
छलाछलकरी छल्या जगन्नाथप्रियापि च॥१५८॥
जगतामुपकर्त्री च तथा जागरणक्षमा।
जङ्गमा जङ्गमेशानी तथा जङ्गमचारिणी॥१५९॥
जटाजूटधारिणी च जडाजडनिपातिनी।
जितामित्रा च जेत्री च जैत्रकर्मविधायिनी॥१६०॥
जननी जननीतिज्ञा जिनाचारपरायणा।
जपा जप्या जपकरी जापिनी जीवधारिणी॥१६१॥
जीवापि जीवजीवातुर्जैवात्रिकमनोरमा।
जडिनी जडसुप्रीता जमलार्जुनभञ्जिनी॥१६२॥
जेमना जेमनकरी जैमिनिस्तवनप्रिया।
जम्बूलमालिकारक्ता जम्बूप्रीता च जाम्बवी॥१६३॥
जाम्बवत्यपि जम्बाला जम्बालकलिताऽपि च।
जम्बुवत्सेविता चैव जम्बूनदविभूषणा॥१६४॥
जम्बीरविपिनासक्ता जम्बुकाननवासिनी।
जृम्भापि जृम्भमानास्या जम्भसूदनवन्दिता॥१६५॥
जम्भप्रवैरिणी चैव जया च जयिनी तथा।
जाया जेयविजेत्री च जरामरणवर्जिता॥१६६॥
जला जलमयी चैव जलैश्वरनिषेविता।
जलवासा जालहीना जालक्षेपणकारिणी॥१६७॥
जक्षिणी जक्षसेव्या च जक्षिणीगणसेविता।
जक्षराडभिलाष्या च झङ्कारा झङ्कृतिप्रिया॥१६८॥
झञ्झारूपा झटा चैव झिण्टीकुसुमपूजिता।
झररूपा झषाकारा झषराशिनिषेविता॥१६९॥
ठं ठं ठनितिशब्दाढ्या ठद्वया ठठरूपिणी।
डमड्डमरुहस्ता च ढक्कावाद्यविनोदिनी॥१७०॥
दण्डा दण्डधरा चैव दण्डपाणिनिषेविता।
दात्री दूती दूत्यसक्ता दूतिसञ्चारकारिणी॥१७१॥

दानसञ्चारसन्तुष्टा दानद्विरदगामिनी।
दण्डिनी दण्डधवला दान्ता द्वन्द्वविनाशिनी॥१७२॥
दन्दशूकसमाकारा दवाग्निवीर्यसम्भृता।
दावस्थिता दविष्ठा च देवतागणसेविता॥१७३॥
देवी देववसुस्निग्धा देवकी देवकप्रिया।
तथा दैवविधानज्ञा दैवविद्भिर्निषेविता॥१७४॥
दमरूपा दामिनी च दम्भा दम्भोलिविक्रमा।
दम्भा दम्भवती चैव दया चापि दयामयी॥१७५॥
दायाढ्या दायरूपा च दूयमाना सुराधिपा।
देवप्राप्या दराढ्या च दरहीना दरावहा॥१७६॥
दारिणी दूरलभ्या च दलपूर्णा दलप्रिया।
दोलायमानसर्वाङ्गी दिव्यतेजःप्रकाशिनी॥१७७॥
दिव्या दिविविहारा च दिवारात्रिकरी तथा।
दशदिग्ज्योतिनी चैव दशाफलविधायिनी॥१७८॥
दशादशकलादेशकालोचितपराक्रमा।
दिशन्ती दाशरूपा च दोषलेषविवर्जिता॥१७९॥
दोषक्षयकरी दृष्टदूषणोद्धारकारिणी।
दासीप्रिया दास्यकरी दासीगणविराजिता॥१८०॥
दहना दहनेशा च दाहनिर्मूलकारिणी।
दहनी दीहमाना च दिहन्नितम्बशालिनी॥१८१॥
देहधात्री दौहिकी च दोहिनी दोहरूपिणी।
दक्षा दक्षिणदिग्जाता दक्षिणा दक्षिणप्रिया॥१८२॥
दाक्षिण्यनिरता दीक्षा दीक्षाकृतिपरायणा।
दीक्षितप्रणयाविष्टा दीक्षितातिवशस्थिता॥१८३॥
धिक्कारिणी च धटिनी धेटीकटिसुशोभिता।
धेटिनी धेटरूपा च धृतश्री धौतविग्रहा॥१८४॥
धन्या धनदसन्तुष्टा धन्वानोदनकारिणी।
धूपिनी धूपसम्मोदा धवलाङ्गी च धाविनी॥१८५॥
धमिनी धामिनी धूम्रा धूमकेतुविनाशिनी।
धूमयोनिकृतप्रीतिर्धूम्रलोचनमर्दिनी॥१८६॥
धूमा धौम्या धौम्यरता ध्मायमानाऽम्बुजापि च।

धिया प्राप्या धूयमाना ध्येया ध्यानविगोचरा॥१८७॥
धरणी धरणीशानी धरणीधरधारिणी।
धारा धारमयी धारा धारिणी धीरपूजिता॥१८८॥
धुरन्धरा धोरणी च धौरीणव्रतचारिणी।
धूलिधूसरगात्रा च धूसरा धूसरेक्षणा॥१८९॥
धिषणावत्सेविता च धिषणा धिषणावती।
धूक्षन्ती नाकनिलया नाकनायकनायिका॥१९०॥
निकटस्था च नौका च नौकासन्तारकारिणी।
नृकपालमालकण्ठा निकारान्तविधायिनी॥१९१॥
नखरा नखचन्द्रा च नखरेखाविभूषणा।
नगगा नगजा चैव नगराजनिवासिनी॥१९२॥
नागवाहनसन्तुष्टा नागिनी नागसेविता।
नवला नाचला चैव नृचातुर्यकरी तथा॥१९३॥
निचोलाञ्चलसंवीता नैचिकीगणपूजिता।
नौचला नौच्छलकरी नृच्छादनकरी तथा॥१९४॥
निजलोकशोकहरा नेजनी नौजनस्तुता।
नृजनार्चनसन्तुष्टा नृपसंहारकरी तथा॥१९५॥
नाटिनी नटरूपा च नटनाटनकारिणी।
नाट्यलीलाविनोदा च नाटिताखिलसंसृतिः॥१९६॥
नीजजारुतकर्त्री च नीजजाधिपवाहना।
नतचेतोऽम्बुजस्था च निन्दानन्दमयी तथा॥१९७॥
नूतनातिनूतना च नेत्रत्रयविभूषिता।
नेत्री नेत्रशोभिताङ्गी नास्वरूपा नदन्मुखी॥१९८॥
नादरूपा निदधती नौधराधरनिश्चला।
नदस्वरा चैव तथा नानागुणसमन्विता॥१९९॥
नृणामप्रीतिहृदया नौनाशितभयावहा।
नन्दिनी नन्दिता चैव नन्दनन्दनजीवनी॥२००॥
निन्दाहीना तथा नन्दा नीपमूलविना(?निवा)शिनी।
नृपतित्वप्रदा चैव नौपतिप्रतिसेविता॥२०१॥
नृफलैकप्रदात्री च नवनीतसुकोमला।
नवनीतरसस्निग्धा निविडाश्लेषकारिणी॥२०२॥

नीतिबन्धानुबन्धा च नभोगमनलालसा।
नाभि ह्र(?ह्र)दगभीरा च नभोसद्भास्करोज्ज्वला॥२०३॥
अपि नौभवनस्था च नमस्या नाममोहिनी।
निम्ननाभिसुशोभा च नृमण्डलविभूषणा॥२०४॥
नेमिर्नेमिवती चैव नैमिषारण्यवासिनी।
नित्यरूपा नित्यरसा नयनानन्दवर्धिनी॥२०५॥
नयधीरा नायिका च नियता नियतिप्रदा।
नियमाचारसञ्चारा नरेन्द्रपरिसेविता॥२०६॥
नरान्तर्यामिनी चैव निरयान्तककारिणी।
नारायणी नीरवासा नैरन्तर्या च नौरता॥२०७॥
नलसेव्या च नानाढ्या तथा नीलसरस्वती।
नृलम्बनकरी चैव नौलम्बनकरी तथा॥२०८॥
नाशानी नाशरहिता नृशीलपरिशीलता।
नौ(?नै)शान्धकारदलनी नोषरस्था च नौषिता॥२०९॥
नासावेषितमुद्रा च नृसज्जनसुतोषिता।
नीहारालयपुत्री च निहतिर्निहतिक्रिया॥२१०॥
नीहारांशुसमाकारा तथा नौहरणोद्यता।
नृक्षयकरी तथा चैव नौक्षालनकरी तथा॥२११॥
फटावती फणिपतिप्रथिता फणदीपिता।
फेनशुभा च फूत्कारा फेत्कारिण्यपि फेरुता॥२१२॥
फलदात्री फुल्लरूपा फुल्लस्तबकशोभिता।
फल्गुरूपा फल्गुवाक्या फल्गूत्सवपरायणा॥२१३॥
बकलीला बाकला च वृकव्यूहविनाशिनी।
वृकोदराऽनिरूपा च वाता वाग्वागुपासिता॥२१४॥
विगता वेगिनी चैव विधात(तृ)भयनाशिनी।
वचनारचनादक्षा वाचिकप्राणमोहिनी॥२१५॥
विचारचतुरा वीचिर्वीचिहन्त्री तथैव च।
वज्रभूषा वज्रपाणिर्वज्रवैरोचनी तथा॥२१६॥
वाजिपृष्ठसमारूढा विजरा बीजरूपिणी।
वञ्चकारुतसन्धात्री वञ्चकव्यूहवेष्टिता॥२१७॥
वटमूलनिवासा च वटाधिष्ठानकारिणी।

विटजल्पिसुसुप्रीता विट्ठलेश्वरपूजिता॥२१८॥
विट्पूजिता च वडवा वाडवाग्निसमप्रभा।
वीणावादनसुप्रीता वीणा वीणावती तथा॥२१९॥
वन्दनासक्तहृदया वसन्तोत्सवकातरा।
वातपुत्री च वितनुध्वजिनी वीतविद्रवा॥२२०॥
वृतकन्दर्पमित्रा च वेत्रपाणिस्तथैव च।
वादा वादप्रिया चैव वादिनी विदरा तथा॥२२१॥
वेदरूपा वेदवती वैदर्भी वधकारिणी।
वाधा वाधानाशिनी च विधन्वा विधुरुपिणी॥२२२॥
विधिशीला बुधा बोध्या वेधःपूज्या च वैधसी।
बोधिता बोधशीला च बौद्धा बौद्धक्रियाप्रिया॥२२३॥
वनस्थिता वानप्रस्था विनेत्री वृन्तरूपिणी।
वन्दनप्रीतचित्ता च वन्दिता वन्दितप्रिया॥२२४॥
वृन्दारवृन्दवीता च वृन्दावनविलासिनी।
बन्धनापन्नाशिनी च बन्धुजीवारुणाधरा॥२२५॥
वन्ध्यापत्यप्रदा चैव बान्धवाप्रीतमानसा।
वपनोत्सवसंसर्पा वनिता विपणिस्थिता॥२२६॥
वरा वरस्त्रवद्रक्ता विवरान्तरचारिणी।
विभीर्वैभवसम्पूर्णा वमितासुरपुङ्गवा॥२२७॥
वामा च वामदेवार्च्या विमनोहृदयस्थिता।
बिम्बाधरा व्ययाढ्या च वैयासकिनिषेविता॥२२८॥
वरारोहा वारिणी च विरहानलकीलिता।
वीरा वीर्ययुता चैव वीरणप्रीतिमानसा॥२२९॥
वैरिनिष्कम्पिनी चैव बलसूदनदुर्लभा।
बलरामाभिरामा च बलविक्रमकारिणी॥२३०॥
बाला बिलप्रविष्टा च विलम्बकरणक्षमा।
वशंवदा विशाखेशा वेशचारुविलासिनी॥२३१॥
वैशम्पायनपूज्या च वषड्विषविनाशिनी।
वृषासुरनिहन्त्री च वृषरक्षणकारिणी॥२३२॥
वौषट्वसनशून्या च वास्तुयागसुतोषिता।
विस(?सि)नीदलवासा च वाहिनी वाहिनीस्थिरा॥२३३॥

विहारकारिणी चैव बृहती वैहायसी तथा।
वक्षोरुहयुगोत्तुङ्गा विक्षालनकरी तथा॥२३४॥
वृक्षश्रेष्ठाग्रनिलया भेकप्लुतिविनाशिनी।
भगमालालङ्कृता च भगवत्यपि भागिनी॥२३५॥
भाग्यवती तथा चैव भृगुसेवनतोषिता।
भोगिनी भोगदा भोग्या भङ्गभीतिविनाशिनी॥२३६॥
भृङ्गरङ्गसङ्गमा च भजनस्निग्धमानसा।
भाजनश्रीवृद्धिकरी भुजान्दोलविलासिनी॥२३७॥
भोज्यभोजनसन्तुष्टा भञ्जनी भटदुर्घटा।
भुवनासक्तवदना भण्डमण्डनकारिणी॥२३८॥
भाण्डवत्यपि भाण्डाङ्गी भीता भूतनिषेविता।
भृता भृत्यप्रिया चैव भौतचेष्टाविधायिनी॥२३९॥
भिदाकर्त्री भेदहीना भूपगोष्ठीसमर्चिता।
भौपपदप्रदात्री च भवेन परिभाविता॥२४०॥
भाविनी भुवनप्रीता तथा भामा च भामिनी।
भयवीर्यपोषणी च भूमिर्भूमिगुणावृता॥२४१॥
भौमस्थानप्रदात्री च भौमग्रहसुपूजिता।
भयहीना भवोद्भ्रान्ता भारोत्तोलनकारिणी॥२४२॥
भीरुर्भूरिगुणोपेतसेविता भेरिनिःस्वना।
भेरुण्डा भैरवी चापि भूलम्बनकरी तथा॥२४३॥
भृगुदुरितहन्त्री च भाषिणी भिषगर्चिता।
भीषणा च भुशुण्ड्यस्त्रा भूषणेन विभूषिता॥२४४॥
भेषजाशननीरोगा भैषज्यपददायिनी।
भक्षिणी चैव भिक्षुश्च भिक्षाकर्मकलापिनी॥२४५॥
भूक्षयकलालोला च तथा भैक्ष्यविधायिनी।
भैक्षाचारसुसन्तुष्टा मकराकृतिकुण्डला॥२४६॥
मुक्ता मुक्तानिषेव्या च मुक्ताहारविहारिणी।
मृकण्डुतनयाच्र्या च मृकण्डुपरिखण्डिनी॥२४७॥
मौक्तिकाभासुररदा मखकर्मसमर्हिता।
मेखला कटिबन्धा च मौखर्यपरिवर्जिता॥२४८॥
मृगशिरसि जाता च मृगचर्मोपवेशिता।

मृगपत्नीलोचनी च मुग्धा मुग्धनिषेविता॥२४९॥
मघवद्विक्रमकरी मोघीकृतरिपुव्रजा।
मेघकेशी मङ्गली च तथा मङ्गलदायिनी॥२५०॥
मज्जावती मृजाशीला मञ्चस्था मञ्जुवागपि।
मोटिनी मठमध्यस्था मृडानी मेढ्रचक्रगा॥२५१॥
मणिमण्डपमध्यस्था मणिराजिविराजिता।
मणिपत्रस्थिता चैव तथा माणवकाकृतिः॥२५२॥
मृणालाभभुजायुग्मा मृणालशयनोत्सुका।
मण्डलान्तरसंस्था च मुण्डमालासमाकुला॥२५३॥
मताभिज्ञा मातलीष्टा मित्रसंसर्गतोषिता।
मृतसत्कारकर्त्री च मैत्रवर्त्मप्रकाशिनी॥२५४॥
मथनी मदपूर्णा च मादिनी मुदिता तथा।
मृदिता मेदुरा चैव मोदिनी मौदिरप्रदा॥२५५॥
मधुमाध्वीकमत्ता च माधवीपुष्पसौरभा।
मृधनिर्जयिनी चैव मनोविषयजृम्भिता॥२५६॥
मानिनी मीननेत्रा च मुनिराजनिषेविता।
मौनिनी च तथा चैव मन्थानदण्डधारिणी॥२५७॥
मन्दारकुसुमार्च्या च मान्द्यवर्जनकारिणी।
मयदानवसंसेव्या मायाहीना च मायिनी॥२५८॥
मयूरनिनदाप्रीता मयूररुतकारिणी।
मरणत्रासहन्त्री च मारोद्दीपनकारिणी॥२५९॥
मुरागन्धप्रिया चैव मललेशविनाशिनी।
मालाशोभितसर्वाङ्गा(?ङ्गी) मिलन्ती मीलयन्त्यपि॥२६०॥
मूलरूपा मौलिका च मेधामैश्वर्यदायिका।
मिषन्ती मूषिकाकारा मूषिकांशुवरप्रदा॥२६१॥
मेषादिनी मोषहीना मासव्रतपरायणा।
मोहिनी मक्षिकारूपा मेक्षणी मोक्षधायिनी॥२६२॥
यागप्रिया युगकरी योगिनीकोटिवल्लभा।
यौगिकी याचमाना च यच्छन्ती यजनक्रिया॥२६३॥
याजयन्ती तथा चैव योजनायामविस्तृता।
योटनी यतमाना च यातनाक्षयकारिणी॥२६४॥

यदुवंशक्षयकरी यानमङ्गलचारिणी।
योनिरूपा यौवनाढ्या युवलोकविलोकिता॥२६५॥
यमभीतिक्षयकरी यामिनी यमुना तथा।
यावद्गुणसुसम्पन्ना यशस्या च यशस्विनी॥२६६॥
यशोदामोहिनी चैव योषाकुलशिरोमणिः।
रुक्मिणी रागरसिका रुगपेता च रोगहृत्॥२६७॥
राघवी राघवप्रीता रङ्कानुग्रहकारिणी।
रङ्गदा रिङ्गणकरी रोचिः सञ्चारकारिणी॥२६८॥
रुचिका रौचिकी चैव राजलक्षणलक्षिता।
रुजासञ्चारकर्त्री च रञ्जना रटनोत्सवा॥२६९॥
रणदुर्मदमत्ता च रतकालविलासिनी।
रीतिज्ञा रुतघोरा च रथलक्षपुरोगता॥२७०॥
रदद्वयस्मेरयुता राधिता रोधकारिणी।
रोधोविनाशिनी चैव रन्धनाकुलविग्रहा॥२७१॥
रूप्यभाण्डा रूपवती रोपणी रवकौतुका।
राविणी रेवती रेवा तथा रैवतकस्थिता॥२७२॥
रमा च रमणी चैव रामणीयकसंयुता।
रोमराजीराजिता च रम्भा रम्भावनस्थिता॥२७३॥
रयकर्त्री रोषकरी रुष्टा रसितकौतुका।
रसावेशविलासा च रोहिणी रक्षिणी तथा॥२७४॥
राक्षसेश्वरसेव्या च रूक्षा लकुचवेष्टिता।
लगिता लग्नसञ्चारा चापि लग्नमयी तथा॥२७५॥
लघुबुद्धिप्रदा चैव लङ्कापुरनिवासिनी।
लैङ्गवर्त्मप्रकाशा च लिङ्गरूपा च लिङ्गिनी॥२७६॥
लङ्घनी च तथा लज्जा लज्जाभरधरा तथा।
लाजविक्षेपणी चैव लाङ्गुली लाङ्गुलान्विता॥२७७॥
लाता लोडनकर्त्री च लूतातन्तुप्रसारिणी।
लूनामित्रा च लपनी लापसंलापकारिणी॥२७८॥
लोपामुद्रा लाभकर्त्री लोभहीना च लौभनी।
लोमशाराध्यचरणा लम्बनी लम्भनी तथा॥२७९॥
लयहीना लयगता लयनान्तरशायिनी।

लालामयी ललज्जिह्वा लास्यकर्त्री च लासिका॥२८०॥
लक्षसेव्या च लाक्षाभा लाक्षारागानुरागिणी।
बुद्धिप्रदा बुद्धिरता बुद्धिरूपा तथैव च॥२८१॥
शक्तिः शाकम्भरी चैव शिक्यनिर्माणकारिणी।
शुकपोषणकर्त्री च शुकदेववरप्रदा॥२८२॥
शूकराकृतिवर्त्री च शूकधान्यसुतोषिता।
शोकापनोदिनी चैव शाखिनी शिखिसत्प्रभा॥२८३॥
शाङ्करी शङ्करा चैव शङ्खिनी शृङ्गधारिणी।
शाटीपटसमुद्दीप्ता शठलोकबिभर्त्सनी॥२८४॥
शाढ्य(?ठ्य)हीना तथा चैव शणसूत्रशिरोरुहा।
शूलपाणिः शोणनेत्रा शातकुम्भस्तनद्वयी॥२८५॥
शितबाणा शीतमूर्तिः शोथघ्नी शुद्धरूपिणी।
शान्ता शान्तिमती चैव शिञ्जिता सज्जनप्रिया॥२८६॥
शपथा शान्तहृदया शापमोचनकारिणी।
शफरीनयनी चैव शिफारूढा शवासना॥२८७॥
शावपोष्ट्री शिवोपास्या शिवा च शेवधिस्तथा।
शिविका शिविकारूढा शैववर्त्मप्रदायिनी॥२८८॥
शोभाकरी शमवती शामिन्यपि च शेमुषी।
शम्पामध्या शम्बरारिवारिणी शाम्बरी तथा॥२८९॥
शम्भुरूपा शाम्भवी च शम्भुमूर्ध्निस्थितापि च।
शयनोच्छ्वसिता चैव शायिता शरवारिणी॥२९०॥
श्रीः श्रीमन्त्रिषेव्या च श्रीफलाधःस्थिता तथा।
शारिणी शिवमूर्द्धा च शिवहस्ता तथैव च॥२९१॥
शूरसेव्या शैवहस्तप्रददा शौरकर्मिणी।
शलभोद्धारिणी चैव शालानिर्माणकारिणी॥२९२॥
शिलावृष्टिकरी शीलशालिनी शूलिनी तथा।
शैलतुल्या श्वरीना च श्वापदव्यूहवेष्टिता॥२९३॥
श्वेतासना श्वैत्यवती श्वाती श्वसनकारिणी।
श्वासानिलसुगन्धा च शशचर्मनिवासिनी॥२९४॥
शैशवाढ्या शेषहीना शोषणी शासिनी तथा।
शिक्षाकरी सुकण्ठी च सेककर्त्री सुकोमला॥२९५॥

सुखप्रदा सौख्यरूपा सगरान्वयतारिणी।
सागरास्था च सुगदध्वंसिनी सङ्करप्रिया॥२९६॥
साङ्गोपाङ्गक्रियाध्यक्षा सङ्घसञ्चारकारिणी।
सज्जनाह्लादजननी सुजनी सञ्जयार्चिता॥२९७॥
सितपद्मदलप्रीता सुतनुः सूत्ररूपिणी।
सृपा च सदरा चैव सादरा सीददुद्व्यथा॥२९८॥
सुदया सुदरा चैव सोदरप्रीतिकारिणी।
सधवा च तथा साध्वी सिद्धा सीधुनिपायिनी॥२९९॥
सुधन्वा च तथा सेनाकोलाहलविधायिनी।
सैन्यमूर्द्धासन्दलनी सन्देशहारिणी तथा॥३००॥
सान्द्रानन्दा च सिन्दूरमण्डितालकमण्डला।
सुन्दोपसुन्दहन्त्री च सौन्दर्यसर्वमोहनी॥३०१॥
सन्धिविग्रहकार्या च सन्धात्री सन्ध्ययार्चिता।
सन्ध्या सिन्धुस्वरूपा च सिन्धुमज्जनकारिणी॥३०२॥
सैन्धवी सैन्धवश्रीका सुपदा सूपकारिणी।
सौपद्यदायिनी चैव सवृत्तिः सावरा तथा॥३०३॥
सुवर्णालङ्कारधात्री सौवर्णप्रभयोज्ज्वला।
सभासभ्याधिकर्त्री च साभा च सुभगा तथा॥३०४॥
समा साम्यविहीना च सीमन्तोत्सवकारिणी।
सृमरा सोमभावा च सोमवर्त्मप्रसारिणी॥३०५॥
सम्पन्ना च तथा सम्पत् सम्पद्दात्री तथैव च।
संवृता च तथा सम्भाषणकौशलकारिणी॥३०६॥
शुम्भनिशुम्भहन्त्री च सम्पन्ना सायतिस्तथा।
सरःस्था सारसी चैव सुरसा सुरसाधिता॥३०७॥
सौरस्यदायिनी चैव सनया सानया तथा।
सुनीला स्वच्छबुद्धिश्च तथा स्वाच्छन्द्यकारिणी॥३०८॥
रचनामृतवर्षिणी च स्विन्ना स्वप्नावती तथा।
स्वयम्भूपूजिता चैव स्वयम्भूः स्वात्मदीपनी॥३०९॥
स्वरसप्तकसङ्गीतरङ्गिणी स्वात्मभाविनी।
स्वाहा स्वधा स्वक्षरा च तथापि स्वामिवल्लभा॥३१०॥
सक्षता साक्षिणी चैव सुक्षोदा सूक्षिता तथा।

हुङ्कारिणी तथा हट्टवासिनी हठकारिणी॥३११॥
हतिहन्त्री हुतप्रीता हुतासुरमहाहना।
हूतपापा हेतिहस्ता होतृरूपा तथैव च॥३१२॥
हौतासनप्रभाकर्त्री हृदम्बुजनिवासिनी।
हननारिष्टहृदया हीनदोषा तथैव च॥३१३॥
हम्भारवाकालनोत्था हृदयानन्दशालिनी।
हयवाहनसुप्रीता हायनज्ञानदायिनी॥३१४॥
हूयमाना हरिप्रीता हारिणी हीरकोज्ज्वला।
हलिदर्शनक्रींभारा हलाहलनिपायिनी॥३१५॥
हिलिहिलीतिकर्त्री च तथा हुलहुलिप्रिया।
हेलाकरी ह्वलन्ती च ह्वालयन्ती तथैव च॥३१६॥
हेषारवसमोदा सा हसन्ती हासविह्वला।
हाहा हाहाकरी चैव हूहूगन्धर्ववेष्टिता॥३१७॥
हैहयार्चिततेजाश्च क्षतिकर्त्री क्षितिस्थिता।
क्षुतकर्त्री क्षेत्ररूपा क्षेत्रपालनिषेविता॥३१८॥
क्षौतदोषप्रशमनी क्षुद्रा च क्षोदिनी तथा।
क्षौद्रकप्रीतहृदया क्षिपन्ती क्षोभवर्जिता॥३१९॥
क्षमावती तथा क्षामाक्षरोल्लापविलासिनी।
क्षेमङ्करी क्षौमवस्त्रा तथा क्षयविवर्जिता॥३२०॥
क्षरहीना भक्तजना क्षारहीना तथैव च।
क्षारप्रीताक्षरप्राप्या क्षालनी क्षालनप्रिया॥३२१॥
अघमर्दन्यङ्कजा च अङ्गप्रत्यङ्गकोमला।
अच्छीकरणदक्षा च अजमाया तथैव च॥३२२॥
अञ्चलीचञ्चला चैव अञ्जनारञ्जनी तथा।
अटवीरटनप्रीता अतलाधःस्थिता तथा॥३२३॥
अवनी अमरारातिकोटिकोटिनिपातिनी।
अयस्थिता अरालभ्रूरशक्ताऽशकला तथा॥३२४॥
अशया अशरा चैव अशलाकाशकोज्ज्वला।
अस्वप्ना असहा चैव अहन्त्री अक्षवृत्तिगा॥३२५॥
आकाशवासिनी चैव आगतापि तथैव च।
आधाःरसुस्थिता चैव अच्चलदलकाह्वला॥३२६॥

आचाररचिताचार्या आजिमध्यप्रवेशिनी।
आयसा आरकूटस्था आलस्यक्षयकारिणी॥३२७॥
आशंसाकर्मशुभदा आषाढधारिणी तथा।
आशावर्धनकर्त्री च आशाज्योतिर्विधायिनी॥३२८॥
आषाढमासि पूज्या च आशंसा स्वान्तमास्थिता।
आसारसुखिता चैव आहोस्विदिति तर्किता॥३२९॥
इडा इडतापत्रया ईषद्धास्यमिलन्मुखी।
उड्डियानपीठगता उष्ट्रपुङ्गववाहिनी॥३३०॥
उक्ता उतथ्याध्वजधृक् उद्धवप्रीतिकारिणी।
उम्भिता उदिता चैव उकाता उपरिस्थिता॥३३१॥
इक्षुहस्ता तथाऽप्यूढा ऋतुकालसुखप्रदा।
ऋतप्रिया तथा चैव ऋक्षमोक्षणकारिणी॥३३२॥
ऋषिभिः सेविता चैव ऋष्य शृङ्गसमर्चिता।
ओड्रपुष्पपूजिता च आधारचक्रवासिनी॥३३३॥
मणिपुरवासिनी च स्वःधिष्ठाननिवासिनी।
अनाहतानाहता च विशुद्धचक्रवासिनी।
आज्ञाचक्रवासिनी च सहस्त्रदलवासिनी॥३३४॥

इतीमां नाम्नामष्टादशशतीं यः पठति शृणोति पाठयति श्रावयति वा स सर्वपापविमुक्तः, स धनी धनद इव, स कविः कविरिव, स पण्डितो गुरुरिव, स रूपवान् जगन्मोहनो मन्मथ इव, स राज्याधिकारी सुरराज इव, स तेजस्वी वह्निरिव, स शासकः पितृपतिरिव, स सर्वतोगतिः पवनमान इव, स शौर्ययुक्तः सूर्य इव, स शीतलः शीतमरीचिरिव भवेत्॥३३५॥

इति इयम् नाम्नाम् अष्टादशशतीम् यः पठति, शृणोति, पाठयति श्रावयति वा स सर्वपापविमुक्तः, धनदः इव धनी, सः कवि इव कविः, गुरुः इव पण्डितः, स जगन्मोहनः मन्मथ इव रूपवान्, स सुरराज इव राज्याधिकारी, स वह्निः इव तेजस्वी, सः पितृपतिः इव शासकः, स पवमानः इव सर्वतः गतिः, स सूर्यः इव शौर्ययुक्तः, सः शीतमरीचिः इव शीतलः भवेत्।

इस अट्ठारह सौ नामों की नामावली को जो पढ़ता है, सुनता है, पढ़ाता है अथवा सुनाता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। वह कुबेर के समान धनी, कवि शुक्राचार्य के समान कवि, देवगुरु बृहस्पति के समान पंडित, जगन्मोहन कामदेव के समान रूपवान्, देवराज इन्द्र के

समान राजा, अग्नि के समान तेजस्वी, (अर्यमा) पितृपति के समान शासक, वायु के समान सर्वत्र गमन वाला, सूर्य के समान प्रतापी एवं चन्द्रमा के समान शीतल हो जाता है।।३३५।।

यः पठेत् प्रयतो विद्वान् पद्यार्धं पद्यमेव वा।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुक्त एव न संशयः।।३३६।।

यः विद्वान् प्रयतः पद्यार्धं पद्यमेव वा पठेत् स ब्रह्महत्यादिपापेभ्यः मुक्तः एव न संशयः।

जो विद्वान् एकान्त चित्त से इन पद्यों को अथवा आधे पद्य को पढ़ता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, उसमें कोई संशय नहीं है।।३३६।।

इमं स्तवं पठन् व्यासः कवीन्द्रत्वमुपागतः।
वाल्मीकिरपि विप्रत्वं विश्वामित्रो जगाम सः।।३३७।।

व्यासः वाल्मीकिः इमम् स्तवम् पठन् कवीन्द्रत्वम् उपागतः। सः विश्वामित्रः अपि विप्रत्वम् जगाम।

व्यास और वाल्मीकि इस स्तोत्र का पाठ करने से कवित्व को प्राप्त हो गये। वह क्षत्रिय विश्वामित्र भी विप्रत्व को प्राप्त हो गये।।३३७।।

यद्यपि कुष्ठी कुनखी बधिरोऽन्धः पुनरतिदुर्गतो नानादुरवस्था-जडीकृतकलेवरो जपति जापयति वा सोऽपि पापं सर्वं संदह्य प्रेमलक्षणां भक्तिमधिष्ठाय सर्वोपरि भ्राजते।।३३८।।

यद्यपि, कुष्ठी, कुनखी, बधिरः, अन्धः अतिदुर्गतः अपि नाना दुरवस्था-जडीकृतकलेवरः जपति जापयति वा सः सर्वम् पापम् सन्दह्य प्रेमलक्षणम् भक्तिम् अधिष्ठाय, सर्वोपरि भ्राजते।

यद्यपि कोढी, खराब नखों वाला, बहरा, अन्धा, अत्यन्त दुर्गति को प्राप्त, अनेक दुरवस्था के कारण जर्जरीकृत देह वाला हो तो भी यदि वह इस अट्ठारह हजार नामों को स्वयं जप करता या किसी से जाप करवाता है तो वह भी समस्त पापों को जलाकर प्रेमलक्षणा भक्ति के साथ सबसे श्रेष्ठ हो जाता है।।३३८।।

सर्वाबाधाप्रशमनं धनधान्यविवर्धनम्।
एतस्याध्ययनेनैव सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।३३९।।
धर्मलिप्सुर्लभेद्धर्ममर्थेप्स्वर्थमवाप्नुयात्।
कामं कामी लभेदाशु मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात्।।३४०।।

अहम् सत्यम् वदामि एतस्य अध्ययनेन एव सर्वबाधाप्रशमनम् धनधान्य-विवर्धनम् (प्राप्नुयात्)। धर्मलिप्सुः धर्मम् लभेत, अर्थेप्सुः अर्थम् अवाप्नुयात्, कामी आशु कामम् लभेत, मुमुक्षुः मोक्षम् आप्नुयात्।

मैं सत्य ही कहता हूँ कि इसके अध्ययन से ही सब बाधाओं का शमन हो जाता है तथा धन-धान्य की वृद्धि भी होती है। इसके अध्ययन से धर्मार्थी को धर्म, धनार्थी को धन, कामाक्षी को काम तथा मोक्षार्थी को मोक्ष प्राप्त होता है॥३३९-३४०॥

सङ्कटे समनुप्राप्ते इदं स्वस्त्ययनं परम्।
रणे वा राजसदने द्यूते च विजयप्रदम्॥३४१॥

यस्तु नित्यं समाहितः सम्यगालपति पुनरालापयति शृणुते श्रावयति वा तद्दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा भवन्ति, दूरादेव तेजःपुञ्ज-प्रतिहितचक्षुषो (भवन्ति)। योगिनी-डाकिनी-यक्ष-रक्षः-कूष्माण्ड-भूत-प्रेत-पिशाच-हिंस्रजन्तवः पलायन्ते॥३४२॥

संकटे समनुप्राप्ते इदम् परम् स्वस्त्ययनम्, रणे, राजसदने, द्यूते वा च विजयप्रदम्। यस्तु नित्यम् समाहितः सम्यग् आलपति, पुनः आलापयति शृणुते, श्रावणति वा तद् दर्शनमात्रेण वादिनः निष्प्रभा भवन्ति, दूरात् एव तेजःपुञ्जप्रति-हतचक्षुषः योगिनी डाकिनी, रक्षः, कूष्माण्ड, भूत, प्रेत, पिशाच, हिंस्र जन्तवः पलायन्ते।

जो व्यक्ति नित्य समाहित होकर भली-भाँति इसको पढ़ता या पढ़ाता है, सुनता है अथवा सुनाता है, उसको देखने-मात्र से विपक्षी लोग कान्तिहीन हो जाते हैं। दूर से तेजपुञ्ज से उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं। योगिनी, डाकिनी, यक्ष, राक्षस, कूष्माण्ड, भूत-प्रेत-पिशाच एवं हिंस्र जीव भाग जाते हैं॥३४१-३४२॥

तस्य वने वा गहने पोते वाताद् घूर्णिते वा न किञ्चिद्भयम् न विद्युतो भयं न च दस्युतो भयं न राजतो भयं नाऽनलतो भयं न केभ्योऽपि भयम्॥३४३॥

तस्य गहने वने, पोते, वाताद् घूर्णिते वा न किञ्चित् भयम्। न विद्युतः भयम् न च दस्युतः न च राजतः न अनलतः भयम् न केभ्यः अपि भयम्।

इस स्तवन का अध्ययन करने वाले को गहन वन में, नाव में, आँधी-तूफान में थोड़ा भी भय नहीं होता। बिजली-सम्पात से, डाकुओं से, राजा से अथवा अग्नि से थोड़ा भी भय नहीं होता। उसे किसी से भी भय नहीं होता॥३४३॥

स सर्वधर्मसम्पूर्णो नित्यानन्दमयस्तथा।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परत्र मयि लीयते॥३४४॥
नापमृत्युर्न च ज्वरो नाऽशुभा बुद्धिरुन्मदा।
न मात्सर्यं न लोभश्च तस्य पुंसोऽपि दुर्मतेः॥३४५॥

सः सर्वधर्मसम्पूर्णः तथा नित्यानन्दमयः, इहलोके सुखम् भुक्त्वा परत्र मयि लीयते। तस्य दुर्मतेः अपि पुंसः न अपमृत्युः न च ज्वरः, न अशुभा उन्मदा बुद्धिः न मात्सर्यम् न च लोभः।

इस स्तुति को पढ़ने वाला व्यक्ति सब धर्मों में पूर्ण तथा नित्यानन्दमय होकर इस लोक में सुख भोगकर मृत्यु के बाद मेरे अन्दर लीन हो जाता है। उस दुष्टमति भी पुरुष को अकाल मृत्यु, ज्वर, उन्मादिनी बुद्धि, मात्सर्य तथा लोभ प्राप्त नहीं होता॥३४४-३४५॥

इमां स्तुतिं पठति यः परां पुमान्
भवेत् स हि प्रथितकीर्तिरुत्तम् (?मः)।
विधूय तत्सकलकल्मषं व्रजेद्
व्रजेश्वरीचरणपद्मभृङ्गताम् ॥३४६॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीमद्राधादेव्या नाम्नामष्टादशशती-
समाप्ता (समाप्तश्च) चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

यः पुमान् इमाम् पराम् स्तुतिम् पठति स हि उत्तमः प्रथितकीर्तिः भवेत्। तत् सकलकल्मषम् विधूय व्रजेश्वरीचरणपद्मभृङ्गताम् व्रजेत्।

जो मनुष्य इस परा स्तुति का निष्ठा के साथ पाठ करता है, वह उत्तम एवं लोकप्रसिद्ध कीर्ति की प्राप्ति करता है। वह अपने सभी पापों का नाश करके अन्त में व्रजेश्वरी श्रीराधा जी के पादपद्मों का भ्रमर बन जाता है॥३४६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में श्रीमद्राधादेवी अष्टादशशती
नामक चौबीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत
'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

पञ्चविंशोऽध्यायः

वृन्दादेवीमन्त्रणम्

ब्राह्मण उवाच—

इत्थं वृन्दा महादेवी राधया प्रीणिता सती।
नित्यं जजाप सा नाम्नामष्टादशशतीं पराम्॥१॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी त्रिपुरा कृष्णमानसा।
उच्चैरुवाच वाचं तां करुणाकान्तशालिनीम्॥२॥

इत्थम् राधया महादेवीवृन्दा प्रीणिता सती सा नित्यं नाम्नाम् पराम् अष्टादशशतीम् जजाप। एतस्मिन् अन्तरे देवी त्रिपुरा कृष्णमानसा करुणाकान्तशालिनीम् ताम् उच्चैः वाचम् उवाच।

ब्राह्मण ने कहा—इस प्रकार राधा के द्वारा महादेवी वृन्दा प्रसन्न की गयी और वह नित्य राधा के अट्‌ठारह सौ परम नामों का जप करने लगी। इसी बीच देवी त्रिपुरा कृष्णमानसा होकर करुणा से कान्त राधा से उच्च स्वर में यह कहा॥१-२॥

वंशीवादनं कृष्णस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः।
त्रैलोक्यमोहनं रूपं मोहितास्मि पदे पदे॥३॥
न जाने किमपि भ्राम्यन्मूर्ध्ना भूमौ लुठाम्यहम्।
यास्यामि क्व च कं गाढं शरणं मरणं स्थितम्॥४॥

कृष्णस्य वंशीवादनम् त्रैलोक्यमोहनम् रूपम् पुनः पुनः चिन्तयित्वा पदे-पदे मोहिता अस्मि। न जाने किम् अपि मूर्ध्ना भ्राम्यत् भूमौ अहम् लुठामि। क्व कम् शरणम् यास्यामि गाढम् मरणम् स्थितम्।

कृष्ण की वंशी का वादन तथा उनके त्रैलोक्यमोहन रूप का पुनः-पुनः चिन्तन कर पद-पद पर मोहित हुई मैं नहीं जानती कि मेरा सिर बार-बार क्यों चक्कर काट रहा है। क्यों मैं भूमि पर लोट रही हूँ। मैं कहाँ किसकी शरण में जाऊँ। मेरी तो मृत्यु निकट ही प्रतीत होती है॥३-४॥

इत्येवमादि विललाप चिराय राधा
साधारणं नयनवार्धिरभून्नदी च।
वृन्दावने विहगवृक्षलतामृगाश्च
चक्रन्दुरम्ब(?न्व)हमनुक्षणमेव पश्चात्॥५॥

इति एवम् आदि राधा चिराय असाधारणम् विललाप सा नयनवार्धिः नदी च अभूत्। वृन्दावने विहगवृक्षलतामृगाः च पश्चात् अन्वहम् अनुक्षणमेव चक्रन्दुः।

इस तरह राधा बहुत देर तक असाधारण विलाप करती रही। उनके नेत्र मशक हो गये। उन्होंने नेत्रों के जल से नदी का ही रूप धारण कर लिया। वृन्दावन के पक्षी, वृक्ष, लता तथा पशु भी राधिका जी के साथ उनके पीछे-पीछे उसी क्षण विलाप करने लगे॥५॥

ततो वृन्दा वराङ्गी च वृन्दावनपुरन्दरीम्।
तामाह सान्त्वयन्ती च प्रेम्णातिशान्तया गिरा॥६॥

ततः वराङ्गी वृन्दा वृन्दावनपुरन्दरीम् ताम् अतिशान्तया गिरा प्रेम्णा च सान्त्वयन्ती आह।

इसके बाद सुन्दर अंग वाली वृन्दा ने वृन्दावन की स्वामिनी उन राधा से अति शान्त और प्रेमपूर्ण वाणी से सान्त्वना देते हुए कहा॥६॥

वृन्दा उवाच—

जाने त्वां देवदेवेशि राधिकां जगदीश्वरीम्।
वृन्दावने श्रिता देवस्तवैव गुणगायकः॥७॥
त्वदृऋते नायमश्नाति न स्नाति पुरुषोत्तमः।
न शेते रमते नैव न तिष्ठति न गच्छति॥८॥

वृन्दा उवाच—देवदेवेशि! त्वाम् जगदीश्वरीम् राधिकाम् जाने। वृन्दावने श्रिता देवः तवैव गुणगायकः। अयम् पुरुषोत्तमः त्वद् ऋते न अश्नाति, न स्नाति, न शेते, न रमते, न तिष्ठति न गच्छति।

वृन्दा ने कहा—हे संसार की स्वामिनी! मैं जानती हूँ कि तुम जगदीश्वरी श्रीराधा हो और वृन्दावन में रहती हो। देव तुम्हारे गुणों को गाने वाला है। वह पुरुषोत्तम तुम्हारे बिना न नहाता है, न सोता है, न खाता है, न रमण करता है, न बैठता है, न चलता है॥७-८॥

चिन्तयंस्त्वां वरारोहे गलद्वाष्पजलेक्षणः।
राधेति प्राणनाथेति राधिकेति मुहुर्मुहुः॥९॥
ब्रुवन्नेवं महाभागे मुमोह मधुराकृतिः।
अधोमुखो रोदमानः पुनः स चकितेक्षणः॥१०॥
पुनराह प्रिये कान्ते किमर्थं मामुपेक्षसे।
तवैव चरणाम्भोजे कोऽपराधः कृतो मया॥११॥

येनाऽदृश्योऽहममिते तव पङ्कजलोचने।

महाभागे! वरारोहे! त्वाम् चिन्तयन् गलद्वाष्पजलेक्षणः मुहुः मुहुः राधेति प्राणनाथा इति राधिका इति ब्रुवन् एव मधुराकृतिः मुमोह। स चकितेक्षणः अधोमुखः पुनः रोदमानः पुनः आह—कान्ते! प्रिये! माम् किमर्थम् उपेक्षसे? तव एव चरणम्भोजे मया कः अपराधः कृतः? येन तव पंकजलोचने अहम् अदृश्यः (सञ्जातः)।

हे महाभागे! हे वरारोहे! तुम्हारा चिन्तन करते हुए नेत्रकमलों से निरन्तर आँसू बहा-बहाकर हे राधा! हे प्राणप्रिया! हे राधिका! कहते हुए वे मधुर आकृति वाले श्रीकृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं। कभी वे चकित आँखों वाले होकर नीचे की ओर मुख करके रोने लगते हैं, पुनः पुकारने लगते हैं। हे प्रिये! हे कान्ते! मेरी क्यों उपेक्षा कर रही हो? मैंने तुम्हारे चरणकमलों में क्या अपराध किया है? जिस कारण हे कमललोचने! मैं तुम्हारे लिये देखने के अयोग्य हो गया हूँ।।९-११।।

इत्थं वै ब्रुवता देवि त्वया हीनं वनं महत्।।१२।।
शून्यवद् दृश्यते सर्वमपि सर्वगुणैर्युतम्।
कदाचिन्मूर्च्छयन् वेणुं गायत्युच्चैर्यशस्तव।।१३।।

इत्थम् वै ब्रुवता देवि त्वया हीनम् महत् वनम् सर्वगुणैः युतम् सर्वम् शून्यवत् दृश्यते। कदाचित् वेणुम् मूर्च्छर्यन् तव यशः उच्चैः गायति।

हे देवि! इस प्रकार कहते हुए तुम्हारे बिना वे मोहन सर्वगुण-सम्पन्न इस विशाल वन को शून्य ही पाते हैं। कभी वेणु में तुम्हारे गुणों को ही उच्च स्वर से गाने लगते हैं।।१२-१३।।

क्वचिद् ध्यायति ते वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम्।
पतत्युत्तिष्ठति क्वापि क्षणमायाति याति च।।१४।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
त्वां विना रत्नभवनं शून्यं मन्यत ईश्वरः।।१५।।

क्वचित् ते सुनसम् सुस्मितेक्षणम् वक्त्रम् ध्यायति। क्वापि पतति। क्वापि उत्तिष्ठति। क्षणम् याति आयाति च। सत्यम् सत्यम् पुनः सत्यम् सत्यम् एतत् ते ब्रवीमि। त्वाम् विना ईश्वरः रत्नभवनम् शून्यम् मन्यते।

कभी तुम्हारे सुन्दर नासिका वाले मुस्कराते हुए नेत्र वाले मुख का ध्यान करते हैं, कभी गिरते हैं, कभी उठते हैं, क्षण में आते हैं, क्षण में चले जाते हैं। मैं सत्य सत्य सत्य पुनः सत्य कहती हूँ कि तुम्हारे बिना रत्नों का घर भी उन्हें शून्य लगता है।।१४-१५।।

कम्पमानः क्वचिद् भूमावुपविष्टः श्वसित्यसौ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साङ्गोपनिषदुक्तिभिः॥१६॥
स्तवं तव करोत्येव प्रेमविह्वलमानसः।
शीर्णे पर्णे पतति वै वृन्दावनमहीरुहाम्॥१७॥
यत्र तत्र चञ्चलाक्षः संभ्रमाकान्तमानसः।
पुनः पुररुदीक्षंस्त्वामार्तः कामविमोहितः॥१८॥

क्वचित् कम्पमानः भूमौ उपविष्टः असौ श्वसिति। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साङ्गोपनिषद्-उक्तिभिः प्रेमविह्वलमानसः तव स्तवम् करोति एव। वृन्दावन-महीरुहाम् शीर्णे पर्णे वै पतति। कामविमोहितः चञ्चलाक्षः संभ्रमाक्रान्तमानसः त्वाम् यत्र-तत्र पुनः पुनः उदीक्षन् आर्तः (भवति)।

कभी काँपते हुए भूमि पर बैठ जाते हैं, कभी वह पुलकित सर्वाङ्ग वाला होकर लम्बी श्वांस लेते हैं, कभी प्रेम से व्याकुल होकर साङ्गोपाङ्ग उपनिषद् की उक्तियों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। इस वृन्दावन के वृक्षों के सूखे पत्तों पर गिर जाते हैं। काम से पीड़ित चंचल नेत्रों वाले श्रीकृष्ण व्याकुल मन से जहाँ-तहाँ तुम्हें देखने के लिए व्याकुल हो जाते हैं॥१६-१८॥

मां दृष्ट्वा प्रेयसीं दासीं कृष्णः कमललोचनः।
उवाच वृन्दे कुत्रास्ति मम प्राणेश्वरी प्रिया॥१९॥
दृष्टा त्वया राधिका किं तन्मे कथय सुव्रते।
प्रहृष्टवदने तस्मिन् पृच्छति स्वायतेक्षणे॥२०॥
ना नेत्युक्ते मया पश्चादनुतापो महान् भवेत्।

कमललोचनः कृष्णः प्रेयसीम् दासीम् माम् दृष्ट्वा उवाच—वृन्दे! मम प्राणेश्वरी प्रिया कुत्र अस्ति? सुव्रते! किम् त्वया राधिका दृष्टा? तत् मे कथय। स्वायतेक्षणे प्रहृष्टवदने तस्मिन् पृच्छति मया 'ना ना' इति उक्ते पश्चात् महान् अनुतापो भवेत्।

कमललोचन श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी दासी मुझको देखकर कहा—वृन्दे! मेरी प्राणवल्लभा प्रिया राधा कहाँ है? सुव्रते! क्या तुमने राधा को देखा है? मुझे बताओ। चकित एवं फैले हुए नेत्रों वाले प्रसन्न मुख श्रीकृष्ण के इस प्रकार पूछने पर इस तरह मेरे 'ना ना' कहने उन्हें महान् अनुताप हुआ॥१९-२०॥

श्रीकृष्णाकर्षिणी(?णि) शुभे वृन्दावनपुरन्दरी(?रि)॥२१॥

भाग्यात् पथि मया दृष्टा सुस्थान्तःकरणा भव।
आत्मानं स्मर राधे त्वं परब्रह्मस्वरूपिणीम्॥२२॥
कृष्णे ब्रह्मणि राधायामीषद्भेदो न विद्यते।
एकमेवाद्वयं ब्रह्मेत्युच्यते ब्रह्मवादिभिः॥२३॥

श्रीकृष्णाकर्षिणि! वृन्दावनसुन्दरि! शुभे! भाग्यात् मया (त्वम्) पथि दृष्टा। (त्वम्) सुस्थान्तःकरणा भव! राधे त्वम् आत्मानम् परब्रह्मस्वरूपिणीम् स्मर। ब्रह्मणि कृष्णे राधायाम् च ईषद्भेदः न विद्यते। ब्रह्मवादिभिः एकम् एव अद्वयम् ब्रह्म इति उच्यते।

हे श्रीकृष्ण का आकर्षण करने वाली वृन्दावन की स्वामिनी शुभे! भाग्य से मैंने रास्ते में तुम्हें देखा है। तुम शान्त अन्तःकरण वाली हो जाओ। हे राधे! तुम अपने को परब्रह्मस्वरूपा समझो। ब्रह्म श्रीकृष्ण और राधा में तनिक भी भेद नहीं है। ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं कि ब्रह्म एक और अद्वय है॥२१-२३॥

कृष्णस्त्वं परमेशानि त्वमेव त्रिपुरेश्वरी।
त्वदङ्गसम्भवा देवी क्व याता भुवनेश्वरी॥२४॥
स्मर तां परमे नित्यं समागच्छतु सा द्रुतम्!
श्रुतमस्ति देहतस्ते जाता गोप्यः सहस्रशः॥२५॥

हे परमेशानि! त्वम् एव कृष्णः त्वम् एव त्रिपुरेश्वरी (असि)। त्वद् अङ्गसम्भवा देवी भुवनेश्वरी क्व याता? परमे! ताम् स्मर। सा द्रुतम् नित्यम् समागच्छतु। ते देहतः सहस्रशः गोप्यः जाताः इति श्रुतम् अस्ति।

हे परमेशानि! तुम और कृष्ण तथा तुम और त्रिपुरेश्वरी एक ही हो। तुम्हारे अंग से ही देवी भुवनेश्वरी का जन्म हुआ था। वह कहाँ गयी? हे परम राधे! उसका स्मरण करो। वह शीघ्र ही आ जायेगी। तुम्हारे शरीर से हजारों गोपियों का जन्म हुआ था, यह मैंने सुना है॥२४-२५॥

कुत्र तिष्ठन्ति ताः सर्वाः स्मर पद्मायतेक्षणे।
त्वत्तो वै पुरुषा जाताः कामदेवमनोरमाः॥२६॥
सखायस्ते महादेवि समागच्छन्तु तान् स्मर।
सर्वेषामेव भूतानां पिता माताऽसि सुन्दरि॥२७॥

हे पद्मायतेक्षणे! ताः सर्वाः कुत्र तिष्ठन्ति (इति) स्मर। त्वत्तः वै कामदेव-मनोरमाः पुरुषाः जाताः। हे महादेवि! ते सखायः समागच्छन्तु तान् स्मर। सुन्दरि! त्वम् सर्वेषाम् एव भूतानाम् माता पिता असि।

हे कमल से विशाल नेत्रों वाली! स्मरण करो कि वे सब कहाँ हैं। तुम्हारे शरीर से कामदेव के समान सुन्दर पुरुष भी उत्पन्न हुए थे। हे महादेवि! वे तुम्हारे सखा हैं। उनका स्मरण करो। वे शीघ्र ही आ जायेंगे। हे सुन्दरि! तुम सभी प्राणीमात्र की माता एवं पिता हो॥२६-२७॥

शृणु मद्वचनं भद्रे गोविन्दमहिषी भव।
गोविन्दस्य हि तद्रूपं तव योग्यं वरानने॥२८॥
तवैव मोहनं रूपमेतत् कृष्णमनोहरम्।
युवयोरधिकं किञ्चिद् वनेऽस्मिन्नैव विद्यते॥२९॥
दासी तवाहं देव्यद्य गोविन्दप्रियकारिणी।
दूतीभूयाऽपि यास्यामि वर्णितुं ते विचेष्टितम्॥३०॥

हे भद्रे! मद्वचनम् शृणु। गोविन्दस्य महिषी भव। वरानने! गोविन्दस्य हि तद् रूपम् तव योग्यम्। तव एतत् मोहनम् रूपम् कृष्णमनोहरम् एव। अस्मिन् वने युवयोः अधिकम् किञ्चित् न एव विद्यते। देवि! अद्य गोविन्दप्रियकारिणी अहम् तव दासी (अस्मि)। ते विचेष्टितम् वर्णितुम् दूतीभूय अपि यास्यामि।

हे भद्रे! मेरी बात सुनो—तुम गोविन्द की पटरानी हो जाओ। हे वरानने! गोविन्द का वह रूप तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारा मोहन रूप गोविन्द के मन का हरण करने वाला है। इस वन में आप दोनों से अधिक कुछ भी नहीं है। हे देवि! गोविन्द की प्रियकारिणी मैं आपकी दासी हूँ। तुम्हारी चेष्टाओं का वर्णन करने के लिए मैं तुम्हारी दूती बनकर जाऊँगी॥२८-३०॥

रहस्यं कथयिष्यामि वाक्यमेकं शृणुष्व मे।
उन्मत्ततां परित्यज्य सुस्थान्तःकरणा भव॥३१॥
उन्मनस्त्वे कारणं ते यतस्तदवधारय।
त्रिजगन्मोहनायालं भवत्या निग्रहाय च॥३२॥
प्रादुर्बभूव तद्देहात् परब्रह्मस्वरूपिणी।
त्रिपुरा तत्प्रतिकृतिस्तयाऽऽविष्टाऽसि कृत्यया॥३३॥

उन्मत्तताम् परित्यज्य सुस्थान्तःकरणा भव। मे एक वाक्यम् शृणुष्व। रहस्यम् कथयिष्यामि। ते उन्मनस्त्वे कारणम् यत् तत् अवधारय। भवत्या च निग्रहाय त्रिजगत् मोहनाय अलम्। तद्देहात् परब्रह्मस्वरूपिणी त्रिपुरा तत्प्रतिकृतिः प्रादुर्बभूव। तया कृत्यया आविष्टा असि।

हे देवि! उन्माद का त्याग करो। अन्तःकरण को स्थिर करो। मेरे एक वाक्य को सुनो। तुम्हें रहस्य बताती हूँ। तुम्हारे उन्माद का कारण मैं तुम्हें

बताती हूँ। तुम्हारा निग्रह करने के लिए त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्ण ही बहुत थे, किन्तु उनके शरीर से परब्रह्मस्वरूपिणी उन्हीं की प्रतिकृति त्रिपुरा उत्पन्न हुई। उसी त्रिपुरा द्वारा तुम आविष्ट हो॥३१-३३॥

श्रीकृष्णः स्तुतिपाठी तेन स (?स तया)दृष्टः कटाक्षतः।
इदानीं कृत्ययाऽऽविष्टा तद्वशं गन्तुमिच्छसि॥३४॥
नैषा युक्तिर्मम शुभे रोचते रोचनारुणे।
सहसा नैव गन्तव्यं क्षणमत्र स्थिरा भव॥३५॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दादेवीमन्त्रणं
नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

श्रीकृष्णः स्तुतिपाठी (अस्ति)। तया स कटाक्षतः दृष्टः। इदानीम् कृत्या आविष्टा तद् वशम् गन्तुम् इच्छसि। रोचनारुणे! शुभे! एषा युक्तिः मम न रोचते। अत्र क्षणम् स्थिरा भव। सहसा नैव गन्तव्यम्।

श्रीकृष्ण स्तुतिपाठी हैं, उसके द्वारा कटाक्ष से देखे गये इस समय तुम कृत्या के द्वारा वशीभूत हो गयी हो, जो वहाँ जाना चाहती हो। हे सुन्दर नेत्रों वाली शुभे! यह उचित नहीं है। मुझे भी अच्छा नहीं लग रहा है। क्षणभर यहाँ ठहरो। सहसा जाना उचित नहीं है॥३४-३५॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में वृन्दादेवीमन्त्रण नामक पच्चीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

❋

षड्विंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये वृन्दावनरचनं गोपानां पराजयश्च

ब्राह्मणी उवाच—

ततः किमभवत् पश्चाद् देवगन्धर्व कथ्यताम्।
पुनीहि मे श्रुतिपुटौ नानादोषकुलाकुलौ॥१॥

हे देवगन्धर्व! ततः पश्चात् किम् अभवत्? कथ्यताम्। नानादोषकुलाकुलौ मे श्रुतिपुटौ पुनीहि।

ब्राह्मणी ने कहा—हे देवगन्धर्व! इसके पश्चात् क्या हुआ? उसको कहो। अनेक दोषों के समूह से व्याप्त मेरे कानों को पवित्र करो॥१॥

ब्राह्मण उवाच—

ततः पूर्वस्मृतिं प्राप्य वृन्दया प्रतिबोधिता।
परमानन्दहृदया प्रसन्नवदनेक्षणा॥२॥
आत्मानं चिन्तयामास परब्रह्मस्वरूपिणी।
ततस्तस्याः स्मृतिर्जाता यथा जाता स्वदेहतः॥३॥
योगमाया महादेवी प्रकृतिर्भुवनेश्वरी।
चिन्तयन्ती च तां देवीं समाह्वयदमन्दधीः॥४॥

ततः वृन्दया प्रतिबोधिता परमानन्दहृदया प्रसन्नवदनेक्षणा परब्रह्मस्वरूपिणी पूर्वस्मृतिम् प्राप्य आत्मानम् चिन्तयामास। ततः तस्याः स्मृतिः जाता। यथा महादेवी योगमाया प्रकृतिः भुवनेश्वरी स्वदेहतः जाता। अमन्दधीः ताम् देवीम् चिन्तयन्ती समाह्वयत्।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद वृन्दा द्वारा प्रतिबोधित प्रसन्नवदन और नेत्रों वाली हृदय में परमानन्द का अनुभव करने वाली राधा ने अपने परब्रह्म-स्वरूपिणी रूप का चिन्तन किया। इसके बाद उनकी स्मृति जाग्रत हो गयी कि महादेवी प्रकृति, योगमाया, अमन्द-बुद्धि भुवनेश्वरी मेरी ही देह से उत्पन्न हुयी है। तब उन्होंने उस देवी का चिन्तन करते हुए आवाहन किया॥२-४॥

श्रीराधिकोवाच—

हे देव्यत्र समागच्छ मदङ्गप्रभवा ह्यसि।
साहाय्यं कुरु देवेशि त्वर्यतां मा विलम्ब्यताम्॥५॥

हे देवि! अत्र समागच्छ हि मद् अङ्गप्रभवा असि। देवेशि! त्वर्यताम्। (मे) साहाय्यम् कुरु। मा विलम्ब्यताम्।

श्रीराधिकाजी ने कहा—हे देवि! यहाँ आओ। तुम मेरे ही शरीर से उत्पन्न हुयी हो। हे देवताओं की स्वामिनी! शीघ्रता करो। मेरी सहायता करो। विलम्ब मत करो॥५॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्थं सा चिन्तिता देवी महामाया महेश्वरी।
त्वरिता कृपयाविष्टा राधिकादर्शनं गता।
सम्भ्रमाक्रान्तहृदया तुष्टाव हृदयेश्वरी॥६॥

इत्थम् चिन्तिता महामाया महेश्वरी सा देवी कृपयाविष्टा त्वरिता राधिकादर्शनम् गता। सम्भ्रमाक्रान्तहृदया हृदयेश्वरी तुष्टाव।

ब्राह्मण ने कहा—इस प्रकार राधिका द्वारा स्मरण किये जाने पर महेश्वरी महामाया देवी कृपापूर्ण होकर शीघ्र ही राधिका जी के सामने उपस्थित हो गयी। संभ्रम से युक्त हृदय वाली उस हृदयेश्वरी ने राधिका जी की स्तुति की॥६॥

भुवनेश्वरी उवाच—

त्रिभुवनजयलक्ष्मीं त्वां नमस्ये वराङ्गि
विमलकमलनेत्रे देहि दृष्टिं शुभां मे।
यदखिलकृतसेवः श्रीयुतः कृष्णदेव-
स्त्वयि धृतरतिरास्ते किं पुनर्वर्णनीयम्॥७॥

वराङ्गि! विमलकमलनेत्रे! त्रिभुवनजयलक्ष्मीम् त्वाम् नमस्ये। मे शुभाम् दृष्टिम् देहि। अखिलकृतसेवः श्रीयुतः कृष्णदेवः त्वयि धृतरतिः आस्ते पुनः किम् वर्णनीयम्।

भुवनेश्वरी ने कहा—हे श्रेष्ठ अंगों वाली! स्वच्छ कमल के समान नेत्र वाली! आप त्रिभुवन की जय लक्ष्मी हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूँ। आप मुझे अपनी शुभ दृष्टि प्रदान करें; क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड द्वारा सेवित श्रीयुत कृष्णदेव भी आप में ही आसक्ति रखते हैं; फिर आपके विषय में और क्या कहा जाय॥७॥

उद्यद्भास्करकोटिकान्तिमरुणक्षौमाञ्चलत्कुण्डलां
नानालङ्करणोज्ज्वलामपि शरद्राकासुधात्विड्मु(?ण्मु)खीम्।
दृष्ट्वा त्वां मदिरालसामलमसौ कृष्णः स्वयं मोहितो
मुग्धाऽहं कमलेक्षणे किमपरे ब्रह्मेशशक्रादयः॥८॥

उद्यानभास्करकोटिकान्तिम्, अरुणक्षौमाम्, चलत्कुण्डलाम्, नानालङ्करणोज्ज्वलाम्, शरद्राकासुधात्विद्मुखीम्, मदिरालसाम् त्वाम् दृष्ट्वा अपि कृष्णः स्वयम् अलम् मोहितः। कमलेक्षणे! अहम् मुग्धा अपरे ब्रह्मा ईशशक्रादयः किम्।

उगते हुये करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति वाली, अरुण रेशमी वस्त्रों से अलंकृत, चञ्चल कुण्डलों वाली, अर्धोन्मीलित नेत्रों वाली आपको देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी अत्यधिक मोहित हो गये। हे कमलेक्षणे! मैं भी मोहित हो गयी हूँ; फिर ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि का कहना ही क्या।।८।।

देवि त्वच्चरणारविन्दयुगलं ध्यायन्ति ये के जना-
स्तेषामम्बुजपत्रलोचनि भवेत्तामत्रयोन्मूलनम्।
ईशे यं त्वमपीक्षसेऽमृतदृशा स स्यात् सदाराधितः
सर्वेषां तदुदाहृतिर्विजयते(से) विष्णुर्महांस्त्वत्कला।।९।।

देवि! ये के जनाः त्वत् चरणाविन्दयुगलम् ध्यायन्ति हे अम्बुजपत्रलोचनि! तेषाम् तापत्रयोन्मूलनम् भवेत्। हे ईशे! त्वम् अमृतदृशा यम् ईक्षसे सः सर्वेषाम् समाराधितः स्यात्। महाविष्णुः त्वत् कला। तद्-उदाहृतिः त्वम् विजयसे।

हे देवि! जो कोई मनुष्य तुम्हारे चरणारविन्दयुगल का ध्यान करते हैं, हे कमलपत्रनेत्रे! उनके तीनों प्रकार के तापों का उन्मूलन हो जाता है। यह स्वामिनी अमृतदृशा राधा जिसको भी देख लेती है, वह सबके लिये आराधनीय बन जाता है। महाविष्णु आपकी कला हैं। सबके लिये उसके उदाहरणस्वरूप आप जयशील हैं।।९।।

कान्त्या चम्पककम्पकारिवपुषः पुष्णान्ति तृप्तिं परां
रूपेणापि निरूपिते प्रियतमप्रेष्ठेऽत्र रूपे तव।
ये तेभ्यस्त्वमतीव चारुचरिते श्रीराजराजेश्वरी
सारूप्यं दिशसि प्रकाशितदिशे नित्यं भवत्यै नमः।।१०।।

चम्पककम्पकारिवपुषः कान्त्या निरूपिते रूपेण अपि प्रियतमप्रेष्ठे! अत्र तव रूपे ये पराम् तृप्तिम् पुष्णान्ति। हे अतीव चारुचरिते! प्रकाशितदिशे! श्रीराजराजेश्वरि! त्वम् तेभ्यः सारूप्यम् दिशसि। भवत्यै नित्यम् नमः।

अपने शरीर की कान्ति से चम्पक के पुष्प को कम्पित कर देने वाली तथा प्रवर्णित रूप से भी आप प्रियतम श्रीकृष्ण के लिए प्रेष्ठ (अतिप्रिय) हैं; अतः जो लोग आपके रूप में परातृप्ति को पाकर आनन्दित होते हैं, अतीव चारु चरित्रों से दिशाओं को प्रकाशित करने वाली हे श्रीराजराजेश्वरी! तुम उन लोगों को सारूप्य प्रदान कर देती हो। हे भगवती! आपके लिए नित्य प्रणाम है।।१०।।

अन्तः सन्तमसप्रकाशनकरी संतापसंहारिणी
यैस्ते श्रीनखचन्द्रिका चरणयोर्राधे(?यो राधे) समाराध्यते।
तन्निस्यन्ददमन्दसान्द्रकसुधासारेण सारेण तैः
संस्नातैः परितापिता अपि परे सन्तर्पिताः सन्ततम्॥११॥

अन्तः सन्तमसप्रकाशनकरी सन्तापसंहारिणी राधे! यैः ते चरणयोः नख-चन्द्रिका समाराध्यते तत् निस्यन्दत् अमन्दसान्द्रकसुधासारेण सारेण तैः संस्नातैः परितापिता परे अपि सन्ततम् सन्तर्पिताः।

अन्तःकरण के भीतर विद्यमान अन्धकार को प्रकाश में बदलने वाली तथा सन्तापों का संहार करने वाली हे राधे! जो लोग तुम्हारे चरणों की नखचन्द्रिका की भली प्रकार आराधना करते हैं, तुम उन परितापित जीवों को चरणनख से निकलने वाले अमन्दसान्द्र सुधासार के भी सार से स्नान कराकर निरन्तर सन्तर्पित करती रहती हो॥११॥

राधे त्वन्महिमानमानमगमत् कस्ते समस्तेश्वरि
स्तव्यं नव्यमवातनोतु सुतनो तनुं(?न्वं)स्तनिष्टां(? ष्ठां) तनुम्।
यद् वेधाश्चतुराननोऽपि गिरिशः पञ्चाननो वह्निभूः
षड्वक्त्रः फणिराट् सहस्त्रवदनोऽजस्त्रं परिश्राम्यति॥१२॥

समस्तेश्वरि राधे! कः त्वत् महिमानमानमगमत्? सुतनो! ते तनुम् तनिष्ठाम् तन्वन् नव्यम् स्तव्यम् अवातनोतु। यत् चतुराननः वेधाः गिरिशः पञ्चाननः वह्निभूः षड्वक्त्रः सहस्त्रवदनः फणिराट् अपि अजस्त्रम् परिश्राम्यति।

हे समस्तेश्वरि राधे! तुम्हारी महिमा के मान को कौन जान सकता है? हे सुन्दर शरीर वाली! अपने दुर्बल शरीर को और अधिक दुर्बल बनाता हुआ कोई नवीन स्तुति की रचना कर सकता है; क्योंकि चतुरानन ब्रह्मा, पञ्चानन शिव, षडानन सेनानी वह्निपुत्र अर्थात् कार्त्तिकेय तथा सहस्त्रवदन शेषनाग भी इसके लिए निरन्तर परिश्रम करते रहते हैं॥१२॥

रूपं किं तव वर्णयाम जगतां शोभाप्रभावोद्भवे
यस्याः श्रीमुखचन्द्रिकासु नियतं कृष्णश्चकोरायते।
यस्याः पादपयोरुहं सुरशिरोरत्नालिभिः सङ्गमं
सम्प्राप्याधिकमादृतं घनघनं(?नां) सूते मधूनां श्रियम्॥१३॥

हे जगताम् शोभाप्रभावोद्भवे! तव रूपम् किम् वर्णयामः यस्याः श्रीमुख-चन्द्रिकासु कृष्णः नियतम् चकोरायते। यस्याः पादपयोरुहम् सुरशिरोरत्नालिभिः सङ्गमम् सम्प्राप्य अधिकम् आदृतम् मधूनाम् घनघनाम् श्रियम् सूते।

हे संसार की शोभा के प्रभाव को जन्म देने वाली राधे! आपके रूप का हम क्या वर्णन करें? आपके जिस श्रीमुख की चन्द्रिका का पान करने के लिए श्रीकृष्ण भी स्वयं चकोर की तरह अपलक दृष्टि लगाये रहते हैं। आपके चरणकमल देवशिरोरत्नरूपी भ्रमरों का संगम पाकर अधिकाधिक वसन्त की सान्द्र शोभा को उत्पन्न करते हैं।।१३।।

न जाने महेशानि देवस्वरूपे जगन्मोहमोहस्फुरच्चारुरूपे।
चरित्रं पवित्रं यतः सूरयोऽपि व्यमुह्यन्त सन्तो मयि त्वं प्रसीद।।१४।।

जगन्मोहमोहस्फुरत् चारुरूपे! देवस्वरूपे! महेशानि! पवित्रम् चरित्रम् न जाने। यतः सूरयः सन्तः अपि व्यमुह्यन्त त्वम् मयि प्रसीद।

हे संसार को मोह के स्फुरण से मोहित करने वाली देवस्वरूप महेशानि! आपके पवित्र चरित्र को हम नहीं जानते; क्योंकि विद्वान् महात्मा लोग भी इस विषय में व्यामूढ़ हो जाते हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हो जायँ।।१४।।

तवैव प्रभावं हरिर्वा विरिञ्चिः शिवो नाशकन् वक्तुमिष्टस्वरूपे।
परे के वराका वराङ्गि प्रसीद प्रसीदाद्य मातः परं तुष्टिमातः।।१५।।

इष्टस्वरूपे! तव एव प्रभावम् वक्तुम् हरिः वा विरिञ्चिः वा शिवः न अशकन्। वराकाः परे के? वराङ्गि! अद्य प्रसीद। परम् तुष्टिमातः मातः प्रसीद।

हे इष्ट स्वरूप वाली राधे! आपके इस प्रभाव को वर्णन करने में विष्णु, शिव अथवा ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं; फिर अन्य वेचारों का तो कहना ही क्या? हे वराङ्गि! आप प्रसन्न हो जायँ। हे परम तुष्टि की माता अर्थात् जननी हे माता! आप प्रसन्न हो जायँ।।१५।।

श्रीकृष्णस्य रसामृताब्धिलहरीनिर्माणलक्ष्मीर्विधे-
र्वैदग्ध्यस्य विरामभूः रतिपतेरुच्चैः पताका रणे।
भूषाश्रीर्जगतां गतिर्गतिमतां शश्वन्मता सत्तमै-
र्गौरी काञ्चनकाञ्चिकारुतकरी राधा समाराध्यते।।१६।।

श्रीकृष्णस्य रसामृताब्धिलहरी निर्माणलक्ष्मीः, विधेः वैदग्धस्य विरामभूः, रतिपतेः रणे उच्चैः पताकाः जगताम् भूषाश्रीः गतिमताम् गतिः सत्तमैः शश्वन्मता गौरी काञ्चनकाञ्चिकारुतकरी राधा (मया) समाराध्यते।

श्रीकृष्ण के रसामृत सागर की लहरों का निर्माण करने वाली लक्ष्मी, विधाता के चातुर्य की विरामभूमि (चरम सीमा), युद्धस्थल में कामदेव के रथ की ऊँची पताका, संसार की भूषा की शोभा, मोक्ष चाहने वालों की

सद्गति, सज्जनों द्वारा शाश्वत मानी गयी, गौरी की स्वर्ण करधनी की झुन-झुन ध्वनि रूप श्रीराधा की मैं आराधना कर रही हूँ।।१६।।

अपि त्वत्पदाम्भोजयुग्मं सुशीतं
स भेजेऽरुणस्नापितेऽस्मिन्नभे न।
विधुः किं विधुद्वेषिदण्डक्षताङ्गो
द्विपञ्चाकृतिः शम्भुदृग्दाहभीत्या।।१७।।

विधुद्वेषिदण्डक्षताङ्गः द्विपञ्चाकृतिः सः विधुः शम्भुदृग्दाहभीत्या सुशीतम् त्वत् पदाम्भोजयुग्मम् अरुणस्नापिते अस्मिन् नभे न भेजे किम्?

राहु के दण्ड से विक्षत अंगवाले दशमी के आकार वाले चन्द्रमा ने शिव के नेत्रों से दग्ध हो जाने के भय से अरुण से स्नापित इस आकाश में तुम्हारे शीतल चरणकमलद्वय में शरण नहीं पायी है? अर्थात् शिव के नेत्रों से दग्ध होने के डर के कारण आपके शीतल चरणों में आश्रय लिया है।।१७।।

तवास्यश्रियं लिप्सु पाथोजमप्सु
प्रकामं तपत्यर्यमासेवनेन।
सुधांशुः समुद्रे निमज्योऽभिमज्य
कृशोऽद्यापि पक्षव्रते शून्यवासी।।१८।।

तव आस्यश्रियम् लिप्सु पाथोजम् अप्सु सेवनेन अर्यमा प्रकामम् तपति। समुद्रे निमज्य अभिमज्य सुधांशुः पक्षव्रते शून्यवासी अद्यापि कृशः।

हे राधे! आपके श्रीमुख की शोभा को पाने की इच्छा से कमल जल में खड़ा होकर सूर्य के सेवन से तप कर रहा है तथा अमृत किरणों वाला शशि समुद्र में पूर्ण निमजित होकर (स्नान करके) पक्षव्रत (चान्द्रायणव्रत) धारण कर शून्यवासी (आकाशवासी) होकर आज भी तप करने के कारण कृश (दुबला) है।।१८।।

त्वमम्बासि सञ्चारिणी शम्बरारेः
स्वरूपेण लावण्यवश्याभिषिक्ता।
प्रसीदस्यये चेत् किमस्त्यप्यलभ्यं
त्रिलोकीषु लोकस्य शोकापनोदे।।१९।।

लावण्यवश्याभिषिक्ता स्वरूपेण शम्बरारेः संचारिणी त्वम् अम्बा असि। अये शोकापनोदे! चेत् प्रसीदसि त्रिलोकीषु लोकस्य किम् अलभ्यम् अस्ति?

लावण्य की धारा में स्नात आप अपने रूप से शम्बर के शत्रु प्रद्युम्न

(को उत्पन्न करने) वाली माता हो। हे शोक का नाश करने वाली! आपके प्रसन्न हो जाने पर संसार के लिए त्रिलोकी में क्या वस्तु अलभ्य हो सकती है।।१९।।

ब्राह्मण उवाच—

स्तुत्वेत्थं परमेशानीं प्रणिपातपुरस्सरम्।
उवाच भुवनेशानी मृदुस्वल्पाक्षरं बहु॥२०॥

भुवनेशानी इत्थम् स्तुत्वा प्रणिपातपुरस्सरम् परमेशानीम् मृदु स्वल्पाक्षरम् बहु उवाच।

ब्राह्मण ने कहा—भुवनों की स्वामिनी भुवनेश्वरी ने इस प्रकार राधिका जी की प्रार्थना करके परम ईशानी राधिका जी से विस्तृत वाणी को थोड़े से अति मधुर अक्षरों में इस प्रकार कहा।।२०।।

भुवनेश्वरी उवाच—

आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि सुव्रते।
त्वदङ्गप्रभवा मातः किङ्करी साम्प्रतं त्वहम्।।२१।।

सुव्रते महादेवि! त्वत् अङ्गप्रभवाः अहम् तु किङ्करी। साम्प्रतम् किं करिष्यामि।

भुवनेश्वरी ने कहा—हे सुव्रते महादेवी! आपके अङ्ग से उत्पन्न होने वाली मैं तो आपकी दासी हूँ। शीघ्रता से आप आज्ञा कीजिए कि मैं क्या करूँ?।।२१।।

राधिका उवाच—

रचय त्वं महादेवि सर्वरत्नमयीं पुरीम्।
सौवर्णै राजतैर्हर्म्यैं रम्यां सर्वविमोहिनीम्।।२२।।
दिव्योपवनसंयुक्तां दिव्याट्टालकगोपुराम्।
रत्नभित्तिसमावीतां परिखाभिः समावृताम्।।२३।।
नानोपहारै रत्नैश्च रसद्रव्यैः प्रपूरिताम्।

महादेवि! त्वम् दिव्योपवनसंयुक्ताम् दिव्य-अट्टालकगोपुराम् रत्नभित्ति-समावीताम् परिखाभिः समावृताम् सौवर्णैः राजतैः हर्म्यैः रम्याम् नानोपहारैः रत्नैः रसद्रव्यैः च प्रपूरिताम् सर्वविमोहिनीम् सर्वरत्नमयीम् पुरीम् रचय।

राधिका जी ने कहा—हे महादेवी! तुम दिव्य उपवनों दिव्य अट्टालिका और गोपुरों से युक्त, रत्नों की चारदीवारी वाली, दिव्य परिखाओं से घिरी हुई, सुवर्ण से शोभित महलों वाली, अत्यन्त रम्य, अनेकों

उपहारों, रत्नों तथा रसद्रव्यों से भरी हुई, सबको मोहित करने वाली सभी रत्नों से भरी हुई पुरी (नगरी) की रचना करो॥२२-२३॥

ब्राह्मण उवाच—

इत्युक्ता सा तदा देवी चकारातिमनोरमाम्॥२४॥
पूरयामास रत्नौघै रसद्रव्यैः शुभां पुरीम्।
प्रतिकल्पद्रुमतले वेदिकां रत्ननिर्मिताम्॥२५॥
नानापुष्पैर्लताभिश्च पुष्पिताभिः समन्ततः।
शोभितां पक्षिभृङ्गैश्च नादितां सुमनोहराम्॥२६॥
सुवर्णमणिवज्रादिरचितैर्भवनोत्तमैः ।
राजते स्म पुरी देव्या रचिता विपिनान्तरे॥२७॥

तदा इति उक्ता सा देवी अतिमनोरमाम् शुभाम् पुरीम् चकार। (ताम् पुरीम्) रसद्रव्यैः रत्नौघैः पूरयामास। प्रतिकल्पद्रुमतले रत्ननिर्मिताम् वेदिकाम् समन्ततः नानापुष्पैः पुष्पिताभिः लताभिः शोभिताम्, सुवर्णमणिवज्रादिरचितैः भवनोत्तमैः सुमनोहराम्, पक्षिभृङ्गै च नादिताम् (चकार)। देव्या रचिता पुरी विपिनान्तरे राजते स्म।

ब्राह्मण ने कहा—उस समय इस प्रकार आज्ञा पाकर उस देवी ने अति-मनोरम शुभ नगरी का निर्माण किया और उस नगरी को रसपूर्ण द्रव्यों तथा रत्नों से भर दिया। इस नगरी में प्रत्येक कल्पवृक्ष के नीचे रत्नों से निर्मित चबूतरे थे। चारों ओर अनेक पुष्पों से पुष्पित लताओं से शोभित, सुवर्ण मणि और वज्रों से निर्मित, उत्तम भवनों से मन को मुग्ध करने वाली पक्षी और भ्रमरों के सुन्दर शब्दों से सुनादित नगरी का निर्माण किया। देवी द्वारा निर्मित यह पुरी उस विपिन वृन्दावन के भीतर अतिशोभित हो रही थी॥२४-२७॥

अथ पुर्यां निर्मितायां राधादेव्यङ्गसम्भवा।
स्मृतमात्राः समायाता मनोभवमनोरमाः॥२८॥
नरा नार्यो दिव्यरूपाश्चारुभूषणभूषणाः।
ततस्तैः पुरुषैस्ताभिः शक्तिभिर्दिव्यरूपिणी॥२९॥
रराज राधिका देवी परमानन्ददेवता।

अथ पुर्याम् निर्मितायाम् राधादेवी-अङ्गसम्भवाः दिव्यरूपाः मनोभव-मनोरमाः चारुभूषणभूषणाः नराः नार्यः स्मृतमात्राः समायाताः। ततः तैः पुरुषैः ताभिः शक्तिभिः दिव्यरूपिणी परमानन्ददेवता राधिका देवी रराज।

इसके बाद पुरी का निर्माण हो जाने पर राधा देवी के अंग से उत्पन्न होने वाले, दिव्य रूपधारी, कामदेव को भी अपने रूप से मोहित करने वाले

सुन्दर आभूषणों से विभूषित स्त्री और पुरुष स्मरण करने-मात्र से वहाँ आ गये। तब उन पुरुषों और उन शक्तियों से दिव्य रूप वाली परम आनन्द की देवता श्रीमती राधा देवी शोभित होने लगी॥२८-२९॥

तत आज्ञापयामास निजशक्ति(?क्ती)र्महेश्वरी॥३०॥
तथैव पुरुषांस्तांश्च निजरूपसमुद्भवान्।

ततः महेश्वरी निजरूपसमुद्भवान् तान् निजशक्तीः तथा एवं पुरुषान् आज्ञापयामास।

इसके बाद महेश्वरी राधिका ने अपने रूप से उत्पन्न होने वाली उन अपनी शक्तियों और पुरुषों को आज्ञा दी॥३०॥

श्रीराधिका उवाच—

शृणुध्वं शक्तयः सर्वा आज्ञां मम दुरासदाः॥३१॥
गोलोकमवधिं कृत्वा यावद् वृन्दावनं वनम्।
तं कदम्बतरुश्रेष्ठं कृत्वान्तःपुरमध्यगम्॥३२॥
पुरुषाः परिखारम्याः प्राकाराश्च सुशोभनाः।
कर्तव्या निर्भयैः सर्वैः मम शक्त्युपबृंहितैः॥३३॥

हे सर्वाः दुरासदाः शक्तयः! मम आज्ञाम् शृणुध्वम्। गोलोकम् अवधिम् कृत्वा वृन्दावनम् यावद् वनम् तम् कदम्बतरुश्रेष्ठम् अन्तःपुरमध्यगम् कृत्वा मम सर्वैः शक्त्युपबृंहितैः निर्भयैः सुशोभनाः पुरुषाः प्राकाराः रम्याः परिखाः च कर्तव्याः।

श्री राधिका ने कहा—हे मेरी सभी दुरासद शक्तियों! मेरी आज्ञा को सुनो। गोलोक की सीमा से वृन्दावन तक वन का निर्माण करके उसे श्रेष्ठ कदम्बवृक्षों वाला बनाओ। उसके मध्य में अन्तःपुर स्थापित करके मेरी सभी शक्तियों से परिपूर्ण निर्भीक समस्त परिजनों! एक पुरुष ऊँची अतिसुन्दर चारदीवारी और एक पुरुष गहरी रमणीय परिखा अर्थात् खाई का निर्माण करो॥३१-३३॥

ब्राह्मण उवाच—

ततस्ते सायुधाः सर्वे कन्दर्पाधिकरूपिणः।
गोलोकवासिनः सर्वान् विद्राव्य च स्वशक्तितः॥३४॥
रत्नैरपरिमेयैश्च नानाधातुसमन्वितैः।
दिव्या भित्तीर्विरचिताः कोटिसूर्यसमप्रभाः॥३५॥

ततः सायुधाः कन्दर्पाधिकरूपिणः ते सर्वे गोलोकवासिनः स्वशक्तितः

सर्वान् विद्राव्य नानाधातुसमन्वितैः अपरिमेयैः रत्नैः च कोटिसूर्यसमप्रभाः दिव्याः भित्तीः विरचिताः।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद आयुधों से युक्त तथा कन्दर्प से भी अधिक रूपवान् उन सबने अपनी शक्ति से सभी गोलोकवासियों को भगाकर अनेकों धातुओं से मिले हुए अगणित रत्नों से करोड़ों सूर्यों की सी प्रभा वाली दिव्य भित्तियों (चहारदीवारी) का निर्माण किया।।३४-३५।।

वज्रप्रवालमणिभिः पुरद्वारैः परिष्कृताः।
शोभोपशोभासंयुक्तामुक्तादिभिरलङ्कृताः ।।३६।।

वज्रप्रवालमणिभिः पुरद्वारैः परिष्कृताः मुक्तादिभिः अलङ्कृताः शोभा-भित्तयः उपशोभासंयुक्ताः (रचिताः)।

उन्होंने वज्र (हीरे) मूंगे और मणियों से पुरद्वारों को परिष्कृत करके मुक्ता आदि से सजाकर शोभा और उपशोभा से संयुक्त चारदीवारी को बनाया।।३६।।

ततो गोपगणाः सर्वे कृष्णदेहसमुद्भवाः।
गोलोकान्निर्ययुः सर्वे दण्डपाशोद्यतायुधाः।।३७।।
जगर्जुश्च महासत्त्वा गर्जन्मेघशतस्वनाः।
तथा राधाङ्गजन्मानः पञ्चबाणधनुर्धराः।।३८।।
सिंहनादं विनद्योच्चै रोषाविष्टा बहिर्गताः।
दृष्ट्वा तान् सूर्यसंकाशान् कन्दर्पाधिकसुन्दरान्।
श्रीदामाद्या महात्मानः प्राहुरद्भुतदर्शनान्।।३९।।

ततः कृष्णदेहसमुद्भवाः सर्वे दण्डपाशोद्यतायुधाः सर्वे गोपगणाः गोलोकात् निर्ययुः। मेघशतस्वनाः गर्जन् महासत्त्वाः जगर्जुः तथा राधाङ्गजन्मानः पंचबाणधनुर्धराः रोषाविष्टाः सिंहनादम् विनद्य बहिः गताः। तान् कन्दर्पाधिकसुन्दरान् सूर्यसंकाशान् अद्भुतदर्शनान् दृष्ट्वा श्रीदामाद्याः महात्मानः प्राहुः।

इसके बाद श्रीकृष्ण के अंग से उत्पन्न, दण्ड पाश और आयुध को उठाये हुए वे सभी गोपगण गोलोक से बाहर निकल आये। सैकड़ों मेघों के वे महाबलशाली गोप समान गर्जन करते हुए दहाड़ने लगे। तब राधा के अंग से उत्पन्न कामदेव के धनुष को धारण करने वाले वे क्रोध से युक्त होकर सिंह के समान ऊँचे स्वर से दहाड़ते हुए बाहर आ गये। कन्दर्प से भी अधिक सुन्दर, साक्षात् सूर्य के समान अद्भुत रूप वाले उनको देखकर श्रीदाम आदि कृष्णसखाओं ने कहा।।३७-३९।।

श्रीदामाद्या ऊचुः—

के यूयं भो महात्मानः किमर्थं परमात्मनः।
कृष्णस्य बलमेतद्वै बलाद्धरथ लीलया॥४०॥
कस्याज्ञया वा कर्मेदं क्रियते तन्निगद्यताम्।

भो महात्मानः यूयं के? परमात्मनः कृष्णस्य एतद् वै बलम् किम्-अर्थम् बलाद् लीलया वा हरथ। इदम् कर्म कस्य आज्ञया क्रियते? तत् निगद्यताम्।

श्रीदामा आदि ने कहा—हे महात्माओं! आप लोग कौन हो? परमात्मा श्रीकृष्ण के इस बल को किसलिए बलपूर्वक अथवा लीलापूर्वक हरण कर रहे हो? यह कर्म किसकी आज्ञा से कर रहे हो? यह बतलाओ॥४०॥

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वैद् गोपवचनं प्रत्याहुस्ते महाबलाः॥४१॥
घोरघर्घरनिःस्वानाः क्रोधादारक्तलोचनाः।

एतत् गोपवचनचम् श्रुत्वा घोरघर्घरनिःस्वानाः क्रोधात् आरक्तलोचनाः ते महाबलाः प्रत्याहुः।

ब्राह्मण ने कहा—इस तरह गोपों के वचनों को सुनकर क्रोध से लाल-लाल नेत्रों वाले उन महाबलशाली लोगों ने घोर घर्घर करती हुए वाणी से कहा॥४१॥

श्रीराधिकाङ्गप्रभवा ऊचुः—

शृणुध्वं भो! महात्मानो राधिकानुचरा वयम्॥४२॥
कः कृष्णस्तं न जानीमः स्वेश्वर्या प्रेषितैरिदम्।
कृतं सुदुष्करं कर्म बलं चापहृतं बलात्॥४३॥
भवतामस्ति शक्तिश्चेद् निर्जित्यास्मानिदं बलम्।
निजेश्वरं वशं कृत्वा दर्शयध्वं स्वकं बलम्॥४४॥

भो महात्मानः शृणुध्वम् वयम् राधिका-अनुचराः। कः कृष्ण तम् न जानीमः स्व ईश्वर्या प्रेषितैः (अस्मामिः) इदम् सुदुष्करम् कर्म कृतम्। बलात् बलम् च अपहृतम्। चेत् भवताम् शक्तिः अस्ति अस्मान् निर्जित्य बलम् वशम् कृत्वा निजेश्वरम् स्वकम् बलम् दर्शयध्वम्।

श्री राधा के अङ्ग से उत्पन्न योद्धाओं ने कहा—हे महापुरुषों! सुनो; हम राधिका जी के आज्ञानुचर हैं। कृष्ण कौन है? हम नहीं जानते। अपनी स्वामिनी की आज्ञा से हमने यह दुष्कर कर्म किया है। बलपूर्वक तुम्हारे बल का अपहरण किया है। यदि तुम्हारे में शक्ति हो तो हमें जीतकर बल को मुक्त करा लो। अपने स्वामी से प्राप्त अपने बल को दिखाओ॥४२-४४॥

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वैतत् कुपिताः सर्वे श्रीदामाद्या महौजसः।
दण्डपाशादिभिः सर्वांस्ताडयामासुरुद्धताः॥४५॥
ततस्ते कुपिता बाणैः पञ्चभिः पञ्चरूपिभिः।
विभिदुर्गोपतनयान् सनया(?सन्नयाः) युद्धदुर्मदाः॥४६॥

एतत् श्रुत्वा श्रीदामाद्याः सर्वे महौजसः कुपिताः उद्धताः दण्डपाशादिभिः सर्वान् ताडयामासुः। ततः कुपिताः युद्धदुर्मदाः ते पंचरूपिभिः पञ्चभिः बाणैः गोपतनयान् संनयाः बिभिदुः।

ब्राह्मण ने कहा—यह सुनकर श्रीदामा आदि सभी महान् पराक्रमी गोपों ने क्रोध से उद्धत होकर दण्ड और पाश आदि से उन सभी का ताडन किया। तब क्रोध से युद्ध में न दबने वाले राधिकानुचरों ने संघटित होकर पाँच आकृतियों वाले पाँच-पाँच बाणों से गोपबालकों को विक्षत कर दिया॥४५-४६॥

ततस्ते गोपशिशवो विद्धाः संमुमुहुर्भृशम्।
जृम्भन्तो मोहमापन्नाः सुशुष्कवदनातुराः॥४७॥
स्तब्धा आसन् वनान्तस्थाः काष्ठपुत्तलिका यथा।

ततः विद्धाः ते गोपशिशवः मोहमापन्नाः सुशुष्कवदनातुराः जृम्भन्तः भृशम् संमुमुहुः। वनान्तस्थाः काष्ठपुत्तलिका यथा स्तब्धाः आसन्।

इसके बाद बिद्ध अंग वाले वे सभी गोपबालक सूखे हुए मुख से व्याकुल होकर जँभाई लेते हुए मूर्छा से मोहित हो गये। वृन्दावन में काठ की पुत्तलिका की तरह अपलक होकर ठहर गये॥४७॥

स्तब्धान्निर्भर्त्स्य तान् सर्वान् राधाशक्त्युपबृंहिता॥४८॥
मोचयित्वा स्तम्भनं च द्रावयामासुरुन्मदाः।
धावन्तो द्रवतो गोपान् सम्भ्रमाक्रान्तमानसान्॥४९॥
त्रासयामासुरुत्त्रासा राधादेव्याः प्रसादतः।
तेषां मध्ये रूपवन्तमेकं ते जगृहुर्बलात्॥५०॥

राधाशक्त्युपबृंहिताः उन्मदाः स्तब्धान् तान् सर्वान् निर्भर्त्स्य स्तम्भनम् च मोचयित्वा द्रावयामासुः। राधादेव्याः प्रसादतः उत्त्रासाः धावन्तः द्रवतः सम्भ्रमाक्रान्तमानसान् गोपान् त्रासयामासुः। तेषाम् मध्ये एकम् रूपवन्तम् ते बलात् जगृहुः।

राधा की शक्ति से सम्पन्न उन उन्मदों ने अपलक ठहरे हुए उन

सबको धिक्कारते हुए उन्हें स्तम्भन से मुक्त करके भगा दिया। राधा देवी की कृपा से उन निर्भीक सेवकों ने दौड़ते हुए भयभीत और आश्चर्यचकित मन वाले उन गोपों को अत्यन्त भयभीत किया तथा उनके मध्य से एक अतिरूपवान् गोपाल को उन्होंने बलपूर्वक पकड़ लिया।।४८-५०।।

सुबलं नामतः साध्वि! कन्दर्पाधिकसुन्दरम्।
तं समानीय बद्ध्वा वै राधिकायै महाबलाः।।५१।।
दर्शयन्तो जगुर्मातर्गोपा येऽस्मत्पराजिताः।
पराययुर्वनं त्यक्त्वा तेषामेव बलाधिकः।।५२।।
अस्माभिर्निगृहीतोऽपि विद्यारूपगुणाधिकः।
भवत्या दर्शनाकाङ्क्षी किं विधेयं विधीयताम्।।५३।।
लाघवं गौरवं वापि स्वेच्छया कुरु लीलया।

साध्वि! महाबलाः कन्दर्पाधिकसुन्दरम् नामतः सुबलम् बद्ध्वा तम् समानीय राधिकायै दर्शयन्तः जगुः। मातः! ये गोपाः अस्मत् पराजिताः (ते) वनम् त्यक्त्वा पराययुः। तेषाम् एव बलाधिकः विद्यारूपगुणाधिकः अपि अस्माभिः गृहीतः भवत्याः दर्शनाकाङ्क्षी (अस्ति)। विधीयताम् किम् विधेयम्? लीलया स्वेच्छया वा लाघवम् गौरवम् वा अपि कुरु।

हे साध्वि! महाशक्तिसम्पन्न उन राधिकानुचरों ने कन्दर्प से भी अधिक सुन्दर सुबल नाम के गोपबालक को पकड़कर उसे लाकर राधिका जी को दिखाते हुए कहा—हे माता! जो गोप हमसे पराजित हो गये, वे वृन्दावन को छोड़कर भाग गये। उनमें से अधिक बलवान् विद्या रूप और गुण में सर्वाधिक यह (बालक) हमारे द्वारा पकड़ा गया है। आपके दर्शन का अभिलाषी है। बताओ अब इसका क्या करें? आप अपनी लीला से या स्वेच्छा से इसका लाघव या गौरव जो चाहें सो करें।।५१-५३।।

ततः सा राधिका देवी दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसम्भवम्।।५४।।
सुकुञ्चितकचं कृत्यं तप्तकाञ्चनसन्निभम्।
प्रसन्नवदनं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्।।५५।।
विचित्रवसनं चारुरत्नालङ्करणोज्ज्वलम्।
भ्रातृत्वे कल्पयित्वा तं प्रेम्णा किञ्चिदुवाच ह।।५६।।
भ्रातरुत्तिष्ठ मा खेदं कुरु मेऽन्तःपुरे वस।

ततः सा राधिका देवी कृष्णाङ्गसम्भवम् तप्तकाञ्चनसन्निभम् प्रसन्नवदनम् पद्मपत्रायतेक्षणम् सुकुञ्चितकचम् कृत्यम् विचित्रवसनचारुरत्नालंकरणोज्ज्वलम्

दृष्ट्वा भ्रातृत्वे कल्पयित्वा प्रेम्णा तम् किञ्चित् उवाच—हे भ्रातः! उत्तिष्ठ। खेदम् मा कुरु। मे अन्तःपुरे वस।

इसके बाद राधा देवी ने कृष्णदेह से उत्पन्न, तप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाले, प्रसन्न मुख वाले, कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले, घुंघराले बालों वाले, शान्त तथा विचित्र वस्त्रों वाले, सुन्दर रत्न अलंकारों से उज्ज्वल रूप वाले एवं कृत्य अर्थात् उपयुक्त उसे देखकर भाई की तरह मानते हुए प्रेम की मधुर वाणी में कहा—हे भ्राता! उठो। खेद मत करो। मेरे अन्तःपुर में रहो॥५४-५६॥

तथेत्युक्तः स सुबलस्तां प्रणम्य कृताञ्जलिः॥५७॥
प्राह मातः करिष्यामि भवत्याभिमतं हि यत्।
ततस्तैः पुरुषैर्देव्या इङ्गितज्ञैः कटाक्षतः॥५८॥
अभिषिक्तश्च सुबलो वस्त्रालङ्करणादिभिः।
पूजितः परया भक्त्या प्रेमगद्गदया गिरा॥५९॥
संस्तुतो दिव्यभवने स्थापितः कृष्णबान्धवः।

स सुबलः कृताञ्जलिः 'तथा' इति उक्तः ताम् प्रणम्य प्राह—मातः भवत्या यत् अभिमतम् तत् करिष्यामि हि। ततः देव्याः कटाक्षतः इङ्गितज्ञैः तैः पुरुषैः सुबलः अभिषिक्तः; वस्त्रालंकरणादिभिः पूजितः; परया भक्त्या प्रेमगद्गदया गिरा संस्तुतः कृष्णबान्धवः दिव्यभवने स्थापितः।

उस सुबल ने हाथ जोड़कर उस देवी को प्रणाम करके कहा—माता! मैं आपकी इच्छा के अनुसार ही कार्य करूँगा। इसके बाद देवी के कटाक्ष के संकेत को समझने वाले उन पुरुषों ने कृष्णबान्धव उस सुबल को स्नान कराया; वस्त्र और अलंकारों से पूजा की; परम भक्ति के साथ प्रेम से गद्गद वाणी से स्तुति की और दिव्य भवन में ठहरा दिया॥५७-५९॥

ततस्तेऽमृतमानीय भोजयामासुरुत्सुकाः॥६०॥
दिव्ये सिंहासने तं वै स्वापयित्वा निजालयम्।
ययुः सर्वे राधिकानुचरास्ते दिव्यरूपिणः॥६१॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये वृन्दावनरचनं गोपानां पराजयः नाम षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥

ततः ते उत्सुकाः अमृतम् आनीय तम् भोजयामासुः। दिव्ये सिंहासने वै स्थापयित्वा ते सर्वे दिव्यरूपिणः राधिकानुचराः निजालयम् ययुः।

इसके बाद उन उत्सुक सेवकों ने अमृत लाकर उन्हें भोजन कराया। दिव्य सिंहासन पर उन्हें बिठाकर दिव्य रूपधारी वे सब राधिका के सेवक अपने-अपने घर चले गये॥५९-६०॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधाकृष्णरहस्य में वृन्दावन की रचना एवं गोपपराजय नामक छब्बीसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णवंशीहरणं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रणञ्च

ब्राह्मणी उवाच—

विनिर्जितेषु गोपेषु श्रीकृष्णेनैव किं कृतम्।
किं वा च राधिकादेव्या प्राणेश्वर! तदुच्यताम्।।१।।

प्राणेश्वरः! गोपेषु विनिर्जितेषु श्रीकृष्णेन किं कृतम्? किम् राधिका देव्या वा च कृतम्? तद् उच्यताम्।

ब्राह्मणी ने कहा—हे प्राणनाथ! गोपों के पराजित हो जाने पर श्रीकृष्ण ने तथा श्रीराधा देवी ने क्या किया, उसे कहिए।।१।।

ब्राह्मणी उवाच—

ततः सा राधिका देवी पुरस्कृत्य महेश्वरीम्।
भुवनेशीं निजगणैर्मन्त्रयामास वै रहः।।२।।

ततः सा राधिका देवी महेश्वरीम् भुवनेशीम् पुरस्कृत्य निजगणैः रहः वै मन्त्रयामास।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद उस राधा देवी ने महेश्वरी भुवनेशी के समक्ष अपने गणों के साथ एकान्त में मन्त्रणा की।।२।।

हे मातर्भुवनेश्वरि! स्मरमनोहारिण्य एणीदृशः
कन्दर्पाधिकसुन्दराः सुपुरुषाः सर्वे शृणुध्वं वचः।
चित्तं तस्य हृतं मया प्रकृतयः संमोहिता निर्जिता
गोपालानां च बलं हृतं किमपरं कार्यं झटित्युच्यतामा्।।३।।

हे मातः भुवनेश्वरि! स्मरमनोहारिण्यः एणीदृशः (शक्तयः) कन्दर्पाधिकसुन्दराः सुपुरुषाः! सर्वे वचः शृणुध्वम्। मया तस्य चित्तम् हृतम्। प्रकृतयः सम्मोहिताः निर्जिताः। गोपालानाम् च बलम् हृतम्। अपरम् किम् कार्यम्? तद् झटिति उच्यताम्।

हे माता भुवनेश्वरी! कामदेव को मुग्ध करने वाली मृगनयनी शक्तियों तथा कन्दर्प से अधिक सुन्दर पुरुषों! (आप) सब मेरे कथन को सुनिये! मैंने उनके चित्त को चुरा लिया है। उनकी शक्तियों को सम्मोहित कर जीत लिया है तथा गोपालों के बल को भी पराजित कर दिया है। अब क्या करना शेष है, उसे शीघ्रता से बताइये।।३।।

भुवनेश्वरी उवाच—

इदानीं यत्तु कर्तव्यं त्वया तच्छृणु राधिके।
मोहयित्वा लीलया तं तन्मुखान्मुरलीं हर॥४॥
सहजमदनमत्तं त्वं द्रुतेनातिमुग्धं
नवगुणगणवित्तं वेणुवाद्यानुरक्तम्।
कमलनयनमीषल्लीलया मोहयन्ती
हर वरमुरलीं तां यद्रवेणासि मुग्धा॥५॥

हे राधिके! इदानीम् तु यत् त्वया कर्त्तव्यम् तत् शृणु तं लीलया मोहयित्वा तन्मुखात् मुरलीम् हर। द्रुते त्वम् सहजमदनमत्तम् नवगुणगणवित्तम् वेणुवाद्यानुरक्तम् कमलनयनम् नातिमुग्धम् ईषत् लीलया मोहयन्ती यद्रवेण मुग्धा असि ताम् वरमुरलीम् हर।

भुवनेश्वरी ने कहा—हे राधिके! इस समय जो तुम्हें करना है, उसे ध्यान से सुनो—उन श्रीकृष्ण को अपनी लीला से मोहित करके उनके मुख से मुरली को चुरा लो। तुम शीघ्र ही सहज काम से उन्मत्त, नवगुण समूह से युक्त, वेणु के बजाने में अनुरक्त, कमल के समान वाले नेत्र तथा जो अभी अतिमुग्ध नहीं हैं, उन श्रीकृष्ण को अपनी लीला से मोहित करके जिसके स्वर से तुम मुग्ध हो रही हो, उस श्रेष्ठ मुरली का हरण कर लो॥४-५॥

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वैतद्वचनं तस्या राधा सा सकलेश्वरी।
त्रैपुरं रूपमास्थाय लीलया गजगामिनी॥६॥
जगाम यत्र गोविन्दस्तद्गुणाकृष्टचेतनः।
गायत्युच्चै राधिकेति तन्नाम मधुराक्षरम्॥७॥

तस्याः तद् वचनम् श्रुत्वा सा सकलेश्वरी गजगामिनी राधा लीलया त्रैपुरम् रूपम् आस्थाय तत्र जगाम यत्र तद्गुणाकृष्टचेतनः गोविन्दः उच्चैः राधिका इति तत् नाममधुराक्षरम् गायति।

ब्राह्मण ने कहा—भुवनेश्वरी के उन वचनों को सुनकर वह सकलेश्वरी गजगामिनी राधा लीलापूर्वक त्रिपुरेश्वरी का रूप बनाकर वहाँ गयी, जहाँ उनके गुणों से आकृष्ट चित्त वाले गोविन्द उसके राधिका नाम के मधुर अक्षरों को ऊँचे स्वर में गा रहे थे॥६-७॥

मोहिता सापि प्रेम्णा तल्लीलयाकृष्टचेतना।
प्रहसद्वदना देवी तमुवाच मनोहरा॥८॥

अहहाद्य भवान् काममुग्धः खिन्नोऽस्ति केशव।
दहत्येव मनस्ते किं राधाविरहजो ज्वरः॥९॥

तत् लीलयाकृष्टचेतना सा अपि प्रेम्णा मोहिता प्रहसद्वदना मनोहरा देवी तम् उवाच। अहह! केशव अद्य भवान् काममुग्धः खिन्नः अस्ति। किम् राधाविरहजः ज्वरः एव ते मनः दहति।

श्रीकृष्ण की लीला से आकृष्ट चित्त वाली वह राधा भी प्रेम से मोहित हो गयी। हँसते हुए मुख वाली मनोहर देवी राधा ने श्रीकृष्ण से कहा—अरे केशव! आज काम से मोहित हुये तुम दुःखी हो रहे हो। क्या तुम्हारा मन राधा के विरह से उत्पन्न ज्वर से ही जल रहा है॥८-९॥

नायाति राधा यदि चेत्त्वया गन्तुं न शक्यते।
तथेत्युक्तेन तेनैव दत्तं प्रत्युत्तरं न वै॥१०॥
ज्ञात्वा मदातुरं देवं राधा चकितलोचना।
रसनानूपुरालोलरत्नकङ्कणनिःस्वनम् ॥११॥
निवार्य तन्मुखाम्भोजादाच्छिद्य मुरलीं हठात्।
हसन्ती स्वगणैः सार्धं प्रविष्टा तद्वनं महत्॥१२॥

यदि चेत् राधा न आयाति त्वया गन्तुं न शक्यते? 'तथा' इति उक्तेन तेन एवं प्रत्युत्तरम् न वै दत्तम्। चकितलोचना राधा देवम् मदातुरम् ज्ञात्वा रसनानु-पूर-आलोलरत्नकंकणनिःस्वनम् निवार्य तन्मुखाम्भोजात् हठात् मुरलीम् आच्छिद्य हसन्ती स्वगणैः सार्धम् तद् महत् वनम् प्रविष्टा।

यदि राधा नहीं आती है तो क्या तुम वहाँ नहीं जा सकते? ऐसा कहने पर भी जब कृष्ण ने उत्तर नहीं दिया तो चकित नेत्रों वाली राधा ने श्रीकृष्ण को मदनातुर समझकर अपनी करधनी के नूपुरों के रत्नों से उत्पन्न और कंकणों से उत्पन्न शब्द को रोककर श्रीकृष्ण के मुखकमल से बलपूर्वक मुरली को छीनकर हँसती हुई अपने गणों के साथ उस महान् वृन्दावन में प्रवेश कर गयीं॥१०-१२॥

ततः क्षणान्तरे कृष्णोऽप्यदृष्ट्वा मुरलीं करे।
आकर्ण्य राधिकानाम क्षणमुत्कण्ठितोऽभवत्॥१३॥
किमाश्चर्यं किमाश्चर्यं क्व गता मुरली मम।
कुतः केन समागत्य हृता प्राणाधिकाऽधिका(?प्रिया)॥१४॥

ततः क्षणन्तरे कृष्णः अपि करे मुरलीम् अदृष्ट्वा राधिकानाम आकर्ण्य क्षणम् उत्कण्ठितः अभवत्। किम् आश्चर्य किम् आश्चर्यम् मम मुरली क्व गता? प्राणाधिका प्रिया कुतः केन समागत्य हृता?

इसके पश्चात् क्षणभर बाद ही श्रीकृष्ण भी हाथ में मुरली को न देखकर राधिका नाम को पुकार कर क्षणभर में व्याकुल हो गये। क्या आश्चर्य है! क्या आश्चर्य है! मेरी मुरली कहाँ गयी? मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय मेरी मुरली किसने कहाँ से आकर चुरा ली?।।१३-१४।।

राधाविरहदावाग्निसन्तप्तहृदयं हि माम्।
सुखयत्येव सा नित्यं पीयूषासारवर्षिणी।।१५।।
हृत्वेमां मुरलीं केन दुःखं दत्तं सुदारुणम्।
स्मरेऽहं स्वप्नवद्दृष्टं हृता वक्त्राम्बुजान्मम।।१६।।
स्वयं श्रीत्रिपुरेश्वर्या किमर्थं तन्न वेद्म्यहम्।

राधाविरहदावाग्निसन्तप्तहृदयम् माम् पीयूषासारवर्षिणी सा नित्यम् एव सुखयति। इमाम् मुरलीम् हृत्वा केन सुदारुणम् दुःखम् दत्तम्। स्मरे अहम् स्वप्नवद् दृष्टम् मम वक्त्राम्बुजात् स्वयम् श्रीत्रिपुरेश्वर्या किम् अर्थम् हृता? तत् अहम् न वेद्मि।

राधा के विरह की दावाग्नि से सन्तप्त हृदय वाले मुझको अमृत की धारा की वर्षा करके वह नित्य ही सुख देती थी। इस मुरली को चुराकर किसने मुझे यह दारुण दुःख दिया है? मुझे याद है, मैंने स्वप्न की तरह देखा था कि स्वयं त्रिपुरेश्वरी ने मेरे मुखकमल से मुरली का क्यों हरण किया है, यह मैं नहीं जानता।।१५-१६।।

एतस्मिन्नेव समये देवी तत्र समागता।।१७।।
तां दृष्ट्वा रोषताम्राक्षः प्राह किं ते विचेष्टितम्।
हृत्वा मदीयां मुरलीं किं साध्यं तव कथ्यताम्।।१८।।

एतस्मिन् एव समये देवी (त्रिपुरसुन्दरी) तत्र समागता। ताम् दृष्ट्वा (कृष्णः) रोषताम्राक्षः प्राह-ते किम् विचेष्टितम् ? मदीयाम् मुरलीम् हृत्वा तव किम् साध्यम्? कथ्यताम्।

इसी समय वहाँ देवी त्रिपुरसुन्दरी आ गयी। उनको देखकर क्रोध से लाल नेत्र वाले श्रीकृष्ण ने कहा—तुम्हारी क्या इच्छा है? मेरी मुरली का हरण करके तुम क्या सिद्ध करना चाहती हो? वह बतलाओ।।१७-१८।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

न जाने नाथ मुरली हृता केनाधुना तव।
सुस्थो भवात्र भविता कारणं तद्वदामि ते।।१९।।

नाथ! न जाने तव मुरली अधुना केन हृता। सुस्थः भव। अत्र कारणम् भविता। तत् ते वदामि।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे नाथ! मैं नहीं जानती कि तुम्हारी मुरली इस समय किसने चुरायी है। तुम शान्तचित्त हो जाओ। इसमें कोई कारण है, मैं तुम्हें बताती हूँ॥१९॥

ब्राह्मण उवाच—

कृष्णः प्राह महादेवि भवत्या मुरली हृता।
साक्षाद्दृष्टं तथापि त्वं मृषा जल्पसि मेऽग्रतः॥२०॥
राधाविरहदुःखार्ते पुनर्दुःखं न दीयते।
अग्निना दह्यमानेऽङ्गे वज्रपातः किमद्भुतम्॥२१॥
इत्थं वाक्कलहासक्तं कृष्णमाह शुचिस्मिता।
त्रिपुरात् त्रिपुरा जाता जगन्मोहनरूपिणी॥२२॥

कृष्णः प्राह—महादेवि! (मया) साक्षात् दृष्टम् भवत्या मुरली हृता तथापि मे अग्रतः त्वम् मृषा जल्पसि। राधाविरहदुःखार्ते (मे) पुनः दुःखम् न दीयते। किम् अद्भुतम् अग्निना दह्यमाने अङ्गे वज्रपातः। त्रिपुरात् जाता जगन्मोहन-रूपिणी शुचिस्मिता त्रिपुरा इत्थम् वाक्कलहासक्तम् कृष्णम् आह।

ब्राह्मण ने कहा—कृष्ण ने कहा—हे महादेवि! मैंने अपनी आँखों से देखा कि तुमने मुरली चुरायी है। फिर भी मेरे सामने असत्य भाषण कर रही हो। राधा के विरह से दुःखी मुझे और दुःख क्यों दे रही हो। कैसा आश्चर्य है कि आग से जले हुए शरीर पर वज्रपात हो रहा है। त्रिपुरा के शरीर से उत्पन्न जगत् को मोहित करने वाले रूपवाली शुचिस्मिता त्रिपुरा ने इस प्रकार वाक् कलह करने वाले श्रीकृष्ण इस प्रकार से कहा॥२०-२२॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

दैवादेवाद्य मिथ्याभिशासनं विहितं मम।
दुरदृष्टवशान्नष्टं चन्द्रदर्शनजं फलम्॥२३॥
भाद्रे चतुर्थ्यां तु दृष्टः पक्षयोर्नष्टचन्द्रमाः।
तद्धेतोरेव भगवान् मयि मिथ्याभिशासकः॥२४॥

दैवात् एव अद्य दुरदृष्टवशात् मम चन्द्रर्शनजम् फलम् नष्टम् मिथ्याभि-शासनम् विहितम्। भाद्रे चतुर्थ्याम् तु पक्षयोः नष्टचन्द्रमाः दृष्टः तद् हेतो भगवान् मयि मिथ्याभिशासकः।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—भाग्य से ही आज दुर्दैव के कारण मुझे चतुर्थी के चन्द्रदर्शन के फल का मिथ्या नष्ट हो गया कि मेरे ऊपर चोरी का दोष लग गया। भाद्रपद के दोनों पक्षों की चतुर्थी के चन्द्र का दर्शन करने से आज मुझ स्वयं पर भगवान् मिथ्या ही चोरी का दोष लगा रहे हैं॥२३-२४॥

न मयाऽपहृता देव मुरली मधुरस्वना।
मन्ये तया राधिकया भुवनेश्याभियुक्तया॥२५॥
मायामद्रूपधारिण्या मोहितोऽसि तथा विभो।
यथा मुखसरोजान्ताद् वंशी हंसी हृताक्षणात्॥२६॥

देव! मधुरस्वना मुरली मया न अपहृता। मन्ये भुवनेश्याभियुक्तया तया राधिकया मायामद् रूपधारिण्या तया मोहितः असि यथा विभो! मुखसरोजान्ताद् क्षणात् हंसी वंशी हृता।

हे देव! मधुर स्वर करने वाली तुम्हारी वंशी मैंने नहीं चुरायी है। मैं मानती हूँ कि भुवनेशी द्वारा चोर कार्य में प्रेरित उस राधा ने माया से मेरा रूप धारण करके तुम्हें ऐसा मोहित कर दिया है और तुम्हारे मुखकमल से क्षणभर में उस हंसी-वंशी को चुरा लिया है॥२५-२६॥

मन्मतं शृणु गोविन्द कर्तव्या नावहेलना।
तद्वशीकरणाद् यस्मान्मुरलीप्रापणं भवेत्॥२७॥
मोहितापि स्वयं नारी पुरुषं नानुगच्छति।
यथा लता कुसुमिता भ्रमरं कलकूजितम्॥२८॥

गोविन्द! मम मतम् शृणु—तद्वशीकरणाद् अवहेलना न कर्त्तव्या यस्मात् मुरलीप्रापणम् भवेत्। मोहिता अपि नारी स्वयम् पुरुषम् न अनुगच्छति। यथा कुसुमिता लता कलकूजितम् भ्रमरम् (न गच्छति)।

गोविन्द! मेरी राय सुनो! अवहेलना नहीं करनी चाहिए; जिससे उस राधा का वशीकरण करने से शीघ्र ही मुरली पुनः प्राप्त हो जाए। मोहित होने पर भी नारी कभी स्वयं पुरुष के पास नहीं जाती, जैसे कि कुसुमित लता मधुर गुञ्जार करने वाले भौंरे के पास (नहीं जाती)॥२७-२८॥

उद्योगिनः श्रियं स्त्रीं च केशेनाकृष्य भुञ्जते।
यदि नैवं विनश्यन्ति चापल्यात् चपलाः स्त्रियः॥२९॥
गोपालैर्नटवेशैश्च नर्तकीभिः स्वशक्तिभिः।
भवान् महान् नटस्तत्र नानायन्त्रकलार्थवित्॥३०॥
सङ्गीतविद्भिरुत्कृष्टगुणरूपादिशालिभिः।
यदि याति वशं याति राधा त्वच्चित्तमोहिनी॥३१॥

उद्योगिनः केशेन श्रियम् स्त्रीम् आकृष्य भुञ्जते। यदि एवम् न (तर्हि ताः) चपलाः स्त्रियः चापल्यात् विनश्यन्ति। तत्र भवान् नानायन्त्रकलार्थवित् महान् नटः (अस्ति)। नर्तकीभिः उत्कृष्टगुणरूपादिशालिभिः संगीतविद्भिः नटवेशैः गोपालैः स्वशक्तिभिः यदि याति त्वत् चित्तमोहिनी राधा वशम् याति।

उद्योगी जन लक्ष्मी का तथा स्त्री का केश खींच कर भोग करते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो चञ्चल स्त्रियाँ अपने चापल्य के कारण स्वतः नष्ट हो जाती हैं। इस विषय में आप अनेकों यन्त्रों और कलाओं को जानने वाले महान् नट हैं। नट वेशधारी आप अपनी उत्कृष्ट गुण-रूप वाली संगीत की परम ज्ञात मण्डली के साथ जाइये तो आपके चित्त को मोहित करने वाली वह राधा आपके वश में हो सकती है।।२९-३१।।

तत्रैवाहं गमिष्यामि दूती भूत्वाद्य केशव।
वृन्दया सह संमन्त्र्य वशं नेष्यामि राधिकाम्।।३२।।
राधिकारक्षकाः सर्वे कन्दर्पाः कामरूपिणः।
केचित्तत्रैव तरुणा दुर्धर्षा युद्धदुर्मदाः।।३३।।
बालरूपधराः केचिद् वृद्धरूपास्तथा परे।
गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च मोहयित्वा च तान् जनान्।।३४।।
वञ्चयित्वा परं सर्वान् प्रविश्यान्तःपुरं महत्।
भूत्वा त्वं षट्पदाकारः क्षणं स्थित्वा तदन्तिके।
बुद्ध्वा वा चरितं तस्या रंस्यसेऽद्य तया ध्रुवम्।।३५।।

केशव! अद्य अहम् दूती भूत्वा तत्रैव गमिष्यामि। वृन्दया संमन्त्र्य राधिकाम् वशम् नेष्यामि। राधिकारक्षकाः सर्वे कामरूपिणः कन्दर्पाः तत्र केचित् दुर्धर्षाः युद्धदुर्मदाः तरुणाः, केचित् बालरूपधराः एव। तथा अपरे वृद्धरूपाः। त्वम् गीतवाद्यैः च नृत्यैः च तान् जनान् मोहयित्वा सर्वान् परम् वञ्चयित्वा महत् षट्पदाकारः भूत्वा अन्तःपुरम् प्रविश्य क्षणम् तद् अन्तिके स्थित्वा तस्याः आचरितम् वा बुद्ध्वा ध्रुवम् तया (सह) अद्य रंस्यसे।

हे केशव! वहाँ पर मैं आज दूती बनकर जाऊँगी तथा वृन्दा के साथ मंत्रणा करके राधा को वश में करूँगी। राधिका के सभी रक्षक कामरूप कन्दर्प हैं। उनमें कुछ युवा अतिबलशाली और युद्ध में दुर्जेय हैं। कुछ बाल रूपधारी हैं तो कुछ वृद्धजन हैं। तुम गीत वाद्यों तथा नृत्य से उन्हें मोहित करके सबको धोखा देकर भ्रमर का रूप धारण करके महत् अन्तःपुर में प्रवेश करके थोड़े समय उसके पास ठहरकर उसके आचरण को जानकर आज निश्चय ही उसके साथ रमण करोगे।।३२-३५।।

ब्राह्मण उवाच—

इत्युक्तस्त्रिपुरेश्वर्या प्राहोऽहमथम(?चा)च्युतः।
त्रिपुरा च ततः स्थानान्निर्जगाम शुचिस्मिता।
प्राह वृन्दावनचरांल्लोकानुच्चैर्हितस्थिता।।३६।।

अथ च प्राहः अहम् अच्युतः त्रिपुरेश्वर्या इति उक्तः। ततः हितस्थिता शुचिस्मिता त्रिपुरा स्थानात् निर्जगाम वृन्दावनचरान् लोकान् उच्चैः प्राह।

ब्राह्मण ने कहा—त्रिपुरेश्वरी के द्वारा प्राह अर्थात् कलानिपुण मैं अच्युत इस प्रकार कहा गया। इसके बाद हित कार्य साधने वाली त्रिपुरा वहाँ से चली गयी और उसने वृन्दावन में स्थित लोगों से उच्च स्वर में कहा।।३६।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

शृणुत परमशक्त्या दीयते हस्तताली
यदि निजहितवाञ्छा वर्तते साम्प्रतं वः।
असितसितचतुर्थ्यामुद्गतो भाद्रमासे
हरि हरि न कदाचिन्नष्टचन्द्रः सुदृश्यः।।३७।।

शृणुत। परमशक्त्या हस्तताली दीयते। यदि साम्प्रतम् वः निजहितवाञ्छा वर्तते (तर्हि) भाद्रमासे असितसितचतुर्थ्याम् उद्गतः नष्टचन्द्रः हरि हरि कदाचित् न सदृश्यः।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—सुनो। मैं पूरी शक्ति के साथ ताली बजा रहा हूँ। यदि इस समय आप अपने हित की इच्छा रखती हो तो भाद्रपद मास के दोनों पक्षों के चतुर्थी के उदित होते हुए हरि= लाल रंग के तथा हरि= पुण्य का हरण करने वाले अर्थात् अशुभ नष्ट (=क्षीण) चन्द्र को कभी मत देखना और देखने से निरन्तर दूर रहना।।३७।।

इत्यालपन्त्यां जगतो जनन्यां
कोऽप्याह वृन्दावनचारिलोकः।
यदि प्रमादादवलोक्यते तदा
को वास्त्युपायः कथयात्र अद्य।।३८।।

जगतः जनन्याम् इति आलपन्त्याम् वृन्दावनचारिलोकः कः अपि आह। यदि प्रमादात् अवलोक्यते तदा कः वा उपायः अस्ति? अद्य अत्र कथय।

जगत् की माता त्रिपुरा के ऐसा कहने पर वृन्दावनवासी किसी पुरुष ने कहा कि यदि कभी भूलवश चन्द्रमा दिख जाए तो उसकी निवृति का क्या उपाय है, यह यहाँ बताओ।।३८।।

ततः सा कथयामास मन्त्रावेतौ शुचिस्मिता।
मृषाभिशस्ता कृष्णेन देवी त्रिपुरसुन्दरी।।३९।।
वंशी हृता राधिकया नष्टचन्द्रः प्रसीदतु।
नमो नमोऽस्तु चन्द्राय प्रकाशितदिशे नमः।।४०।।

शमय त्वं मृषावादं क्षीरनीरधिसम्भव।
इति मन्त्रौ जलं वीक्ष्य प्रोक्ष्यास्त्रमनुना तथा॥४१॥
प्रजपेच्च त्रिवारं तत् पिबेद् वार्यभिमन्त्रितम्।
न तस्य जायते कश्चिन्मृषावादी महीतले॥४२॥

ततः कृष्णेन मृषाभिशस्ता सा शुचिस्मिता देवी त्रिपुरसुन्दरी एतौ मन्त्रौ कथयामास। वंशी राधिकया हृता, नष्टचन्द्रः प्रसीदतु। चन्द्राय नमः नमः अस्तु। प्रकाशितदिशे नमः। क्षीरनीरधिसम्भव! त्वम् मृषावादम् शमय। इति जलम् वीक्ष्य मन्त्रौ जपेत्; अस्त्रमनुना प्रोक्ष्य अभिमन्त्रितम् वारि पिबेत्; तस्य महीतले कश्चित् मृषावादी न जायते।

इसके बाद कृष्ण के द्वारा झूठे चोरी के अपवाद से युक्त शुचिस्मिता देवी उस त्रिपुरसुन्दरी ने दो मन्त्रों को बताया।

(१) वंशी राधा द्वारा चुरायी गयी है। हे नष्टचन्द्र! आप प्रसन्न हों। चन्द्रमा को बार-बार नमस्कार है। दिशाओं को प्रकाशित करने वाले को नमस्कार है।

(२) हे क्षीरनिधि से उत्पन्न होने वाले चन्द्रदेव! तुम इस चोरी के झूठे अपवाद को शान्त करो—यह कहते हुए जल को देखते हुए तीन बार अस्त्रमन्त्र (=फट्) की आवृत्ति करके अभिमंत्रित जल का प्रोक्षण कर पी ले। उसे पृथ्वी पर फिर कभी मृषावाद का दोष नहीं लगता॥३९-४२॥

इत्युक्त्वा त्रिपुरा देवी श्रीकृष्णकार्यलालसा।
उपायांश्चिन्तयन्ती सा पूर्वोक्तं कर्त्तुमुद्यता॥४३॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये श्रीकृष्णवंशीहरणं
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

इति उक्त्वा श्रीकृष्णकार्यलालसा सा त्रिपुरा देवी उपायान् चिन्तयन्ती पूर्वोक्तम् कर्तुम् उद्यता (अभूत्)।

यह कहकर श्रीकृष्ण की कार्यलालसा वाली वह त्रिपुरा देवी उपायों को विचारती हुई पूर्वोक्त कार्य के लिए उद्यत हो गयी॥४३॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधा-कृष्णरहस्य में श्रीकृष्णवंशीहरण एवं श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रणा नामक सत्ताईसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

अष्टाविंशोऽध्यायः

राधाकृष्णरहस्ये श्रीराधाकृष्णविहारवर्णनम्

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वा तद्वचनं देव्याः कृष्णः कमललोचनः।
गोपानाहूय सकलान् गीतवाद्यविशारदान्॥१॥
तथा शक्तीर्महादेव्याः सर्वाकर्षणरूपिणीः।
वाद्यभाण्डादिकं सर्वं यन्त्राणि विविधानि च॥२॥
ततो वीणादिकं साध्वि आनद्धं मुरजादिकम्।
वंश्यादिकं च सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्॥३॥
प्रेषयामास गोविन्दो देवीनिकटमुन्मनाः।

देव्याः तद् वचनम् श्रुत्वा कमललोचनः कृष्णः गीतवाद्यविशारदान् सकलान् गोपान् तथा महादेव्याः सर्वाकर्षणरूपिणीः शक्तीः आहूय ततः वाद्यभाण्डादिकम् सर्वम् विविधानि यन्त्राणि च वीणादिकम् आनद्धम् मुरजादिकम् सुषिरम् वंश्यादिकम् कांस्यतालादिकम् घनम् उन्मनाः गोविन्दः देवीनिकटम् प्रेषयामास।

ब्राह्मण ने कहा—देवी के उन वचनों को सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण ने गीत-वाद्य में पारंगत सभी गोपों तथा महादेवी की सबको आकर्षित करने वाली शक्तियों को बुलाकर सभी वाद्य उपकरणों, विविध यन्त्रों तथा वीणा, वेणु, मुरज आदि को कांस्यताल झांझ आदिक के साथ व्याकुल मन वाले गोविन्द ने देवी के निकट भेज दिया॥१-३॥

कृष्णेङ्गितज्ञा सा देवी सर्वभूतमनोहरा॥४॥
गोपालान् नायकान् कृत्वा शक्तीः सर्वाश्च नायिकाः।
राधाकृष्णविनोदाख्यं नाटकं सुमनोहरम्॥५॥
शिक्षयामास सा देवी नानारसविशारदा।
देहादुत्पादयामास कोटिचन्द्रनिभाननाम्॥६॥
चन्द्रावलीं गौरदेहां ददौ कृष्णाय नायिकाम्।

सर्वभूतमनोहरा कृष्णेङ्गितज्ञा सा देवी गोपालान् नायकान् सर्वाः शक्तीः च नायिकाः कृत्वा 'राधा-कृष्ण-विनोद' आख्यम् सुमनोहरम् नाटकम् शिक्षयामास। नानारसविशारदा सा देवी देहात् कोटिचन्द्रनिभाननाम् गौरदेहाम् चन्द्रावलीम् उत्पादयामास।

सब प्राणियों में अत्यन्त मनोहर कृष्ण के संकेतों को समझने वाली उस देवी ने सभी गोपालों को नायक तथा सभी शक्तियों को नायिका बनाकर उन्हें 'राधा कृष्ण विनोद' नाम के नाटक की शिक्षा दी। नाना रसों की पारंगता उस देवी ने अपने शरीर से करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति को धारण करने वाले वाली गौरवपूर्ण चन्द्रावली को अपने देह से उत्पन्न किया।।४-६।।

ननर्त स तया सार्धं देव्यग्रेऽतिमनोहरम्।।७।।
तथा तथा यथायोग्या नायिका नायकैः शुभैः।
योजयामास सुभगे प्रहृष्टवदनाम्बुजा।।८।।
ताभिस्तेषां नृत्यतां वै दृष्ट्वा तत् ताण्डवं महत्।
परमं हर्षमापन्ना जय कृष्णेत्यथाऽब्रवीत्।।९।।

नायिकाम् कृष्णाय ददौ। स तया सार्द्धं देवी-अग्रे अति मनोहरम् ननर्त। सुभगे! प्रहृष्टवदनाम्बुजा (सा देवी) यथायोग्याः नायिकाः तथा-तथा शुभैः नायकैः योजयामास। ताभिः नृत्यताम् तेषाम् तत् महत् ताण्डवम् वै दृष्ट्वा परम् हर्षम् आपन्ना 'जय कृष्ण' इति अथ अब्रवीत्।

(गौर शरीर वाली चन्द्रावली को) नायिका बनाकर उसे श्रीकृष्ण को दे दिया। श्रीकृष्ण ने उस चन्द्रावली के साथ देवी के सामने अति मनोहर नृत्य किया। हे सुभगे! खिले हुए कमल के समान मुख वाली उस देवी ने यथायोग्य नायिकाओं को यथायोग्य नायकों के साथ योजित कर दिया। उन नायिकाओं के साथ नाचते हुए नायकों के उस महान् (दिव्य) ताण्डव नृत्य को देखकर वह अति प्रसन्न होकर 'जय श्रीकृष्ण' 'जय श्रीकृष्ण' कहने लगी।।७-९।।

अवश्यं सापि वशगा भवितेति व्यचिन्तयत्।

सा देवी अपि अवश्यम् वशगा भवेत् इति व्यचिन्तयत्।

उसने विचार किया कि वह देवी भी अवश्य ही वशीभूत हो जायेगी।

ततः सा परमा देवी सर्वशक्तिनमस्कृता।।१०।।
इच्छाज्ञानक्रियादीनां मूलभूता सनातनी।
तुरीयां तां ज्ञानशक्तिमादिभूतां सरस्वतीम्।।११।।
मुरलीरूपमापन्नां श्रीकृष्णाधरसंश्रिताम्।
समाहूयाऽब्रवीद् वाक्यं सर्ववाक्यविदां वराम्।।१२।।

ततः सर्वशक्तिनमस्कृता इच्छाज्ञानक्रियादीनाम् मूलभूता सनातनी सा परमा

देवी ताम् आदिभूताम् ज्ञानशक्तिम् सरस्वतीम् मुरलीरूपमापन्नाम् श्रीकृष्णाधर-संश्रिताम् सर्ववाक्यविदाम् वराम् समाहूय अब्रवीत्।

इसके बाद सभी शक्तियों द्वारा वन्दनीया, इच्छा ज्ञान क्रिया आदि की मूलभूता, सनातनी परमा देवी ने उस आदिभूता तुरीया ज्ञानशक्ति जो कि श्रीकृष्ण के अधर पर मुरलीरूप में समाश्रित तथा सभी वाक्यों को समझने वालों में श्रेष्ठ थी उस सरस्वती को बुलाकर कहा।।१०-१२।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

हे देवि परमेशोऽयं श्रीकृष्णः काममोहितः।
राधाविरहसन्तप्तस्त्वयाप्यकरुणात्मना ।।१३।।
शप्तः साध्वि साम्प्रतं तत्साहाय्यं कर्त्तुमर्हसि।
यथा तद्वशगा नित्या राधाऽद्यैव भवेच्छुभे।।१४।।

हे देवि! काममोहितः अयम् परमेशः श्रीकृष्णः राधाविरहसन्तप्तः अकरुणात्मना त्वया अपि सन्तप्तः। साध्वि! साम्प्रतम् तत् साहाय्यम् कर्त्तुम् अर्हसि। शुभे! (त्वया तथा प्रयतितव्यम्) यथा अद्यैव नित्या राधा तद्-वशगा भवेत्।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने कहा—हे देवि! यह परम ईश श्रीकृष्ण काम से मोहित हैं। राधा विरह से सन्तप्त हैं। करुणारहित तुमने भी उन्हें शाप दे दिया। हे साध्वि! अब उनकी सहायता करो। हे शुभे! ऐसा प्रयत्न करो कि आज ही वह नित्या राधा उस श्रीकृष्ण के वश में हो जाए।।१३-१४।।

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वैतद्वचनं देव्या गृहीत्वाज्ञां शिरस्यथ।
गत्वा राधान्तिकं देवी मुरलीरूपमास्थिता।।१५।।
जगौ कलं यशस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः।
राधे तस्य महाबाहो रूपं त्रैलोक्यमोहनम्।।१६।।
गुणा अगण्या अनघा गाम्भीर्यञ्च ततोऽद्भुतम्।
वीर्यमत्यद्भुतं शौर्यं सुधामधुरभाषितम्।।१७।।

देव्याः एतत् वचनम् श्रुत्वा अथ आज्ञाम् शिरसि गृहीत्वा मुरलीरूपम् आस्थिता देवी राधा-अन्तिकम् गत्वा तस्य परमात्मनः कृष्णस्य यशः कलम् जगौ राधे! तस्य महाबाहोः रूपम्, त्रैलोक्यमोहनम्, गुणाः अगण्याः अनघाः, ततः गाम्भीर्यम्, अद्भुतम् वीर्यम् शौर्यम् सुधामधुरभाषितम् च अद्भुतम् (अस्ति)।

ब्राह्मण ने कहा—देवी के इन वचनों को सुनकर उनकी आज्ञा को सिर पर धारण करके मुरली का रूप धारण कर वह सरस्वती देवी राधिका

के पास जाकर मधुर-मधुर स्वर में परमात्मा श्रीकृष्ण के यश को गाने लगी—हे राधे! उस महाबाहु श्रीकृष्ण का रूप त्रैलोक्य मोहन है। उनमें गुण अगणित, पवित्र गम्भीरता और शौर्य, उससे भी अधिक पराक्रम अद्भुत और मधुर वाणी भी अमृत की धारा के समान अद्भुत है।।१५-१७।।

न तस्य त्रिषु लोकेषु सदृशः कोऽपि विद्यते।
सत्यं ब्रवीम्यहं सुभ्रु योग्यश्चासौ पतिस्तव।।१८।।

सुभ्रु! अहम् सत्यम् ब्रवीमि। त्रिषु लोकेषु तस्य सदृशः कोऽपि न विद्यते। असौ तव योग्यः पतिः (अस्ति)।

हे सुभ्रु राधे! मैं सत्य कहती हूँ, तीनों लोकों में उनके जैसा कोई भी नहीं है। वह तुम्हारे योग्य पति हैं।।१८।।

स आदिदेवः पुरुषः पुराणः सनातनं ब्रह्म परस्वरूपः(?पम्)।
राधे परा शक्तिरसौ स एव त्वं चाप्यहं वा न तदन्यरूपा।।१९।।
तस्माद्वचो मे शृणु पङ्कजाक्षि सत्यं हितं सारतरं ब्रवीमि।
भजस्व कृष्णं रसलालसं वै वशंवदं योगिमनोदुरापम(?दुरासद)म्।।

राधे! स आदिदेवः पुराणः पुरुषः। स एव ब्रह्म परस्वरूपम् त्वम् च पराशक्तिः अपि अहम् वा तद् अन्यरूपा न। तस्माद् हे पङ्कजाक्षि! मे वचः शृणु, सत्यम् हितम् सारतरम् ब्रवीमि। रसलालसम् योगिमनोदुरासदम् वै वशंवदम् कृष्णम् भजस्व।

हे राधे! वह श्रीकृष्ण आदिदेव और पुराणपुरुष हैं। वे ही परब्रह्म-स्वरूप हैं। यह पराशक्ति हैं। वही तुम हो। मैं भी वही हूँ, उसने भिन्न नहीं। हे कमलनेत्रे! इसलिए मेरे वचनों को सुनो। मैं सत्य हितकारक तथा सारतर वचन कर रही हूँ। रसलालस योगियों के मन को भी कठिनता से प्राप्त होने वाले वशंवद आत्माराम श्रीकृष्ण को प्राप्त करो।।१९-२०।।

इति श्रुत्वा महादेवी मुरल्या मधुरध्वनिम्।
तत्कामा विस्मयं प्राप्ता हा हा हाहेत्यथाऽब्रवीत्।।२१।।
निवेश्य वंशीं हृत्पद्मे याता वृन्दावनान्तरम्।
चिन्तयामास केनैव तं प्राप्स्यामि जगद्गुरुम्।।२२।।

महादेवी (राधा) मुरल्याः इति मधुरध्वनिम् श्रुत्वा तत्कामा विस्मयम् प्राप्ता। अथ हा कृष्ण हा हा हा इति अब्रवीत्। वंशीम् हृत्पद्मे निवेश्य वृन्दावनान्तरम् याता। केन एव तम् जगद्गुरुम् प्राप्स्यामि इति चिन्तयामास।

महादेवी राधा मुरली की इस मधुर ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्णकामा

होकर अति आश्चर्य को प्राप्त हो गयी। उनके मुख से 'हा कृष्ण! हा कृष्ण! हा कृष्ण!' यह वाणी निकलने लगी। वंशी को अपने हृदयकमल में छिपाकर वह वृन्दावन के अन्दर प्रविष्ट हो गयी और यह विचार करने लगी कि किस उपाय से जगद्गुरु उन श्रीकृष्ण को प्राप्त करूँ॥२१-२२॥

एतस्मिन्नेव समये देवी त्रिपुरसुन्दरी।
हंसरूपा महामाया हंसीभिः परिवारिता॥२३॥
तत्समीपं समासाद्य जगौ कृष्णयशः परम्।
मुरलीरूपिणी देवी जगौ वाग्वादिनी तथा॥२४॥
शक्तिभिर्हंसरूपाभिर्गीतं तस्य यशो विभोः।
श्रुत्वा तन्मदनासक्तचित्ता तामब्रवीत् स्वयम्॥२५॥

एतस्मिन् एव समये त्रिपुरसुन्दरी महामाया देवी हंसरूपा हंसीभिः परिवारिता (सती) तत्समीपम् समासाद्य परम् कृष्णयशः जगौ तथा मुरलीरूपिणी वाग्वादिनी (अपि जगौ)। हंसरूपाभिः शक्तिभिः तस्य विभो यशः गीतम्। तत् श्रुत्वा मदनासक्तचित्ता स्वयम् ताम् अब्रवीत्।

यह परम महामाया देवी त्रिपुरसुन्दरी हंस का रूप बनाकर हंसिनियों से समावृत राधा के पास पहुँचकर परमस्वरूप श्रीकृष्ण के यश को गाने लगी तथा मुरली रूपधारिणी सरस्वती ने भी यशोगान किया। हंसरूपधारिणी शक्तियों ने उन सर्वव्यापक श्रीकृष्ण के यश के गीत गाये। इन्हें सुनकर कामासक्तचित्ता राधा ने स्वयं उनसे कहा॥२३-२५॥

श्रीराधिका उवाच—
मुरली(?लि) त्वं मुखे तस्य सदा तिष्ठसि निश्चला।
जानासि तत्त्वं कृष्णस्य सत्यं कथय सुस्वरे॥२६॥

हे मुरलि! त्वम् निश्चला तस्य मुखे सदा तिष्ठसि। कृष्णस्य तत्त्वम् जानासि। सुस्वरे! सत्यम् कथय।

श्रीराधिका ने कहा—हे मुरली! तुम निश्चल होकर सदा उस श्रीकृष्ण के मुख पर विराजती हो। कृष्ण के तत्त्व को जानती हो। हे सुन्दर स्वर वाली! सत्य बताओ॥२६॥

स एव कस्य वशगः केनोपायेन वा शुभे।
ममैव वशतां याति तमुपायं वद द्रुतम्।
श्रुत्वा तस्या वचो देवी प्रहसन्तीदमब्रवीत्॥२७॥

शुभे! स कस्य वशगः एव? केन उपायेन मम एव वशताम् याति? तम् उपायम् द्रुतम् वद। तस्याः वचः श्रुत्वा प्रहसन्ती देवी इदम् अब्रवीत्।

हे शुभे! वे श्रीकृष्ण किसके आधीन हैं? किस उपाय से वे मेरे ही आधीन हो सकते हैं? उस उपाय को शीघ्र मुझे बताओ। राधा के इन वचनों को सुनकर हँसती हुई देवी ने यह कहा।।२७।।

सरस्वत्युवाच—

स्थावरात्माऽस्म्यहं साध्वि नैव जानामि किञ्चन।
स्मरे स एव भगवान् वशगस्तव भामिनि।।२८।।
सदा राधेति ते नाम मयि गायति मोहितः।
अवशं तं वशं नेतुमुपायं यदि वेच्छसि।।२९।।
हंसीमेतां वरारोहे ह्युपायज्ञां मनोहराम्।
पृच्छस्व स्वाशयं देवि! यदि तत्र स्पृहाऽस्ति ते।।३०।।

हे साध्वि! अहम् स्थावरात्मा (अस्मि) किञ्चन नैव जानामि। भामिनि! स्मरे सः भगवान् तव एव वशगः। राधेति ते नाम गायति मयि मोहितः। देवि! अवशम् तम् यदि वशम् नेतुम् इच्छसि (तर्हि) यदि तत्र ते स्पृहा अस्ति। हे वरारोहे! हि उपायज्ञाम् एताम् मनोहराम् हंसीम् स्वाशयम् उपायम् पृच्छस्व।

हे साध्वि! मैं जड़रूपा हूँ; अतः कुछ भी नहीं जानती। हे भामिनि! मुझे स्मरण है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही वश में हैं। मेरे 'राधा' नाम गाने पर सदा मोहित हो जाते हैं। उस स्वतंत्र को यदि तुम अपने वश में करना चाहती हो और हे देवि! यदि श्रीकृष्ण में तुम्हारी स्पृहा हो तो हे वरारोहे! उपाय को जानने वाली इस मनोहर हंसी से तुम अपने आशय को पूछ लो।।२८-३०।।

ब्राह्मण उवाच—

श्रुत्वेदं मुरलीवाक्यं हंसीनिकटमाययौ।
शनैः शनैश्चलत्पादा क्वणत्काञ्चननूपुरा।।३१।।
त्रैलोक्यमोहिनी हंसी दृष्ट्वा तां प्रमदोत्तमाम्।
कृत्वा कलरवं दूरं जगाम सहसा ततः।।३२।।
धावमानाऽतिवेगेन दिधीर्षुर्दूरतो गता।
राधाऽसाधारणक्लेशात् केशवेषविवर्जिता।
न प्राप सा यदा तां तु प्रोवाच मधुरं वचः।।३३।।

इदम् मुरलीवाक्यम् श्रुत्वा शनैः शनैः क्वणत्काञ्चननूपुरा चलत्पादा (राधा) हंसी निकटम् आययौ। त्रैलोक्यमोहिनी हंसी ताम् प्रमदोत्तमाम् दृष्ट्वा-सहसा कलरवम् कृत्वा ततः दूरम् जगाम। दिधीर्षुः अतिवेगेन धावमाना दूरतः गता केशवेषविवर्जिता राधा असाधारणक्लेशात् यदा न प्राप तदा सा ताम् तु मधुरम् वचः प्रोवाच।

ब्राह्मण ने कहा—मुरली के इन वचनों को सुनकर धीरे-धीरे स्वर्ण के नूपुरों से क्वणित ध्वनि करती हुई चलती हुई राधा हंसी के निकट आयीं। त्रैलोक्यमोहिनी हंसी उस उत्तमा प्रमदा (राधा) को देखकर सहसा कलरव करती हुई वहाँ से दूर चली गयी। (राधा उसे) पकड़ने की इच्छा से दौड़कर बहुत दूर तक उस (हंसी) के पीछे गयी। उनके केशवेष बिखर गये। असाधारण क्लेश से युक्त होने पर भी वे उसे नहीं पकड़ सकीं। तब राधा ने हंसी से मधुर स्वर में कहा॥३१-३३॥

श्रीराधिका उवाच—

हे हंसी! कार्यमस्त्येव मम किञ्चिदिहाव्रज।
प्रष्टुमिच्छाम्यहं त्वां वै प्रसन्ना भव सुन्दरि॥३४॥
चपले चपलाकारे चपलं वचसा मम।
अत्रागच्छ स्वच्छरूपे श्रोतुमिच्छामि ते रुतम्॥३५॥

हे हंसी! मम किञ्चित् कार्यम् अस्ति (अत) एव इह आव्रज। सुन्दरि! प्रसन्ना भव। अहम् त्वाम् प्रष्टुम् इच्छामि। चपले चपलाकारे मम वचसा चपलम् अत्र आगच्छ। स्वच्छरूपे! ते रुतम् श्रोतुम् इच्छामि।

हे हंसी! मेरा थोड़ा-सा कार्य है; अतः इधर आओ। हे सुन्दरी! प्रसन्न हो जाओ। मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ। हे चपल आकार वाली चपले! मेरी वाणी से चपल होकर यहाँ आओ। हे स्वच्छ रूप वाली! मैं तुम्हारे शब्दों को सुनना चाहती हूँ॥३४-३५॥

एवं बहुविधैरुक्ता न सा निकटमागता।
पुनः पप्रच्छ सा राधा ततः प्रेमातिविह्वला॥३६॥
वक्षःस्थलस्थां मुरलीं किं कर्तव्यं निरुच्यताम्।
मुरली प्राह सुश्रोणि वशीकरणमुत्तमम्॥३७॥
मन्त्रं जानाति येनैषा तव वश्या भविष्यति।

एवम् बहुविधैः उक्ता सा (यदा) निकटम् न आगता ततः प्रेमातिविह्वला सा राधा पुनः वक्षःस्थलस्थाम् मुरलीम् पप्रच्छ—किम् कर्त्तव्यम्? निरुच्यताम्। मुरली प्राह—सुश्रोणि! उत्तमम् वशीकरणम् मन्त्रम् जानाति येन एषा तव वश्या भविष्यति।

इस तरह अनेकों प्रकार से निवेदन करने पर भी जब वह राधा के निकट नहीं आयी तब अत्यन्त प्रेम से विह्वल होकर उस राधा ने वक्षःस्थल पर स्थित मुरली से पुनः पूछा कि बताओ, अब क्या करना चाहिए। मुरली

ने उत्तम वशीकरण की विधि को समझाते हुए कहा कि वह ऐसा मन्त्र जानती है, जिससे यह हंसी तुम्हारे वश में हो जायेगी॥३६-३७॥

इत्युक्त्वा मुरलीरूपधरा देवी सरस्वती॥३८॥
कामराजं महाबीजं ददौ त्रैलोक्यमोहनम्।
उवाच च परां देवीं गीर्देवी क्षेमकारिणी॥३९॥
राधे देवि परेशानि जगन्मोहमहौषधि(?म्)।
जपस्व परया भक्त्या आत्मनोऽभीष्टसिद्धये॥४०॥
जप्त्वा बीजमिदं भद्रे यद्यत् प्रार्थयसे हृदा।
तत्तत् सर्वं क्षणादेव सफलं ते भविष्यति॥४१॥

इति उक्त्वा मुरलीरूपधरा देवी सरस्वती त्रैलोक्यमोहनम् कामराजम् महाबीजम् ददौ। क्षेमकारिणी गीः देवी पराम् देवीम् उवाच। राधे! देवि! परेशानि! आत्मनः अभीष्टसिद्धये परया भक्त्या जगन्मोहमहौषधिम् जपस्व। भद्रे! इदम् बीजम् जप्त्वा यद् यद् हृदा प्रार्थयसे तत् तत् सर्वम् क्षणादेव ते सफलम् भविष्यति।

ऐसा कहकर मुरली रूपधारिणी देवी सरस्वती ने तीनों लोकों को मोहन करने वाले कामराज महाबीज का उपदेश किया। कल्याण करने वाली देवी सरस्वती ने परादेवी राधा से कहा—परेशानि देवि राधे! अपनी इच्छा की सिद्धि के लिए परा भक्ति के साथ जगत् को वश में करने वाली इस महा-औषधिरूप कामबीज का निरन्तर जप करो। हे भद्रे! इस बीज का जप करके तुम वह सब कुछ पा लोगी, जो भी तुम्हारे मन में इच्छित है॥३८-४१॥

तद्वाक्यान्मुग्धचित्ता सा जपाप च मुहुर्मुहुः।
ध्यात्वा हंसीं परब्रह्मरूपिणीं जगदम्बिकाम्॥४२॥

तद्वाक्यात् मुग्धचित्ता सा (राधा) परब्रह्मरूपिणीम् जगदम्बिकाम् हंसीम् ध्यात्वा मुहुः मुहुः जजाप।

उस मुरली के वाक्य से मुग्धचित्ता राधा ने परब्रह्मरूपिणी जगन्माता हंसी का ध्यान करते हुए मन्त्र का निरन्तर जप किया॥४२॥

ततः सा वशमापन्ना राधिका सम्मुखं गता।
हंसरूपापि सा देवी चतुरासीच्चतुर्भुजा॥४३॥
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्ती तदब्रवीत्।
वरं वृणीष्व सुभगे यस्ते मनसि वर्त्तते॥४४॥

ततः सा वशम् आपन्ना राधिका सम्मुखम् गता। सा हंसरूपापि चतुर्भुजा देवी चतुरा आसीत् पाश-अंकुश-शरान् चापम् धारयन्ती अब्रवीत्। सुभगे! यः ते मनसि वर्तते (तम्) वरम् वृणीष्व।

इसके अनुसार वह हंसी राधिका के वश में होकर सामने आ गयी। हंसरूपा होती हुई भी वह देवी चतुर थी। वह चतुर्भुजा पाश अंकुश बाण और धनुष को धारण करने वाली थी। उसने कहा—हे सुभगे! जो तुम्हारे मन में इच्छा हो, उस वर को तुम मांग लो॥४३-४४॥

सर्वं दास्यामि ते सुभ्रु सुचित्ता भव शोभने।
ततः सा मुरली प्राह वरं प्रार्थय सुव्रते॥४५॥
लज्जया कार्यहानिः स्याद् एतां त्वं वै परित्यज।
गाम्भीर्यादधिका लज्जा लज्जातो न निवेदनम्॥४६॥
अनिवेदात् कार्यहानिरकार्याद् वार्यते गतिः।

सुभ्रु! ते सर्वम् दास्यामि। शोभने! सुचित्ता भव। ततः सा मुरली प्राह—सुव्रते! लज्जया कार्यहानिः स्यात्। त्वम् एताम् लज्जाम् वै परित्यज्य वरम् प्रार्थय। गाम्भीर्यात् लज्जा अधिका। लज्जातः निवेदनम् न। अनिवेदात् कार्यहानिः। अकार्यात् गतिः वार्यते।

हे सुभ्रु! मैं तुम्हें सब कुछ दूँगी। शोभने! स्वस्थ चित्त वाली हो जाओ। इसके बाद मुरली ने कहा—हे सुव्रते! लज्जा से कार्य की हानि हो जायेगी। तुम इस लज्जा को छोड़कर वर माँगो। गाम्भीर्य से लज्जा अधिक होती है। लज्जा से निवेदन नहीं होता। निवेदन न करने से कार्य की हानि होती है। कार्य की हानि होने से गति रुक जाती है॥४५-४६॥

एषा देवी परा सूक्ष्मा मूलभूता सनातनी॥४७॥
कृष्णं च कृष्णभक्तिं च भुक्तिं मुक्तिं च भामिनि।
दातुं शक्नोति नान्यो हि कल्पकोटिशतैरपि॥४८॥
श्रुत्वैतद् वचनं तस्याः प्रहसद्वदनाम्बुजा।
प्रलोभिता मोहिता च वागीश्वर्या वराङ्गना।
राधिका प्रार्थयामास वरं कमललोचना॥४९॥

भामिनि! एषा देवी परासूक्ष्मा मूलभूता सनातनी। कृष्णम् कृष्णभक्तिम् भुक्तिम् दातुम् शक्नोति। न हि अन्यः कल्पकोटिशतैः अपि (दातुम् अर्हति)। तस्याः एतद् वचनम् श्रुत्वा प्रहसद्वदनाम्बुजा वागीश्वर्या प्रलोभिता मोहिता कमललोचना वराङ्गना राधिका वरम् प्रार्थयामास।

भामिनि! यह देवी परा सूक्ष्मा मूलभूता सनातनी है। यह कृष्ण को,

कृष्णभक्ति को, मुक्ति अथवा भुक्ति को भी दे सकती है। अन्य कोई करोड़ों कल्पों में भी यह नहीं दे सकता। मुरली के इन वचनों को सुनकर हंसते मुखकमल वाली वागीश्वरी द्वारा प्रलोभित, मोहित, कमललोचना वराङ्गना उस राधा ने वर माँगा।।४७-४९।।

श्रीराधिका उवाच—

देहि भद्रे वरं भद्रं कृष्णो भवतु मद्वशः।
पाणिं रथाङ्गपाणिः स गृहणातु चैव सुव्रते।।५०।।

भद्रे! भद्रम् वरम् देहि। कृष्णः मद्वशः भवतु। स च रथाङ्गपाणिः मे पाणिम् गृह्णातु एव।

श्रीराधिका ने कहा—हे भद्रे! मुझको यह शुभ वर प्रदान करो कि श्रीकृष्ण मेरे वश में हो जायँ। हे सुव्रते! चक्रधारी वह श्रीकृष्ण मेरा हाथ थाम लें।।५०।।

परमहंसी उवाच—

अद्यैव कृष्णो भविता पतिस्तव वरानने।
इति सत्यं पुनः देवि वचनं मे न वान्यथा।।५१।।
प्रदोषे दोषरहिते तव तेन समागमः।
भविष्यति च तूर्णं सम्पूर्ण एव मनोरथः।।५२।।

हे वरानने! अद्य एवम् कृष्णः तव पतिः भविता। देवि! इति सत्यम् पुनः मे वचनम् अन्यथा वा न। दोषरहिते प्रदोषे तव तेन समागमः भविष्यति। तूर्णम् एव मनोरथः सम्पूर्णः (भविष्यति)।

परहंसी ने कहा—वरानने! आज ही श्रीकृष्ण तुम्हारे पति होंगे। देवि! यह सत्य है। मेरा वचन असत्य अथवा अन्यथा नहीं होगा। दोषरहित प्रदोषकाल में उनके साथ तुम्हारा समागम होगा। तुम्हारा मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा।।५१-५२।।

सत्यमुक्तं मया देवि हरिरेष जगत्पतिः।
नित्यं तवैव वशगो भविता नात्र संशयः।।५३।।
त्वमेवास्य प्रिया देवि तवैवासौ प्रियो ध्रुवः।
न जातु विरहो भावी विना श्रीदामशापतः।।५४।।

देवि मया सत्यम् उक्तम्। एषः हरिः जगत्पतिः नित्यम् तव एव वशगः भविता। अत्र संशयः न। देवि! त्वम् एव अस्य प्रिया असौ एव तव ध्रुवः प्रियः श्रीदामशापतः विना भावी विरहः न जातु (भविष्यति)।

हे देवि! मैंने सत्य ही कहा था कि यह हरि श्रीकृष्ण जगत्पति हैं। हे देवि! वह नित्य ही तुम्हारे वश में हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हे देवि! तुम इनकी प्रिया हो और यह तुम्हारे ही प्रिय हैं, यह ध्रुव सत्य है। श्रीदामा के शाप के बिना तुम्हारा इनसे विरह नहीं होगा।।५३-५४।।

विवशा(?शः) च हरेरेव गन्धर्वतपसापि च।
भौमे वृन्दावने देवि हरिणा सह यास्यति।।५५।।
शतवर्षं वियोगस्ते हरिणा तदनन्तरम्।
भविता तत्र गोविन्दं सततं चिन्तयिष्यसि।।५६।।

गन्धर्वतपसा एव हरिः अपि विवशः। हे देवि! भौमे वृन्दावने हरिणा सह यास्यति। तदनन्तरम् हरिणः ते शतवर्षम् वियोगः भविता। तत्र सततम् गोविन्दम् चिन्तयिष्यसि।

गन्धर्व के तप के सामने हरि भी विवश थे। हे देवि! भौम वृन्दावन में तुम श्रीहरि के साथ जाओगी। इसके बाद श्रीकृष्ण से तुम्हारा सौ वर्ष का विरह होगा। वहाँ तुम निरन्तर श्रीगोविन्द का ही चिन्तन करोगी।।५५-५६।।

श्रीकृष्णप्रणयोन्मत्ता सदा तत्र भविष्यसि।
क्वचित्स्खलत्पदा क्षित्यां निपतिष्यसि मूर्च्छिता।।५७।।
क्वचिदुच्चस्वरेणैव रुदन्ती रोदयन्त्यपि।
एवं दशदशाक्रान्तहृदया रसपुष्टये।।५८।।
भविताऽसि मुकुन्दस्य प्रेमास्वादनतत्परा।

तत्र सदा श्रीकृष्णप्रणयोन्मत्ता भविष्यसि। क्वचित् स्खलत्पदा (सती) क्षित्याम् मूर्च्छिता निपतिष्यसि। क्वचित् उच्चस्वरेण एवं रुदन्ती रोदयन्ती अपि रसपुष्टये दशदशाक्रान्तहृदया मुकुन्दस्य प्रेम-आस्वादनतत्परा भविता असि।

उस वृन्दावन में सदा श्रीकृष्ण के प्रणय से उन्मत्त रहोगी। कभी लड़खड़ाते पैरों से चलती हुई पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ोगी। कभी उच्च स्वर से रोती (और दूसरों को) रुलाती हुई रस की पुष्टि के लिये मृत्यु तक से आक्रान्तहृदय वाली होकर श्रीमुकुन्द के प्रेमास्वादन में तत्पर रहोगी।।५७-५८।।

ततः कृष्णोऽपि सर्वज्ञस्तव तत्प्रेममाधुरीम्।।५९।।
वीक्ष्य त्वद्भावमाश्रित्य स्वयमास्वादयिष्यति।

ततः सर्वज्ञः कृष्णः अपि तव तत् प्रेममाधुरीम् वीक्ष्य त्वद्-भावम् आश्रित्य स्वयम् आस्वादयिष्यति।

इसके बाद मुकुन्द भी सर्वज्ञ होने से तुम्हारे भाव का आश्रय लेकर तुम्हारे उस प्रेमभाव की माधुरी का स्वयं आस्वादन करेंगे।।५९।।

कृष्णभक्तिविहीनानां पाप्मना ग्रसितात्मनाम्।।६०।।
कलौ नष्टदृशां नैव जनानां कुत्रचिद् गतिः।
इति मत्वा कृपासिन्धुरंशेन कृपया हरिः।।६१।।
प्रच्छन्नो भक्तरूपेण कलाववतरिष्यति।
भुवं प्राप्ते तु गोविन्दश्चैतन्याख्यो भविष्यति।।६२।।

कृष्णभक्तिविहीनानाम् पाप्मना ग्रसितात्मनाम् नष्टदृशाम् जनानाम् कलौ कुत्रचिद् गतिः न एव इति मत्वा कृपासिन्धुः हरि कृपया कलौ अवतरिष्यति। गोविन्दः भुवम् प्राप्ते तु भक्तरूपेण प्रच्छन्नः चैतन्य आख्यः भविष्यति।

पाप से ग्रसित आत्मा वाले, अत एव कृष्णभक्ति से विहीन अन्धे जनों को कलिकाल में कहीं भी गति नहीं मिलेगी, यह मान कर कृपा करके कृपासिन्धु हरि कलियुग में अवतार लेंगे। पृथ्वी पर गोविन्द का अवतार हो जाने पर भक्तरूप में छिपे हुए चैतन्य नाम से एक भक्त के रूप में भगवान् का अवतार होगा।।६०-६२।।

तस्य कर्माणि मनुजाः कीर्तयिष्यन्ति केचन।
बहिर्मुखा नमंस्यन्ते प्रच्छन्नं परमेश्वरम्।।६३।।
गौराङ्गो नादगम्भीरः स्वनामामृतलालसः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यति शचीसुतः।।६४।।
मत्वा त्वन्मयमात्मानं पठन् द्व्यक्षरमुच्चकैः।
गतत्रपो मदोन्मत्तो गजवद् विचरिष्यति।।६५।।

मनुजाः तस्य कर्माणि कीर्तयिष्यन्ति। केचन बहिर्मुखाः प्रच्छन्नम् परमेश्वरम् नमस्यन्ते। गौराङ्गः नादगम्भीरः स्वनामामृतलालसः दयालुः कीर्तनग्राही शचीसुतः भविष्यति। आत्मानम् त्वन्मयम् मत्वा द्व्यक्षरम् उच्चकैः पठन् गतत्रपः मदोन्मत्तः गजवद् विचरिष्यति।

मनुष्य उनके कर्मों का कीर्तन करेंगे। कुछ बहिर्मुख लोग गुप्त रूप में प्रकट परमेश्वर को प्रणाम करेंगे। वे गौर अंग वाले नाद से गम्भीर अपने ही हरि नाम के अमृत को निरन्तर पीने की लालसा वाले, दयालु, कीर्तन शची के पुत्र के रूप में होंगे। अपने आपको त्वन्मय अर्थात् आपसे सर्वात्मना परिपूर्ण मानकर 'कृष्ण' नाम के दो अक्षरों को निर्लज्ज की तरह ऊँचे स्वर से गाते हुए उन्मत अवस्था में हाथी की तरह विचरण करेंगे।।६३-६५।।

भुवं प्राप्य तु गोविन्दश्चैतन्याख्यो भविष्यति।
अंशेन भुवि यास्यन्ति तत्र तत्पूर्वपार्षदाः॥६६॥
पृथक् पृथग(?ङ्) नामधेयाः प्रायः पुरुषमूर्तयः।
सर्वे प्रच्छन्नरूपास्ते स्वेच्छयाच्छन्नशक्तयः॥६७॥
कृष्णप्रेममदोन्मत्ता भविष्यन्ति परं सदा।
एतत्ते कथितं सर्वं यद्यद् देवि भविष्यति॥६८॥

भुवम् प्राप्य गोविन्दः चैतन्य-आख्यः भविष्यति। तत्र भुवि तत्पूर्वपार्षदाः अंशेन यास्यन्ति। प्रायः पुरुषमूर्तयः पृथक् नामधेयाः ते सर्वे प्रच्छन्नरूपाः स्वेच्छया आच्छन्नशक्तयः सदा परम् कृष्णप्रेममदोन्मत्ताः भविष्यन्ति। देवि! यद् यद् भविष्यति एतत् सर्वम् ते कथितम्।

पृथ्वी पर अवतरित गोविन्द चैतन्य (महाप्रभु) नाम से विख्यात होंगे। वहाँ पृथिवी पर उनके पार्षद उनसे पूर्व ही अंशरूप से उत्पन्न होंगे। वे सभी प्रायः पुरुषरूप में होंगे। सबके अलग-अलग नाम होंगे। वे सभी गुप्त रूप से अपनी इच्छाशक्ति से युक्त होंगे। वे हमेशा कृष्ण के परा प्रेम के मद से उन्मत्त होंगे। देवि! जाओ; आगे जो होगा, वह सब मैंने तुम से कह दिया॥६६-६८॥

सत्यं त्वत्सदृशी नान्या प्रिया कृष्णस्य वर्तते।
यतस्तद्भावसारं स स्वयमङ्गी करिष्यति॥६९॥

सत्यम् त्वत् सदृशी कृष्णस्य अन्या प्रिया न वर्तते यतः तद्भावसारम् सः स्वयम् एव अङ्गीकरिष्यति।

यह सत्य है कि तुम्हारे समान श्रीकृष्ण की अन्य कोई प्रिया नहीं है—इस भावसार को वे स्वयं ही अंगीकार करेंगे॥६९॥

त्वां प्राप्य पूर्णकामः स्यादद्य कृष्णो न संशयः।
त्वामृते नान्यवस्तुभ्यः सुखीभवति कर्हिचित्॥७०॥
एवमुक्ता लब्धकामा राधिका कृष्णसाधिका।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा भूयः प्रोवाच सादरम्॥७१॥

अद्य कृष्णः त्वाम् प्राप्य पूर्णकामः स्याद् (अत्र) न संशयः। त्वाम् ऋते कर्हिचित् अन्यवस्तुभ्यः सुखी न भवति। एवम् उक्ता लब्धकामा कृष्णसाधिका राधिका कृताञ्जलिपुटा भूत्वा भूयः सादरम् प्रोवाच।

आज श्रीकृष्ण तुम्हें पाकर पूर्णकाम हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु से वे सुखी नहीं होते। इस प्रकार

कही हुई कृष्ण की साधिका पूर्णकाम राधिका ने हाथ जोड़कर पुनः आदर के साथ कहा।।७०-७१।।

श्रीराधिका उवाच—

अपि गोविन्दविरहे दुःखं भवतु मे शुभे।
किन्तु मद्विरहाद् दुःखात् कृष्णस्य माऽस्तु वेदना।।७२।।
किञ्च दुःखे सुखे वापि कृष्णान्यद् माऽस्तु मानसे।
इति देवि वरं याचे त्वामहं वरदेश्वरीम्।।७३।।

हे शुभे! गोविन्दविरहे मे दुःखम् अपि भवतु किन्तु मद्विरहदुःखात् कृष्णस्य वेदना मा अस्तु। सुखे दुःखे वा कृष्णान्यद् मानसे मा अस्तु इति देवि! वरदेश्वरीम् त्वाम् अहम् वरम् याचे।

श्रीराधिका ने कहा—हे शुभे! मुझे कृष्ण के विरह में दुःख के भले ही हो जाए; किन्तु मेरे विरह से उत्पन्न पीड़ा कृष्ण को कभी न हो। इसके अतिरिक्त हे देवि वरदेश्वरि! मैं तुम से यह वर माँगती हूँ कि सुख अथवा दुःख में कृष्ण से अतिरिक्त मेरे मन में अन्य कुछ भी न हो।।७२-७३।।

इत्युक्ता सा भगवती हसन्ती हंसरूपिणी।
उवाच तां ततः प्रीत्या गोविन्दप्रणयोत्सुकाम्।।७४।।

ततः इति उक्ता सा हंसरूपिणी हसन्ती भगवती गोविन्दप्रणयोत्सुकाम् ताम् प्रीत्या उवाच।

इसके बाद इस प्रकार कही हुई हंसरूपिणी उस भगवती ने हँसती हुई गोविन्द के प्रेम के लिए उत्सुक उस राधा से प्रेम के साथ कहा।।७४।।

परमहंसी उवाच—

त्वं हि कृष्णस्वरूपासि कृष्णप्रेमा यदीदृशः।
यद्यत् प्रार्थयते सुभ्रु तत्सर्वं सिद्धमेव ते।।७५।।
इत्युक्त्वा सा परब्रह्मस्वरूपा हंसरूपिणी।
अन्तर्दधे तु हंसीभिस्तत्पुरस्त्रिपुरेश्वरी।।७६।।

त्वं कृष्णस्वरूपा असि यद् ईदृशः कृष्णप्रेमा। सुभ्रु! (त्वया) यद् यद् प्रार्थयते तत्सर्वम् ते सिद्धम् एव। इति उक्त्वा हंसरूपिणी परब्रह्मस्वरूपा सा त्रिपुरेश्वरी हंसीभिः (सह) तत्पुरः तु अन्तर्दधे।

(हे राधे!) तुम कृष्णस्वरूपा ही हो; क्योंकि तुम्हारे अन्दर ऐसा कृष्णप्रेम विद्यमान है। हे सुभ्रु! आप जो-जो चाहती हैं, वह सब कुछ आपको प्राप्त होगा। यह कहकर हंसरूपिणी परब्रह्मस्वरूपा वह त्रिपुरेश्वरी राधा के सामने ही हंसियों के साथ अन्तर्हित (अदृश्य) हो गयीं।।७५-७६।।

ततो गोलोकमागत्य प्रविष्टा निजमन्दिरम्।
राधाविरहविक्षिप्तचित्तो यत्र स्वयं प्रभुः॥७७॥
दृष्ट्वा तां हृष्टवदनां प्रहृष्टवदनाम्बुजः।
पप्रच्छ कुशलं तस्याः किं वा तत्र प्रयोजनम्॥७८॥
गमने तव सञ्जातं कथ्यतां यत्सुखावहम्।
सा चाह गम्यतां तत्र साधितं सकलं मया॥७९॥

ततः गोलोकम् आगत्य निजमन्दिरम् यत्र राधाविरहविक्षिप्तचित्तः स्वयम् प्रभुः (आसीत्), प्रविष्टा। प्रहृष्टवदनाम्बुजः ताम् हृष्टवदनाम् दृष्ट्वा तस्याः कुशलम् पप्रच्छ। तत्र गमने तव किम् वा प्रयोजनम् सञ्जातम् यत्सुखावहम्; कथ्यताम्। सा च आह—मया सकलम् साधितम्। तत्र गम्यताम्।

इसके बाद वह गोलोक में पहुँचकर जहाँ राधाविरह से विक्षिप्त चित्त वाले स्वयं गोविन्द विद्यमान थे, उस अपने भवन में प्रविष्ट हुई। उसे देख प्रसन्न मुखकमल वाले गोविन्द ने उस प्रसन्नवदन राधा को देखकर उसका कुशल-समाचार पूछा तथा कहा कि वहाँ जाकर तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ—यह बतलाओ, जो मुझे सुख प्राप्त कराने वाला हो। उसने कहा—मैंने तुम्हारा सब कार्य सिद्ध कर दिया है। अब तुम वहाँ स्वयं जाओ॥७७-७९॥

किन्तु तद्देहजैः सर्वैः पुरुषैः कामरूपिभिः।
रुद्धाऽऽस्ते सा वञ्चयितुं तानुपायं वदाम्यहम्॥८०॥
तच्छृणुष्व महाभाग यथा प्राप्स्यसि तां शुभाम्।

किन्तु सा तद्देहजैः कामरूपिभिः सर्वैः पुरुषैः रुद्धा आस्ते। अहम् तान् वञ्चयितुम् उपायम् वदामि। महाभाग! तत् शृणु—यथा ताम् शुभाम् प्राप्स्यसि।

किन्तु वह राधा अपने शरीर से उत्पन्न सभी कामरूपी पुरुषों से आरक्षित है। उन पुरुषों को धोखा देने का उपाय मैं तुम्हें बताती हूँ। हे महाभाग! उसे सुनो जिससे तुम उस शुभाङ्गी को प्राप्त कर सकोगे॥८०॥

नटवेषधरैः सर्वैर्गोपालैर्मम शक्तिभिः॥८१॥
वृन्दावनान्तरे दिव्या रचिता नगरी विभो।
तत्रैव नृत्यं गीतं च वाद्यं चातिमनोहरम्॥८२॥
कृत्वा राधामनोहारि तावद् भगवता त्वया।
स्थातव्यं लीलया तत्र यावदागमनं मम॥८३॥

विभो! वृन्दावनान्तरे मम शक्तिभिः दिव्या नगरी रचिता तत्र नटवेषधरैः सर्वैः गोपालैः राधामनोहारि अतिमनोहरम् वाद्यम् गीतम् च नृत्यम् च भगवता त्वया कृत्वा लीलया तावत् तत्र स्थातव्यम् यावत् मम आगमनम्।

हे विभु! वृन्दावन के मध्य में मेरी शक्तियों के द्वारा दिव्य नगरी बना दी गयी है। वहाँ नट वेषधारी सभी गोपालों के द्वारा राधा के मन को हरण करने वाला अति मनोहर वाद्य गीत तथा नृत्य आपके द्वारा लीलापूर्वक तब तक किया जाना है, जब तक मेरा आगमन होता है।।८१-८३।।

तस्मिन् काले च मन्दारपारिजातादिनिर्मिताः।
माला आनीय वृन्दापि युष्मभ्यं च प्रदास्यति।।८४।।
राधिकार्थं च यां मालां गृहीत्वान्तःपुरं व्रजेत्।
तस्यां त्वं भ्रमरो भूत्वा तत्समीपं गमिष्यसि।।८५।।
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे महाप्रभुः।
गोपालैः शक्तिभिः सार्धं वृन्दावनपुरीं ययौ।।८६।।

तस्मिन् काले वृन्दा अपि मन्दारपारिजातादिनिर्मिताः मालाः आनीय युष्मभ्यम् प्रदास्यति। राधिकार्थम् च याम् मालाम् गृहीत्वा अन्तःपुरम् व्रजेत् त्वम् तस्याम् (मालायाम्) भ्रमरः भूत्वा तत्समीपम् गमिष्यसि। ततः तद् वचनम् श्रुत्वा महाप्रभुः तथा चक्रे। गोपालैः शक्तिभिः सार्धम् वृन्दावनपुरीम् ययौ।

उस समय वृन्दा भी मन्दार तथा पारिजात आदि के पुष्पों से ग्रथित मालायें लाकर आपको प्रदान करेंगी। राधिका के लिए जो माला लेकर वह अन्तःपुर में जायेगी, उस माला में तुम भ्रमर बनकर उस (राधा) के समीप जाओगे। इसके बाद त्रिपुरेश्वरी के वचनों को सुनकर महाप्रभु श्रीकृष्ण ने वैसा ही किया। वे गोपालों तथा शक्तियों के साथ वृन्दावन नामक नगरी में चले गये।।८४-८६।।

ततो महार्हरत्नाढ्यो दिव्यस्त्रगनुलेपनाः।
दिव्याम्बरधरा गोप्यः सर्वा देव्यो मनोहराः।।८७।।
नानायन्त्रकलाभिज्ञाः रसज्ञाः स्वरसम्पदः।
मूर्च्छनाभिरपूर्वाभिर्मूर्च्छयित्वा पृथक् पृथक्।।८८।।
वीणादिकानि यन्त्राणि वादयामासुरुत्सुकाः।
ततस्ते देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम्।।८९।।
कलकण्ठ्यो जगुस्तैश्च वृन्दावनमधुव्रताः।
आगत्य मोहिताः साकं जगुरुच्चैर्जगत्पतेः।।९०।।
श्रीकृष्णस्य यशो रम्यं धन्यं त्रैलोक्यपावनम्।

ततः महार्हरत्नाढ्याः दिव्यस्त्रग्-अनुलेपनाः दिव्याम्बरधराः सर्वाः गोप्यः मनोहराः देव्यः नानायन्त्रकलाभिज्ञाः रसज्ञाः स्वरसम्पदः अपूर्वाभिः मूर्च्छनाभिः पृथक् पृथक् मूर्च्छयित्वा ते उत्सुकाः वीणादिकानि यन्त्राणि वादयामासुः।

कलकण्ठ्यः श्रवणामृतम् देवगान्धारम् छालिक्यम् जगुः। वृन्दावनमधुव्रताः मोहिताः आगत्य तैः साकम् जगत्पतेः श्रीकृष्णस्य त्रैलोक्यपावनम् रम्यम् धन्यम् यशः उच्चैः जगुः।

इसके बाद अतिमूल्यवान रत्नों से सजी हुई दिव्य माला एवं चन्दन का अनुलेप लगाकर दिव्य वस्त्रों को पहनकर सभी मनोहर देवियाँ गोपियाँ आ गयीं। वे अनेक यन्त्रों के प्रयोग तथा कलाओं को जानने वाली थीं। वे रस तथा स्वर की सम्पत्ति से युक्त थीं। उन्होंने अपूर्व मूर्च्छनाओं का पृथक्-पृथक् प्रयोग करके सबको मूर्च्छित कर दिया। उत्सुक होकर वीणा आदि यन्त्रों को बजाती हुई मधुर कण्ठ वाली वे देवगान्धार छालिक्य आदि श्रवणामृत गानों को गाने लगीं। उनके साथ वृन्दावन के भौंरे मोहित होकर आ गये और जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण के रम्य धन्य तथा त्रैलोक्य को पवित्र करने वाले यश को ऊँचे स्वर में गाने लगे।।८७-९०।।

राधाकृष्णविनोदाख्यं नाटकं जगमोहनम्।।९१।।
विस्तारयामासुरुच्चैस्तेन सम्मुमुहुर्जनाः।
देव्यो विमुग्धहृदया या या राधाङ्गसम्भवाः।।९२।।
ददुर्वासांसि रत्नानि स्वालङ्कारांश्च सर्वतः।
तत्सर्वमोहनं नृत्यं गीतं वाद्यं निरीक्ष्य सा।।९३।।
श्रुत्वा च मुग्धहृदया तत्समीपमुपागता।

(ते) राधाकृष्णविनोदाख्यम् जगमोहनम् नाटकम् उच्चैः विस्तारयामासुः। तेन याः याः राधाङ्गसम्भवाः देव्यः विमुग्धहृदया जनाः च सम्मुमुहुः सर्वतः स्वालंकारान् रत्नानि वासांसि च ददुः। सा तत् सर्वमोहनम् नृत्यम् गीतम् वाद्यम् निरीक्ष्य श्रुत्वा च विमुग्धहृदया तत्समीपम् उपागता।

उन्होंने ऊँचे स्वर से 'राधाकृष्णविनोद' नामक जगमोहन नाटक का अभिनय किया, जिससे राधा के अंग से जो-जो देवियाँ उत्पन्न हुई थीं, वे सब तथा सभी पुरुष मुग्ध हो गये। उन्होंने सभी ओर से अपने अलंकारों, रत्नों और वस्त्रों को उन्हें प्रदान किया। वह राधा भी उस सर्वमोहन संगीत को देखकर तथा सुनकर मुग्धहृदय होकर उनके समीप आ गयी।।९१-९३।।

हठाद् राधाऽप्यन्यरूपा नानालङ्करणानि च।।९४।।
मणिमुक्ताप्रवालानि पद्मरागादिकानि च।
मुरलीं च ददौ भ्रान्त्या तत्क्षणान्नष्टचेतना।।९५।।
ततः सा कामवशगा राधा त्रैलोक्यसुन्दरी।
प्रविष्टान्तःपुरं तस्थौ मदाघूर्णितलोचना।।९६।।

हठात् अन्यरूपा नष्टचेतना राधा अपि नाना-अलंकाराणि मणिमुक्ता-प्रवालानि पद्मरागादिकानि च मुरलीम् च तत्क्षणात् भ्रान्त्या ददौ। ततः काम-वशगा सा त्रैलोक्यसुन्दरी राधा मदाघूर्णितलोचना अन्तःपुरम् प्रविष्टा तस्थौ।

शीघ्रता से अन्य रूप धारण कर नष्टचेतना वाली राधा ने भी अनेक अलंकारों को, मणि-मुक्ता-प्रवाल (मूँगे)-पद्मराग आदि को और भ्रान्ति से उसी क्षण वंशी को उन्हें दे दिया। तब काम के वश हुई वह त्रैलोक्यसुन्दरी राधा मद से अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर ठहर गयी।।९४-९६।।

ततस्तत्रागता हंसरूपा त्रिभुवनेश्वरी।
ददर्श मोहितं तेन राधावृन्दावनं च यत्।।९७।।
अहो रूपमहो धैर्यमहो शौर्यमहो गुणाः।
एषामित्याहुरु(?हचो)न्मना उत्थायोत्थाय सर्वतः।।९८।।
दृष्ट्वैतद् हर्षिता देवि(?वी) श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
प्रहसन्ती कटाक्षेण तमुवाच शुचिस्मिता।।९९।।

ततः तत्र हंसरूपा त्रिभुवनेश्वरी आगता। तेन च यत् राधावृन्दावनम् मोहितम् ददर्श उन्मना सर्वतः उत्थाय-उत्थाय अहो! एषाम् रूपम्, अहो! धैर्यम् अहो! शौर्यम् अहो! गुणाः इति च आह। एतत् दृष्ट्वा हर्षिता देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी कटाक्षेण प्रहसन्ती शुचिस्मिता तम् उवाच।

इसके बाद वहाँ हंसरूपिणी त्रिपुरसुन्दरी आ गयी। उसने (उस रास नृत्य से) राधा के साथ सम्पूर्ण वृन्दावन को मोहित होकर देखा। उन्मत्ता होकर उसने उठ-उठकर उसके रूप, धैर्य, शौर्य तथा गुणों की अहा अहा कहकर प्रशंसा की। यह देख कर हर्षित शुचिस्मिता देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ने हँसते हुए कटाक्षपूर्वक उन गोविन्द से कहा।।९७-९९।।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच—

जानीह मां महाबाहो देवीमत्रागतामिति।
मया यदुक्तं तत्सर्वं स्मारं स्मारं विधीयताम्।।१००।।
आगतेयं महाभाग वृन्दा वृन्दावनेश्वर।
सर्वज्ञेश्वर युष्माभिर्यदुक्तं तद्विधीयताम्।।१०१।।

महाबाहो! माम् अत्र आगताम् देवीम् जानीहि। यद् मया उक्तम् स्मारम् स्मारम् तत्सर्वम् विधीयताम्। महाभाग! वृन्दावनेश्वर! सर्वज्ञेश्वर! इयम् वृन्दा आगता। युष्माभिः यद् उक्तम् तद् विधीयताम्।

हे महाबाहो! मुझे यहाँ आयी हुई देवी त्रिपुरा समझो। जो मैंने तुमसे कहा था, वह सब स्मरण कर करके करो। हे महाभाग! वृन्दावन के स्वामी! सर्वज्ञेश्वर! यह वृन्दा आ गयी है। आपसे जो कहा था, वह करो।।१००-१०१।।

ब्राह्मण उवाच—

तदागमनसंहृष्टा वहन्ती पुष्पमालिकाः।
समायाता ततो वृन्दा वृन्दारकनिषेविता।।१०२।।
स्वयं विरचिताभिश्च स्त्रग्भिस्तं परमेश्वरम्।
नटवेषधरं कृष्णं पूजयामास शोभना।।१०३।।

ततः तदागमनसंहृष्टा वृन्दारकनिषेविता वृन्दा पुष्पमालिकाः वहन्ती समायाता। शोभना (सा) स्वयम् विरचिताभिः स्त्रग्भिः तम् नरवेषधरम् परमेश्वरम् कृष्णम् पूजयामास।

ब्राह्मण ने कहा—इसके बाद त्रिपुरा के आगमन से प्रसन्न, वृन्दारकों (देवों) द्वारा सेवित वह वृन्दा पुष्पमालिकाओं को लिए हुए आ गयी। उस शोभना ने स्वयं अपने द्वारा बनाई हुई मालाओं से नट वेषधारी उस परमेश्वर श्रीकृष्ण की पूजा की।।१०२-१०३।।

ततो नटांश्चारुरूपान् नर्तकीश्च विशेषतः।
मालाभिरवशिष्टाभिर्वृन्दावनसमागतान् ।।१०४।।
भूषयन्ती गृहीत्वैकां मालां त्रैलोक्यमोहिनीम्।
कृष्णनामाङ्कितां भद्रां नानापुष्पोपशोभिताम्।।१०५।।
अन्तःपुरं गन्तुकामा जयकृष्णेत्यथाब्रवीत्।

ततः वृन्दावनसमागतान् चारुरूपान् नटान् नर्तकीः च अवशिष्टाभिः मालाभिः विशेषतः भूषयन्ती एकाम् त्रैलोक्यमोहिनीम् नानापुष्पोपशोभिताम् भद्राम् कृष्णनामाङ्किताम् मालाम् गृहीत्वा अथ अन्तःपुरम् गन्तुकामा जयकृष्ण इति अब्रवीत्।

इसके बाद बची हुई मालाओं से वृन्दावन में आये हुए सुन्दर रूप वाले नटों और नर्तकियों को विशेष रूप से अलंकृत करती हुई त्रैलोक्यमोहिनी, वृन्दा ने अनेक पुष्पों से शोभित कल्याण करने वाली श्रीकृष्ण के नाम से अंकित एक माला को लेकर अन्तःपुर में प्रवेश की इच्छा से उसने 'जय श्रीकृष्ण' ऐसा कहा।।१०४-१०५।।

कृष्णस्तदिङ्गितं बुद्ध्वा मधुव्रतशताकुले।।१०६।।
पुष्पदामणिमालायां भूत्वा मधुकरः स्वयम्।
प्रविष्टो वृन्दया सार्धं भगवानादिपूरुषः।।१०७।।

जगाम राधानिकटं कोटिकन्दर्पमोहनः।
तद् बुद्ध्वा त्रिपुरा देवी प्रविष्टा तत्पुरं महत्॥१०८॥
जगाद राधे धन्याऽसि तवाद्य प्रियसङ्गमः।
तच्छ्रुत्वा राधिकां तां तु प्रहसन्तीदमब्रवीत्॥१०९॥

कृष्णः तद् इङ्गितम् बुद्ध्वा मधुव्रतशताकुलैः पुष्पदामणिमालायाम् मधुकरः भूत्वा स्वयम् आदिपुरुषः भगवान् वृन्दया सार्धम् प्रविष्टः। (अथ सा त्रिपुरोवाच—) राधे! त्वम् धन्या असि (यत्) अद्य तव प्रियसङ्गमः (भविता)। तत् श्रुत्वा राधिका प्रहसन्ती ताम् इदम् अब्रवीत्।

श्रीकृष्ण उसके संकेत को समझकर सैकड़ों भ्रमरों से घिरी हुई पुष्पदा मणिमाला का मधुकर बनकर स्वयं आदि पुरुष भगवान् गोविन्द वृन्दा के साथ प्रवेश कर गये। करोड़ों कामदेवों में प्रविष्ट त्रिपुरा देवी ने कहा—हे राधे! तुम धन्य हो। जो कि आज तुम्हारा प्रिय के साथ संगम है। यह सुनकर राधिका ने हँसती हुई उस त्रिपुरा से यह कहा॥१०६-१०९॥

श्रीराधिकोवाच—

प्रलोभिता त्वयाहं तु कामार्तास्मि किमुच्यते।
यदि नायाति कृष्णोऽद्य प्राणा यास्यन्ति मे ध्रुवम्॥११०॥
विरहानलसन्दग्धा पश्चात् वरवरेण किम्।
श्रुत्वैतत् प्रेयसीवाक्यं कृष्णः कमललोचनः॥१११॥
अन्यरूपी रङ्गमध्ये वेणुं कलरवं जगौ।

अहम् त्वया प्रलोभिता कामार्ता अस्मि। किम उच्यते? यदि अद्य कृष्णः न आयाति मे प्राणाः ध्रुवम् यास्यन्ति। विरहानलसन्दग्धा पश्चात् वरवरेण किम्। अन्यरूपी कमललोचनः कृष्णः एतत् प्रेयसीवाक्यम् श्रुत्वा रङ्गमध्ये कलरवम् वेणुम् जगौ।

श्रीराधिका ने कहा—मैं तुम्हारी वाणी से प्रलोभित कामपीड़िता हूँ। क्या कहती हो? यदि आज श्रीकृष्ण नहीं आते हैं तो मेरे प्राण निश्चय ही निकल जायेंगे। मैं विरह की अग्नि में जल रही हूँ। मेरे जल जाने के बाद प्रियतम के आने से क्या लाभ? (उसी समय) अन्य रूपधारी कमलनयन श्रीकृष्ण ने प्रेयसी के इन वाक्यों को सुनकर रङ्ग के मध्य में कलरव प्रकट करते हुए वेणु को बजाया॥११०-१११॥

तद्वेणुगीतमाकर्ण्य सा राधातिविमोहिता॥११२॥
प्राह तामीश्वरीं भद्रः सः कुत्रानीयतां वरः।
प्राणनाथो मम प्राणा यावत्तिष्ठन्ति सुव्रते॥११३॥

तावत्तं तु समानीय संजीवय विजीविताम्।
स पुष्पदामान्तरङ्गः श्रुत्वा प्रेमसुभाषितम्॥११४॥
अत्यन्तहर्षमापन्नो जहास पुरुषोत्तमः।
तत्सुहासप्रकाशेन प्रकाशितदिगन्तरम्॥११५॥

तद् वेणुगीतम् आकर्ण्य सा विमोहिता राधा ताम् ईश्वरीम् प्राह—सुव्रते! यावत् मम प्राणाः तिष्ठन्ति सः भद्रः वरः प्राणनाथः कुत्र आनीयताम्। तावत् तम् तु समानीय विजीविताम् (माम्) सञ्जीवय। पुष्पदामान्तरङ्गः सः पुरुषोत्तमः प्रेमसुभाषिताम् श्रुत्वा अत्यन्त हर्षमापन्नः जहास। तत् सुहासप्रकाशेन दिगन्तरम् प्रकाशितम्।

उस वंशीधुन को सुनकर विमोहित राधा ने उस ईश्वरी से कहा—हे सुव्रते! जब तक मेरे प्राण बचे हैं तब तक उस भद्रवर मेरे प्राणनाथ को कहीं से ले आओ और उसे लाकर मुझ मरने वाली को बचा लो। पुष्पमाला में छिपे हुए श्रीकृष्ण प्रिया के इन वाक्यों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए जोर से हँसने लगे। उनके हँसने से निकली प्रभा से वृन्दावन की सभी दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं॥११२-११५॥

वृन्दावनं बभौ भद्रे विद्युतेव नभस्तलम्।
ततो वृन्दावनेश्वर्यै वृन्दा वृन्दावनोद्भवैः॥११६॥
मन्दारकुसुमैर्दिव्यां रचितां मालिकां ददौ।
तत्पुष्पमालासंस्पर्शात् कामबाणार्दिता मुहुः॥११७॥
कृष्ण कृष्णेत्यथोवाच प्रेम्णा गद्गदभाषिणी।
अथ तत्प्रेमवशगः कृष्णः कमललोचनः॥११८॥
आत्मानं दर्शयामास ससूत्रं(?त्र)मणिसन्निभम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं योषितां हृदयङ्गमम्॥११९॥

भद्रे! वृन्दावनम् विद्युता नभस्थलम् इव बभौ। ततः वृन्दा वृन्दावनोद्भवैः मन्दारकुसुमैः रचिताम् दिव्याम् मालिकाम् (राधिकायै) ददौ। अथ तत्पुष्पमाला-संस्पर्शात् मुहुः कामबाणार्दिता प्रेम्णा गद्गदभाषिणी सा 'कृष्ण कृष्ण' इति उवाच। अथ तत्प्रेमवशगः कमललोचनः कृष्णः कोटिकन्दर्पलावण्यम् ससूत्र-मणिसन्निभम् योषिताम् हृदयङ्गमम् आत्मानम् दर्शयामास।

हे भद्रे! उस समय वृन्दावन का सम्पूर्ण क्षेत्र विद्युत् से चमकते हुए नभः-स्थल के समान चमकने लगा। तब वृन्दावनेश्वरी वृन्दा ने वृन्दावन में उत्पन्न मन्दार आदि के पुष्पों से निर्मित दिव्य माला को राधा को दिया। उस माला के पुष्पों के स्पर्श से बार-बार कामबाणों से व्यथित राधा ने प्रेम से

गद्‌गद वाणी में 'हे कृष्ण! हे कृष्ण!' कहा। इसके बाद उसके प्रेम के वश में होकर कमलनयन श्रीकृष्ण ने करोड़ों कामदेवों से अधिक, लावण्य वाले, सूत्र में पिरोयी हुई मणि के समान कामिनियों के हृदयङ्गम अपने को दिखाया॥११६-११९॥

मायूरदलसंशोभिसुकुञ्चितशिरोरुहम् ।
मधुमत्तालिसंघृष्टदिवस्त्रगुपशोभितम् ॥१२०॥
निष्कलङ्कचन्द्रकोटिसदृशाननपङ्कजम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाश चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥१२१॥
उपालकावलिलसत्तिलकं दधतं सितम्।
यथा विधुन्तुदक्रोडलुठत्कुमुदबान्धवम्॥१२२॥

मायूरदलसंशोभिसुकुञ्चितशिरोरुहम् मधुमत्तालिसंघृष्टदिवस्त्रक् उपशोभितम् निष्कलङ्ककोटिचन्द्रसदृशआननपङ्कजम्, कोटिसूर्यप्रतीकाशम् कोटिचन्द्रसुशीतलम् उपालकावलिलसत् सितम् तिलकम् दधतम् यथा विधुन्तुदक्रोडलुठत्कुमुदबान्धवम्।

उन्होंने मयूरपिच्छ को घुंघराले काले बालों पर शोभित कर रखा था। उन्मत्त भ्रमरों से संघृष्ट को पहन रखा था। उनका मुखकमल करोड़ों निष्कलंक चन्द्रमाओं की कान्ति के समान था। वे (कृष्ण) करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान तेजयुक्त थे तथा श्वेत तिलक लगा रखा था, जैसे राहु की गोद में बैठा हुआ चन्द्रमा हो॥१२०-१२२॥

कन्दर्पधनुराकारभ्रूलतं सुमनोहरम्।
तिलप्रसूनविलसत्सुनसं पाटलाधरम्॥१२३॥
अरुणाम्बुजपत्राभं कर्तजा(?र्णना-)हविलोचनम्।
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१२४॥
माणिक्यमुकुराकारगण्डमण्डलमण्डितम् ।
कुन्दप्रसूनदशनमरुणौष्ठमनुत्तमम् ॥१२५॥
सुचारुचिबुकं चारुस्मेरं त्रैलोक्यमोहनम्।
मनोहरं गुणग्रीवं नानालङ्करणोज्ज्वलम्॥१२६॥

कन्दर्पधनुराकारभ्रूलतम् सुमनोहरम् तिलप्रसूनविलसत्सुनसम् पाटलाधरम् अरुणाम्बुजपत्राभम् कर्णनाहविलोचनम् समानकर्णविन्यस्तस्फुरत् मकरकुण्डलम् माणिक्यमुकुराकारगण्डमण्डलमण्डितम् कुन्दप्रसूनदशनम् अरुणौष्ठमनुत्तमम् सुचारुचिबुकम् त्रैलोक्यमोहनम् चारुस्मेरम् मनोहरम् गुणग्रीवम् नानालंकरणोज्ज्वलम्।

उनकी भ्रूलता कामदेव के धनुष के आकार की अति मनोहर थी। उनकी नासिका तिल के पुष्प जैसी विलसित अर्थात् सुन्दर थी। उनके अधर पाटलफल के समान (लाल) थे। दोनों आँखें कान तक लम्बी तथा लाल कमल के दल के समान थीं। कानों में लटकते हुए मकराकृति कुण्डल शोभित हो रहे थे। माणिक्य के दर्पण के आकार के गण्डमण्डल से वे शोभित हो रहे थे। कुन्द की कली की तरह उनकी दन्तपंक्ति के साथ अति उत्तम लाल-लाल अधरोष्ठ शोभित थे। उनकी ठोढ़ी सुन्दर थी। मुख पर त्रैलोक्य को मोहित करने वाली मुस्कान विद्यमान थी। उनकी ग्रीवा गुण अर्थात् तीन रेखाओं से युक्त थी। वे अनेक उज्ज्वल एवं मनोहर अलंकार धारण किये थे॥१२३-१२६॥

आजानुलम्बितभुजं वनमालाविराजितम्।
श्रीवत्सलोमावल्या च कौस्तुभेन विराजितम्॥१२७॥
विराजितं महोरस्कं वलिमत्पल्वलोदरम्।
योषिन्मनोहरलसन्निम्ननाभीसरोरुहम् ॥१२८॥
घनश्यामवपुर्विद्युद्वाससं सर्वसुन्दरम्।
सुजानुजङ्घायुगलं गूढगुल्फपदद्वयम्॥१२९॥
रत्ननूपुरसंशोभिश्रीमत्पादतलारुणम् ।
शरद्राकेशसंकाशनखराजिविराजितम् ॥१३०॥

आजानुलम्बितभुजम्, वनमालाविराजितम्, श्रीवत्सलोमावल्या कौस्तुभेन च विराजितम्, महोरस्कम्, वलिमत्पल्वलोदरम्, योषिन्मनोहरलसत् निम्ननाभि-सरोरुहम्, घनश्यामवपुः, विद्युद्वासम्, सर्वसुन्दरम्, सुजानुजङ्घायुगलम्, गूढ-गुल्फपदद्वयम्, रत्ननूपुरसंशोभिश्रीमत्पादतलारुणम्, शरद् राकेशसंकाश-नख-राजिविराजितम्।

उनकी दोनों भुजाएँ जानुपर्यन्त लम्बी थी। वे वनमाला से विराजित थे। कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स चिह्न से युक्त रोमावलि से उनका वक्षःस्थल शोभित हो रहा था। उनका उदर त्रिवलीयुक्त था। उनका गहरा नाभिकमल स्त्रियों के मन को मुग्ध करने वाला था। उनका शरीर जलधर की तरह श्याम था। उन्होंने बिजली की-सी द्युति वाला पीताम्बर धारण कर रखा था। वे अत्यन्त सुन्दर थे। उनकी जानु और जङ्घाएँ अति मनोहर थीं। उनके मांसल चरणद्वय में गुल्फ छिप रहे थे। रत्नजटित नूपुरों से उनके दोनों चरण शोभित हो रहे थे। चरणों के नखों की शोभा शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान थी॥१२७-१३०॥

दृष्ट्वा तं पुरुषं श्रेष्ठं राधा त्रैलोक्यसुन्दरी।
मुमोह कामवशगा संप्रहृष्टतनूरुहा॥१३१॥
अनिमेषदृशा कृष्णं निरीक्षन्त्यरुणेक्षणा।
रत्नमय्यां च शय्यां मृद्वास्तरणसम्पदि॥१३२॥
सुस्वापापाङ्गमार्गेण वर्षन्ती काममाकुलम्।
कृष्णस्तदिङ्गितं बुद्ध्वा प्रेमानन्दरसाप्लुतः॥१३३॥
स्वयं वेदविधानेन सम्पूज्यात्मानमात्मना।
सर्वदेवमयैर्द्रव्यैर्नानारसमयैर्विभुः ॥१३४॥
देहान्तस्थानलं होमैः सन्तर्प्य पुरुषोत्तमम्।
गान्धर्वेण विवाहेन उपमेये स राधिकाम्॥१३५॥

त्रैलोक्यसुन्दरी राधा तम् श्रेष्ठम् पुरुषम् दृष्ट्वा कामवशगा संप्रहृष्टतनूरुहा मुमोह। अरुणेक्षणा (सा) अनिमेषदृशा कृष्णम् निरीक्षन्ती रत्नमय्याम् शय्याम् मृदु-आस्तरणसम्पदि अपाङ्गमार्गेण आकुलम् कामम् वर्षन्ती सुस्वाप। प्रेमानन्दरसाप्लुतः सः विभुः श्रीकृष्णः तद् इङ्गितम् बुद्ध्वा स्वयम् आत्मना आत्मानम् वेदविधानेन सम्पूज्य सर्वदेवमयैः नानारसमयैः द्रव्यैः देहान्तःस्थानलम् पुरुषोत्तमम् होमैः सन्तर्प्य राधिकाम् गान्धर्वेण विवाहेन उपयेमे।

त्रैलोक्यसुन्दरी राधा उस श्रेष्ठ पुरुष को देखकर काम के वशीभूत हो गयीं। उनके शरीर पर रोमाञ्च हो गया। वे मोहित हो गयीं। अपलक अरुण नेत्रों से कृष्ण को देखती हुई कोमल आस्तरण वाली रत्नमयी शय्या पर अपाङ्गद्वार से कामबाणों की वर्षा करती हुई सो गयीं। प्रेम आनन्द के रस से आप्लुत व्यापक श्रीकृष्ण ने उनके संकेत को समझकर अपने-आपको अपने ही द्वारा वेदविधान से पूज कर सर्वदेवमय अनेक रसों से युक्त द्रव्यों से देह के अन्दर स्थित अनलरूप पुरुषोत्तम को यज्ञ द्वारा तृप्त करके श्रीमती राधिका को गान्धर्व विवाह की विधि से अपनी पत्नी बना लिया॥१३१-१३५॥

उरुपत्रे समारोप्य काममुद्दीपयञ्च्छनैः।
करेणाधः प्रदेशे तां संस्पृश्य च पुनः पुनः।
लीलाभिरसकृद्देव आत्मारामोऽप्यरीरमत्॥१३६॥

देवः आत्मारामः अपि ताम् उरुपत्रे समारोप्य शनैः असकृद् कामम् उद्दीपयन् करेण अधः प्रदेशे पुनः पुनः संस्पृश्य लीलाभिः अरीरमत्।

आत्माराम होते हुए भी देव श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी जाघों पर बिठाकर धीरे-धीरे उनके काम को उद्दीपित करते हुए अपने हाथ से उनके अधोभाग का बार-बार स्पर्श करते हुए लीलापूर्वक उनके साथ रमण किया॥१३६॥

अथेन्दुरम्भोजविमुद्रणक्षमः प्रबोधयन् कैरवकोरकाकरम्।
सुराङ्गनाकुङ्कुमराशिसन्निभः प्रकाशयामास दिशं बलिद्विषः॥

अथ अम्भोजविमुद्रणक्षमः सुराङ्गनाकुंकुमराशिसन्निभः इन्दुः कैरवकोरकाकरम् प्रबोधयन् बलद्विषः दिशम् प्रकाशयामास।

इसके बाद कमलों को बन्द करने वाला, देवताओं की स्त्रियों की कुंकुमराशि के समान आभा वाला चन्द्रमा कुमुदकलिकाओं को अपने स्पर्श से जगाता हुआ पूर्व दिशा को प्रकाशित करने लगा॥१३७॥

कन्दर्पनीराजनरौप्यपात्रं प्राच्या दिशो वेषविलासदर्पणः।
तमातमः सन्दलयन् करोत्करैः सुशीतलः शीतमरीचिरुद्ययौ॥

कन्दर्पनीराजनरौप्यपात्रम्, प्राच्याः दिशः वेषविलासदर्पणः सुशीतलः शीतमरीचिः करोत्करैः तमातमः सन्दलयन् उद्ययौ।

कामदेव की आरती करने के लिए चाँदी की थाली के समान, पूर्व दिशारूपी नायिका के वेषविलास को प्रतिबिम्बित करने वाले दर्पण के समान, सुशीतल चन्द्र, अपने हाथों से रात्रि के अन्धकार का दलन करता हुआ उदित हुआ॥१३८॥

चुकूज भृङ्गो नवकोकिलाकलध्वनिं समाकर्ण्य मनोरमं परम्।
जगज्जये वाद्यमभून्मनोभुवः प्रकाण्डमुच्चैः पथिकप्रमर्दनम्॥

भृङ्गः परम् मनोरमम् नवकोकिलाकलध्वनिम् समाकर्ण्य चुकूज। जगत् जये पथिकप्रमर्दनम् मनोभुवः प्रकाण्डमुच्चैः वाद्यम् अभूत्।

भ्रमर नवकोकिला की परम मनोरम कलध्वनि को सुनकर कूजने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि जगत् को जीतने तथा पथिकों का प्रमर्दन करने के लिए कामदेव का यह प्रकाण्ड उच्च वाद्य बज रहा है॥१३९॥

दिशो बभुस्ताः विमलाः सुधीराः समीरणः सौरभशीतलो ववौ।
कपोतपारावतकेकिपक्षिणां रुतेन चित्तं विपिनं जहार तत्॥

ताः दिशः विमलाः बभुः। सौरभशीतलः सुधीरः समीरणः ववौ। तत् विपिनम् कपोतपारावतकेकिपक्षिणाम् रुतेन चित्तम् जहार।

वे दिशाएँ विमल हो गयीं। सुगन्धित शीतल मन्द-मन्द हवाएँ चलने लगीं। वह वन कबूतर, पारावत और मयूरों के मीठे स्वर से चित्त का हरण कर रहा था॥१४०॥

आश्लेषयामास पयोदविद्युतिः सविद्युदाभां रमणीं रसात्मिकाम्।
सूत्राभरत्नं रुचिरं चिरत्नं सुवर्णवल्ल्या मिलितं बभूव॥

पयोदविद्युतिः (कृष्णः) सविद्युदाभाम् रसात्मिकाम् रमणीम् (राधाम्) आश्लेषयामास। सूत्राभरत्नम् रुचिरम् चिरत्नम् सुवर्णवल्या मिलितम् बभूव।

नव जलधर के समान कान्ति वाले श्रीकृष्ण ने विद्युद् आभा वाली रसात्मिका श्रीराधा का आलिङ्गन किया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि सूत्राभ रुचिर नीलमणि सुवर्ण की बेल से आश्लिष्ट हो गयी हो।।१४१।।

चुचुम्ब वक्त्रं रसलालसो मुदा श्र(?स्त्र)वन्मधूकं नवनीरदद्युतिः।
विधुन्तुदोऽसौ कवलीचकार यथा विधुं पूर्णतिथौ नभस्तले।।
चुचुम्ब तत्पाटलिताधरं प्रभुस्तमालमालाप्रभनीलविग्रहः।
अदंशयत् सूर्यमिषादनूरुकं चिरेण किं बाहुरसौ रुषाकुलः।।

नवनीरदद्युतिः रसलालसः (कृष्णः) मधूकम् (?राहुः) स्रवत् वक्त्रम् मुदा चुचुम्ब। यथा नभस्तले असौ विधुन्तुदः पूर्णतिथौ विधुम् कवलीचकार। तमालमालाप्रभनीलविग्रहः प्रभुः तत् पाटलिताधरम् चुचुम्ब। किम् असौ राहुः रुषाकुलः सूर्यमिषाद् अनूरुकम् चिरेण अदंशयत्।

नव नीलमेघ की कान्ति वाले श्रीकृष्ण ने रस की लालसा से प्रसन्नतापूर्वक राधा के मधु रिसते हुए मुख का चुम्बन किया, जैसे नभःस्थल में यह राहु पूर्णिमा के चन्द्र को अपना ग्रास बना लेता हो। तमाल की माला के समान नील वर्ण के विग्रह वाले प्रभु श्रीकृष्ण ने राधिका जी के कमल के समान लाल अधर का चुम्बन किया। ऐसा प्रतीत होता था कि कहीं राहु ने सूर्य के धोखे में क्रोध से व्याकुल होकर अरुण को ही काट लिया हो।।१४२-१४३।।

कृष्णः सतृष्णः स्मरसिन्धुखेलने दधौ तदीयावुरसि स्तनौ घटौ।
कस्तूरिकाबिन्दुकशैवलाञ्छितौ तुङ्गौ सुपीनौ घनसारपङ्कितौ।।

सतृष्णः कृष्णः स्मरसिन्धुखेलने उरसि तदीयौ कस्तूरिकाबिन्दुकशैवलाञ्छितौ घनसारपङ्कितौ सुपीनौ स्तनौ घटौ दधौ।

स्मरसिन्धु में क्रीड़ा करते हुए तृष्णा से युक्त श्रीकृष्ण ने कस्तूरी के बिन्दुवाले शिवलिङ्ग से लाञ्छित एवं कर्पूर से उपलिप्त उसके अतिपीन स्तनघटों को अपने वक्षःस्थल पर धारण कर लिया।।१४४।।

दधौ कराभ्यां निविडां कुचद्वयीं पीनांशुतुङ्गामुरसि प्रकाशिताम्।
नूनं चिनोति स्म मनोजकूजने सरोवरे काञ्चनपङ्कजे हरिः।।

हरिः उरसि प्रकाशिताम् पीनाशुतुंगाम् निविडाम् कुचद्वयीम् कराभ्याम् दधौ। नूनम् मनोजकूजने काञ्चनपंकजे सरोवरे चिनोति स्म।

श्रीहरि ने राधिका जी के वक्षःस्थल पर दिखायी पड़ने वाले बड़े-बड़े सुन्दर ऊँचे सघन दोनों स्तनों को हाथों से कसकर पकड़ लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि वे मनोज के कूजन करने वाले सरोवर में दो स्वर्णकमलों को चुन रहे थे॥१४५॥

उरोजयोस्तुङ्गसुवृत्तपीनयोः समन्ततो मौक्तिकचित्रलेखयोः।
स्मरोत्सवे मङ्गलकुम्भयोर्मुखे न्यधादसौ पाणिरसालपल्लवम्॥

असौ स्मरोत्सवे समन्ततः मौक्तिकचित्रलेखयोः तुङ्गसुवृत्तपीनयोः उरोजयोः मंगलकुम्भयोः मुखे पाणिरसालपल्लवम् न्यधात्।

श्रीकृष्ण ने स्मर-उत्सव के समय चारों ओर मौक्तिक चित्र हुए हैं जिन पर ऐसे आवृत गोल-गोल विशाल उत्तुंग उरोजरूपी मंगलकलशों के मुख पर अपने पाणिरूपी आम्रपल्लवों को चारों ओर लगा रखा था॥१४६॥

नखैर्हरिः पीनपयोधरौ वरौ ददार कर्बूरधराधराधरौ।
यथा हरिर्मत्तमतङ्गजस्य कुम्भौ सतुङ्गौ धृतदानपूरकौ॥१४७॥

हरिः कर्बूरधराधराधरौ वरौ पीनपयोधरौ नखैः ददार यथा हरिः मत्त-मतङ्गजस्य धृतदानपूरकौ सतुङ्गौ कुम्भौ (ददार)।

श्रीहरि ने रंग-विरंगी धरती को धारण करने वाले महीधरों के समान सुन्दर पीनपयोधरों को नख से उसी प्रकार क्षत कर दिया, जैसे कोई सिंह उन्मत्त मददानराजि से युक्त हाथी के उत्तुङ्ग दोनों कुम्भों को क्षत-विक्षत कर देता है॥१४७॥

तनौ नखाघातजरक्तधारामुत्पाटनीकारितदन्तिमौक्तिकौ।
कुचौ दधाते नवधातुरक्तयोश्चिराय सौमेरव शृङ्गयोः श्रियम्॥१४८॥

नखाघातजरक्तधाराम् उत्पाटनीकारितदन्तिमौक्तिकौ तनौ कुचौ नवधातु-रक्तयोः सौमेरव शृंगयोः श्रियम् चिराय दधाते।

श्रीहरि के नखाघात से उत्पन्न रक्त-धारा को प्रकट करने वाले दन्ती (हाथी के) मौक्तिक की तरह आभा वाले विशाल दोनों स्तन दीर्घकाल तक सुमेरु पर्वत (में स्थित) नवधातु की आरक्त शोभा वाली चोटियों की आभा को बहुत देर तक धारण किया॥१४८॥

सिन्दूरधातुनवकुङ्कुमरागभाजौ स्नातस्य कुम्भितरुणस्य कृताभिषेकौ।
कुम्भौ व्रजेन्द्ररमणीकुचशातकुम्भकुम्भौ नखक्षतगलद्रुधिरौ बभातुः॥

व्रजेन्द्ररमणीकुचशातकुम्भकुम्भौ नखक्षतगलद्रुधिरौ सिन्दूरधातुनव-कुंकुमरागभाजौ स्नातस्य कुम्भितरुणस्य कृताभिषेकौ बभातुः।

व्रजेन्द्र श्रीहरि की रमणी श्रीराधा के स्वर्ण-कुम्भों के समान कुचद्वय नख के क्षत से झलकती हुई रक्त-रेखा को उसी प्रकार धारण कर रहे थे मानो सिन्दूर, धातु और नव कुंकुम की लालिमा से युक्त जल में नहाये हुए गज-युवराज का राज्याभिषेक हो रहा हो।।१४९।।

अखर्वनेत्राग्निशिखाभयेन शर्वस्य सर्वेश्वरकृष्णवध्वाः।
हारप्रवाहौ कुचकाञ्चनाचलौ चन्द्रं सिषेवे नखलेखकैतवात्।।

शर्वस्य अखर्वनेत्राग्निशिखाभयेन सर्वेश्वरकृष्णवध्वाः हारप्रवाहौ कुच-काञ्चनाचलौ नखलेखकैतवात् चन्द्रम् सिषेवे।

भगवान् शिव के तीसरे नेत्र की अग्निशिखा के दाह के भय से सर्वेश्वर कृष्ण की प्रिया के हारों से शोभित स्तनरूपी काञ्चनगिरि श्रीहरि के हाथ के नाखूनों के बहाने मानो चन्द्रमा की सेवा कर रहे हैं।।१५०।।

एकः कालाग्निरुद्रः प्रदहति जगतीं तत्र हालाहलस्य
ज्वाला तत्रापि वह्नेः स्मरदलनललज्जिह्वया जिह्मलस्य।
तत्र स्थानं हिमांशोर्मम बत विहितं वेधसा चेतसेति
स्मारं स्मारं विवर्णः समजनि रजनीनायको राधिकाङ्गे।।१५१।।

एकः कालाग्निरुद्रः जगतीम् प्रदहति तत्र हालाहलस्य ज्वाला तत्रापि ललज्जिह्वया स्मरदलनजिह्मलस्य वह्नेः (ज्वाला)। तत्र वेधसा मम हिमांशोः स्थानम् वत विहितम्-इति चेतसा स्मारम्-स्मारम् रजनीनायकः राधिका-अङ्गे विवर्णः समजनि।

अकेला कालाग्नि रुद्र ही सम्पूर्ण जगती को भस्म करने में समर्थ है। फिर उस पर हालाहल की ज्वाला भी विद्यमान है। इसके अलावा काम को भस्म करने के लिए शिव के तीसरे नेत्र की लपलपाती जीभ वाली भयंकर ज्वाला भी है। उसके समीप में ही विधाता ने मुझ शीतांशु चन्द्रमा को निवास स्थान दिया है। वहाँ (मैं किस तरह सुरक्षित रहूँगा) यह सोच-सोच कर चन्द्रमा राधाजी के अङ्ग पर विवर्ण भाव को प्राप्त हो रहा है।।१५१।।

तयोर्द्वयोर्हेमतमालभासयोर्हृदि प्रकामं प्रबभूव कामः।
प्रत्येकसंसारजयोत्सवेऽलसो ब्रह्माण्डकोटिप्रकटोदरान्तयोः।।१५२।।

हेमतमालभासयोः प्रत्येकब्रह्माण्डकोटिप्रकटोदरान्तयोः तयोः द्वयोः हृदि प्रकामम् अलसः कामः संसारजयोत्सवे प्रबभूव।

स्वर्ण एवं तमाल की आभा वाले राधा-कृष्ण, जिनके उदर में करोड़ों ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं, के हृदय में संसार को जीतने के उत्सव के समय आलसी कामदेव अत्यन्त उत्कट हो गया।।१५२।।

कण्ठाश्लिष्टभुजायुगं परिगलदु(?च्चो)द्भिन्नमालादिकं
दन्तप्रान्तविदंशिताधरयुगं संलुप्तसिन्दूरकम्।
दृग्द्वन्द्वाञ्जनसञ्जनासितमुखं संघृष्टपीनस्तनं
श्रीकृष्णस्य रतं ततान मुदितं राधामसाधारणम्॥१५३॥

कण्ठाश्लिष्टभुजायुगम् परिगलद् उद्भिन्नमालादिकम् च दन्तप्रान्तविदंशित-अधरयुगम् संलुप्तसिन्दूरकम् दृग्द्वन्दाञ्जनसञ्जनासितमुखम् संघृष्टपीनस्तनम् श्रीकृष्णस्य रतम् राधाम् असाधारणम् मुदितम् ततान।

उन दोनों ने परस्पर कण्ठाश्लेष के लिए दोनों भुजाओं से आलिङ्गन किया, जिससे उनकी टूटी हुई माला आदि बिखर गयीं। श्रीकृष्ण ने अपने दन्तप्रान्त से श्रीप्रिया जी के अधर को दंशित किया। दोनों आँखों का अंजन लग जाने से मुख पर श्यामता विखर गयी। मांग का सिन्दूर लुप्त हो गया। परस्पर आलिंगन से श्रीप्रिया जी के पीनपयोधर संघृष्ट हो गये। श्रीकृष्ण की ऐसी रतिक्रीड़ा राधा को असाधारण आनन्द दे रही थी।।१५३।।

अगण्यलावण्यतरङ्गभाजो रङ्गे घनङ्गस्य(?घनाङ्गस्य) हि रङ्गसङ्गः।
श्रीराधिकागोपकुमारयोरभूत् समस्तवृन्दावनलोकशोकहा॥

अगण्यलावण्यतरङ्गभाजः हि घनाङ्गस्य श्रीराधिकागोपकुमारयोः रङ्गसङ्गः समस्तवृन्दावनलोकशोकहा अभूत्।

लावण्य की अगणित तरंगों से युक्त रंगशाला में घनाङ्ग श्रीकृष्ण और गोप-कुमारिका श्रीराधा की रतिक्रीड़ा समस्त वृन्दावन के लोगों के शोक को दूर करने वाली हो गयी।।१५४।।

जिता न राधा हरिणा जितेन समस्तपञ्चाशुगतन्त्रधीमता।
प्रायः स्त्रियः कामनिकामकेतवः सम्मोहयन्त्यो मदयन्ति पूरूषम्॥

समस्तपञ्चाशुगतन्त्रधीमता जितेन हरिणा राधा न जिता। प्रायः कामनिकामकेतवः स्त्रियः पूरूषम् सम्मोहयन्त्यः मदयन्ति।

(राधा ने) पञ्चाशुग अर्थात् कामदेव के समस्त शास्त्र को जानने वाले श्रीकृष्ण को जीत लिया; किन्तु वे राधिका जी को नहीं जीत सके, क्योंकि प्रायः कामदेव के रथ की पताकास्वरूप स्त्रियाँ पुरुषों को सम्मोहित करती हुई अधिक उत्तेजित करती हैं (स्वयं की उत्तेजना को प्रकट नहीं होने देतीं)।।१५५।।

जिगाय राधा स्मरसङ्गरे प्रियं समस्तसम्मोहनतन्त्रकोविदा।
चिक्षेप तस्योरसि निर्भरं मुदा कदम्बपुष्पाणि हसन्मुखाम्बुजा॥

समस्तसम्मोहनतन्त्रकोविदा राधा स्मरसङ्गरे प्रियम् जिगाय हसन्मुखाम्बुजा मुदा तस्य उरसि निर्भरम् कदम्बपुष्पाणि चिक्षेप।

समस्त संसार का सम्मोहन करने वाली तन्त्र की परम विदुषी राधा ने कामयुद्ध में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को जीत लिया। उन्होंने अपने हँसते हुए मुखकमल से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर कदम्ब के पुष्पों को निश्चिन्त होकर फेंका।।१५६।।

स्वेदाम्बूज्झितचन्दनं श्रुतियुगश्रीकुण्डलान्दोलनं
बध्वा मूर्धशिरोरुहं कटितटे गाढं क्वणत्काञ्चिकम्।
पादाशिञ्जितनूपुरं करपरिस्फूर्जच्चलत्कङ्कणं
राधाया विपरीतमारतमभूत् कृष्णे प्रमोदप्रदम्।।१५७।।

स्वेदाम्बु-उज्झितचन्दनम् श्रुतियुगश्रीकृष्णकुण्डलान्दोलनम् मूर्धशिरोरुहम् बध्वा कटितटे गाढम् क्वणत्काञ्चिकम्, पादाशिञ्जितनूपुरम्, करपरिस्फूर्जत् चलत् कंकणम् राधायाः विपरीतम् आरतम् कृष्णे प्रमोदप्रदम् अभूत्।

स्वेदाम्बु से मिटे हुए चन्दन वाली, श्रुतियुगों में चंचल कुण्डलों वाला, शिखा बालों को भली प्रकार बांध लेने वाला, कमर में शब्द करती हुई करधनी वाला, पैरों में शब्द करते हुए नूपुरों वाला तथा हाथों के चंचल कंकणों के शब्दों से युक्त राधा का विपरीत रतिक्रम श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाला हो गया।।१५७।।

ततोऽनुगोत्रस्खलनं तयोरभूत् परस्परं प्रेयपयोधिमग्नयोः।
रसान्धयोः कौतुककेलिलोलयोर्यथा नितान्तं रतिकामदेवयोः।।

ततः अनु परस्परम् प्रेमपयोधमग्नयोः रसान्धयोः कौतुककेलिलोलयोः यथा नितान्तम् रतिकामदेवयोः तयोः गोत्रस्खलनम् अभूत्।

इसके बाद परस्पर प्रेम-सागर में निमग्न, रस से अन्धे, कौतुक केलि के लिए चंचल मानो पूर्ण रूप से रति और कामदेव ही हो, ऐसे उन दोनों के बीच गोत्रस्खलन चर्चा हुई।।१५८।।

कस्त्वं रे मधुसूदनोऽस्मि सुभगे कस्मात्प्रसूनाद्बहि-
र्मुग्धेऽहं हरिरस्मि पत्रहरिणेनात्रास्ति का वा क्रिया।
चक्र्यस्मि स्मितसालसे पुनरितः सर्पः कथं सर्पति
प्रायो वाक्छलकारिणी व्रजवधूः कृष्णं व्यधाल्लज्जितम्।।१५९।।

रे त्वम् कः? सुभगे मधुसूदनः अस्मि। कस्माद् प्रसूनाद् बहिः? मुग्धे! अहम् हरिः अस्मि। अत्र पत्रहरिणेन का वा क्रिया अस्ति? स्मितसालसे! चक्री अस्मि,

पुनः इतः सर्पः कथम् सर्पति? प्रायः वाक्छलकारिणी व्रजवधूः कृष्णम् लज्जितम् व्यधात्।

रे तुम कौन हो? सुभगे! मैं मधुसूदन अर्थात् मधु नामक राक्षस को मारने वाला हूँ। तो पुष्पों से बाहर क्यों फिर रहे हो? मुग्धे! मैं हरि हूँ अर्थात् पापों का हरण करने वाला हूँ। यहाँ पत्रहरण करने वाले का क्या काम है? हे स्मित से युक्त मुख वाली! मैं चक्री अर्थात् चक्र-सुदर्शनधारी हूँ। तो यहाँ सर्प क्यों चक्कर काट रहा है? इस तरह वाणी से छल करने वाली व्रज-वधू राधा ने कृष्ण को निरुत्तर करके लज्जित कर दिया॥१५९॥

काऽसि त्वमहं व्रजेन्द्ररमणी संसेव्यतां स्वः पति-
र्मुग्धाऽहं व्रजचारिणी कथमितो गोष्ठं विना स्थीयते।
साऽहं गोपसुताऽस्मि घासकरणं त्यक्त्वा किमत्रास्ति ते
राधा वाक्छललालसेन हरिणाऽकारि त्रपाऽधोमुखी॥१६०॥

त्वम् का असि? अहम् व्रजेन्द्ररमणी। (तर्हि) स्वः पतिः संसेव्यताम्। व्रजचारिणी मुग्धा अस्मि। गोष्ठम् विना कथम् इतः स्थीयते? सा अहम् गोपसुता अस्मि। घासकरणम् त्यक्त्वा अत्र ते किम् अस्ति? (इत्थम्) वाक्छललालसेन हरिणा राधा त्रपाऽधोमुखी अकारि।

तुम कौन हो? मैं व्रजेन्द्र की रमणी हूँ। तो अपने पति की सेवा करो। मैं व्रज में विचरण करने वाली मुग्धा हूँ। तो गोष्ठ के बिना इधर क्यों विचरण कर रही हो? अरे मैं तो गोपकन्या हूँ। तो जाकर घास इकठ्ठा करो-घास छोड़कर यहाँ क्या कर रही हो। इस तरह वाणी के छल से श्रीकृष्ण ने राधा को निरुत्तर कर लज्जा से अधोमुखी कर दिया॥१६०॥

एवं बहुविधैर्भावैरमिता रमणी वरा।
राधाऽसाधारणरसा वर्धयामास लालसाम्॥१६१॥
असौ सुपुरुषो नाथः कोटिकन्दर्पदर्पहा।
तदा पश्याम्यस्य रूपं यदि चक्षुः शतं भवेत्॥१६२॥
बहुमूर्तिकया कान्तो रंस्यते यस्त्वसौ मया।
तीर्णः कन्दर्पजलधिः पूर्ण एव मनोरथः॥१६३॥

एवम् बहुविधैः भावैः रमिता असाधारणरसा सा वरा रमणी राधा लालसाम् वर्धयामास। असौ सुपुरुषः नाथः कोटिकन्दर्पदर्पहा (अस्ति)। यदि शतम् चक्षुः भवेत् तदा अस्य रूपम् पश्यामि। तु असौ कान्तः बहुमूर्तिकया मया रंस्यते। पूर्णमनोरथः कन्दर्पजलधिः एव तीर्णः।

इस प्रकार अनेक प्रकार के भावों से रमण करायी गयी असाधारण रस वाली उस दिव्य रमणी राधा ने कृष्ण की लालसा का वर्धन किया। वे सुपुरुष करोड़ों कन्दर्पों के दर्प का दलन करने वाले, सबके स्वामी हैं। यदि मेरे पास सौ नेत्र होते तब मैं उनके रूप का दर्शन कर पाती। (जब) वे कान्त अनेक रूप वाली मेरे साथ रमण करेंगे तब मैं समझूंगी कि पूर्ण मनोरथ होकर हमने कन्दर्पसागर को पार कर लिया है।।१६१-१६३।।

एवं सञ्चिन्त्य सा राधा तत्क्षणाद् बहुमूर्तिका।
अभवत् कृष्णवशगा सर्वसम्मोहकारिणी।।१६४।।
कृष्णोऽपि राधिकादेव्या इङ्गितज्ञो वनान्तरे।
आत्मानं बहुधाऽकार्षीत् प्रत्येकरतिलम्पटः।।१६५।।
रासमण्डलिकामध्ये क्रीडयन् गोपबालिकाः।
व्रजराजसुतो रेजे राजीवराजिराजितः।।१६६।।

एवम् सञ्चिन्त्य सर्वसम्मोहनकारिणी बहुमूर्तिका सा राधा तत् क्षणाद् कृष्णवशगा अभवत्। राधिकादेव्याः इङ्गितज्ञः कृष्णः अपि वनान्तरे आत्मानम् बहुधा प्रत्येकरसलम्पटः अकार्षीत्। रसमण्डलिकामध्ये क्रीडयन् गोपबालिकाः राजीवराजिराजितः व्रजराजसुतः रेजे।

ऐसा सोचकर सर्वसम्मोहनकारिणी अनेक रूप वाली वह राधा उसी क्षण श्रीकृष्ण के वश में हो गयी। राधिका देवी के इशारे को समझने वाले श्रीकृष्ण ने भी वृन्दावन के भीतर अपने-आपको अनेक रूपों में परिवर्तित कर लिया। उनका प्रत्येक रूप रतिलम्पट था। रासमण्डल के मध्य में क्रीड़ा करते हुए गोपबालिकाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए उनका प्रत्येक रूप शोभा से शोभित व्रजराज (नन्द) के पुत्र शोभित हो रहे थे।।१६४-१६६।।

मलयोद्भवलिप्ताङ्गः शीतलो भासयन् दिशः।
ताभिर्नक्षत्रमालाभिरुडुराज इवाबभौ।।१६७।।
कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जरीणां सकामिनाम्।
कामिनीनां रासमध्ये कलः कोलाहलोऽभवत्।।१६८।।

मलयोद्भवलिप्ताङ्गः शीतलः (कृष्णः) दिशः भासयन् ताभिः नक्षत्र-मालाभिः उडुराज इव आबभौ। रासमध्ये कंकणानाम् किंकिणीनाम् मञ्जरीणाम् सकामिनाम् कामिनीनाम् कलः कोलाहलः अभवत्।

चन्दन से लिप्त अंग वाले, शीतल श्रीकृष्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उन गोपरमणियों के साथ इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रमाला

के साथ उडुराज (चन्द्रमा) शोभित होता है। रास के मध्य में कंकणों का, किंकिणियों का, मञ्जरियों का तथा कामिजनों और कामिनियों का मधुर मृदुल कोलाहल होने लगा॥१६७-१६८॥

ताभिर्व्रजस्त्रीभिरुदारचेष्टित-
श्चकार केलिं कलकूजकूजितः।
यथा नवश्यामतमाम्बुवाहः
प्रकाशि(?प्राकाशि) बिम्बानि करैर्नभस्तले॥१६९॥
तत्रातिदीप्तवान् देवो भगवान् नन्दनन्दनः।
अन्तरे हेमरत्नानामिन्द्रनीलमणिर्यथा॥१७०॥

उदारचेष्टितः कलकूजकूजितः (कृष्णः) ताभिः व्रजस्त्रीभिः केलिम् चकार यथा नवश्यामतमाम्बुवाहः नभस्तले बिम्बानि करैः प्राकाशि। तत्र देवः भगवान् नन्दनन्दनः अतिदीप्तवान् यथा हेमरत्नानाम् अन्तरे इन्द्रनीलमणिः।

उदार चेष्टाओं वाले मधुर-मधुर शब्द करने वाले श्रीकृष्ण ने उन व्रजबालाओं के साथ अद्भुत क्रीडा की। जैसे कि आकाश में नया काला बादल छायासमूहों से प्रकाशित हो रहा था। वहाँ देवाधिदेव भगवान् नन्दनन्दन अतिमात्र दीप्ति को प्राप्त हो रहे थे, जैसे हेम-रत्नों के मध्य में इन्द्रनील मणि शोभित होती है॥१६९-१७०॥

आचञ्चलाञ्चलमनुत्कटनीविबन्धमान्दोलमानभुजकण्टकरत्नहारम्।
ईषत्स्मितं मृदुनिमीलितनेत्रयुग्मं गोपीगणस्य गजराजगतं मुदेऽभूत्॥

आचञ्चलाञ्चलम् अनुत्कटनीविबन्धम् आन्दोलमानभुजकण्टकरत्नहारम् मृदुनिमीलितनेत्रयुग्मम् ईषत्स्मितम् गजराजगतम् गोपीगणस्य मुदे अभूत्।

रासक्रीड़ा में गोपियों के अञ्चलों को चञ्चल करते हुए, उनके नीवीबन्धों को शिथिल करते हुए, कण्टक के समान रत्न हीरों को भुजयुग्म से आन्दोलित करते हुए, अर्धोन्मीलित नेत्रयुग्म के साथ मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण ने गजराज की भाँति गोपीगणों का आनन्दवर्धन किया, उन्हें आनन्द प्रदान किया, गोपियाँ प्रसन्न हो गयीं॥१७१॥

काचिद् दर्शयति प्रकामसुभगा मूलं भुजायाः परा
भ्रूभङ्ग्या कलयत्यनङ्गसमरं काचित् कचान् पश्यति।
काचित् साचिमुखाम्बुजा मृदुगतिः सञ्चालयन्ती पदं
काचित् दन्तविदंशिताधरपुटा शोणाक्षिकोणाऽभवत्॥१७२॥

काचित् प्रकामसुभगा भुजाया मूलम् दर्शयति। परा भ्रूभङ्ग्या अनङ्ग-

समरम् कलयति। काचित् कचान् पश्यति। काचित् साचिमुखाम्बुजा पदम् सञ्चालयन्ती मृदुगतिः, काचित् दन्तविदंशिताधरपुटा शोणाक्षिकोणा अभवत्।

उस रासमण्डल में कोई अत्यन्त सुन्दर गोपी अपनी भुजा के मूल को दिखा रही थी तो अन्य गोपी भ्रूभङ्गिमा द्वारा अनङ्ग समर को प्रकट कर रही थी। अपने कोई घुंघराले काले बालों को देख रही थी। टेढ़े मुख कमल वाली कोई गोपी मन्द-मन्द पादविक्षेप द्वारा अपनी मृदु गति को प्रकट कर रही थी और कोई गोपी अधरपुटों को दन्तक्षत कर लाल नेत्रों वाली हो गयी॥१७२॥

काचित् करेणुरिव गच्छति मन्दमन्दं
काचित् करोति कलरवावरवं चिराय।
कापि क्वणत्कनककाञ्चिकमूर्ध्वहस्तं
नृत्यत्यहो सुमधुरं परया सुगीतम्॥१७३॥
वेणुं वादयतेऽपरा सुमधुरं काचित् प्रशंसाकरी
काचित् ध्यायति कृष्णचन्द्रवदनं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
काचित् कङ्कणकिङ्किणीक्वणपरा द्राक्श्रीमुखं चुम्बति
कापि श्लिष्यति कामिनी मलयजैः काप्यङ्गमालिङ्गति॥१७४॥

काचित् करेणुः इव मन्दमन्दम् गच्छति। काचित् चिराय कलरवावरवम् करोति। का अपि क्वणत्कनककाञ्चिकम् ऊर्ध्वहस्तम् नृत्यति। अहो परया सुमधुरम् सुगीतम्, अपरा सुमधुरम् वेणुम् वादयते। काचित् प्रशंसाकरी, काचित् पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् कृष्णचन्द्रवदनम् ध्यायति, काचिद् कंकणकिंकिणीक्वणपरा द्राक् श्रीमुखम् चुम्बति, कापि कामिनी मलयजैः आश्लिष्यति। कापि अङ्गम् आलिङ्गति।

कोई गोपी हथिनी की तरह मन्द-मन्द गमन कर रही थी, कोई बहुत समय तक मधुर-मधुर रव (शब्द) कर रही थी, तो कोई शब्द करती हुई कनक करधनी को बजाती हुई हाथ ऊपर करके नाच रही थी। अहा दूसरी गोपी मधुर कण्ठ से सुमधुर गीत गा रही थी तो कोई गोपी मधुर-मधुर स्वर से वेणु बजा रही थी। कोई इनकी प्रशंसा कर रही थी। कोई श्रीकृष्ण के करोड़ों पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसी प्रभा वाले चन्द्रवदन का ध्यान कर रही थी। कोई कंकण और किंकिणियों से क्वणत्कार करती हुई शीघ्रता से श्रीकृष्ण के मुख का चुम्बन कर रही थी। कोई कामिनी मलयज जैसे शीतल श्रीकृष्ण का स्पर्श कर रही थी और कोई श्रीकृष्ण के अंग का आलिंगन कर रही थी॥१७३-१७४॥

गौर्योरन्तरगः कृष्णो गौर्यैका कृष्णयोस्तथा।
एवं प्रकल्पिते रासे नन्दनन्दननन्दनः॥१७५॥
गोपिकां गोपिकामन्तरा श्यामलः
श्यामलं श्यामलं चान्तरा गोपिका।
एवमुद्भाविते मण्डले गीतवान्
वेणुना सुस्वरं राधिकाजीवनम्॥१७६॥

गौर्योः अन्तरगः कृष्णः तथा कृष्णयोः अन्तरा एका गौरी। एवम् प्रकल्पिते रासे नन्दनन्दननन्दनः। गोपिकाम् गोपिकाम् अन्तरा श्यामलः, श्यामलम् श्यामलम् च अन्तरा गोपिका। एवम् उद्भाविते रासमण्डले (कृष्णः) वेणुना सुस्वरम् राधिकाजीवनम् गीतवान्।

दो गोपियों के मध्य एक कृष्ण तथा दो कृष्णों के मध्य एक गोपी इस तरह श्रीनन्दनन्दन को आनन्दित करने के लिए रास आयोजित था। प्रत्येक दो गोपियों के मध्य एक कृष्ण तथा प्रत्येक दो कृष्णों के मध्य एक गोपी की उद्भावना वाले रासमण्डल के मध्य में श्रीकृष्ण ने मधुर कण्ठ से वेणु-वादन के साथ राधिकाजीवन का सुन्दर स्वरों में गान किया॥१७५-१७६॥

सा राधा बहुधाकारा नानारसविलासिनी।
रसैर्नानाप्रकारैश्च रमयामास केशवम्॥१७७॥
एकोऽपि बहुधाकारस्तया सह तथैव च।
रेमे च भगवांस्ताभिः कामकोटिमनोहरः॥१७८॥
स एवमेकरूपेण क्रीडते राधया सह।
अन्यरूपो नृत्यमानो नर्तकैः सह मोदते॥१७९॥

बहुधा आकारा नानारसविलासिनी सा राधा नानाप्रकारैः रसैः च केशवम् रमयामास। एकः अपि कामकोटिमनोहरः भगवान् कृष्णः ताभिः तया च सह तथैव रेमे, स एकरूपेण राधया सह क्रीडते। अन्यरूपः नर्तकैः सह नृत्यमानः मोदते।

अनेक स्वरूप वाली एवं नाना रसों में विलास करने वाली उन परा श्रीराधा ने नाना प्रकार के रसों से श्रीकृष्ण को रमण कराया। इस प्रकार वे श्रीकृष्ण एक रूप से राधिका के साथ रमण कर रहे थे तथा अन्य रूपों से नर्तकों के साथ नृत्य करते हुए आनन्दित हो रहे थे॥१७७-१७९॥

नानारसकलाभिज्ञो वेणुवाद्यविशारदः।
मोहयन् काननं सर्वं गृहीत्वा तां वराङ्गनाम्।
विजहार हारवक्षा आत्मारामोऽपि केशवः॥१८०॥

नानारसकलाभिज्ञः वेणुवाद्यविशारदः सर्वम् काननम् मोहयन् हारवक्षाः केशवः ताम् वराङ्गनाम् गृहीत्वा विजहार।

अनेक रसकलाओं के परम ज्ञाता, वेणुवाद्य के वादन में पारङ्गत श्रीगोविन्द ने सम्पूर्ण वृन्दावन को मोहित करते हुए उस वराङ्गना श्रीराधा को साथ लेकर वक्षःस्थल पर कौस्तुभ के हार से विभूषित आत्माराम होते हुए श्री राधिका जी के साथ रमण (विहार) किया।।१८०।।

प्रसृमररुचिविद्युन्मेघपुञ्जावभासौ
प्रकटितकटिचञ्चत्क्षौमपीतांशुकान्तौ ।
अलकपिहितवक्त्रौ कामकेलिं विलोलौ
स्मर हृदि हृदयेशौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ।।१८१।।

प्रसृमररुचिविद्युन्मेघपुञ्जावभासौ, प्रकटितचञ्चत् क्षौमपीतांशुकान्तौ अलकपिहितवक्त्रौ कामकेलिम् विलोलौ हृदयेशौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ हृदि स्मर।

प्रसृमर रुचि अर्थात् क्षणिक प्रकाश वाली विद्युत् से सम्पन्न मेघों के समूह के समान आभा वाले, कटिप्रदेश में चंचल रेशमी वस्त्र तथा पीताम्बर से मनोहर, अलकावलि से मुख को ढँके हुए, कामक्रीडा में अनुरक्त अपने प्राणेश्वर श्रीराधिका-कृष्ण का सदा हृदय में स्मरण करो।।१८१।।

उद्यद्विद्युदुदारवारिदरुचौ रोचिज्जगद्द्योतिनी
सुस्निग्धौ रतिकामसम्मिततनू स्मेरस्मरस्मारिणौ।
वृन्दारण्यविहारिणौ मलयजालिप्तौ मनोहारिणी
चेतः संस्मर सर्वदा प्रियतमौ श्रीराधिकाकेशवौ।।१८२।।

हे चेतः! उद्यद्विद्युत्-उदारवारिदरुचौ रोचित्जगद्द्योतिनौ सुस्निग्धौ रति-कामसम्मिततनू स्मेरस्मरस्मारिणौ वृन्दारण्यविहारिणौ मलयजालिप्तौ मनोहारिणौ प्रियतमौ श्रीराधिकाकेशवौ सर्वदा संस्मर।

हे मेरे चित्त! तू श्रीराधा-कृष्ण का सदा स्मरण कर। वे दोनों चमकती विद्युत् एवं जल से पूर्ण मेघ की-सी आभा वाले हैं। वे अपने तेज से जगत् को प्रकाशित करते हैं। परस्पर अतिस्निग्ध हैं। साक्षात् रति और कामदेव के समान शरीर वाले हैं। रति और कामदेव का स्मरण कराने वाले हैं, वे नित्य वृन्दाविपिन में विहार करने वाले हैं। सम्पूर्ण शरीर पर चन्दन का लेप लगाये हैं तथा वे दोनों मन को मुग्ध करने वाले प्रियतम हैं।।१८२।।

राधा तप्तसुवर्णचारुलतिका शश्वन्मुनेर्मोहिनी
माद्यत्कुञ्जरसारकुम्भकुचयुग्भारावनम्रान्तरा।

पूर्णाङ्काऽङ्कितचन्द्रतुल्यवदनाम्भोजा क्वणत्काञ्चिका
श्रीकृष्णस्य विलासिनी मम पुरस्तादस्तु(?स्व) शान्तिप्रदा॥

इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये श्रीराधाकृष्ण-
विहारो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

तप्तसुवर्णचारुलतिका शश्वन्मुनेः मोहिनी, माद्यत् कुञ्जरसारकुम्भकुच-युग्भारावनम्रान्तरा, पूर्णाङ्क-अङ्कितचन्द्रतुल्यवदनाम्भोजा, क्वणत्काञ्चिका शान्तिप्रदा श्रीकृष्णस्य विलासिनी राधा मम पुरस्ताद् अस्तु।

तप्त सुवर्ण की अति सुन्दर लतिका, सदा मुनि को मोहित करने वाली, मदयुक्त गज के सारकुम्भ के समान कुचयुग्म वाली, कामदेव के वन में विचरण करने वाली, पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र के समान वदन-अम्भोज वाली, करधनी के नूपुरों को क्वणित करती हुई अपने एवं आत्मीय जनों को शान्ति प्रदान करने वाली श्रीकृष्ण की विलासिनी श्रीराधा मेरे नेत्रों के आगे प्रकट हो जाए॥१८३॥

इस प्रकार श्रीकृष्णयामल महातन्त्र में राधा-कृष्णरहस्य में राधाकृष्णविहार नामक अट्ठाईसवें अध्याय की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।